श्री उपदेश रत्नाकर

(मूळ अने गुजराती भाषांतर सहित)

प्रसिद्ध कर्ता,

श्री लालन निकेतन

मढडा.

संवत १९८१ सने १९२५

कींमत रु. २-८-०

विषयानुक्रमणिका

प्रथम तरंग

विषय.	पृष्ठांक	विषय	पृष्ठांक
प्रथपीठिका	१	अनिष्टने हरण करनारा धर्म उपर धर्मराजानु	
मंगलाचरण	६	दृष्टांत	८
धर्मोपदेशमाहात्म्य	७		

द्वितीय तरंग—

विषय.	पृष्ठांक	विषय	पृष्ठांक
धर्मने ग्रहण करवानो विधि	१२	ते उपर श्रेणिक राजानुं वृत्तांत	१४

तृतीय तरंग—

विषय.	पृष्ठांक	विषय	पृष्ठांक
उपदेश आपवाने अयोग्य एवा मनुष्योनु स्वरूप	१८	ते उपर 'गग' नामना पात्रकनी कथा	२२
ते उपर नंदन नामना कोटवालनी कथा	१९	जमेला माणसनु स्वरूप	२४
मिथ्यात्वी जीवना राग द्वेषनुं विवेचन	२०	ते उपर गोपालकनी कथा	२५
ते उपर दुर्योधननु वृत्तांत	२१	अति रागी उपर उदायन राजानो वृत्तात	२७
मोहितचित्तवृत्तिवाला पुरुषनु लक्षण	२२		

चतुर्थ तरंग—

विषय.	पृष्ठांक	विषय	पृष्ठांक
केटली जातना मनुष्यो धर्मने साधी शकता नथी		बधिर कुटुंबनु वृत्तात	३५
तेमनु स्वरूप	३३	दुराग्रह उपर लोहग्राहक पुरुषनु दृष्टांत	३७

अनवस्थित माणस उपर एक शेठनी स्त्रीनु उदाहरण ३४
प्रमत्तना प्रकार ३५
दश प्रकारना मनुष्यो धर्म पाळता नथी, ते उपर दुर्वासा अने धृतराष्ट्रनो सबंध ३५
पामर उपर एक कुटुंबीनी कथा ३८
मात्र सांभळेलु ग्रहण करवा उपर तापसनी कथा ३९

पंचम तथा षष्ट तरंग—

धर्मोपदेशनी वृष्टिथी फळ उत्पन्न करवामा जीवना छ दृष्टांत ४१
पेहेला गिरिशिखरना दृष्टांत उपर वटुकनी कथा ४३
बीजा पर्वतना झरणाना दृष्टांत उपर विवेचन ४३
त्रीजा मरुस्थलना दृष्टांतनु विवेचन ४४
ते उपर श्यामल शेठनी कथा ४५
चोथा काळी जमीनना दृष्टांतनु विवेचन ४६
ते उपर आनन्द कामदेव विगेरे दश श्रावकोनो वृत्तांत ४७
पांचमा समुद्रनी छीपना दृष्टांतनु स्वरुप ४८
छठ्ठा मणिनी खाणना दृष्टांतनु स्वरुप ५०
ते उपर इन्द्रनागनी कथा ५०

सप्तम तरंग—

पांच प्रकारना यमना दृष्टांते दर्शाविया पांच प्रकारना जीवोनु स्वरुप ५३
दत्त नामना ब्राम्हण मंत्रीनी कथा ५५
वाम्य अने अवाम्य जीवोनु स्वरुप ५६

अष्टम तरंग—

बीजी रीते योग्य अयोग्यनो विचार अने ते उपर सरोवर अने कागडानु दृष्टांत ५७
धर्मने नष्ट करवा उपर कपिलनी कथा ५८
ते उपर श्वान, हाथी अने हंसना दृष्टांतो ६१

नवम तरंग—

उपदेशने अयोग्य एवा पुरुषो उपर सर्प, जळो, वांझ्या गाय अने अवांझ्या गायना दृष्टांतो ६४

कुलपुत्रनुं बीजुं अवांतर दृष्टांत ६५

दशम तरंग

धर्मनो उपदेश सर्वने गुणकारी छे, तेमा अयोग्यनुं निरूपण करवुं व्यर्थ छे, एवी शंकानुं समाधान ६७

एकादश तरंग—

उपरना अर्थने दृढ करवा माटे मेत्रऋषिनुं दृष्टांत ७१

द्वादश तरंग—

योग्य तथा अयोग्यनुं स्वरूप विशेष स्पष्ट करवा माटे पाषाण, वरसाद, घडो, चाळणी, सुघरीनो माळो, हंस, पाडो, घेटो, मशक, जळो, बीलाडी, शेरो, गाय, भेरी अने आभीरीना दृष्टांतो ७२

आभीरीना दृष्टांतनुं सविस्तर विवेचन ७५

त्रयोदश तरंग—

उपदेशने योग्य केवा जीव होय छे, तेनुं विवेचन ७७

ते उपर सोमवसु ब्राह्मणनी कथा ७०

धर्मना तत्त्वने सारी रीते नहि जाणनार माणस अयोग्य छे, ते उपर कुरुचंद्र राजानी कथा ७४

फरीवार धर्मने योग्य एवा पुरुषोना स्वरूपनुं विवेचन. ७५

चतुर्दश तरंग—

कया गुरु योग्य अने कया गुरु अयोग्य, ते विषे विवेचन ९९
आठ प्रकारना गुरुओ उपर पवैयो, कौंच, भ्रमर, मोर, कोयल, हंस, पापट अने कागडो ए आठे जातना पक्षीओना दृष्टांत १००
मोर पक्षीना दृष्टांत उपर मगु आचार्यनी कथा १०३

पञ्चदश तरंग—

गुरु अने श्रावक बननी योग्यतानुं स्वरूप १०७
ते उपर चमार, वेश्या, गृहपति अने राजाना आभूषणोना दृष्टांत १०७
जिनेश्वर भगवते कहेला केटलाएक सावद्य कर्मनुं स्वरूप ११०
कुगुरुनुं स्वरूप १११
कुगुरुओना दुराचरणनुं वर्णन ११२
ते प्रसंगे अंगारमर्दक आचार्यनो संबंध ११३
बीजी गधराजानी कथा ११८
चार प्रकारना आभूषण दृष्टांते चार प्रकारना श्रावकोनुं स्वरूप १२१
ते प्रसंगे वरदत्त शेठना रासीपुत्रनी कथा १२४
धर्मनी शुद्धि उपर विवेचन १२५
सामान्य जीवोना धर्मने उद्देशीने आचरणना दृष्टांते चार प्रकार १२७

षोडश तरंग—

सप्तदश तरंग—

रत्नने दृष्टांते आचार्यो, साधुओ, श्रावको अने सामान्य जीवोना चार प्रकार ૧૩૧
ते उपर श्री आर्य महागिरि सूरिनो संबंध ૧૩૯
रत्नने दृष्टांते साधुओना चार प्रकार ૧૪૦
रत्नने दृष्टांते श्रावकोना चार प्रकार ૧૪૧
ते उपर सहदेवनी कथा ૧૪૨
चोथा प्रकार उपर श्री कुमारपालनो संबंध ૧૪૪

अष्टादश तरंग—

गुरु, शिष्य अने श्रावकोना वचन तथा विनय वगेरे क्रियाओथी चार प्रकार ૧૪૮
प्रथम गुरुना चार प्रकार ૧૪૯
शिष्यना संबंधमा युगप्रधान श्री कालकसूरिना शिष्यनी कथा ૧૫૧
गृहस्थ श्रावकोना चार प्रकार ૧૫૨

नवदश तरंग—

गुरु तथा श्रावकनी योग्यता तथा अयोग्यतानु स्वरूप ૧૫૪
ते उपर सर्प, चोर, ठग, वणिक, रयागाय, नट, गाय, मित्र, बंधु, पिता, माता अने कल्पवृक्षना दृष्टांतो ૧૫૪
नटना दृष्टांत उपर अंगार मर्दकाचार्यनी कथा ૧૬૩
गायना दृष्टांतनु विवेचन ૧૬૩
मित्रना दृष्टांत उपर बप्पभट्टिसूरिनी कथा ૧૬૮
बंधु दृष्टांत उपर श्रीकुमारपाल राजा अने हेमचंद्र गुरुनो प्रबंध ૧૮૦

चतुर्दश तरंग—

केवा गुरु योग्य अने केवा गुरु अयोग्य, ते विषे विवेचन ९९
आठ प्रकारना गुरुओ उपर थंभो, क्रौंच, भ्रमर, मोर, कोयल, हंस, पोपट अने कागडो ए आठे जातना पक्षीओना दृष्टांत १००
मोर पक्षीना दृष्टांत उपर मंगु आचार्यनी कथा १०३

पञ्चदश तरंग—

गुरु अने श्रावक बन्नेनी योग्यतानुं स्वरूप १०७
ते उपर चंद्रकांत, वेश्या, बृहस्पति अने राजाना आभूषणोना दृष्टांत १०७
जिनेश्वर भगवंते कहेला केटलाएक सावद्य कर्मोनुं स्वरूप ११०
कुगुरुनुं स्वरूप १११
कुगुरुओना दुराचरणनुं वर्णन ११२
ते प्रसंगे अंगारमर्दक आचार्यनो संबंध ११३
बीजी यशराजपनी कथा ११८
चार प्रकारना आचरण दृष्टांते चार प्रकारना श्रावकोनुं स्वरूप १२१
ते प्रसंगे वरदत्त शेठना दासीपुत्रनी कथा १२४
धर्मनी शुद्धि उपर विवेचन १२९
सामान्य जीवोना धर्मने उद्देशीने आचरणना दृष्टांते चार प्रकार १३२

षोडश तरंग—

सप्तदश तरंग—

रत्नने दृष्टांते आचार्यो, साधुओ, श्रावको अने सामान्य जीवोना चार प्रकार १३७
ते उपर श्री आर्य महागिरि सूरिनो संबंध १३९
रत्नने दृष्टांते साधुओना चार प्रकार १४०
रत्नने दृष्टांते श्रावकोना चार प्रकार १४२
ते उपर सहदेवनी कथा १४२
चोथा प्रकार उपर श्री कुमारपाळनो संबंध १४४

अष्टादश तरंग—

गुरु, शिष्य अने श्रावकोना वचन तथा विनय वगेरे क्रियाओथी चार प्रकार १४८
प्रथम गुरुना चार प्रकार १४९
शिष्यना संबंधमां युगप्रधान श्री कालकसूरिना शिष्यनी कथा १५१
गृहस्थ श्रावकोना चार प्रकार १५२

नवदश तरंग—

गुरु तथा श्रावकनी योग्यता तथा अयोग्यतानु स्वरूप १५४
ते उपर सर्प, चोर, ठग, वणिक, अभ्यागाय, नट, गाय, मित्र, बंधु, पिता, माता अने कल्पवृक्ष-ना दृष्टांतो १५४
नटना दृष्टांत उपर अंगार मर्दकाचार्यनी कथा १६३
गायना दृष्टांतनु विवेचन १६३
मित्रना दृष्टांत उपर वप्पभट्टिसूरिनी कथा १६५
बंधु दृष्टांत उपर श्रीकुमारपाळ राजा अने हेमचंद्र गुरुनो संबंध १८१

सर्पना दृष्टांत उपर रोहितक नामना परिव्राजकनी कथा १५५

चोरना दृष्टांत उपर वसुराजा तरफ वत्तआ पर्वतनी कथा १५७

ठगना दृष्टांत उपर वेगरनी माळावाळा त्रीजाना नु दृष्टांत १५८

वणिकना दृष्टांत उपर विवेचन १६०

व या गायना दृष्टांत उपर जातिकाचार्यना शिष्यो नो सबंध १६२

पिताना दृष्टांत उपर युवराजर्षिनी कथा १९०

माताना दृष्टांत उपर कमळ शेठना पुत्रने प्रतिबोध आपनार त्रीजा आचार्यनी कथा १९१

कल्पवृक्षना दृष्टांतनु विवेचन १९४

तेवी रीते श्रोताओना चार प्रकार १९५

दांभिक श्रावके वेचेला बे मुनिओनी कथा १९६

केटलाएक श्रावको गाय जेवा होय छे ते उपर र नपति शेठनो सबंध १९७

पिताना दृष्टांत उपर वनगढ राजानी कथा १९९

प्रथम भागनी विषयानुक्रमणिका समाप्त

श्री जिनाय नम

श्री उपदेशरत्नाकर.

' श्री सर्वज्ञाय नम. श्री गुरुभ्यो नम ' जयश्रीप्राप्तितो मोह–रिपोरमलकेवल ॥ यो जगत्कृपया धर्म–मूचे त श्री जिन स्तुवे ॥ १ ॥ नाथ प्रजाना पुरुषार्थदेशनादनिष्टहर्त्तेष्टकरश्च योऽभवत् ॥ तमादिम भूमिभृता तथार्हता । जगद्गुरु श्रीऋषभ प्रभु स्तुमः॥ २ ॥

श्री सर्वज्ञप्रति नमस्कार थाओ, श्री गुरुओ प्रति नमस्कार थाओ, जे (मोक्षरूपी) लक्ष्मीनी प्राप्तिथी मोहरूपी शत्रुने जीते छे, तथा जे निर्मल केवल ज्ञानवाळा छे, तथा जेणे जगतपर कृपा लावीने धर्म उपदेश्यो छे, ते श्री जिनेश्वर प्रभुनी हु स्तुति करु छु ॥ १ ॥ प्रजाओना स्वामी तथा (धर्म, अर्थ, काम अने मोक्षरूपी) पुरुषार्थोना उपदेशथी दुखने हरनारा, तथा सुख करनारा जे थया छे, तेमज जे राजाओमा तथा तीर्थंकरोमा पहेला छे,–एवा जगतना स्वामी श्री ऋषभदेव प्रभुनी अमो स्तुति करीए छीए ॥ २ ॥

अशेषत शातिमुपद्रवाणां । जगत्सु कुर्वत्कृतवत्करिष्यत् ॥ यस्याभिधानं दधतेऽन्वयित्वं सशातिनेताभिमतार्थसिद्ध्यै ॥ ३ ॥ य श्यामवर्णोऽपि वशीकरोति । ध्यात सतामीप्सितशर्मलक्ष्मी ॥ जयाय बाह्यातरवैरिनेमि । नेमिस्त्रिलोक सजिनेन्द्रनेमि ॥ ४ ॥ पार्श्व सव पातु विनार्त्ति सप्त द्वीपागिना सप्त भयानि जेतु ॥ य सप्तशूलायुधमसगामि–सप्तस्फटाहीन्द्रतनुच्छलेन ॥ ५ ॥ श्री वर्धमानप्रभुरेप पुष्यात् । प्रवर्धमाना सुखसपदोव ॥ जगत्सु यत्त्रासयितु नु विघ्न–मृगान् दधात्यकमिषान्मृगेन्द्र ॥ ६ ॥

जे प्रभुनु नाम (त्रणे) जगतोमा समस्त प्रकारे उपद्रवोनी शाति करे छे, जेणे शाति करेली छे, तथा जे शाति करनारु छे (अने एवी रीते) जे पोतानु सार्थकपणु धारण करे छे, ते शातिनाथ प्रभु इच्छित अर्थनी सिद्धि माटे थाओ ॥ ३ ॥ जेनु ध्यान धरवामा आवेनु छे, एवा श्याम कातिवाळा पण जे प्रभु सज्जनोनी इच्छित सुखनी (मोक्ष सुखनी) लक्ष्मीने वश करे छे, तथा जे बाह्य अने अतरग शत्रुओनो नाश करनारा छे, तेमज त्रणे लोक जेमने नमस्कार करे छे, ते श्री नेमि जिनेश्वर (तमारा) जय माटे थाओ ॥ ४ ॥ खभा-पर रहेला सात फणोवाळा नागेंद्रना शरीरना मिषथी साते द्वीपोमा रहेला प्राणीओना सात भयोने भेदवा माटे जे सात शूळोवाळा हथीयारने धारण करे छे, ते पार्श्वनाथ प्रभु तमारु रक्षण करो ॥ ५ ॥ जगतनी अदर रहेला विघ्नोरुपी हरिणोने जाणे त्रास आपवा माटे लाछनना मिषथी जे, सिंहने (पोतानी पासे) धारण करे छे ते श्री वर्धमान प्रभु तमारी वृद्धि पामती मुख्य सपत्तानु पोषण करो ॥ ६ ॥

नामादिभेदैर्वि–शदैश्चतुर्भि–र्यैर्लोककालत्रितय पुनत.॥ नवोद्विजा मुक्तिपदं ददते । सर्वेऽपि ते सर्वविदो जयंतु ॥ ७ ॥ ध्यातापि या प्रवरकाव्यफलान्यमंदा–नदोल्लसद्बिबुधरस्यरसानिदत्ते ॥ श्रीभारती जगति कल्पलतेव नव्या । बोधि धियं च विशदा दिशतामिय मे॥ ८ ॥ विश्वोत्तमैर्महिमलब्धिगुणैरशेषै–र्भास्वत्सु येषु किरणैरिव भानवत्सु ॥ सूक्ष्मोडुवति निखिला अपिसूरयोऽन्ये । श्रीदेवसुंदरगणप्रभवो मुदे ते ॥ ए ॥ यैर्मादृशोऽपि कठिनोपलसनिभेऽस्मिन् । गोभिर्व्यधायि वरबोधरसोद्भव स्वै ॥ नव्यानिमानमृतदानपरान् सुधाशून् । श्रीज्ञानसागरगुरून् प्रणतोऽस्मि भक्त्या ॥ १० ॥

नाम आदिक चार निर्मळ भेदोवमे करीने जेओ त्रणे लोकने तथा त्रणे काळने पवित्र करे छे, तेम ससारथी उद्विग्न थयेलाओने जेओ मोक्षपद आपे छे, ते सघळा सर्वज्ञो जयवता वर्तो ॥ ७ ॥ ध्यान धरवाथी पण जे, अत्यत आनदमा उल्लासमान थता विद्वानोने चाखवा लायक रसवाळा उत्तम काव्योरूपी फळोने आपे छे, एवी जगतमा नवीन प्रकारनी कल्पवेली सरखी आ श्री सरस्वती देवी मने निर्मळ ज्ञान अने बुद्धि आपो ॥ ८ ॥ महिमा अने लब्धिरूप सर्व विश्वोत्तम गुणोरूपी किरणोये करीने जे सूर्यनी पेठे प्रकाशित होते छते, बीजा आचार्यो सूक्ष्म ताराओ सरखा लागे छे, एवा ते श्री देवसुंदरगणी महाराज (मारा) हर्ष माटे थाओ ॥ ए ॥ आ मारा जेवा कठण पत्थर सरिखामा पण जेओये पोताना वचनोरूपी किरणोयें करीने उत्तम ज्ञानरूपी रसनी उत्पति करेली छे, तथा अमृतनु (मोक्षनु) दान देवामा तत्पर, एवा आ नवा चद्र सरीखा श्री ज्ञानसागर गुरुने हुं भक्तिपूर्वक नमस्कार करुं छुं ॥ १० ॥

मूर्त्तिं सुधारसमयीमिव वीक्षमाणा । येषां सुधाप्लवसुखं ददता दृशा ज्ञाः ॥ अक्ष्णामवाप्य मतिकृत्त्वमुदासते ते । श्री सोमसुंदरगणप्रभवो जयतु ॥ ११ ॥ इति स्तुत्यगणं स्तुत्वा । मुनिसुंदरसूरिणा ॥ जैनधर्मोपदेशेन । क्रियते वाक् फलेग्रहि ॥ १२ ॥ परोपकारः सततं विधेय स्वशक्तितो ह्युत्तमनीतिरेषा ॥ न स्वोपकाराच्च स भिद्यते तत् । तं कुर्वतैतद्द्वितयं कृतं स्यात् ॥ १३ ॥ स चाखिलानिष्टनियोजनेन । सर्वेष्टसयोजनतश्च साध्य ॥ इष्टं त्विहाकैटनवैरिकीट मेकांतिकात्यंतिकमेव सौख्यं ॥ १४ ॥ तच्चास्ति मोक्षे न भवे यतोऽत्र । प्रभंगुरं दुःखयुतं च शर्म ॥ दानेन मोक्षस्य तदर्थिनां तत् । सम्यक् प्रसाध्योऽत्र परोपकारः ॥ १५ ॥

आखोने अमृतना छटकावना सुखने आपनारा एवा गुरु महाराजनी, जाणे अमृत रसमय होय नहीं एवी मूर्तिने जोता एवा विद्वानो (पोतानी) आखोनी बुद्धिपूर्वक कृतिने पामीने संतुष्ट थाय छे, ते श्री सोमसुंदरगणी महाराज जयवंता वर्त्तो ॥ ११ ॥ ए रीते स्तुति करवा लायक गणने स्तवीने मुनि सुंदरसूरि जैन धर्मना उपदेशवडे करीने पोतानी वाणी सफळ करे छे ॥ १२ ॥ पोतानी शक्ति मुजब हमेशां परोपकार करवो, ए उत्तम माणसोनी नीति छे, वळी ते परोपकार स्वोपकारथी कइ भिन्न नथी, अने तेथी ते परोपकार करनारे स्वोपकार अने परोपकार बन्ने कर्या कहेवाय ॥ १३ ॥ वळी ते परोपकार सर्व दुःखोने दूर करवाथी, तथा सर्व सुखोने मेळवी आपवाथी साधेलो कहेवाय, अने एकांत तथा अत्यंत सुख तो अहीं छेकरीकामाथी मारीने निगा सुधीने प्रिय छे ॥ १४ ॥ अने तेवु सुख तो मोक्षमा छे, परंतु संसारमा नथी, केमके संसारमा तो क्षणभंगुर अने दुःखवाळु सुख छे, माटे तेना अर्थिओने मोक्षनु ज्ञान आपीने, ते परोपकारने अहीं सम्यक्प्रकारे साधवो जोइए॥१५॥

मोक्षस्तु दातु न करेण शक्य—स्तद्दर्शनीयस्तदवाप्त्युपाय ॥ उपायत· सम्यगुपासिताद्धि ।
भवेदुपेयस्य सुखेन सिद्धि ॥ १६ ॥ तस्यास्त्युपाय. खलु धर्म एव । त च प्रवादा बहुधा
वदति ॥ पृथक् पृथक् स्वस्वमतीयशास्त्रे । स्वरूपभिद्धेतुफलादिवाग्भि ॥ १७ ॥ न ते च
सर्वे शिवसिद्ध्युपाया· । कित्वेक एवाखिलवित्प्रणीत ॥ सुदुर्लभोऽय मिलित परैस्तु ।
मुग्धैर्विनाशुद्धगुरूपदेशं ॥ १८ ॥ अय पृथक्कृत्य तत परेभ्य । प्रदर्शनीय शिवहेतुरेक. ॥
परेऽप्यशुद्धा इति दर्शनीया प्रथक्कृतिर्ह्यस्य तथैव साध्या ॥ १९ ॥

वळी मोक्ष कइ हाथथी आपी शकातो नथी, माटे ते मेळववानो उपाय देखाडवो जोइये. केमके सारी रीते साधेला उपायथी सुखे सुखे उपेयनी सिद्धि थाय छे ॥ १६ ॥ वळी ते मोक्षनी प्राप्तिनो उपा तो धर्मज छे, अने ते धर्मने अन्यदर्शनीओ पोतपोताना मतना, स्वरूप, भेद, हेतु तथा फळो आदिकोना वचनोवाळा जूदा जूदा शास्त्रोवडे करीने घणा प्रकारनो कहे छे ॥ १७ ॥ वळी ते सघळा धर्मो कइ मोक्ष साधवाना उपायरूप नथी, परतु एक सर्वज्ञ प्रभुएज प्ररूपेलो धर्म मोक्षसाधक छे, अने ते धर्म शुद्ध गुरुना उपदेश विना मुग्ध एवा अन्योने मळवो दुर्लभ छे ॥ १८ ॥ माटे मोक्षना एक हेतुरूप एवा ते धर्मने बीजा धर्मोथी जूदो पाडीने देखाडवो जोइये, तेमज बीजा धर्मो अशुद्ध छे, एम पण देखाडवुं जोइये तेम तेनु अन्य धर्मोथी जुदापणुं पण सिद्ध करवु जोइये ॥ १९ ॥

जिनार्थिना मंदधिया ततो नृणा—मनुग्रहार्थं विविधैर्निदर्शनैः ॥ व्यक्त्या विशुध्यादिद्विधा जिनोदितं । धर्मं ब्रुवेऽन्यानपि तत्प्रसंगत ॥ १० ॥ प्रारभ्यते स्वल्पधियापि तेनो—पदेशरत्ना-करनामशास्त्रं ॥ नानातरंगादिमयोपदेशो—ईषत्स्वरूप स्वपरोपकृत्यै ॥ ११ ॥ विचार्यते शक्तियाप्यशक्ति—र्न मे मया येन तयोर्विचार ॥ परोपकारैकरसे कलंक—त्येन प्रवृत्तश्च तत्कृतो ॥ १२॥ । व्याख्यातॄणां बुद्धिमतां विज्ञाव्य । श्रोतॄणामप्याशयात्मैकरूपान् ॥ तादृक् सामग्र्योपकार्योपकार । जानंजनेकैव धर्मोपदेशो ॥ १३ ॥

मारे मोहना अर्थी एवा मंदबुद्धि माणसोनो अनुग्रह माटे नानाप्रकारना दृष्टांतोवडे करीने विशुद्धि आदिक चारतनी व्यक्तिप्रकारक जिनेश्वर प्रभुए कहेलो धर्म हुं कहुं छउं, तेम ते प्रसंगे बीजा धर्मोनुं स्वरूप पण हुं कहुं छउं ॥ १० ॥ अने तेटला माटे मंदबुद्धि एवो पण हुं विविध प्रकारना तरंग आदिकवाला उपदेशोने स्वरूपने धारण करनार * एवा आ उपदेश रत्नाकर नामना शास्त्रनो मारा अने अन्योना उपकार माटे प्रारंभ करुं छउं ॥ ११ ॥ वळी (आ कार्यमां) हुं मारी शक्ति अथवा अशक्तिनो पण विचार करतो नथी, केमके तेनो विचार करवो, ते परोपकाररूपी एक रसनी अंदर कलंक जेवो लागे छे, अने हुं तो अहीं फक्त एक परोपकार माटेज प्रवृत्त थयेलो छउं ॥ १२ ॥ व्याख्यान करनाराओना बुद्धिना जेवोने, तेमज सांभळनाराओना पण अनेक प्रकारना आशयोने जाणीने तेवी रीतनी सामग्रीवडे करीने अनेक प्रकारना धर्म संबंधि उपदेशोथीज उपकारीओपर उपकार थाय एम हुं जाणुं छउं ॥ १३ ॥

---

* ए नामने सार्थक करनार

ऐकाह्निकागमगभीरफलैतदन्यमिथ्यात्विजडकबुधेतरयोग्यताद्यै ॥ भेदैस्ततो नवनवैः सुकृतोपदेशान् । वक्ष्ये वहूनिहपरप्रतिबोधसिद्ध्यै ॥ २४ ॥[१] एतद्वृत्तद्वयस्य व्याख्या—व्याख्याकृता बुद्धिभेदान् मंदमंदतरविशिष्टविशिष्टतराद्यवगमरूपान् प्रकरणसिद्धांतविचारकथादिव्याख्येयरुचिरूपान् वा, श्रोतॄणामप्याशयांश्चैतदनुसारेण विचित्ररूपान् विभाव्य, तादृक् सामग्र्येति तादृशा क्षेत्रावसरश्रोतृपुरुषादिवैचित्र्यरूपया सामग्र्या उपकार्याणां किं व्याख्यास्यत इति चिंतानिरासेनोपदेष्टॄणानवनवव्याख्यानश्रवणप्रमोदिश्रोतॄणां चोपकारमुपदेशैरनेकैर्विचित्रैरेव जाने, इति सटंकः ॥ २५ ॥'

अने तेटलामाटे एक दिवस वांची शकाय तेवा अने तेथी अन्य आगमने अनु सरनारा अने तेथी अन्य, गंभीर अर्थोवाळा अने तेथी अन्य, पुण्य पापनां फळोने प्रकाश करनारा अने तेथी अन्य, तेमज मिथ्यात्विओनी अने तेथी अन्योनी जडकोनी अने तेथी अन्योनी, विद्वानोनी अने तेथी अन्योनी योग्यता आदिक नवा नवा भेदोवडे करीने अन्यना प्रतिबोधनी सिद्धि माटे आ कार्यमां हुं घणा सुकृत उपदेशो कहीश ॥ २४ ॥[१] हवे ते (त्रेवीस अने चोवीसमा आंकवाळा) बन्ने काव्योनी व्याख्या करे छे—व्याख्यान करनाराओना बुद्धि भेदोने एटले मंद अथवा वधारे मंद, विशेष अथवा वधारे विशेष इत्यादिक ज्ञानरूपी भेदोने, अथवा प्रकरण, सिद्धांत, विचार कथा आदिकनी व्याख्यान करवा योग्य रुचिरूपी भेदोने जाणीने तेवी रीतनी सामग्रीवडे करीने, एटले तेवी रीतना क्षेत्र, काळ तथा श्रोता पुरुष आदिकनी विचित्रतारूप सामग्रीवडे करीने, अर्थात् उपकार करवा लायक मनुष्यो प्रते शानुं व्याख्यान करीशुं ? एवी रीतनी चिंताने दूर करवावडे करीने उपदेश देनाराओ प्रते, तेमज नवा नवा व्याख्यानना श्रवणवडे करीने हर्ष पामनारा श्रोताओ प्रते नाना प्रकारना उपदेशोवडे करीनेज उपकार थाय छे, एम हुं मानुं छुं, एवो सटंक जाणवो ॥ २५ ॥'

ऐकाह्नि०—तत पूर्वोक्तकारणादिहोपदेशरत्नाकराह्वे ग्रंथे नवनवैर्भेदैर्बहून् सुकृतोपदेशान् वक्ष्ये इति योग, भेदानेव कियतो नाममादमाह—ऐकाह्निकेत्यादि, एकदिनव्याख्यानार्हा ऐकाह्निका, एतदन्यशब्दस्य प्रत्येक योजनात् एतेभ्योऽन्ये द्व्याह्निकादयः, आगमेति सूचक त्वात्सूत्रस्य आगमानुसारिण आगमालापकाद्यर्थरूपा एतदन्ये प्रकरणविचाराद्यर्थरूपा स्वमतिप्र थितवृत्तगाथादिरूपाश्च, गम्भीरेति, गम्भीरार्था एतदन्ये प्रकटार्था, फलेति, पुण्यपापफल प्रकाश- नरूपा, एतदन्ये पुण्यपापस्वरूपकारणादिप्रकाशनरूपाः, अत्रैह्निकादीना चतुर्णा पदाना द्वन्द्व कृत्वा, तत् एतदन्यशब्देन बहुवचनातेन द्वन्द्वः। तथा मिथ्यात्विना इतरशब्दस्य प्रतिपद यो गात्तदितरेषा मिश्रसम्यग्दृगादीनाम, जडकाणा इतरेषा कठिनादिप्रकृतीनामभिगृहीतमिथ्या त्वादिना तन्गाख्याऽनुपदेशार्हाणा, बुधाना स्वपरशासनाऽनुगविज्ञाना, इतरेषा मुग्धादीना च, प्राग्वद्द्वन्द्वे योग्या उपदेशा इति सर्वत्र विशेष्यपदाऽध्याहार

ततः प्राग्योजितपदैर्द्वन्द्वे, तेषा भावस्तत्ता, तदाद्यैर्भेदै आदिशब्दाद्राजमन्त्रिक्षत्रिय- ब्राह्मणादियोग्यग्रह ॥११॥

अने तेथी एटले पूर्वे कहेला कारणथी अहीं, एटले आ उपदेशरत्नाकर नामना ग्रथमा नवा नवा भेदोयमे करीने घणा मुकृत उपदेशोने हु कहीश, एवो (क्रायनो) सबध छे. हवे तेमाना केटलाक भेदोनेज नाम लइने देखामे छे. एक दिवसमा जेनु व्याख्यान थइ शके, तेवा उपदेशो ऐकाहिक' कहेवाय 'तेथी अन्य' ए शब्दने दरेकनी साथे जोमवाथी तेओथी अन्य एटले बे आदिक दिवसोमा जओनु व्याख्यान थइ शके एवा उपदेशो जाणवा आगम॥ सूत्रने सूचवनारू होवाथी आगमने अनुसरनारा एटले आगमना आलावा आदिकना अर्थरूप उपदेशो जाणवा, तेमज तेथी अन्य एटले प्रकरणोना विचार आदिकना अर्थरूप, तथा पोतानी बुद्धिथी रचेला काव्य तथा गाथा आदिकरूप उपदेशो जाणवा. गम्भीर एटले गहन अर्थोवाळा, अने तेओथी अन्य एटले प्रगट अर्थोवाळा उपदेशो जाणवा फळ एटले पुण्यपापना फळोने प्रकाशनारा, अने तेथी अन्य एटले पुण्यपापोना स्वरूप तथा कारण आदिकने प्रकाशनारूप उपदेशो जाणवा. अहीं 'ऐहिकादिक' चारे पदोनो द्वन्द्व समास करीने पछी बहु वचनात 'एतदन्य' शब्दनी साथे द्वन्द्व समासकरवो. वळी मिथ्यात्विओ प्रते तथा 'इतर' शब्दने दरेक पद साथे जोमवाथी तेओथी अन्य प्रते एटले मिश्र सम्यग् दृष्टिओ प्रते, तेमज जडको प्रते तथा तेओथी अन्य प्रते एटले कठिन आदिक प्रकृतिवाळाओ प्रते अर्थात् ग्रहण करेल, एवा मिथ्यात्वेकरीने ते शास्त्रोना उपदेशने नहीं लायक एवाओ प्रते वळी पंडितो प्रते एटले पोताना शासननु अनुकरण करनाराओ प्रते, तथा अन्य शासननु ज्ञान धरावनाराओ प्रते तेओथी अन्य प्रते एटले मुग्ध आदिको प्रते पूर्वनी पेठे द्वन्द्व समास करते छते, योग्य एवा उपदेशो, एवी रीतना विशेष पदनो सर्व जगोए अध्याहार जाणवो.

पछी पूर्वे योजेला पदोनी साथे द्वन्द्व समास करवो तेओनो जे भाव, ते तेओनी योग्यतापणु कहेवाय, ते आदिक भेदोयमे करीने आदि शब्दथकी राजा, मंत्रि, क्षत्रिय, ब्राह्मण, आदिकने योग्य, एवा उपदेशोनु ग्रहण करवु ॥ २४ ॥

स्तुवे तमुष्ट्र विजहाति गोस्तनी–मसत्प्रलापैर्नतु निंदतीह यः ॥ स्वकार्यतो योऽप्युपजीव्य दूपये–द्वैते. कवेर्वाचममु तु धिक्खल ॥ २५ ॥ कवेर्न दोषोऽयममुग्य यद्गिर वदत्यदोपाम पि दोपिर्णी खल. ॥ रविर्न दुष्टोऽत्र यदस्य जांघिक–छिपन् सुदीप्रामऽपि वेत्ति तामसी ॥ २६ ॥ स्तव स कस्यार्हति नो गण सता । विदूरसूक्ष्मार्थदृगप्यऽहो न य. ॥ परस्य दोपान् महतोऽप्य वेक्षते । न वक्ति वा यो हृदयस्थितानऽपि ॥ २७ ॥ सदूपणास्ते न खला· कथ स्यु–र्गृहणति येतान्यऽनुशास्त्रगुफ ॥ रीत्यैव सत सगुणा गुणान् ये । समततोऽप्याददते कवीना ॥ २८ ॥

ते उटनी हु स्तुति करू छु, के जे द्राक्षने तजि आपे छे, परतु असत्य वचनोथी तेनी निंदा करतो नथी, वळी ते खल मनुष्यने धिक्कार छे, के जे पोतानी मतलब साधी लेइने असत्य वचनोद्वारा कविनी वाणीने दूपित करे छे ॥ २५ ॥ कविनी निर्दोप वाणीने पण खल मनुष्य जे दूपणवाळी कहे छे, ते कविनो दोप नथी, परतु ते खलनोज दोप छे, केमके सूर्यनी तेज युक्त कातिने पण घूवड जे अधकारमय जाणे छे, तेमा कइ सूर्य दूपणवाळो नथी, (अर्थात् ते घूवडज दूपणवाळो छे) ॥ २६ ॥ जे सज्जनोनो समुह दूरदर्शी तथा सूक्ष्म पदार्थोने पण जोवावाळो छे छता पण आश्चर्यनी वात छे के, परना महान् दोपोने पण जे जोइ शकतो नथी, अथवा हृदयमा रहेला ते दोपोने पण जे (मुखथी) प्रकाशतो नथी, एवो ते सज्जनोनो समुह कोनी स्तुतिने लायक नथी? ॥ २७ ॥ ते खल मनुष्यो दूपण युक्त केम न होय? के जेओ दरेक शास्त्रनी रचनामाथी ते दूपणोनेज ग्रहण करे छे, वळी तेज रीतिथी सज्जनो गुण युक्त केम न होय? के जेओ चारे बाजुथी कविओना गुणोने ग्रहण करे छे ॥ २८ ॥

सतस्ते सुचिर जयतु सुतरामीमे खल्लानऽप्यमून् ॥ शास्त्रे येऽनुपद गुणप्रकटनाद्दद्यु. प्रतिष्ठा कवे ॥ ये चाऽनुग्रहकाम्ययेव विविधान् दोषान् गृहीत्वाथवा । यादृकृतादृगपीदमर्थि गुणकृद्भूयाज्जयश्रीप्रद ॥ १ए ॥

इति श्री तपागच्छे श्री मुनिसुदरसूरिविरचिते जयश्र्यंके श्री उपदेशरत्नाकरे पीठिका रूपो जगतीतीर्यावतार. ॥

ते सत पुरूपो घणा काळ सुधि जय पामो वळी ते खल पुरूपोनी पण हु सारी रीते स्तुति करू छुं, ते सत पुरूपो केवा छे ? तो के, जेओए (पगले पगले अथवा) शास्त्रना पदे पदे गुणोने प्रगट करीने कविने शोभा आपेली छे, वळी ते खल पुरूपो केवा छे ? तो के जेओए जाणे कृपानी इच्छाथी होय नहीं तेम विविध प्रकारना दोपोने ग्रहण करीने (कविने शोभा आपेली छे), एवी रीते कोइ पण रीते आ शास्त्र (तेना) अर्थिओने गुण करनारू तथा जय अने लक्ष्मी देनारू थाओ ? ॥ १ए ॥

" एवी रीते श्री तपागच्छमा श्री मुनिसुदर सूरिए रचेला जयश्रीना चिन्हवाळा श्री उपदेशरत्नाकर नामना प्रथमा पीठिकारूप जगतीतीर्थावतार जाणवो ॥

॥ अथ प्रथम तट ॥

तत्रादौ स्वेष्टसिद्धये समुचितेष्टदेवतानमस्कारमगल चिकीर्षुर्युगादिसमयेसमग्रधर्मकर्मव्यवस्थितिसूत्रणासूत्रधारश्रीऋषभदेवनमस्कारमाह ग्रथकार ॥ १ ॥

जयश्रीसगम रातु । श्रीमानादिविजुर्मम ॥ सुतत्वनिधयो येन । सता दत्ता हितैषिणा ॥ २ ॥

॥ अथ प्रथम तट ॥

त्या प्रथम पोताना इच्छित सिद्धि माटे उचित अने इष्ट देवने नमस्काररूप मगळ करवानी इच्छावाला ग्रथकार, युगनी आदि वखते सर्व धर्मकार्यनी रचनाना सूत्रधार सरखा श्री ऋषभदेव प्रभुने नमस्कार करे छे ॥ १ ॥

जे हितेच्छु एवा श्री आदिनाथ प्रभुए सज्जनोने उत्तम तत्वोना भडारो आपेला छे, ते श्री आदिनाथ प्रभु मने जयलक्ष्मीनो सगम आपो ? ॥ २ ॥

स्पष्ट ॥ धर्म ब्रुवे ईत्युक्त प्राक्, अथ धर्मस्यैवादौ ग्रहणविधिमुपलक्षणात्प्रदान-विधि चाभिधित्सु. फलप्रधाना प्रारंभा प्रेक्षावता भवति इति फलाविष्करणपूर्वकं तद्वि-षयमुद्यमोपदेशमाह ॥ ३ ॥

जयसिरिवंछिअसुहओ । अणिट्ठहरणे तिवग्गसारम्मि ॥
ईहपरलोअहिअत्थ । सम्म धम्ममि उज्जमह ॥ १ ॥

व्याख्यान—जय सिरित्ति, जय. सर्वोत्कर्ष. समग्रबाह्यातरंगद्विपज्जयेन श्रीभर-तचक्रवर्त्तिप्रभृतीनामिव ॥ १ ॥

उपरना श्लोकनो अर्थ स्पष्ट छे " हु धर्म कहु छु एम पेहेलाज कहेलु छे, हवे आदिमा धर्मनेज ग्रहण करवानी विधिने, तथा उपलक्षणथी धर्मनु दान देवानी विधिने कहेवानी इच्छावाळा ग्रथकार, 'विद्वा-नोना प्रारंभो फलप्रधान होय छे' एवा हेतुथी फलने प्रगट करवा पूर्वक ते धर्मना विषयवाळो उद्यम सबधि उप-देश कहे छे ॥ ३ ॥

जय,, लक्ष्मी तथा वाछित सुखने देनारा, अनिष्टने हरनारा तथा त्रणे वर्गोमा सारभूत एवा सम्यग् धर्मने विषे आ लोक अने परलोकना हितने अर्थे तमो उद्यम करो ॥ १ ॥

व्याख्या—जय एटले सर्व प्रकारे उत्कर्ष, अने ते श्री भरत चक्रवर्त्ति आदिकोनी पेठे बहारना अने अतरगना सघळा वैरीओने जीतवाथी थाय छे. ॥ १ ॥

देशोत्कर्षश्च कियद्द्विपज्जयेन श्रीकृष्णमहाराजादीनामिव ॥ २ ॥
श्रियो मणिसुवर्णाद्या राज्यादिकाश्च, नवनिध्यवधयोऽत्र इन्द्राऽहमिन्द्रत्वाद्या ॥ ३ ॥
परत्र तीर्थकृत्पदसवधिन्योऽष्टमहाप्रातिहार्यादयश्च ॥ ४ ॥
जयेन युक्ता वा श्रिय प्राग्वर्णितस्वरूपा जयश्रिय ॥ ५ ॥
वांछितानि सुखानि च श्रीशालिभद्रादीनामिव, उपलक्षणाद्वांछाऽतिगानि च ॥६॥
तत पदद्वयस्य पदत्रयस्य द्वन्द्वे, तानि ददातीति जयश्रीवाञ्छित सुखद ,तस्मिन् ॥ ७ ॥

देशथी उत्कर्ष श्री कृष्ण महाराज आदिकोनी पेठे केटलाक शत्रुओने जीतवाथी थाय छे ॥ २ ॥
लक्ष्मी एटले आ लोकमा मणिसुवर्ण आदिक, राज्य आदिक, तथा छेक नवनिधि पर्यंत इन्द्र अहमिन्द्र-पणा आदिक जाणवी ॥ ३ ॥

तथा परलोकमा तीर्थंकरनी पदवी सबधि आठ महाप्रातिहार्यादिकनी लक्ष्मी जाणवी ॥ ४ ॥
अथवा जयवडे करीने युक्त एवी जे लक्ष्मी, के जेनु स्वरूप पूर्वे वर्णववामां आवेलु छे, ते जयलक्ष्मी कहेवाय ॥ ५ ॥

वळी वाञ्छित सुखो शालिभद्रादिकोनी पेठे जाणवा, तथा उपलक्षणथी वाछाथी पण अधिक सुखो जाणवां ॥ ६ ॥

पछी बन्ने पदोनो अथवा त्रणे पदोनो द्वन्द्व समास करवो तेओने एटले जय, लक्ष्मी अने वाञ्छित सुखोने देनारो जे धर्म, तेने विषे तमो (उद्यमकरो) ॥ ७ ॥

तथा अनिष्ट दुःख दुःखनिमित्तं च, आधिव्याधिव्यसनशोकेष्टवियोगाऽनिष्टयोग दुष्टग्रहदेवताद्युपद्रवदारिद्यादि, तत् हरति, स्वाराधकगत परगतं उभयगतं चेत्यनिष्टहरण स्तस्मिन् ॥ ८ ॥

तत्र स्वाराधकगत यथा सुदर्शनश्रेष्ठिधम्मिल्लविद्यापतिचंदनबालादिना शीलत-पोदानादिधर्मे ॥ ९ ॥

परगत यथा तीर्थंकरलब्धिसपन्नमहर्ष्यादीना तादृक् तप, यथा निजस्नानजलनि-खिलनरतिर्यक्सर्वरोगाद्युपद्रवापहर्तृ स्वकरस्पर्शश्रीलक्ष्मणहृदयप्रविष्टशक्तिविद्रासिविशल्या-दीना च प्राग्जन्माचीर्णं तप ॥ १० ॥

(वळी ते धर्म केवो छे ? तोके) अनिष्ट एटले दुःख अने दुःखना निमित्तो, जेवाके आधि, व्याधि, व्यसन, शोक, इष्टनो (वहालानो) वियोग, अनिष्टनो (शत्रुओनो) सयोग, दुष्ट ग्रह तथा देवता आदिकना उपद्रवो तथा निर्धनता आदिक, तेने जे हरे छे, अर्थात् स्वाराधकगत दुःखने, परगत दुःखने अने उभयगत दुःखने जे हरे छे ते धर्म अनिष्टने हरनारो कहेवाय, एवा ते धर्मने विषे तमो (यत्न करो ?) ॥ ८ ॥

तेमा स्वाराधकगतना (एटले पोताना जनना) सबधमा सुदर्शन शेठ, धम्मिल्लविद्यापति तथा चदनबाला-आदिकोनो (अनुक्रमे) शील, तप तथा दानादिक रूप धर्म जाणवो. ॥ ९ ॥

परना दुःखने हरवाना सबधमा तीर्थकर महाराजनो तथा लब्धिवाळा महामुनि आदिकोनो तेवा प्रका-रनो तप जाणवो, जेम पोताना स्नानना जलथी सर्व मनुष्य तथा तिर्यचोना सर्व प्रकारना रोग आदिक उपद्रवने हरनार, तथा पोताना हाथना स्पर्शथी श्री लक्ष्मणना हृदयमा पेठेली शक्तिने दूर करनार एवी विशल्या आदि कोनो पूर्व जन्मादिकमा करेला तपनो प्रभाव जाणवो ॥ १० ॥

उभयगतं च यथा श्रीधर्मनृपस्य सचित्तादिविरति पात्रादिदानं चेति ॥ ११ ॥

उभयगताऽनिष्टहरणे धर्मनृपोदाहरणं यथा ॥ १२ ॥

कमलपुरे कमलसेननृपस्य पुरोऽन्यदा नैमित्तिको द्वादशवार्षिकं दुर्भिक्षं ज्ञाप्य-चकथत् ॥ १३ ॥

राज्ञश्चिंतातुरस्य सत्रास्यस्यापादनवम्या मक्षिकापक्षमात्रमभ्रं जातं ॥ १४ ॥

सत्र्ये प्रेक्ष्यमाणं मनोरथैः सहाऽवर्धत ॥ १५ ॥

जलदवृष्ट्या जगाज्जलस्थलैक्यमजायत ॥ १६ ॥

गतं दुर्भिक्षं दुरितैः सह जनानां ॥ १७ ॥

उभयगत अनिष्टने हरवाना संबंधमां श्रीधर्म राजानी सचित्त आदिकनी विरति अने सुपात्र आदिकमते दान जाणवु ॥ ११ ॥

ते उभयगत अनिष्टने हरवाना संबंधमां धर्मराजानु नीचे मुजब दृष्टांत जाणवु ॥ १२ ॥

एक वखते कमलपुरमां कमलसेन राजानी पासे निमित्तिये कयु के बार वर्षनो दुकाळ पडशे ॥ १३ ॥

(ते सांभळी) चिंतातुर थयेलो राजा अशाड मासनी नोमने दिवसे ज्यारे सभामां बेठो हतो त्यारे फक्त माखीनी पांख जेवडु एक वादळु थयु ॥ १४ ॥

सभाजनोना जोतजोतामां मनोरथोनी साथे ते वादळु वधवा लाग्यु ॥ १५ ॥

अने तुरत वरसाद वरसवाथी सघळु जळमय थई गयु ॥ १६ ॥

अहोऽज्ञानीत्युपजहसे नैमित्तिक. ॥ १८ ॥

अन्यदा चतुर्ज्ञानी युगधरगुरुरागमत् ॥ १९ ॥

राजादयस्त वंदित्वा नैमित्तिकोक्तं कथं विघटितमित्यप्राक्षु. ॥ २० ॥

गुरुराह ग्रहचारयोगेन द्वादशवार्षिक दुर्भिक्ष न्नाव्यपि कस्यचित् पुण्यवतो महता पुण्योदयेन क्षिप्त. तत्स्वरूप यथा ॥ २१ ॥

पुरिमतालपुरे प्रवरदेवनामोच्छिन्नकुल सदाऽप्यऽविरतत्वेन सर्वजक्षी. 'अजीर्णेन कुष्ठ्यऽभूत् ॥ २२ ॥

अहो! महोटो ज्ञानी' काइ एवी रीते निमित्तिआनी हांसी थवा लागी. ॥ १८ ॥

हवे एक दहाडो त्या चार ज्ञानवाळा युगधर गुरु आव्या ॥ १९ ॥

राजा आदिकोए तेमने वांदीने पूछ्युं के (हे भगवान!) निमित्तिआनु कहेलु केम जवु पडयु? ॥ २० ॥

गुरुए कह्यु के ग्रहचारना योगथी बार वरसनो दुकाळ पडनार हतो. परतु कोइक पुन्यवानना मोटा पुण्योदये करीने ते दूर थयो, तेनु वृत्तांत नीचे मुजब छे ॥ २१ ॥

पुरिमताल नामना नगरमा जेनु कुळ नष्ट थयेलु छे, एवो प्रवरदेव नामनो मनुष्य हमेशां अविरतिपणाथी सर्वभक्षी हतो, अने तेथी अजीर्ण रोगे करीने ते कुष्टी थयो ॥ २२ ॥

लोकैर्धिकृतो मुनीन् दृष्ट्वा, कथं मे कुष्ठरोग, कथं च उपशाम्यत्येष ॥ २३ ॥

तेऽप्यधु, जद्र अविरतो ह्यात्माऽसंतोषतो यत्र तत्र यत्तद् यदातदा खादति, ततोऽजीर्णप्राबल्येन कुष्ठादिरोगोद्भव. ॥ २४ ॥

यदि च विरतो नूत्वा चतुर्विधाहारपरिमाणतो नोजन कुरुपे तदा रोगक्षय श्रेयश्च स्यात् ॥ २५ ॥

तत एकमन्न एका विकृतिरेक शाक च प्रासुक नीरमिति परिमितनोजी बनूव, क्रमान्नीरोगता गत स ॥ २६ ॥

लोकोए धिक्कारवाथी (ओक दहाडो) मुनिओने जोइने तेओने कहेवा आव्यो के, मने कोढनो रोग शाथी थयो? अने हवे ते केम नष्ट थाय? ॥ २३ ॥

त्यारे मुनिओओ कह्युं के हे नद्र! विरतिविनानो जीव असंतोषथी ज्यां त्यां, जे ते, अने ज्यारे त्यारे खाधा करे छे, अने तेथी अजीर्ण रोगनी प्रबलताथी कुष्ट आदिक रोगोनी उत्पत्ति थाय छे ॥ २४ ॥

माटे जो विरतिवाळो थइने चारे प्रकारना आहारोनु तु अमुक परिमाणथी नोजन करीश, तो रोगनो नाश थइने तारु कल्याण थशे. ॥ २५ ॥

पछी ते एकज अनाज, ओकज विगय, शाक अने अचित्त जलना परिमित नोजनवाळो थयो, अने तेथी अनुक्रमे ते नीरोगीपणाने पाम्यो ॥ २६ ॥

ततोऽवगतधर्ममाहात्म्यो निष्पापवृत्त्या व्यवहरन् क्रमत प्राप कोटीमितं धनं ॥२७॥

स्वय भोगोपभोगपराङ्मुखो नियमिताहारभोजी पात्रदीनादिदानपरोऽजनि ॥२८ ॥

एकदा दुर्भिक्षसमये प्रत्यलाभयत्प्रासुकघृतादिभिर्लक्षमितान् महर्षीन्, प्रच्छन्नदानादिनोद्दध्रे च लक्षश साधर्मिकान् ॥ २९ ॥

एवं यावज्जीवमखण्डितव्रतो मृत्वा सौधर्मे शक्रसामानिकोऽभूत् ॥ ३० ॥

त्यारबाद धर्मनु माहात्म्य जाणीने पापरहित वृत्तियी व्यापार करतां थकां अनुक्रमे ते क्रोडगमे द्रव्य पाम्यो ॥ २७ ॥

पोतें भोगोपभोगथी रहित थयो थको नियमित आहारना भोजनवाळो थइने, सुपात्र तथा दीन आदिकोने दान आपवामां तत्पर थयो ॥ २८ ॥

एक समये दुकाळ वखते निर्दोष घृत आदिकथी लाख मुनिओने तेणे प्रतिलाभ्या, तथा गुप्त दान आदिकवडे करीने लाखो गमे साधर्मीओनो तेणे उद्धार कर्यो २९ ॥

अेवी रीते छेक जीवित पर्यंत अखंड रीते व्रत पाळ्या बाद मृत्यु पामीने सौधर्म देवलोकमां शक्रसामानिक देवता थयो ३० ॥

सावय कुलंमि वर, हुज्ज, चेडओ। नाणदंसणसमेओ ॥ मिच्छत्तमोहिअमइ । मा रायचक्कवट्टीति ॥ ३१ ॥

इत्यादि चिन्तयतस्तस्यतुनोऽत्रैव पुरे शुद्धबोधश्रेष्ठिनो व्योमलापत्न्या सुतो जात ॥ ३२ ॥

तत्पुण्योदयेन दुर्भिक्षं ग्रहचारादियोगेनोत्पन्नमपि प्रणष्ट ॥ ३३ ॥

इति गुरुवच श्रुत्वा विस्मितमना राजा राजन्यादिपरिवृत शुद्धबोधश्रेष्ठिगृहे गत ॥३४॥

पुत्र सर्वलक्षण प्रेक्ष्योत्सगे कृत्वोवाच, जो पुण्यशालिन जगदाधार दुर्भिक्षनाशक नमो जनने ॥ ३५ ॥

ज्ञान दर्शने करीने युक्त एवा श्रावकना कुलमा दास थवु सारु, परतु मिथ्यात्वथी मोहित बुद्धिवाला एवा चक्रवर्ती राजा थवु पण सारु नथी ॥ ३१ ॥

इत्यादि, ज्ञानना जागो थको याथी चवीने ते आज नगरमा शुद्धबोध नामना शेठनी व्योमला नामनी स्त्रीनी कुक्षिए पुत्रपणे उत्पन्न थयो छे ॥ ३२ ॥

तेना पुण्योदयवडे करीने ग्रहचार आदिकना योगथी उत्पन्न थयेलो दुकाळ पण नाश पाम्यो छे ॥ ३३ ॥

एवी रीतनु गुरुनु वचन सांभळीने अत करणमा आश्चर्य पामेलो राजा, राजपुत्रो आदिकथी परिवर्यो थको शुद्धबोध शेठने घेर गयो ॥ ३४ ॥

त्या सर्व लक्षणोवाला ते पुत्रने जोइने खोळामा बेसाडीने तेणे कह्यु के, हे पुण्यशाली! हे जगतना आधारभूत! हे दुकाळनो नाश करनार तारा प्रत्ये नमस्कार थाओ ? ॥ ३५ ॥

त्वमेवात्र तात्त्विको राजा अहं तलारक्षस्तवास्मीत्यभिधाय धर्मनृप इति नाम तस्य दत्तवान् ॥ ३६ ॥

यौवने बह्वी राजकन्या परिणिन्ये स, तत्पुण्यप्रभावाच्च प्रजासु अशिवदुर्भिक्षादिनामाप्यनश्यत् ॥ ३७ ॥

सदा प्रमोदाऽद्वैत चाभूत्, सम्यक्त्वद्वादशव्रताराधक स भुक्तभोगः क्रमाद्दीक्षामादाय तत्रैव एवाप्तकेवल प्राप मुक्तिमिति ॥ ३८ ॥

एव धर्मनृपस्य विरतिपात्रादिदानरूपो धर्म. स्वपरयोरनिष्ट रोगदारिद्र्यादि दुर्भिक्षादि चाहार्षीदिति ॥ ३९ ॥

वळी तुज अहीं खरेखरो राजा छे, अने हु तो तारो कोटवाल (नोकर) छु, एम कहीने तेणे तेनु 'धर्मराजा' एवु नाम पाड्युं ॥ ३६ ॥

वळी ते यौवन अवस्थामां घणी कन्याओने परण्यो; अने तेना पुण्य प्रभावथी प्रजामा दुःख अने दुकाळ आदिकनुं नाम पण नाश पाम्युं ॥ ३७ ॥

अने हमेशां आनद आनद थइ रह्यो; वळी ते सारी रीते बारे व्रतोने आराधीने तथा भोगो भोगव्या बाद अनुक्रमे दीक्षा लेइने तेज भवे केवळ ज्ञान पामी मोक्षे गयो ॥ ३८ ॥

एवी रीते धर्म राजानी विरति अने सुपात्र- आदिको प्रत्ये दान देवा रूप धर्मे, पोताना अने परना अनिष्टने एटले रोगदारिद्र्य आदिकने तथा दुकाळ आदिकने हरी लीधो ॥ ३९ ॥

तथा त्रिवर्गो धर्मकामार्था., तेषु सार, धर्ममूलत्वादितरयो, तदुक्तं–धर्मे सिद्धे ध्रुवा सिद्धि–र्युम्न प्रद्युम्नयोरपि ॥ क्षायोपलब्धे सुलभा । संपत्तिर्दधिसर्पिषो. ॥ ४० ॥

तस्मिन् धर्मे इहलोकपरलोकयोर्हितार्थं हे भव्या, सम्मति सम्यग् विधिशुद्ध्याभाव शुद्ध्या च, तथैवाराधने समग्रफलत्वात् ॥ ४१ ॥

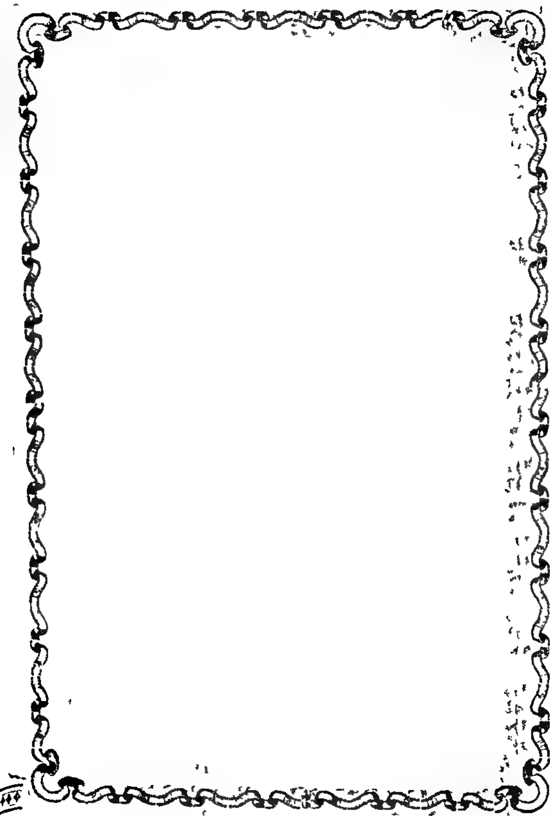
यद्वा सम्यगिति धर्मविशेषण, असम्यग्धर्मस्य कूटकार्षापणस्येव अभिलषितफला-ऽनर्पकत्वात्, ततश्चैवविशेषणे सम्यग्धर्मे उद्यच्छतेतिगाथार्थे ॥ ४२ ॥

वळी ते धर्म केवो छे? तोके धर्म, काम अने अर्थ रूप जे त्रिवर्ग, तेमां सारभूत छे, केमके अर्थ अने कामनु मूळ धर्म छे. कह्यु छे के—धर्मनी सिद्धि होते छते अर्थ अने कामनी निश्चयें सिद्धि थाय छे, केमके दूध मळवाथी दहीं अने घीनी माप्ति सुलभ छे ॥ ४० ॥

एवी रीतना ते धर्मने विषे आ लोक अने परलोकना हितने माटे हे भव्यो! सम्यग् प्रकारे शुद्ध विधिथी तथा शुद्धभावथी (तमो प्रयत्न करो?) केमके तेवी रीते धर्मनु आराधन करवाथी समस्त फळ मळे छे ॥ ४१ ॥

अथवा 'सम्यग्' ए धर्मनु विशेषण जाणवु. केमके असम्यग् धर्म खोटा सिक्कानी पेठे इच्छित फळने आपी शकतो नथी, माटे एवी रीतना विशेषणवाळा सम्यग् धर्मने विषे तमो प्रयत्न करो? एवी रीते गाथानो अर्थ जाणवो. ॥ ४२ ॥

॥ एवी रीते पहेलो तरंग समाप्त थयो ॥



अथ द्वितीयस्तरंगः

अथास्य परमरहस्यनूतस्य धर्मस्य ग्रहणंविधिमाह ॥ १ ॥

जुग्गेहिजुग्गपासे । सो पुण जुग्गो गहिज्जए विहिणा ॥ सपुन्न सुह फलो [illegible] । एव चिअ अन्नहा इयर ॥ २ ॥

हवे आ उत्कृष्ट सारवाळा धर्मने ग्रहण करवानी विधि कहे छे ॥ १ ॥

वळी ते धर्म योग्य मनुष्यो योग्यनी पासे योग्य रीते विधि पूर्वक ग्रहण करे छे, केमके एवी रीते योग्यता पूर्वक ग्रहण करेलो धर्म सपूर्ण शुभ फलने देनारो छे, अने जो तेथी उलटो एटले अयोग्यतापूर्वक ग्रहण करवामा आवे, तो अशुभ फल देनारो थाय ॥ २ ॥

द्वारगाथाव्याख्या—जुग्गेहित्ति, स पुनर्धर्मो योग्यैर्गृह्यते योग्यानामेव दीयत इत्यर्थ ।३।

वह्निर्मलप्रक्षालन जलमपिहि योग्य एव पात्रे निधीयते. नत्वयोग्ये तत्राऽनर्थफल-
त्वात् ॥ ४ ॥

कि पुनर्जन्मसहस्रसचितातर्मलतृष्णातापव्यापत्तिविच्छेदहेतुर्धर्म., ॥ ५ ॥

त वुक्त—आमे घडे निहत्त । जहा जल त घड विणासेइ ॥ इअ सिद्धंतरहस्सं ।
अप्पाहार विणासेइ ॥ ६ ॥

तथा जुग्गपासेत्ति, योग्यनामेव पार्श्वे गृह्यते. नत्वयोग्याना जलवत् ॥ ७ ॥

द्वार गाथानी व्याख्या—वळी ते धर्म योग्य मनुष्योथीज ग्रहण कराय छे, अर्थात् योग्योमत्येज देवामा
आवे छे ॥ ३ ॥

केमके ज्यारे वहारना मेळने धोनारु जळ पण योग्यज पात्रमा रखाय छे, परतु अयोग्यमा रखातु नथी. केमके
अयोग्यमा राखवाथी निरुपयोगी फळवाळु थाय छे ॥ ४ ॥

त्यारे हजारो जन्मोना सचित करेला अतरग मेल, तृष्णा, ताप अने दु:खनो नाश करवाना हेतुरूप धर्मनी शु
वात करवी ? ॥ ५ ॥

कह्यु छे के, जेम काचा घडामा नाखेलु पाणी ते घडानो नाश करे छे तेम आ सिद्धातनो रहस्य पण अ-
योग्यनो नाश करे छे ॥ ६ ॥

वळी ते धर्म योग्योनी पासेज ग्रहण कराय छे, परतु जळनी पेठे अयोग्यनी पासेथी ग्रहण करातो
नथी ॥ ७ ॥

यदुक्तं—चारित्रेण विहीन । श्रुतवानपि नोपजीव्यते सद्भिः । शीतलजलपरिपूर्णः । कुल-जैश्चाण्डालकूप इव ॥ ८ ॥

सो पुण जुग्गोत्ति, स पुनर्धर्मो योग्य एव गृह्यते, नत्वयोग्यो हिंसादिकलुष प-रिखोदकवत् ॥ ९ ॥

तया गहिज्जए विहिणत्ति, गृह्यते विधिनैव, नत्वविधिना, न खलु जलमपि प्रति-कूले कलसे सङ्क्रामतीति ॥ १० ॥

विधिश्चात्र विनयबहुमानादि, उक्तं च—सीहासणनिसन्न । सोवाग सेणिओ न-रवारिदो ॥ विज्ज मग्गइ पयओ । इअ साहु जणस्स सुअविणओ ॥ ११ ॥

कह्यु छे के-चारित्र विनानो ज्ञानवान पण, सज्जनोथी आदर पामतो नथी, कोनी पेठे? तो के शीतल जलथी भरेला एवा पण चांडालना कुवाने कुलीनो जेम आदर करता नथी तेम ॥ ८ ॥

वळी ते धर्म योग्यज ग्रहण करवो, परंतु खाळना जळनी पेठे हिंसादिक दूषणवाळो अयोग्य धर्म ग्रहण करवो नहीं ॥ ९ ॥

वळी ते धर्म विधिपूर्वकज ग्रहण कराय छे, परंतु अविधिथी ग्रहण करातो नथी, केमके पाणी पण उंधा गमाणां भरी शकातुं नथी ॥ १० ॥

अहीं विधि एटले विनय तथा बहु मान आदिक जाणवुं कह्युं छे के-सिंहासनपर बेठेला चांडालनी पासेथी श्रेणिक राजाए विद्या मागेली छे; माटे एवी रीते साधुजने श्रुतनो विनय करवो ॥ ११ ॥

श्री श्रेणिकप्रबन्धार्थं—राजगृहनगरे श्रीश्रेणिक क्ष्मापतिः, चेल्लणा राज्ञी ॥१२॥
अन्यदा मेदिनीनाथश्रेणिकस्यांतःपुरस्थचेल्लणासमनोरथमभिज्ञापयदभयकुमार॥१३॥
ततोऽभयमंत्री तत्कृते दार्वर्थमटव्यां भ्रमन् सर्वर्तुफलितं सुलक्षणं तरुमेकमद्राक्षीत् ॥ १४ ॥

नायमनधिष्ठायक इत्यागामिकल्पोत्पत्त्या धियाऽवधार्य तदधिष्ठायकमाराद्धुमुपवासत्रयमतनोत् ॥ १५ ॥

तुष्टः सुरः समागत्य, निषिध्य तरोः समाश्रयम्, सर्वर्तुकवनाद्भुतमेकस्तंभं रत्नमयं सौधं विधास्ये ॥ १६ ॥

श्री श्रेणिक राजानुं दृष्टांत आ प्रमाणे छे—राजगृह नामना नगरमां श्रेणिक नामे राजा हतो. तेनी चेल्लणा नामे राणी हती ॥ १२ ॥

एक दिवसे ते चेल्लणा राणीने एक थांभला उपर सुंदर म्हेलनो मनोरथ थयो, अने ते वात राजाए अभयकुमारने जणावी ॥ १३ ॥

तेथी अभयकुमार मंत्री ते म्हेलने माटे लाकडां लेवा वनमां जतां त्यां सर्व ऋतुना फलवाळुं एक उत्तम लक्षणोवाळुं वृक्ष जोयुं ॥ १४ ॥

आ वृक्ष कोई अधिष्ठायक विना होय नहि, एम कुशाग्र बुद्धिथी जाणीने, तेना अधिष्ठायकने आराधवा माटे तेणे त्रण उपवास कर्या ॥ १५ ॥

तेथी प्रसन्न थयेला देवे कह्युं के, आ मारा वृक्षने तारे छेदवुं नहि. हुं तने सर्व ऋतुना बगीचावाळो एक थांभलावाळो रत्नमय महेल करी आपीश ॥ १६ ॥

एवमस्त्वित्युक्त्वा यावत् सचिववर पुरमध्यमकार्षीत्तावदेकस्मिन् भवनकेकस्तत्रं विमानश्रीविभवि निष्पन्न सर्वर्तुवनोपेत ॥ १७ ॥

तथाविधसौध निध्यायाधिक धन्यमन्यस्तद्वन रक्षितुमभ्रलिह वप्रमकारयत्, रक्षकाश्च न्ययुक्त तथा, यथा पक्षिणोऽपि तत्र प्रवेश नाऽलभन्तेति ॥ १८ ॥

अन्यदातत्रैव पुरे श्वपचप्रेयसी गुर्विणी स्वनर्तुभूतफलास्वाददोहदमवादीत्, अकालश्चाम्राणा स, सर्वर्तुकवने च तानि सति, पर न केनाऽप्युपायेनाप्यते ॥ १९ ॥

एमज थाओ ? एम कहीने जेटलामा ते उत्तम मंत्री नगरमा गयो, तेटलामा तेणे एक धजवाळो विमान जेवी शोभावाळो तथा सर्व ऋतुना बगीचावाळो तैयार थयेलो मेंहल जोयो ॥ १७ ॥

एवी रीतना मेंहलने जोइने ते पोताने अधिक धन्य मानवा लाग्यो, तथा ते वननी रक्षा माटे तेणे छेक आकाश सुधि पहोंचे एवो किल्लो बनाव्यो, तथा त्यां एवा तो चोकीदारो राख्या के जेथी पक्षीओ पण तेमा पेसवाने अशक्त थया ॥ १८ ॥

हवे एक दिवसे तेज नगरमा एक चांडालनी स्त्री गर्भवती थइ, तेणे पोताना भर्तारने कह्यु के मने आंबाना फळो खावानो दोहलो उत्पन्न थयेलो छे, हवे ते समये आंबानी ऋतु नहोती, परन्तु सर्व ऋतुवाळा ते वनमा आंबाओ छे, पण कोइ पण उपायथी ते मळी शके तेम नथी ॥ १९ ॥

इति ध्यात्वा श्वपाक सुधीर्वप्राद्बहि स्थितएवाऽवनामिन्या विद्यया शाखामाकृष्य चूतान्युपाददे ॥ २० ॥

निशि उन्नामिन्या विद्यया यथास्थान तां न्यास्थपच्च, पूरयामास च दोहद पत्न्या ॥ २१ ॥

अथारक्षा प्रात शाखा फलरहिता प्रेक्ष्य साशंकमनसः कथयामासुर्महीपते ॥२२॥

देव गताऽगताद्यभिज्ञानं नेक्ष्यते कस्यापि, फलानि तु केनाप्यात्तानि शाखाया. । य एव गृह्णीयात् कथ तस्माद्रक्षणीय वनमिति ॥ २३ ॥

तत् श्रुत्वा मन्त्रीकुमारादिशन्मेदिनीपतिः, पचपड्दिनातश्चौर स्वशिरो वाऽर्पयेरिति ॥२४॥

एम विचारीने ते उत्तम बुद्धिवाळा चाण्डाले किल्लानी बहार ज रहीने अवनामिनी विद्याये करीने डाळीने खचीने आम्रो लेइ लीधा ॥ २० ॥

वळी रात्रिये उन्नामिनी विद्यायें करीने योग्य स्थानके ते डाळीने राखी, अने एवी रीते पोतानी स्त्रीनो दोहलो तेणे संपूर्ण कर्यो ॥ २१ ॥

पछी चोकीदारोए प्रभातमा ते डाळीने फळ विनानी जोइने मनमा शंका लावीने राजाने कह्यु के, ॥ २२ ॥

हे स्वामी कोइनु आववा जवानु चिह्न तो देखातु नथी, अने शाखामाथी फळ तो कोइये पण लीधा छे, अने एवी रीते जे चोरी थाय, तेथी वननी केम रक्षा करवी ? ॥ २३ ॥

ते सांभळीने राजाये अभयकुमार मंत्रीने हुकम कर्यो के, पाच, अथवा छ दिवसोनी अंदर चोरने हाजर कर नहि तो तारुं माथु आपवु पडशे ॥ २४ ॥

तस्करस्तु मंत्रीन्दोर्न क्वाऽप्यभूद् दृग्गोचर, ॥ ४५ ॥

अन्यदा क्वचिद्देवायतने पूर्वरंगागणसंगतान् जनान् मुग्ध्यनटामप्रासाया अभय प्रोचे ॥ ४६ ॥

वसंतपुरे जीर्णश्रेष्ठी नि:स्व, तदंगजा विवाहसामग्र्यऽयोगाद् वृद्धत्वमभूत्, जनेऽपि वृद्धकुमारीति नाम प्रासिध्यत् ॥ ४७ ॥

सा वरार्थं कामदेवमपूजयत्, अन्यदा निशि पुष्पार्थं मालये प्रविष्टा, मालिकेन उक्ता च चौरि किं ते कुर्वे ॥ ४८ ॥

साऽवोचत्, कुमार्यस्मि मा कोऽप्युद्वहति न, तेन पुष्पाण्यादाय काममर्चामि ॥४९॥

हवे चोर तो मंत्रीनी नजरे क्यायें पण पड्यो नही ॥ ४५ ॥

एक दिवसे कोइक देवमंदिरमां (नृत्य करवते) मुग्ध नटी हजू आवी नहोती, तेटलामां पहेलेथी रंगमंडपमां आवीने बेठेला लोकोने अभयकुमारे कहयु के, ॥ ४६ ॥

वसंतपुर नामना नगरमां जीर्णशेठ नामे एक निर्धन मनुष्य वसतो हतो, तेनी एक पुत्री, लग्ननी सामग्री नही मळवाथी मोटी थइ, अने तेथी लोकोमां ते 'वृद्धकुमारी' ना नामथी प्रसिद्ध थइ ॥ ४७ ॥

ते वर मळवा माटे कामदेवने पूजवा लागी, एक दिवसे रात्रिए पुष्पो लेवा माटे ते बागमां गइ, त्यां माळीए तेणीने कहयु के, अरे चोर हु तारु शु करु ? ॥ ४८ ॥

त्यारे तेणीए कहयु के, हु कुमारी छु, मने कोइ पण परणतु नथी, माटे पुष्पो लेइने हु कामदेवने पूजु छु ॥ ४९ ॥

मालिकोऽवदद्वा सती चेत् प्रथमं ममातिकमेष्यसि तदा त्वां मुञ्चे यथेष्टं च पुष्पाणि गृहाणेति तदभ्युपगम्य गृह गता ॥ ३० ॥

परिणीता च मृतजायेण केनापि धनिना, वासगृहावसरे च प्रतिज्ञात पत्युः प्रोचे तेन प्रहिता च निशि मध्ये याती दृष्टा साळकारा चौरे ॥ ३१ ॥

तैर्ध्रियमाणा च स्ववृत्तातमुक्त्वा वक्षमानाया वाञ्छित कुर्यात्त्याज्यात् ॥ ३२ ॥

तैर्विसृष्टाचाग्रे राक्षस ग्रसनोद्यत वीक्ष्य स्ववृत्तात निवेद्य व्यावृत्ता मा भक्षयेरि त्यावभ्यो ॥ ३३ ॥

पछी मालीए कह्यु के, परण्या बाद जो पेहेला तु मारी पासे आवे, तो हु तने छोडु, अने तारी खुशी मुजब तु पुष्पोने ग्रहण कर? पछी ते वात स्वीकारीने ते घेर गइ ॥ ३० ॥

पछी जेनी स्त्री मरी गयेली छे, एवा कोइक धनवान पुरुष साथे ते परणी, पछी वास भुवनमा जती वेळाए पोते जे प्रतिज्ञा करेली हती, ते वात तेणीए पोताना भर्तारने जणावी, तेणे रजा आपवाथी ते रात्रिए वागमा आभूषणो सहित जवा लागी, तेटलामा चोरोए तेणीने दीठी ॥ ३१ ॥

तेओ ज्यारे तेणीने पकडवा लाग्या, त्यारे तेणीये स्ववृत्तात जणावीने कह्यु के, पाछा वळता तमारु वाञ्छित करजो ॥ ३२ ॥

पछी तेओए तेणीने रजा आपवाथी ते आगळ चालवा लागी, एटलामा भक्षण करवाने तैयार थयेला एक राक्षसने जोइने तेणीए पोतानु वृत्तात तेने निवेदन कर्यु, अने कह्यु के, ज्यारे हु पाछी वळु त्यारे तुं मारुं भक्षण करजे ॥ ३३ ॥

तेनापि मुक्ता मलये प्रापत् कथमागतेत्यारामिकेण पृष्टा स्ववृत्तातमादितोऽवादीत्, या पत्या चौरै राक्षसेन च मुक्ता अक्षिता च सा न सामान्येत्यामृग्यारामिकस्तां व्यसृजत् ॥ ३४ ॥

सद्यो व्यावृत्ता ता वृत्तांत पृष्टामालिकादपि कथ हीन स्यामित्युक्त्वाऽमुचद्राक्षस, मालिकराक्षसाभ्या मुक्तेत्यमुचश्चौरा अपि ॥ ३५ ॥

साभरणा स्वगृहागताऽवगतवृत्तातेन भर्त्रा गृहस्वामिनी कृतेति भो लोका विचार्य वदत, भर्तृमालिकचौरराक्षसा क साहसिक इति ॥ ३६ ॥

पछी तेणे पण छोडवाथी ते नागयां गइ, त्यां माळीए पूछ्युं के केम आवी? त्यारे तेणीए पोतानु वृत्तात पेहेलेथी कयु. त्यारे माळीए विचार्यु के, जेणीने पतिए, चोरोए, तथा राक्षसे पण छोडी दीधी छ, ते स्त्री सामान्य होय नही, एम विचारि तेणे पण छोडी दीधी ॥ ३४ ॥

पछी तुरत पाछी वळेली एवी तेणीने वृत्तात पूछीने, माळीथी पण हुं केम नीच थाउ? एम कहीने राक्षसे पण तेणीने छोडी दीधी, वळी माळी तथा राक्षसे छोडी एम धारी चोरोए पण छोडी दीधी ॥ ३५ ॥

एवी रीते आभूषणो सहित ते ज्यारे पोताने घेर पाछी आवी, त्यारे तेणीना स्वामीए तेणीनु वृत्तात जाणीने घरनी मालिक बनावी, माटे हे यात्रो! तमो विचारिने कहो के, भर्तार, माळी, चोर तथा राक्षसमाहेथी साहसिक कोण? ॥ ३६ ॥

तत प्रशशासु सेर्ष्या जर्तार, चोराश्च तस्करान्, औदरिका राक्षस, पारदारिका मा-क्षिक चेति ॥ ३७ ॥

ततश्चौरप्रशसकत्वेन श्वपाक तस्करं विदन् मत्रीङ्डुरवादीत्, कथमग्रही राज्ञाणीति वद, विद्ययेत्युक्ते तां राज्ञे प्रयच्छ जिजीविपुश्चेत् ॥ ३८ ॥

तत सिंहासनोपविष्टाय राज्ञे दत्ते स्म ता विद्या पाणपतिः, नतु सक्राता सा मनागऽपि ॥ ३९ ॥

तत. सचिववचसा नृतलनिविष्टो नृपति सिंहासननिपण पाणपात विद्यामर्थयते स्म, सद्य संक्रमति स्म च सेति ॥ ४० ॥

त्यारे ईर्ष्यावाळा लोको तेणीना जर्तारनी प्रशंसा करवा लाग्या, चोरो चोरोनी प्रशसा करवा लाग्या, उदरजरियो राक्षसने वखाणवा लाग्या, तथा परस्त्री जोगवनार माळीने वखाणवा लाग्या ॥ ३७ ॥

पछी चोरनी प्रशसा करवाथी ते चाण्डाळने चोर जाणीने मत्रीश्वरे तेने कह्यु के तें आवाओ शीरी ते ग्रहण कर्या? ते कहे त्यारे चाण्डाले कह्यु के, विद्याथी ग्रहण कर्या, त्यारे अभयकुमारे तेने कह्यु के, जो तारे हवे जीववानी इच्छा होय, तो ते विद्या तु राजाने आप? ॥ ३८ ॥

पछी ते चांडाळ सिंहासनपर बेठेला राजाने ते विद्या आपवा लाग्यो, परतु जरा पण ते विद्या राजाने आवी नही; ॥ ३९ ॥

त्यारबाद मत्रीना वचनथी राजा पृथ्वीपर नीचे बेठो, अने ते चाण्डाळने सिंहासनपर बेसाडीने तेनी पासेथी ते विद्या तेणे मागी, के तुरत आवडी गई ॥ ४० ॥

५

एव ग्रहणे हेतुमाह—सपुन्नसुहफलो ज एव चियत्ति, यदित्यव्यय हेतौ ॥ ४१ ॥

यस्माद्धेतोरेवमेव पूर्वोक्तचतु प्रकारशुद्धयैव गृहीतो धर्मः सपूर्णशुभफल सपूर्ण-सुखफलो वा जवतीति ॥ ४२ ॥

अत्रैव व्यतिरेकमाह—अन्नहा इहरत्ति, अन्यथा योग्यत्रयाऽमिलने अविधिना वा गृहीते इतरदिति अशुजफलोऽफलो जोगराज्यादिमात्रफलो वा जवतीति गाथार्थ ॥४३॥

इति द्वितीयस्तरग: ॥

हवे एवी रीते (पूर्वे कह्या मुजब) धर्मने ग्रहण करवामा हेतु कहे छे—'सपुन्न सुहफलोज'—अहीं यत् ए हेतु अर्थमा अव्यय छे ॥ ४१ ॥

कारणके एवी रीते एटले पूर्व कहेली चार प्रकारनी शुद्धिवडे करीनज ग्रहण करेलो धर्म सपूर्ण शुभ फळवाळो अथवा सपूर्ण सुखफळवाळो थाय छे ॥ ४२ ॥

हवे तेमाज व्यतिरेक कहे छे—अन्यथा एटले योग्य एवा त्रण* नहीं मळवाथी, अथवा अविधिपूर्वक तेने ग्रहण करवाथी, ते अशुभफळवाळो अर्थात् तात्विकफळ विनानो, अथवा फक्त जोग अने राज्य आदिक फळवाळो थाय छे, एवी रीते गाथानो अर्थ जाणवो ॥ ४३ ॥

॥ इति द्वितीयस्तरग ॥

* धर्म धर्मग्राहक अने धर्मदाता.

इति द्वितीयस्तरंगः समाप्तः

अथ तृतीयस्तरंगः

योग्या एव धर्माधिकारिण इत्युक्त, योग्यस्वरूप चाऽयोग्यस्वरूपनिरूपणे सुज्ञानमिति प्रथमत उपदेशाऽयोग्यानाह ॥ १ ॥

रत्तो डुट्ठो मुढो । पुव्विं वुग्गाहिओ अचत्तारि ॥ उवये सस्स अणरिहो । अहवा इसएहि वुज्झति ॥ २ ॥

योग्य मनुष्योज धर्मना अधिकारीओ छे, एम पूर्वे कहेलु छे, हवे ते योग्यनु स्वरूप अयोग्यनु स्वरूप निरूपण करवाथी सारी रीते जणाय छे, माटे पहेला उपदेशने अयोग्य एवा मनुष्योनु स्वरूप कहे छे ॥ १ ॥

रागी, द्वेषी, मूढ तथा प्रथमथीज भमावेला, ए चार जातना मनुष्यो उपदेशने लायक होता नथी, अथवा तेओ (कोई पण प्रकारना चमत्कार आदिक) अतिशयोथी बोध पामे छे ॥ २ ॥

रक्ता रागी, यो हि यत्र क्वचिद्रक्त स तद्दोयान् दोषानपि गुणत्वेन पश्यति, तदु-क्त, ज जस्स पिअ ततस्स सुदर रूवगुणविमुक्कपि ॥ मुत्तूण रयणहारं । हरेण सप्पो-कओकंठे ॥ न तु गुणदोषविवेकपुरस्सरं यथावस्थ वस्तुस्वरूप तलवरवत्तथाहि ॥ ३ ॥

मगधेषु क्वचित्सन्निवेशे नंदनो नाम तलवर, तस्य प्रथमश्रीद्वितीयश्रीनाम्न्यौ पत्न्यौ ॥ ४ ॥

द्वितीयश्रिया रक्त, स तद्गृहएवतिष्ठति, अन्यदाऽगमत् प्रथमश्रिया गृह, रचि-तश्च तयोचितो मज्जनाद्युपचार ॥ ५ ॥

रक्त एटले रागी, जे मनुष्य जे कईमा रागी होय, ते तेना दोषोने पण गुणरूपेज जुए छे कह्यु छे के—जे जेने प्रिय होय ते तेने सुदर लागे छे, पछी ते जोके रूपगुण विनानु होय, जेम महादेवे रत्नोनो हार तजीने सर्पने कठमां धारण कर्यो छे वळी तेवो रागी माणस कोटवाळनी पेठे गुणदोषना विवेचनपूर्वक यथार्थ रीते वस्तुना स्वरूपने जाणी शकतो नथी, ते कोटवाळनु उदाहरण नीचे मुजब छे ॥ ३ ॥

मगधदेशमा कोईक गाममा नदन नामे एक कोटवाळ हतो, तेने प्रथमश्री अने द्वितीयश्री नामनी बे स्त्रीओ हती ॥ ४ ॥

ते कोटवाळ द्वितीयश्रीमा आसक्त हतो, अने तेथी तेनाज घरमां ते रहेतो हतो, एक दहाडो ते प्रथमश्रीने घेर गयो, अने तेथी तेणीए तेनो स्नानआदिक उचित सत्कार कर्यो ॥ ५ ॥

प्रगुणित च नानाव्यजनगुणोपेत भोजन, पर सुंदरमपि न बहुमत किमपि तच्चित्ते, उक्तवांश्च ॥ ६ ॥

किं भुज्यते द्वितीयश्रिया यन्न राद्ध, तदानय किमपि तद्वेश्मन, शाक, तत प्रथमश्री सपत्नीं शाकमयाचिष्ट ॥ ७ ॥

तयोक्त नाद्य राद्ध कुत शाक, आगत्योक्तं तत्तत्राय, पुनरुक्त तेन, किंचिद्दुद्धरितादपि मार्गय ॥ ८ ॥

पुनर्गत्वाऽमार्गयत्प्रथमश्री, कर्मकरेभ्यो दत्तमित्युद्धरितमपि नास्तीति प्रत्युवाच सपत्नी ॥ ए ॥

वळी नाना प्रकारना शाकवाळु सुंदर भोजन तेणीए तैयार कर्युं, परंतु ते उत्तम भोजन पण तेना मनने कंई पण रुच्युं नहीं, अने तेथी ते कहेवा लाग्यो के ॥ ६ ॥

द्वितीयश्रीये जे राध्युं नथी, ते शुं खाई शकाय ? माटे तेणीने घेरथी कंइक शाकभाजी लाव ? पछी प्रथमश्रीये (पोतानी) शोक पासे जइ शाक माग्युं ॥ ७ ॥

तेणीये कह्युं में आज राध्युं नथी, माटे शाक क्याथी होय ? पछी ते प्रथमश्रीये पाछा आवीने ते हकीकत कोटवाळने कही, त्यारे फरीने कोटवाळे कह्युं के, ज कंइ वध्युं घट्युं होय ते मागी लाव ? ॥ ८ ॥

त्यारे वळी प्रथमश्रीए त्यां जइने माग्युं, त्यारे वळी शोके एवो जवाब आप्यो के, जे कंई वध्युं हतुं, ते पण चाकरोने देई दीधुं, माटे ते पण नथी ॥ ए ॥

तदपि व्यङ्गपयत्पत्ये, यत्किंचित्काजिकप्रायमप्यानय तन्निलयादित्यलपच्च स. ॥१०॥

तत कषायिता सा गत्वा वहि सद्यो व्युत्सृष्ट वत्सगोमय तुवरीचणकमिश्र गृहीत्वा किंचित् संस्कृत्य, तद्गृहादानीतमिति वदत्युपनिन्ये ॥ ११ ॥

तलवरस्तुष्टो भुंजानोऽभाणीत्, अहो मिष्ट, अहो अहो रसविशेष, अहो सुस्त्रीगुण इति ॥ १२ ॥

एष स्त्रीरक्तो यथा गुणदोषविवेकपराङ्मुख तथा य स्वचिद्दर्शने रक्त स विशिष्य गुणदोषौ न विवेचयति ॥ १३ ॥

पछी ते वात पण तेणे पोताना स्वामिने जणावी, त्यारे वळी तेणे कह्यु के, जे कइ काजी जेवु पण तु तेने घेरथी लाव? ॥ १० ॥

पछी ते क्रोधायमान थयेली ते प्रथमथी बहार जइने तुरतनु करेलु ताजु वाछडानु छाण, के जेमा तुवर अने चणा मिश्रित थयेला हता, ते लइ आवी, अने तेने जरा (मरी मसालाथी) स्वादिष्ट बनावीने, तथा पतिनी पासे लेइ जइने कह्यु के, आ हु तेना घेरथी लावी छु ॥ ११ ॥

(ते सांभळी) खुशी थयेलो कोटवाल ते छाण खातो थको कहेवा लाग्यो के, अहो! केवु मीठु छे! तेमा रस केवो आवे छे! अहो उत्तम स्त्रीनो केवो गुण छे! ॥ १२ ॥

एवी रीते स्त्रीमा रक्त थयेलो ते कोटवाल जेम गुण दोषनु विवेकपूर्वक विवेचन करी शक्यो नहीं, तेम मनुष्य, के जे कोइक दर्शनमां रक्त थयेलो छे, ते गुण दोषने समजीने तेनु विवेचन करी शकतो नथी ॥ १३ ॥

यदुक्तं, कामरागस्नेहरागा—वीषत्करनिवारणौ ॥ दृष्टिरागस्तु पापीयान् । दुरुच्छेद सतामपि ॥ १४ ॥

अपि च, मिथ्याकलकमलिनो । जीवो विपरीतदर्शनो भवति ॥ श्रद्धत्ते न च धर्मं । मधुरमपि रसं यथा ज्वरित ॥ १५ ॥

इति ॥ द्विष्ट, क्रोधमानाऽतिरेकवान्, यो यत्र द्विष्ट स तस्य गुणानपि दोषतयैव पश्यति ॥ १६ ॥

इति तद्विषयत्वेनोपदिश्यमान द्विष्टस्यात्महिततया परिणामसुन्दरमपि न कस्मैचिद्गुणाय, प्रत्युतोपदेष्टुरनर्थायापि भवति दुर्योधननृपस्येव ॥ १७ ॥

कह्यु छे के कामराग अने स्नेहरागने रोकवा तो सहेला छे, परंतु पापी एवो दृष्टिराग उत्तमोने पण छोडवो मुस्केल पडे छे ॥ १४ ॥

वळी पण, ज्वरवाळो मनुष्य जेम मधुर रसने पण मधुरतरीके जाणी शकतो नथी, तेम मिथ्यात्वरूपी कलंकथी मलीन थयेलो मनुष्य विपरीत दर्शनवाळो थाय छे, तथा धर्मपर श्रद्धा करतो नथी ॥ १५ ॥

इति ॥ हवे द्विष्ट एटले द्वेषी अर्थात् क्रोध अने मानना अतिशयवाळो जाणवो, जे मनुष्यनो जेनापर द्वेष होय छे, तेना गुणोने पण दोषोतरीकेज जुए छे १६ ॥

माटे ते सबधी द्वेषीने जो उपदेश देवामा आवे, अने ते उपदेश तेना आत्महितपणे जोके परिणामे सारो होय, तोपण तेने कइपण गुणकारक थइ शकतो नथी, परंतु उलटो दुर्योधन राजानी पेठे उपदेश देनारने ते नुकशानकारक पण थाय छे ॥ १७ ॥

तथाहि—वनवासे त्रयोदशवर्ष्यामतिक्रांताया राज्यलुब्धे कुरुभि पांडुपुत्रै सह विग्र-
हारंभे कुटुंबकलहमार्यातिविरस विचार्य सधये श्रीकृष्ण प्राप दुर्योधनांतिक ॥ १८ ॥
अत्रोक्तिप्रत्युक्तिविस्तर , यावत्—इन्द्रप्रस्थं यवप्रस्थं । माकंदी वारुणावत ॥ देहि मे
चतुरो ग्रामान् । पचम हस्तिनापुर ॥ १९ ॥
इत्थ पचग्राममार्गणे सधिकरणे च दुर्योधनोऽभ्यधत्त—सूच्यग्रेण सुतीक्ष्णेन । या
सा भिद्येत मेदिनी ॥ तदर्धं न प्रदास्यामि । विना युद्धेन केशव ॥ २० ॥
तत पुनर्नारायण.—सदिग्धो विजयो युद्धे । प्रधानपुरुषक्षय ॥ उपायत्रितयादू-
र्ध्व । तस्माद्युध्येत पंडित ॥ २१ ॥

ते दुर्योधन राजानु दृष्टांत कहे छे—वनवासमा तेर वर्षो सपूर्ण थया बाद राज्यना लोभी एवा कुरुओ पां-
डुना पुत्रो साथे ज्यारे लडाइ करवाने तैयार थया, त्यारे श्रीकृष्णे विचार्यु के, कुटुंबक्लेश परिणामे सारो नथी,
एम विचारि ते सधि माटे दुर्योधन पासे गया ॥ १८ ॥ अहीं सवाल जवाब नीचे मुजब छेः—
इन्द्रप्रस्थ, यवप्रस्थ, माकंदी तथा वारुणावत ए चार गाम तथा पाचमु हस्तिनापुर गाम आपो ? ॥१९॥
एवी रीते पाच गामनी मागणीपूर्वक सधि करवानु कहेता दुर्योधने कह्यु के, हे केशव ! तीक्ष्ण एवा
सोइना अग्र भागथी जेटली पृथ्वी छेदाय, तेथी अर्धु पण युद्ध कर्या विना आपु नहीं ॥२०॥
त्यारे फरीने श्रीकृष्णे दुर्योधनने कह्युं के युद्धमा विजय थवो तो संदेहवालो छे, अने वळी तेथी
उत्तम पुरुषोनो नाश थाय छे, माटे विद्वान् माणसे तो (शाम, दाम अने भेद) ए त्रण उपायोने अजमा-
व्या बादज छेवटे युद्ध करवुं जोइए ॥२१॥

असंदधानो मानाध्[ ]समेनापि हतो भृश ॥ आमकुम्भमिवाम्भित्वा । नावतिष्ठेत शक्तिमान् ॥ २२ ॥

इत्यादि नीतियुक्तिभिस्तावद्धितानुशास्तिगोचरीचक्रे दुर्योधन. यावत्सकुद्धस्तं बद्धु सज्जोऽभवत् ॥ २३ ॥

तथा चान्यधु आकेशग्रहणान्मित्र—मकार्याद्विनिवर्त्तयेत् । कृष्ण सुयोधन प्राह । यावत्त बद्धुमुद्यत ॥ २४ ॥

तत. पचग्रामाऽनर्पणात्सकलराज्यहारण स्वकुलक्षयकरणादि च कुरूणा सुप्रतीतमेवेति ॥ २५ ॥

सधि नहीं करनार एवो मानाध मनुष्य शक्तिवान् होय तो पण सामान्य शत्रुवडे अत्यत हत महत थयो छतो काचा घडानी पेठे भागी जइ स्थिर रही शकतो नथी ॥ २२ ॥

इत्यादि नीति तथा युक्तिओवडे करीने श्रीकृष्णे दुर्योधनने छेक त्यासुधी हितशिक्षा आपी के ज्यासुधी ते क्रोधायमान थइ तेने बाधवाने तैयार थया ॥ २३ ॥

वळी कृष्णे छ र. छेक वार पकडवा सुधी करीने पण मित्रने अकार्यथी अटकाववो, एवी रीते ज्या-सुधी तेने बाधवाने उद्यमवत थयो, त्यासुधी कृष्णे दुर्योधनने समजाव्यो ॥ २४ ॥

पछी पाच गामो नहीं आपवाथी तेना सर्व राज्यनु हरण थयु, तथा एवी रीते कुरुओना कुळनो क्षय थयो, इत्यादिक वृत्तात प्रसिद्धज छे ॥ २५ ॥

ततश्च श्रीकृष्णेऽपि प्रतिबोधदायिनि उत्तानेऽप्यैहिके हितार्थे यथा पांडुपुत्रेषु द्विष्ट स दुर्योधननृपतिर्नाऽबुध्यत हित, प्रत्युत श्रीकृष्णेऽपि वधनाद्यचिन्तयत एव शासने द्विष्टोऽपीति ॥ २६ ॥

मूढो मोहोपहतचित्तवृत्ति , स हि नाऽवधारयति यथावस्थित वस्तुतत्त्व, नापि परोक्त श्रद्धत्ते गगाख्यपाठकवत् ॥ २७ ॥

तद्यथा अस्ति लाटदेशे भृगुपुरे गगाख्य पाठक स बहुशिष्यपाठनोपार्जितधनो वृद्धत्वे परिणिन्ये ॥ २८ ॥

माटे एवी रीते पाण्डवो प्रत्ये द्वेषवाळो एवो ते दुर्योधन राजा, प्रतिबोध आपनार तथा आ लोक सबधि हितेच्छु एवा श्रीकृष्णे समजाव्या छता पण पोतानु हित समज्यो नहीं, अने उलटो श्रीकृष्णने पण जेम बाधवानो विचार तेणे कर्यो, एवी रीते शासननी अदर द्वेष राखनारने पण जाणवो ॥ २६ ॥

मूढ एटले मोहथी हणायेली छे मनोवृत्ति जेनी एवो, एवी रीतनो ते मूढ माणस खरेखर यथार्थ रीते वस्तुतत्वने जाणी शकतो नथी, तेम गग नामना पाठकनी पेठे अन्ये कहेला वस्तु तत्वपर पण श्रद्धा करतो नथी ॥ २७ ॥

ते गग पाठकनु वृत्तात नीचे मुजब छे:—लाट देशमा भृगुपुर नामना नगरमा एक गग नामनो पाठक हतो, ते घणा शिष्योने भणावीने तथा तेथी धन उपार्जन करीने वृद्धपणामा परण्यो ॥ २८ ॥

तद्भार्या तरुणी, सा नर्मदाऽपरतटवासिनि कस्मिंश्चित्पुंसि रता प्रत्यह निशिघटेन नर्मदामुत्तीर्य याति ॥ २९ ॥

भर्तुश्चित्त रञ्जती मायाविनी दिवा काकेभ्यो बिभेमीतिवक्ति ॥ ३० ॥

ततो बलि कुर्वन्त्यास्तस्या रक्षायै छात्रान् रक्षपालान् दत्ते ॥ ३१ ॥

पाठकेनाऽमुकमाह्वयेत्युक्ता च वक्ति, नाऽहमनुष्येण सम वक्तु वेद्मि, तत स स्वयमेवाह्वयति ॥ ३२ ॥

तत्रैकेन छात्रेणाऽचिंति, नखल्वेतदार्जवलक्षण, यत ॥ ३३ ॥

तेनी स्त्री जुवान हती, अने ते नर्मदाने सामे किनारे वसता एवा कोइक पुरुषपर आसक्त हती, तेथी हमेशा रात्रिए घडाने आधारे नर्मदा नदी उतरीने जती हती ॥ २९ ॥

पोताना भर्तारनु मन राखती थकी ते कपटी स्त्री तेने एम कहेती हती के, दिवसे पण हु कागडाओथी डरु छु ॥ ३० ॥

अने तेथी बलिदान करती वेळाए तेणीनी रक्षा माटे ते पाठक निशाळीआओने चोकी माटे राखतो हतो ॥ ३१ ॥

वळी ते पाठक ज्यारे तेणीने कहे के, तु अमुक माणसने बोलाव, त्यारे ते कहेती के, मने मनुष्य साथे बोलवानु आवडतु नथी, पछी ते पाठक पोतेज तेने बोलावतो ॥ ३२ ॥

पछी त्या एक निशाळीए विचार्यु के, आ कइ तेणीनी सरळतानु लक्षण नथी, केमके ॥ ३३ ॥

अथाचारमनाचार—मथार्जवमनार्जवं ॥ अतिशौचमशौचं च । षड्विधं कूटल-क्षणम् ॥ ३४ ॥

ततस्तस्याश्चरित्रं विलोकयता रात्रौ दृष्टा सा नर्मदामुत्तरती, कुतीर्थेनोत्तरतश्चौ-रान् मकरेण गृहीतान्, किं कुतीर्थेनोत्तरत, सप्रत्ययपि मकरस्याक्षिणी पिधत्तेति भणती च ॥ ३५ ॥

चिंतितं च अहो स्त्रिया साहसं अन्यदा बलिविधानाऽवसरे काकरावभ्रमाग-तेन प्रत्यभिज्ञाता, उक्तं च ॥ ३६ ॥

अति आचार, अनाचार, अति आर्जवपणुं, अनार्जवपणुं, अति पवित्रपणुं अने अपवित्रपणुं, ए छ प्रकारे कपटनुं लक्षण छे ॥ ३४ ॥

पछी ते निशाळीआ तेणीनी छिद्रचाल तपासवा लाग्यो, तो रात्रिए नर्मदा उतरती तेणीने तेणे जोई, तेमज खराब आरेथी उतरता चोरोने मगरमच्छे पकडवाथी तेओने कहेवा लागी के, ते खराब आरेथी केम उतरो छो? हवे पण मगरमच्छनी आंखोने ढांकी राखो? ॥ ३५ ॥

ते सघळुं जोईने ते निशाळीए विचार्युं के, अहो! स्त्रीनुं साहस केवुं छे? पछी एक वखते बळिदान करती वेळाए कागडाओनुं रक्षण करवा माटे तेज निशाळीओ आव्यो. अने तेणीने चेतावना माटे तेणे कह्युं के ॥ ३६ ॥

डिश्रा कागाण वीहेसि । रत्ति तरसि नम्मय ॥ कुतित्थाणि य जाणासि । अ-च्छीण ढकणाणिअ ॥ ३७ ॥

नया शक्तियोचेर्ईदश एव लोकस्वनावो मुष्टि कुर्वीति मुक्तमत पर नर्मदातरण-मिति ॥ ३८ ॥

ततश्चचक्षतया तेनैव ज्ञात्रेण सम जातोऽस्या सबध ॥ ३९ ॥

अन्यदा निरर्गलतायै देशातरगमनाय त छात्र प्रतिपाद्य ग्रामातरे गते जर्त्तरि गृहे मृतकलेवरमानीयाऽग्निना सस्कृत्य च निशि तेन सम प्रस्थिता ॥ ४० ॥

दिवसे तो तु कागडाथी बीहे छे, अने रात्रिए नर्मदा तरे छे, तेमज खराब आराओने पण जाणे छे, तथा (मगरनी) आखोना ढाकने पण जाणे छे ॥ ३७ ॥

(ते सांजळी) तेणीने शका थवाथी तेणीए कह्यु के, एवोज दुनियानो स्वजाव होय छे, ए वात तु मुझीमा गवी? आजथी म नर्मदा तरवानु छोड्यु ॥ ३८ ॥

पछी चचलपणाथी करीने तेज निशाळीआनी साथे तेणीनो सबध थयो ॥ ३९ ॥

पछी एक दाहाडो छुटापणा माटे तेणीए देशातर जवा माटे ते निशाळीआने समजाव्यो, तथा ज्यारे तेणीनो जर्तार कोइ बीजे गाम गयो हतो त्यारे त्यां एक मरण पामेला मनुष्यनु मुडदु लावीने तथा तेनो त्या अग्निसस्कार करीने, रात्रिए ते निशाळीआनी साथे ते परदेश चालती थइ ॥ ४० ॥

प्रातरागत पतिर्दृष्ट तत्स्वरूप, हामृता प्रियेति भृशं खेद कृत्वौर्ध्वदैहिककार्याणि विधाय तदस्थीनि गृहीत्वा गगा प्रति प्रस्थित ॥ ४१ ॥

यमुनातटे प्राप्त, दृष्टश्च तत्र तिष्ठत्या षण्मास्यते तेन छात्रेण सम विरक्तीभूतया तयैव नार्यया स ॥ ४२ ॥

जातानुतापया च तया प्रकाशित तस्यात्मस्वरूप याथातथ्येन ॥ ४३ ॥

पाठक प्राह, अनुहरसे ता, किन्त्वेतानि तदस्थीनि, त्रिविधाभिज्ञानकथनेऽपि ए तानि तदस्थीनीत्येव वदन् न प्रतिपद्यते ॥ ४४ ॥

प्रभाते तेणीनो स्वामी आव्यो, अने ते स्वरूप जोयु, त्यारे अरे! मारी प्रिया मृत्यु पामी. एम घणो खेद करीने तथा पछी तेणीनां मृत कार्यो करीने, तेणीना हाडका लेइने गंगा प्रत्ये जवा प्रयाण कर्यु ॥ ४१ ॥

अनुक्रमे यमुना नदीने कांठे ते पहोंच्यो, अने त्यां तेज निशाळीआनी साथे छ मास बाद विरक्त थइने रहेली तेज स्त्रीए तेने जोयो ॥ ४२ ॥

पश्चात्ताप थवाथी तेणीए तेने पोतानु खरेखरु स्वरूप प्रकाशित कर्यु ॥ ४३ ॥

त्यारे पाठके कयु के, तेणीना जेवी तु लागे छे, परतु तेणीना तो आ हाडका रह्या, पछी तेणीए घणा एंधाणो कह्या, छतां पण 'आ तेणीना हाडका रह्या' एमज कहेतो थको तेणीनी वात ते न स्वीकारवा लाग्यो ॥ ४४ ॥

ततो दर्शितस्तया स तत्र. दृष्टेऽपि तस्मिन्नाह, एष तादृश प्रतिजानाति, परमेतानि तदस्थीनि ॥ ४५ ॥

तत सा खिन्ना तमत्यजत् इति, एवंविधस्य मूढस्य सुगुरूपदेशोऽपि न कस्मैचित्फलाय ॥ ४६ ॥ तदुक्त—उदितौ चद्रादित्यौ । प्रज्वलिता दीपकोटिरमलापि ॥ नोपकरोति यथांधे । तथोपदेशस्तमोंधाना ॥ ४७ ॥

पूर्वं व्युद्ग्राहितस्तु वस्त्ववस्तु परीक्षाक्षमोऽपि तादृग्व्युद्ग्राहणावशाद्वैपरीत्याभिनिविष्टबुद्धि गोपालकवत्, तथाहि ॥ ४८ ॥

पछी तेणीए ते निशाळीआने देखाड्यो, तेने जोया छता पण ते कहेवा लाग्यो के, ते तेना जेवो देखाय छे, परतु आ रह्यां तेणीना हाडका ॥ ४५ ॥

पछी तेणीए खेद पामीने तेने तजी दीधो, एवी रीतना मूढने सुगुरुनो उपदेश पण कइ फायदायक थतो नथी ॥ ४६ ॥

कह्यु छे के—चद्र अने सूर्य उग्या होय तेम निर्मळ एवा क्रोडो दीवा प्रगट कर्या होय, परतु ते जेम अध मनुष्यने उपकार करता नथी, तेम मोहाध मनुष्यने उपदेश पण उपकार करतो नथी ॥ ४७ ॥

प्रथमथीज जमावेलो माणस, जोके ते वस्तु अथवा अवस्तुनी परीक्षा करवामा समर्थ होय, तोपण तेवी रीतना जमाववाथी गोवाळनी पेठे विपरीत कदाग्रहयुक्त बुद्धिवाळो थाय छे, ते कहे छे ॥ ४८ ॥

राजपुरे गोचारणोपार्जितधन एको गोपाल, तन्मित्र स्वर्णकार स च ज्ञापित स्वर्णोपार्जन गोपालेन ॥ ४९ ॥

अवोचच्च स्वर्ण कारयेति, गोपाल प्राह. त्वमेव कुरु स्वर्णकारस्त्वाह नाह करिष्ये, अन्येन कारय ॥ ५० ॥

त्वमेव कुरु, किं बहुनेत्यादिवादिन गोपाल पुनराह नारुधम वयस्य प्रीतिरावयोश्चिरार्जिता, प्रीतिच्छेदकारकश्च लोक ॥ ५१ ॥

यत.—परवसणहरिसिअमणा । मुहमहुरा पिठ्ठओ जसणसीला ॥ बहवे उवहासपरा । कलिकाले दुज्जणसहावा ॥ ५२ ॥

[illegible] गोवालीओ हतो, तेनो [illegible] ॥ ४९ ॥

[illegible] गोवालीए [illegible] तुज [illegible] ?

[illegible]

[illegible]

[illegible] छे, पछी तेण

[illegible] आपीने [illegible]

महद् भेदस्य कारणमर्थं, यत—यदीच्छेद्विपुलां प्रीतिं । तत्र त्रीणि निवार-येत् ॥ विवादमर्थसंबंध । परोक्षे दारदर्शनं ॥ ५३ ॥

इति वचनात्, तन्मे तद्विषये मावादी एतामपि ज्ञातप्रीतिमवेहि अन्येन कारय, नत्वहमहं परीक्षयिष्यामीति ॥ ५४ ॥

गोपाल—नैव जनेत, किमहं स्वचित्तं न वेद्मि, स्वर्णकार—वेत्सि त्वं किंतु विषमो लोक इति ॥ ५५ ॥

वळी प्रीति तुटवानु मोहोटु कारण पैसा छे, केमके जो गाढी प्रीतनी इच्छा करवी होय, तो त्या विवाद, धन संबंधी व्यवहार, तथा परोक्ष (तेनी) स्त्रीने मळवानु, ए त्रण वातो करवी नही ॥ ५३ ॥

एवु नीतिवचन छे माटे आ कार्य मारे तारे मने न कहेवु, आवी पण तु ज्ञातप्रीति जाणजे, तथी तु ते बीजा सोनार पासे करार? वळी आ, हु तेनी परीक्षा करी आपीश ॥ ५४ ॥

त्यारे गोवाळीए कह्यु के, एम न थाय, शु हु तारु मन जाणतो नथी? सोनारे कह्यु के, तु तो जाणे छे, परंतु दुनिया बुरी छे ॥ ५५ ॥

॰ मित्रनी गेरहाजरीमा

गोपाल —किमस्माक लोकेन स्वर्णकार —तथापि लोकस्वभाव दर्शयामि ते, तत स्वर्णकृता तुल्यमेवाऽकारि कटकयुग्म, सौवर्णमेक रीरीमय चान्यत् ॥ ५६ ॥

अर्पित सौवर्णं, भणितश्च गोप, दर्शयेतद्धट्टे, कथयेश्चामुकस्य स्वर्णकारस्येद कीदृश किच लभते इति ॥ ५७ ॥

ततोऽनेन तथा कृते कथितं वणिग्भिरिद हेम, इयच्च लभत इति, ज्ञापित च स्वर्णकृत, द्वितीयदिने च लब्धलक्षेण रीरीमयमर्पयित्वाऽभ्यधायि, अद्यैतन्ममेत्युक्त्वा दर्शय ॥ ५८ ॥

त्यारे वळी गोवाळीए कह्यु के, मारे दुनियानु शु काम छे? सोनारे कह्यु के, तोपण हु तने दुनियानो स्वभाव देखाडु, पछी ते सोनारे एक सोनानु अने बीजु पीतळनु एम बे सरखा कडा बनाव्या ॥ ५६ ॥

पछी तेमाथी सोनानु कडु गोवाळीआने आपीने कह्यु के आ तारे (वेपारीने) दुकाने देखाडवु, (अने मारु नाम आप्या विना) कहेवु के, आ अमुक सोनारनु बनावेलु छे, ते केवु छे? तथा तेनी शु किंमत थाय छे? ॥ ५७ ॥

पछी तेणे तेम कर्याथी वेपारीओए कह्यु के आ कडु सोनानु छे, तथा तेनी आटली किंमत थाय छे, पछी तेणे ते वात सोनारने जणावी; पछी बीजे दिवसे ते सोनारे हाथचालाकीथी तेने पीतळनु कडु पहेरावी आपीने कह्यु के, आज हवे आ मारु बनावेलु छे, एम कहीने तु देखाडजे? ॥ ५८ ॥

तत स मुग्धस्तत्पराववर्त्तमविदन्नदर्शयद्वणिज, उचुश्चामी रीरीमयमिद, न किंचिज्जानेे इति ॥ ५५ ॥

ज्ञापित स्वर्णकृत् ऊचे च दृष्टो लोकस्वभाव., गोपाल —स्वमेव स्वर्णं कुरु इति ॥६०॥

ततस्तद्धन सर्वं गृहीत्वा रीरीकटक कृत्वा तस्यार्पित, तदुक्त—पासा वेसा अग्गि जल । ठग ठक्कुर सोनार ॥ ए दस न हुइ अप्पणा । मक्कड वक्कुअ विल्लार ॥ ६१ ॥

अन्यदा परिहित तद्गोपेन दृष्ट केनापि, भणितश्च रे मित्रेण ते रीरीमय कटक कृत, अहो मुषितोऽसि, अन्यैरपि तथोक्ते प्रतिपन्नं ॥ ६२ ॥

पछी ते बिचारो मुग्ध गोवाळीओ ते कडला फेरफारने नहीं जाणीने वेपारीओने देखाडवा लाग्यो, त्यारे वेपारीओए कह्यु के, आतो पीतळनु छे, आना कई पण पैसा मळे तेम नथी ॥ ५५

पछी ते वात गोवाळीए ते सोनारने जणावाथी, तेणे कह्यु के, जोयो तें दुनियानो स्वभाव? पछी गोवाळीए कह्यु के, हवे तो तुज भुवर्णनो स्वामी मने करी आप? ॥ ६० ॥

पछी ते सोनारे तेनु सघळु धन लेईने पीतळनु कडु करीने तेने आप्यु, कह्यु छे के—पासा, वेश्या अग्नि, जल, ठग, ठाकुर, सोनार, वान्दरो, चातुक अने बिलाडो, ए दशे आपणा न होय ॥ ६१ ॥

एक दहाडो गोवाळीए ते कडु पहेर्यु, अने कोइए ते जोवाथी तेने कह्यु के, अरे! तारा मित्रे तो आ पीतळनु कडु बनाव्यु छे, अहो! तुं ठगायो छु, बीजाओए पण तेम कहेवाथी तेओने गोवाळीओ कहेवा लाग्यो के ॥ ६२ ॥

वेद्म्यहं यादृगेतत्, किं च. परित्तसिकरणेन, ते कपायितैकत्त, रे निरूपय, मात्मानं वचयस्व ॥ ६३ ॥

गोप —निरूपितं मया, यूयमात्मानं निरूपयतेत्यादि, एप पूर्वं व्युद्ग्राहितो युक्तमप्युक्तं न चिवेद, एवं य कुश्रुतिव्युद्ग्राहितः सोऽपीति निदर्शितो व्युद्ग्राहितः ॥६४॥

एते चत्वार उपदेशस्याऽनर्हा इति, अहवा इसएहिंति, अथवाऽतिशयेन्ते चत्वारोऽपि वुध्यते ॥ ६५ ॥

जेवु ते छे, तेवु हु जाणु छु, तमारे बीजा कोइनी अदेखाइ शामाटे करवी जोइये ? त्यारे तेओए गुस्से थइने वळी कह्यु के अरे ! तु जो तो खरो, तु पोते न ठगा ? ॥ ६३ ॥

गोवाळीए कह्यु के, मे तो जोयु छे, तमो तमारु सभाळोनी, इत्यादि, एवी रीते पेहेलेथीज भमावेलो ते गोवाळ कहेला एवा योग्य वचनने पण जाणी शक्यो नहीं, तेम जे कुशास्त्रथी भमेलो होय, ते पण युक्तने जाणी शकतो नथी, एवी रीते पेहेलेथी भमावेला मनुष्यनु उदाहरण कह्यु ॥ ६४ ॥

एवी रीते उपर वर्णवेला ते चारे जातना मनुष्यो उपदेशने लायक नथी, अथवा अतिशयोवडे करीने ते चारे प्रकारना मनुष्यो पण बोध पामी शके छे ॥ ६५ ॥

तत्राऽतिशय आधिक्य जातिस्मरणराज्यादिसद्यस्कधर्मफलप्राप्तिदर्शनविद्याचमत्कारादि सुरादिभिः सकष्टपातनादि च ॥ ६६ ॥

तत्र रक्तस्याप्यतिशयात्प्रतिबोधे निदर्शनमुदायननृपः, तथाहि—वीतभयपत्तने पृथ्वीपतिरुदायनस्तापसधर्मरक्त ॥ ६७ ॥

तत्राऽन्यदाऽगमत् पोतवणिगेक, प्राभृतयच्च पृथ्वीपतये गोशीर्षचंदनदारु, व्यज्ञपयच्चेह देवाधिदेवस्य प्रतिमा कर्त्तव्येति कथयित्वा देवेन ममैतत्समर्पितमिति ॥ ६८ ॥

त्या अतिशय एटले अधिकपणु, अने ते जातिस्मरणज्ञान अथवा राज्यआदिकनी प्राप्तिरूप धर्मना तुरत फळनी प्राप्तिनु देखावु, विद्या चमत्कार आदिक, तथा देवता आदिकोथी दुःखमां पाडवा आदिकरूप जाणवु ॥ ६६ ॥

त्यां रक्तने पण अतिशयथी प्रतिबोध थवामां उदायन राजानु दृष्टांत जाणवु ते नीचे मुजब छे—वीतभय नामना नगरमां उदायन नामे राजा हतो, अने ते तापसोना धर्ममां आसक्त हतो ॥ ६७ ॥

एक दहाडो ते नगरमां एक वहाणवटी व्यापारी आव्यो, अने तेणे राजाने एक गोशीर्षचंदननु लाकडु भेट कर्यु, अने विनंति करीके मने आ काष्ट देवताए एम कहीने आप्यु छे के, आमाथी देवाधिदेवनी मूर्त्ति बनाववी ॥ ६८ ॥

राज्ञापि पुरे चातुर्विद्यान् मेलयित्वा श्रावयित्वा च वणिगुक्तमादिष्टा वनकुट्टका, इह देवाधिदेवप्रतिमा कुरुतेति ॥ ६९ ॥

कुनेऽधिवासने जणित ब्राह्मणैर्देवाधिदेवो ब्रह्मा, तस्य प्रतिमा कुरुत, वाहित कुठारो न तु वहति ॥ ७० ॥

अन्यैर्जणितं, विष्णुर्देवाधिदेव , तथापि नवहति, एव स्कन्दरुद्रादिदेवजणनादि ॥ ७१ ॥

इतश्च सिद्धे जोजनपाके प्रजावतीराज्ञ्या प्रहिता दासी नृपस्याकारणाय, सा तु सुखितास्ति अस्माकं पुनरीदृशः समयो वर्त्तत इत्यजाणि दास्या मुखेन राज्ञी प्रति ॥ ७२ ॥

राजाए पण नगरमांथी चारे विद्याओमा पारगामी पंडितोने एकठा करीने तथा तेओने तथा व्यापारीनु कहेलु सजलावीने कडीआराओने हुकम कर्यो के, आमांथी देवाधिदेवनी मूर्त्ति बनावो ? ॥ ६९ ॥

पछी शुज मुहूर्त्तआदिकनी क्रिया कर्या बाद ब्राह्मणोए कह्यु के, देवाधिदेव तो ब्रह्मा छे, माटे तेनी प्रतिमा करो त्यारे तेपर कुहाडो लगाव्यो परंतु कुहाडो चाल्यो नहीं ॥ ७० ॥

त्यारे बीजाओए कह्यु के देवाधिदेवतो विष्णु छे, परतु कुहाडो चाल्यो नहीं, एवी रीते कार्तिकेय, महादेव इत्यादि देवोना नामो लीधा ॥ ७१ ॥

एटलामां रसोइ तैयार थवाथी प्रजावती राणीए राजाने बोलाववा माटे दासीने मोकली त्यारे राजाए दासीने महोंमेथी राणीने कहेवराव्यु के, ते राणी तो अत्यारे सुखी थइ बेठी छे. अने अमारो तो आवो समय वर्त्ते छे ॥ ७२ ॥

निवेदितं तया राज्ञ्यै, ततः प्रभावत्यवक् अहो मिथ्यात्वमोहिता देवाधिदेवमपि न शृण्वंति ततः सा नृपानुज्ञया स्नाता कृतकौतुकमंगला शुक्लवस्त्रपरिधाना बलिपुष्पधूपकडुच्छुकहस्ता सदस्यागत्याह ॥ ७३ ॥

देवाधिदेवो वर्धमानस्तस्य प्रतिमा क्रियतामित्युक्ते वाहितः कुठारः, एकघातेन द्विधाभूतात्फलकात् दृष्टा च पूर्वनिर्मिता सर्वालंकारभूषिता भगवतो वर्धमानजिनस्य प्रतिमा ॥ ७४ ॥

स्थापिता च राज्ञा गृहासन्ने नव्यकृते चैत्ये, अष्टमीचतुर्दश्योः प्रभावती भक्त्या स्वयं नृत्यं करोति राजापि तदनुवृत्त्या मुरजं वादयति ॥ ७५ ॥

पछी ते दासीए ते वात राणीने जणावी, त्यारे प्रभावतीए कह्यु के, अहो! मिथ्यात्वथी मूढ थएला लोको देवाधिदेवने पण सांभळता नथी, पछी ते राजानी आज्ञाथी स्नान करीने तथा कौतुकमंगळ करीने, तथा श्वेत वस्त्रो पहेरीने बलि, पुष्प तथा धूप धाणु हाथमां लेइने सभामां आवी कहेवा लागी के ॥ ७३ ॥

देवाधिदेव वर्धमानप्रभु छे, माटे तेनी प्रतिमा करो? एम कहेतां कुहाडो चलाव्यो, तो एक घाएज ते काष्ठना बे टुकडा थया, अने तेमां पूर्वथीज बनेली तथा सर्व आभूषणोथी शोभिती एवी भगवान श्री वर्धमान प्रभुनी प्रतिमा जोवामां आवी ॥ ७४ ॥

पछी राजाए ते प्रतिमा पोताना घरनी नजीक नवा करेला मंदिरमां स्थापन करी, पछी आठम चौदसे प्रभावती राणी भक्तिथी पोते नाच करे छे, तथा राजा पण तेने अनुसरतो मृदंग बजावे छे ॥ ७५ ॥

अन्यदा नृपेण नृत्यंत्या राज्ञ्या शिरश्छाया न दृष्टा, उत्पात इति कृत्वा व्यग्रचित्ताऽभून्नृप स्खलितश्च मुरजध्वनि. ॥ ७६ ॥

पृष्टा देवी. ततो राजाह, मामप्युत्पातो दृष्टस्तत. स्खलितोऽस्मि उक्त प्रभावत्या, जिनमतप्रपन्नैर्न भेतव्य मरणात् ॥ ७७ ॥

अन्यदा पुन स्नाता प्रभावती देवपूजार्थं शुद्धवस्त्रे अनाययत् ॥ ७८ ॥

एक दहाडो राजाए नाचती एवी राणीनी मस्तकनी छाया न दीठी, तेथी कंइक उत्पात छे, एम विचारी राजा व्याकुळ चित्तवाळो थयो. अने तेथी मृदंगना नादमां स्खलना थइ ॥ ७६ ॥

वळी ते कारणथी राणी रुष्टमान थइ, त्यारे राजाए कह्यु के, तु रोष नहीं कर ? में उत्पात जोयो, अने तेथी मने स्खलना थइ छे, त्यारे प्रभावतीए कह्यु के, जैनमतने माननाराओए मृत्युथी डरवु न जोइए ॥ ७७ ॥

वळी एक दहाडो प्रभावती राणीए स्नान करीने देवपूजा माटे बे शुद्ध वस्त्रो मगाव्या ॥ ७८ ॥

८

आनीयमाने च ते अतरा कौसुंभरागरक्ते इव सद्वृत्ते, राज्ञ्या दर्पणे पश्यंत्या उपनीते च दृष्टा च सा, देवायतन प्रविशत्या किममंगलं मे करिष्यसि, किंवासगृहंप्रवेक्ष्यन्यहमिति भणित्वा च आनेत्री दर्पणेनाजघान ॥ ७ए ॥

प्राणैरमुच्यत सा, ततोऽचिंतयद्राज्ञी, चिरानुपालित जग्न ममाद्य प्रथमं व्रत, एषोऽपि ममोत्पात, ततो नृप व्यजिज्ञपत्, युष्मदनुज्ञाताऽहं प्रव्रजामीति ॥ ए० ॥

नृप स्माह यदि मा सद्धर्मे बोधयिष्यसीति ततस्तथा प्रतिपन्ने नृपेणाऽनुमता साप्राव्राजीत् ॥ ए१ ॥

ते वस्त्रो लइ आवते अत मार्गमा जाणे कसुंबी रगवाळा थइ गया अने आरीसामा जोती एवी राणीनी पासे (ते वस्त्र) दासी स्याव्या तेथी ते क्रोधायमान थइने ते वस्त्रो लावनार दासी प्रत्ये कहेवा लागी के, देवमंदिरमा प्रवेश करती एवी मने शु तु अमगल करवा माटे इच्छे छे? शु आ समये हु वासभुवनमा प्रवेश करवानी छु? एम कहीने ते लावनार दासीने आरीसो मार्या ॥ ७ए ॥

अने तेथी ते दासीना प्राण गया, त्यारे राणी विचारवा लागी के, घणा काळथी पाळेलु पहेलु व्रत में आजे भाग्यु माटे आ पण मारापर उत्पात थयो, तेथी ते राजाने विज्ञप्ति करवा लागी के, जो आप मने अनुज्ञा आपो तो हु दीक्षा लेउ ॥ ए० ॥

त्यारे राजाए कह्यु के, जो तु मने उत्तम धर्मनो बोध आपवानु कबुल करे, तो हु रजा आपु, पछी तेणीए पण तेम करवानु स्वीकारवाथी राजाए अनुमति आपवाथी दीक्षा लीधी ॥ ए२ ॥

षमाणसी संयममाराध्य वैमानिकोऽजगमत, ततो नानारूपैर्नृपं बोधयामास, परं तापसभक्तो राजा न प्रतिबुध्यते, ततोऽचिंतयद्देवः ॥ ७१ ॥

तापसेषु रक्तोऽयं तेषां गुणानेव पश्यति, यतः—रत्ता पिच्छंति गुणे। दोसे पिच्छंति जे विरज्जंति ॥ मज्झत्थच्चिअ पुरिसा। दोसे अ गुणे अ पिच्छंति ॥ ७३ ॥

ततः कथमपि तापसेषु विरक्तं करोमि, यथा तेषु विरक्तो जिनधर्मं सम्यगवबुध्यते, ततस्तापसवेषः पुष्पफलहस्तः प्राप्तो नृपसमीपं ॥ ७४ ॥

छ मास पर्यंत संयम पाळीने ते वैमानिक देवलोकमां गइ, पछी ते देवरूपे थयेलो राणीनो जीव नाना प्रकारनां रूपो वरू करीने राजाने प्रतिबोधवा लाग्यो, परंतु तापसोनो भक्त एवो ते राजा प्रतिबोध पाम्यो नहीं, त्यारे ते देवे विचार्युं के ॥ ७१ ॥

तापसोमां रक्त एवो आ राजा तेओना गुणोनेज जुए छे, केमके रक्त माणसो गुणोने जुए छे, तथा विरक्त माणसो दोषोने जुए छे, अने मध्यस्थ मनुष्यो तो दोषोने अने गुणोने बन्नेने जुए छे ॥ ७३ ॥

माटे कोइ पण रीते हुं तेने तापसोमां विरक्त करुं, के जेथी तेओमां विरक्त थइने जैनधर्मने ते सारी रीते जाणी शके, पछी ते देव तापसनो वेष लेइने, तथा हाथमां पुष्प अने फळ लेइने राजा पासे आव्यो ॥७४॥

फलमेकं राज्ञेऽर्पितमतीवमनोहरं, राज्ञा घ्रातं सुरभितरमिति, आलोकितं सुरूपमिति, आस्वादितं अमृतरसोपममिति, पृष्टस्तापसः क्वैतादृशि फलानि सम्भवंति ॥ ८५ ॥

तापस—इतो नातिदूरासन्ने तापसाश्रमे, नृप—दर्शय मे तं तापसाश्रमं, ताश्चतरून्, तापस—एह्येकाकी ॥ ८६ ॥

ततो राजा मुकुटाद्यलंकृतश्चलितः, तापसेन सह दृष्टं तादृग्वनं, तापसाश्रमाश्च ॥ ८७ ॥

शृणोति च तत्र मिथो मन्त्रयतस्तापसान्, यदेष राजैकाकी सर्वालंकारः, तदेनं हत्वा गृह्णीमोऽस्याऽऽभरणानीति ॥ ८८ ॥

पछी तेणे राजाने एक अत्यंत मनोहर फळ आप्युं, राजाए ते सुंघ्युं, तो अत्यंत सुगंधी लाग्युं, जोयुं तो उत्तम रुपवाळुं लाग्युं, चाख्युं तो अमृत सरखा रसवाळुं लाग्युं, पछी तापसने पूछ्युं के आवां फळो क्यां उत्पन्न थाय छे? ॥ ८५ ॥

तापसे कह्युं के, अहींथी नजदीकज तापसोना आश्रममां थाय छे, त्यारे राजाए कह्युं के, मने ते तापस आश्रम तथा ते वृक्षो देखाड? तापसे कह्युं के, तुं एकलो आव? ॥ ८६ ॥

पछी राजा मुकुट आदिकथी शोभायमान थइने तापसनी साथे चाल्यो, तो तेवुंज वन अने तापसआश्रमो जोयां ॥ ८७ ॥

वळी त्यां तापसोने परस्पर एवी वातो करता सांभळ्या के, आ राजा सर्व अलंकारोथी भूषित थयेलो एकलो छे, माटे तेने हणीने तेनां आभूषणो आपणे लेइ लेइए ॥ ८८ ॥

नीतो नृप पश्चाद्वलितः, तावत् कोकूयित तापसेन, धावन धावत पलायित एष म्राह्य, धावितास्तापसा. हत हतेति नणत ॥ ८९ ॥

नश्यश्च नृपोऽपश्यदेकं महद्वनं शृणोति च तत्र मानुषालापं, शरणमत्रेति मत्वाऽमत प्रेक्षाचक्रे चंद्रमिव सोम, कदर्पमिव सुरूपं, नागकुमारमिव सुनेपथ्यं, बृहस्पतिमिव सर्वशास्त्रविशारद, बहूना श्रमणादीना मध्यगत धर्ममाख्यांत गुरुं ॥ ९० ॥

शरण शरण इति नणश्च गतस्तत्र, गुरुणा नणित च न नेतव्यमिति त्रुटितोऽसीति नणित्वा प्रत्युगुस्तापसा, राजापि तेषु विपरिणत ईषदाश्वस्तोऽनूत् ॥ ९१ ॥

राजा फरीने पाछो मळ्यो, एटलामा तापसे पोकार कर्यो के, दोमो ? दोमो ? आ नाशी जाय छे, माटे तेने पकडवो जोइए, पछी ते तापसो मारो ? मारो ? एम बोलता दोडवा लाग्या ॥ ८९ ॥

पछी राजाए नासता थका एक महोटु वन जोयु, अने त्या मनुष्यनो शब्द सांभळ्यो, अहीं मने शरण मळशे, एम जाणीने ज्या आगळ जुए छे, त्या चंद्र सरखा शात, कामदेव सरखा उत्तम रुपवाळा, नाग कुमार सरखा उत्तम वेषवाळा, बृहस्पतिनी पेठे सर्व शास्त्रोना जाण तथा घणा मुनि आदिकोनी वच्चे वेसीने धर्मोपदेश देता एवा गुरुमहाराजने तेणे जोया ॥ ९० ॥

पछी शरण! शरण! एम कहेतो थको ते राजा त्या गयो, त्यारे गुरुए कयु के तमारे मरवु नहीं, हवे तु छुट्यो, एम कही तापसो पण पाछा गया, राजा पण ते तापसो प्रत्ये विरक्त थइने जरा शात थयो ॥ ९१ ॥

फलमेकं राज्ञेऽर्पितमतीवमनोहरं, राज्ञा घ्रातं सुरभितरमिति, आलोकितं सुरूपमिति, आस्वादितं अमृतरसोपममिति, पृष्टस्तापसः क्वैतादृशि फलानि सन्त्वति ॥ ७५ ॥

तापसः—इतो नातिदूरासन्ने तापसाश्रमे, नृपः—दर्शय मे तं तापसाश्रमं, तांश्चतरून, तापसः—एह्येकाकी ॥ ७६ ॥

ततो राजा मुकुटाद्यलंकृतश्चलित, तापसेन सह दृष्टं ताहग्वनं, तापसाश्रमाश्च ॥ ७७ ॥

शृणोति च तत्र मिथो मंत्रयतस्तापसान्, यदेष राजैकाकी सर्वालंकारः, तदेनं हत्वा गृह्णीमोऽस्याऽभरणानीति ॥ ७८ ॥

पछी तेणे राजाने एक अत्यंत मनोहर फळ आप्युं, राजाए ते सुंघ्युं, तो अत्यंत सुगंधी लाग्युं, जोयुं तो उत्तम रुपवाळुं लाग्युं, चाख्युं तो अमृत सरखा रसवाळुं लाग्युं, पछी तापसने पूछ्युं के आवां फळो क्यां उत्पन्न थाय छे? ॥ ७५ ॥

तापसे कह्युं के, अहींथी नजदीकज तापसोना आश्रममां थाय छे, त्यारे राजाए कह्युं के, मने ते तापस आश्रम तथा ते वृक्षो देखाड? तापसे कह्युं के, तुं एकलो आव? ॥ ७६ ॥

पछी राजा मुकुट आदिकथी शोभायमान थइने तापसनी साथे चाल्यो, तो तेवुंज वन अने तापसआश्रमो जोया ॥ ७७ ॥

वळी त्यां तापसोने परस्पर एवी वातो करता सांभळ्या के, आ राजा सर्व अलंकारोथी भूषित थयेलो एकलो छे, माटे तेने हणीने तेनां आभूषणो आपणे लेइ लेइए ॥ ७८ ॥

नीतो नृप पश्चाद्वलित , तावत् कोकूयित तापसेन, धावन धावत पलायित एप माद्य', धावितास्तापसा. हत हतेति नणत. ॥ ८९ ॥

नश्यश्च नृपोऽपश्यदेकं महद्वनं शृणोति च तत्र मानुषालापं, शरणमत्रेति मत्वाऽग्रत प्रेक्षाचक्रे चन्द्रमिव सोमं, कंदर्पमिव सुरूप, नागकुमारमिव सुनेपथ्य, बृहस्पतिमिव सर्वशास्त्रविशारद, बहूना श्रमणादीना मध्यगत धर्ममाख्यात गुरुं ॥ ९० ॥

शरण शरण इति नणश्च गतस्तत्र, गुरुणा नणित च न नेतव्यमिति छुटितोऽसीति नणित्वा प्रत्युगुस्तापसा , राजापि तेपु विपरिणत ईपदाश्वस्तोऽनूत् ॥ ९१ ॥

राजा फरीने पाछो मळ्यो, एटलामा तापसे पोकार कर्यो के दोडो ? दोडो ? आ नाशी जाय छे, माटे तेने पकडवो जोइए, पछी ते तापसो मारो ? मारो ? एम बोलता दोडवा लाग्या ॥ ८९ ॥

पछी राजाए नासतां थका एक महोटु वन जोयु, अने त्या मनुष्यनो शब्द सांभळ्यो, अहीं मने शरण मळशे, एम जाणीने ज्या आगळ जुए छे, त्या चद्र सरखा शात, कामदेव सरखा उत्तम रूपवाळा, नाग कुमार सरखा उत्तम वेपवाळा, बृहस्पतिनी पेठे सर्व शास्त्रोना जाण तथा घणा मुनि आदिकोनी वच्चे वेसीने धर्मोपदेश देता एवा गुरुमहाराजने तेणे जोया ॥ ९० ॥

पछी शरण' शरण' एम कहेतो थको ते राजा त्या गयो, त्यारे गुरुए कह्यु के तमारे मरवु नहीं, हवे तु छुट्यो, एम कही तापसो पण पाछा गया, राजा पण ते तापसो प्रत्ये विरक्त थइने जरा शात थयो ॥ ९१ ॥

धर्मश्च कथितस्तस्य गुरुणा, प्रतिपन्नश्च तेन, प्रभावतीदेवेन च सर्वं प्रतिसहृत, राजात्मान सिंहासनस्थमेव पश्यति ॥ ८२ ॥

देवेन च नभःस्थेनाऽभाणि, सर्वमिद त्वत्प्रतिबोधार्थं कृत मया, धर्मे तवाऽविघ्न भवत्विति, अन्यत्राप्यापदि मा स्मरेरित्युक्त्वा स्वपद प्रापेति ॥ ८३ ॥

इति रक्तस्याऽतिशयात् सुरेण सकटपातरूपात् धर्मप्रतिबोधे श्रीउदायननृपसबध. ॥ ८४ ॥

एव द्विष्टस्य कमठासुरस्य श्री पार्श्वजिने कायोत्सर्गस्थे निरर्गलजलाद्युपसर्गकारिणो धरणेन्द्रप्रणीततादृगधिक्षेपज्ञापनादिना ॥ ८५ ॥

पछी गुरुए तेने धर्म सभळाव्यो, तेणे पण ते अगीकार कर्यो, पछी ते प्रभावती देवे आ सघळो खेल पाछो सहरी लीधो, त्यारे राजा पोताने सिंहासनपर बेठेलोज जोवा लाग्यो ॥ ८२ ॥

पछी ते देवे आकाशमा रहीने तेने कह्यु के, आ सघळु में तने प्रतिबोधवा माटे कर्यु हतु, हवे तने धर्मना निर्विघ्नपणु थाओ ? वळी फरीने पण जो तने कष्ट पडे तो मारु स्मरण करजे ? एम कहीने ते देवे पोताने स्थानके गयो ॥ ८३ ॥

एवी रीते रक्तने पण ते देवे सकटमा पाडवारूप अतिशयथी धर्मनो प्रतिबोध देवामा श्री उदायन राजानु उदाहरण जाणवु ॥ ८४ ॥

एवी रीते द्वेषी एवो कमठासुर, के जेणे काउसग्गमा रहेला एवा श्री पार्श्वप्रभुपर अत्यत जलवरसाववा आदिकनो उपसर्ग कर्यो हतो, तेने धरणेंद्रे करेला तेवा आक्षेप तथा जय पमाडवा आदिकथी करीने प्रतिबोध जाणवो ॥ ८५ ॥

पापबुद्धिनृपस्य च युद्धवधादिरूपात्पापादेव राज्यादिसकलश्रेय. समीहितप्राप्तिरितिवादिनो धर्मद्वेषिण· सुबुद्धिमन्त्रिणा कामघटदिव्यलकुटसर्वोपद्रवापहारिचामरकन्यात्रयपाणिग्रहणदिव्यपल्यकश्वेतरक्तकणवीरकवाद्यराज्यादिसद्यसुधर्मफलप्राप्तिदर्शनेन प्रतिबोध ॥ ए६ ॥

पूर्वभवे किंचिद्विराधितधर्मतया धर्मे मूढस्य च मेतार्यादेः सुरै· सकटपातनादिभि, कमलस्य चोपहासादिना, कुम्भकारटट्टिदर्शनाभिग्रहवतो निधानप्राप्त्या पूर्वं व्युद्ग्राहितस्य च भृगुपुरोहितपुत्रद्वयस्य साधुपात्राऽऽहाराचारदर्शनजजातिस्मरणेन प्रतिबोधश्च निदर्शनीय ॥ एउ ॥

वळी पापबुद्धि राजा, के जे युद्ध तथा वध आदिरूप पापथीज राज्यआदिक सकल कल्याण तथा इच्छित प्राप्ति थाय छे, एम कहेनारो हतो, तथा धर्मनो द्वेष करनारो हतो, तेने सुबुद्धि मंत्रिए धर्मना तुरत फळनी प्राप्ति देखाडवा रूप कामघट, देवताइ लाकडी, सर्व उपद्रवने हरनार चामर, त्रण कन्याओनु पाणिग्रहण, देवताइ पलंग, सफेद तथा लाल कणेरनी ने कांबडीओ तथा राज्य आदिकनो लाभ बतावीने प्रतिबोध आपेलो छे ॥ ए६ ॥

पूर्व जन्ममां धर्मनी कंइक विराधना करवाथी धर्ममां मूढ एवा मेतार्य आदिकनो देवोए सकटमां पाडवा आदिकथी प्रतिबोधेलो छे, कमळने हासी आदिकथी प्रति बोधेलो छे, कुंभारनी टालने जोवाना अभिग्रहवाळाने निधाननी प्राप्तिथी प्रतिबोध्यो छे, पेहेलेथी भमावेला एवा भृगुपुरोहितना बन्ने पुत्रोने साधुना पात्र, आहार तथा आचार देखाडीने जातिस्मरण उत्पन्न करावीने प्रतिबोधेला छे, एम जाणवु ॥ एउ ॥

रक्तादीना दुर्लभ—बोधिकतामिति विज्ञाय भव्यजना ॥ माध्यस्थ्य धत्त यतो । धर्मं सुलभो जयश्रीद ॥ ९८ ॥

माटे एवी रीते ते रक्त आदिकोने बोध थवो दुर्लभ छे. एवु जाणीने हे भव्यजनो ! तमो मध्यस्थभावने धारण करो ? जेथी तमोने धर्म सुलभ तथा जयलक्ष्मीने देनारो थाय ॥ ९८ ॥

॥ एवी रीते त्रीजो तरंग समाप्त थयो ॥

इति तृतीयस्तरंगः समाप्तः

अथ चतुर्थस्तरंगः

पूर्वतरंगे चत्वार उपदेशस्याऽयोग्या प्रतिपादितास्तत्र मूढस्य भेदरूपान् पुनरयोग्यान् कतिचिदाह ॥ १ ॥ मूलम्—अणवट्ठिओपमत्तो । बहिरकुडुवोवमो अ कुग्गहत्थ ॥ पामरसम सुअमित्त—ग्गाही धम्मं न साहंति ॥ २ ॥

पर्वना तरंगमां चार उपदेशने अयोग्य कह्या तेमां मूढना भेदरूप केटलाक अयोग्योनुं फरीने वर्णन करे छे ॥ १ ॥ मूलनो अर्थ—अनवस्थितात्मा, प्रमादी, बहेरा कुवा जेवो, कदाग्रही, पामर सरिखो, तथा श्रुत मात्र ग्रहण करनारो एटली जातना मनुष्यो पण धर्मने साधी शकता नथी ॥ २ ॥

पनास्थिरताख्यो धर्मं न साधयन्तीत्ययोग्या उपदेशस्येति संटंक ॥ ३ ॥ तत्राऽन-
वस्थितो विविधव्यसनचटुलितचित्तोऽस्थिरात्मनश्च श्रेष्ठिगृहिणीवत्, तथाहि॥४॥
श्रीपुरनगरे वसुश्रेष्ठी, पत्नी गोमती, पुत्रो धनपालः क्रमादुपरते पितरि व्यतीते शोकेऽ
न्यदा वधूभिः सह कलहायते गोमती ॥ ५ ॥ उक्ताऽङ्गजेन किं तवेदानीं गृहचिंतया,
धर्मं कुरु अहं तवाज्ञाकरोऽस्मि, न चाऽनाकर्णितोऽत्र साध्यते धर्मः, शृणु धर्मं ॥६॥
गृह एवाऽऽकारित. शास्त्रवाचक, प्रोक्ते वाचनां, उपाविशद् गोमती ॥ ७ ॥

अनवस्थावाळा अधिक मनुष्यो धर्मने साधी शकता नथी, माटे तेओ उपदेशने लायक नथी, एवो
मतलब छे ॥ ३ ॥ त्यां अनवस्थापणा एटले शेठनी स्त्रीनी पेठे नाना प्रकारना व्यसनथी चपळचित्तवाळो तथा
अस्थिर आत्मवाळो जाणवो, ते शेठनी स्त्रीनुं उदाहरण कहे छे ॥ ४ ॥ श्रीपुर नामना नगरमां वसु नामे
शेठ हतो, तेने गोमती नामे स्त्री हती, अने धनपाळ नामे पुत्र हतो, अनुक्रमे पिता मृत्यु पाम्ये छते
तथा तेनो शोक पण मुकाते छते, एक दहाडो गोमती वहुओ साथे क्लेश करवा लागी ॥ ५ ॥
त्यारे पुत्रे कह्युं के, हवे तारे घरनी फिकर करवानी शी जरूर छे, तुं तारे धर्म ध्यान कर हुं तारा हुकमने
तनुवे छुं, वळी श्रवण कर्याविना धर्म धारण करी शकातो नथी, माटे तुं धर्मनुं हवे श्रवण कर ॥ ६ ॥ पछी
शास्त्र वांचनारने घरेज तेडाव्यो, अने शास्त्र वंचावा मांड्युं, गोमती पण सांभळवा बेठी ॥ ७ ॥

भीष्म उवाचेति यावज्जगाद तावत् प्रतोळ्यामर्धप्रविष्टशुन दूरात् हाम्हिा-क्रिति जल्पयुत्तस्थौ ॥८॥ रुष्टा दौवारिकाय, किंचिज्जल्पित्वा स्वल्पवेलया पुनरा-गत्योपविष्टा, भीष्म उवाचेत्यकथयत् कथक ॥९॥ तावद् ददृशे महानसासन्ना मार्जारी, दूरात् झिरि झिरि वदत्युदस्थात, अरुष्यत् सूपकारिकायै, पुनरुपाविक्षत् ॥१०॥ भीष्म उवाचेति अवोचत्पुस्तकवाचक, अत्रांतरे त्रुटितो वत्स, उत्थिता बुबु इति जल्पती क्रुद्धा वत्सपालाय, न्यविक्षत् पुन ॥११॥ भीष्म उवाचेति यावदूचे वाचक, तावत् काकाकाका इति कोलाहलपरा पराङ्मुख्यभूत्, अरुष्यत् कर्मकरीभ्य., एव याचकागमनादिष्वपि पुन पुनरुत्थानाद्वि एवमतिक्रांत प्रहरो गत पुस्तकवाचक॥१२॥

जेटलामां कथा वाचनार जटजीए कह्यु के 'भीष्म उवाच' एटलामां शेरीमां अरध प्रवेश करेला कुतराने जोइने दूरथीज ते हाक हाक करती उभी थइ ॥ ८ ॥ पछी द्वारपाल प्रत्ये क्रोध करीने तथा कंइक बकीने तुरतज पाछी आवी बेठी. एवे वळी जटजीए कथा शिरू करी के 'भीष्म उवाच' ॥ ९ ॥ वळीएटलामां गामतीए रसोडा नजदीक बीलाडीने जोइ, तेथी दूरथीज झीझी करती उभी थइ, तथा रसोइ करनारी प्रत्ये क्रोधायमान थइ, अने पाछी आवीने बेठी ॥ १० ॥ त्यारे वळी जटजीए कथा शरु करी के 'भीष्म उवाच' एटलामां वाछरो छुटी गयो, ते जोइ बु बु करती उठी, अने गोवाळ प्रत्ये क्रोध करीने पाछी आवी बेठी ॥ ११ ॥ वळी जटजीए कह्युके 'भीष्म उवाच' एटलामां तो ते गामती का का का का एवा कोलाहल करती थकी पराङ् मुखी थइ, अने दासीओ प्रत्ये क्रोध करवा लागी एवीरीते याचकना आगमन आदिक वखतेपण वारंवार उठी, अने एवीरीते एक पहोर नीकळी गयो तेथी पुस्तक वाचनार जटजी तो घेर सीधावी गया ॥ १२ ॥

प्रात. पुनरागात्, पर तदापि प्रकार स एवेति खिन्नो गत स तथा चोक्तं—

अणवट्ठि अस्स धम्म । माहु कज्जिद्द सुट्ठु वि पिअस्स विज्झायं होइ मुह । विज्झाय ग्गिधमंतस्स ॥ १३ ॥ अत्यधिम्मद्दि च, अप्युल्लसल्लब्धिनिधिः प्रबोधयेद् वहूपदेशैरपि कोऽनवस्थितं ॥ नेतुं तडिद्वह्निमल न पुष्करावर्त्तोऽपि धाराशतल क्षोटिभि ॥ १४ ॥ इति ॥ प्रमत्तो विषयकषायविकथानिद्रादिप्रमादप्लावितचेतन, स च धर्मं न बुध्यते, प्राग्जन्मभ्रातृचित्रमहर्षिप्रतिबोध्यमानब्रह्मदत्तचक्रयादिवत् ॥ १५ ॥

वळी प्रभाते फरीने नटजी पधार्या परतु ते दिवसे पण तेम हास्य जोया, तेथी विचारा नटजी तो थाकी थाकीने चाल्या गया वळी कयु छे के—प्रिय एवा पण अनवस्थित एटले व्यग्र चित्तवाळा मनुष्यने उत्तम एवो पण धर्म समजाववो नही, केमके बुझेला अग्निने धमवाथी उलटु मोढोज स्वराव थाय छे ॥ १३ ॥ वळी अमोए पण कयु छे के—जेनी पासे लब्धिओनो समुह उल्लासमान थइ रहेलो छे, एवो पण कोण मुनि घणा उपदेशोथी पण अनवस्थित चित्तवाळाने प्रबोधी शके तेम छे? (अर्थात कोइ नथी) केमके पुष्करावर्त्त मेघ पण पोतानी सेंकडो, लाखो तथा क्रोडो गमे धाराओथी पण विजळीनी अग्निने ठारवाने समर्थ नथी ॥ १४ ॥ इति ॥ प्रमादी एटले विषय, कषाय, विकथा तथा निद्रा आदिक प्रमाद युक्त चित्तवाळो जाणवो, अने ते पूर्वजन्मना भाइ एवा चित्रमहर्षिथी प्रतिबोधाता ब्रह्मदत्तचक्री आदिकनी पेठे धर्मने जाणी शकतो नथी ॥ १५ ॥

तदुक्त—चित्ते प्रमादनिभृते । धर्मकथा स्थानमेव न अजते ॥ नीलीरक्ते वाससि । कुंकुमरागो दुराधेय ॥ १६ ॥ माहाजारतेऽपि, एकदा मथुरायां समागत दुर्वाससं मुनिं प्राह धृतराष्ट्रनृप, मुने मत्पुत्राणां दुर्योधनादीनां धर्मशिक्षां दद-स्व, यया ते पाण्डुपुत्रैः सह न कलहायते ॥ १७ ॥ मुनिराह—वेदागमपुराणोक्ति—युक्तिवाक्यशतैरपि ॥ दश धर्मं न बुध्यते । धृतराष्ट्र निशम्यतां ॥ १८ ॥ मत्त प्रमत्त उन्मत्त । श्रान्त क्रोधी बुभुक्षित ॥ त्वरमाणश्च भीरुश्च । लुब्ध कामीत्यमी दश ॥ १९ ॥ इति ॥ वधिरकुडुंबेनोपमा यस्य स वधिरकुडुंबोपम, सोऽप्युपदेशाऽनर्हं, वधिरकुडुंबसंबधो यथा ॥ २० ॥

कह्यु छे के—प्रमादथी भरेला चित्तमां धर्म कथाने स्थानज मळतु नथी, केमके गळीथी रंगेला वस्त्रपर कसुंबानो रंग चढी शकतो नथी ॥ १६ ॥ महाभारतमां पण कह्यु छे के, एक वखते मथुरामां आवेला दुर्वासा मुनिने धृतराष्ट्र राजाए कह्यु के, हे मुनिराज! मारा आ दुर्योधन आदिक पुत्रोने तमो धर्म शिक्षा आपो? के जेथी तेओ पांडवो साथे क्लेश न करे ॥ १७ ॥ मुनिए कह्यु के, हे धृतराष्ट्र राजा! दश प्रकारना मनुष्यो सेंकडो गमे वेदोना, आगमोना, पुराणोना तथा युक्तिओना वाक्योथी पण प्रतिबोध पामी शकता नथी (ते दश प्रकारना मनुष्यो कया कया छे?) ते तमो सांभळो? ॥ १८ ॥ मदोन्मत्त, प्रमादी, उन्मत्त, थाकेलो, क्रोधी, भुख्यो, उतावळना स्वभाववाळो, बीकण, लोभी तथा कामी, ए दश प्रकारना मनुष्यो प्रतिबोध पामता नथी ॥ १९ ॥ इति ॥ बेहेरा कुटुंबनी साथे छे उपमा जेने एवो मनुष्य बेहेरा कुटुंबनी उपमावाळो कहेवाय, अने ते पण उपदेशने लायक नथी, ते बेहेरा कुटुंबनो संबंध नीचे मुजब छे ॥ २० ॥

पूरकग्रामे स्थविर., स्थविरा, सुत, स्नुपा चेति बधिरकुटुंबमवात्सीत्. सुतो हलमवाहयत्, पथिकैरन्यदा पथानं पृष्ट. प्रोवाच ॥ २१ ॥ ममैतौ गृहजातौ वृषौ, न वृषौ प्रग्रामः कथय पथानमिति पुनस्तैरुक्तेऽवदत्, सर्वो वेत्ति ग्रामश्चेन्न प्रत्ययस्तर्हि ग्राम व्रजाम. ॥ २२ ॥ बधिरोऽयमिति विचिन्त्य गतास्ते, तावद्भक्तमानेपीक्षार्यां, अवादीत् तदग्रे शृंगितौ वृषनावद्येति ॥ २३ ॥ साऽवक् सलवणमलवण वा गुरुमन्माता राद्ध, किमहं वेद्मि, ऊचे स., निराकर्षमह पथिकास्तान् ॥ २४ ॥

पूरक नामना गामना एक डोसो, डोसी, पुत्र अने पुत्रनी वहु, ए चारे मनुष्योनुं बेहेरुं कुटुंब वसतुं हतुं, तेओमांथी पुत्र हळ खेडतो हतो, एक दहाडो केटलाक वटेमार्गुओए तेने मार्ग पूछ्यो, (त्यारे ते बेहेरो होवाथी) कहेवा लाग्यो के, ॥२१॥ अरे! आ तो मारे घेर जनमेला बळदो छे, पथिकोए कह्यु के, अमो तारा बळदो माटे पूछता नथी, परंतु अमोने तुं मार्ग बताव? एवी रीते तेओए फरीने कहे ते छते ते कहेवा लाग्यो के अरे! ते (मारा बळदनी हकीकत) आखुं गाम जाणे छे, जो तमोने खातरी न थती होय तो चालो गाममां जइए ॥ २२ ॥ अरे! आ तो बेहेरो छे, एम विचारिने तेओ चाल्या गया, एटलामां तेनी स्त्री * जात लावी, त्यारे तेनी आगळ ते कहेवा लाग्यो के, आजे बळदोने चिन्ह कर्या छे ॥ २३ ॥ त्यारे ते पण (बेहेरी होवाथी) कहेवा लागी के, आ जात—भोजन लुणवाळुं के लुण विनानुं तमारी माए रांध्युं छे, एमां हुं शुं जाणुं? त्यारे ते कहेवा लाग्यो के, में आजे ते पथिकोने हांकी कहाड्या छे ॥ २४ ॥

* प्रसिद्ध शब्द जात के भोजन छे जतवार शब्द नवो लागे छे

जायोचे, मम कोऽधिकार, गृहागतोऽगदत्तपस्वरूप स्वमातु सा कर्त्तनकर्मकृत् प्रोवाच श्लक्ष्णं वा स्थूलं वास्तु, स्थविरस्य वस्त्रं त्वविष्यति ॥ २५ ॥ स्नुषाऽज्ञापिष्ट को मेऽधिकारो लवणे, श्वश्रू—गत स्थविरस्य श्लक्ष्णवस्त्रसमय॰ स्नुषा—सर्वचितापरा श्वश्रू, नाहं वेद्मि गृहव्यापारं ॥ २६ ॥ श्वश्रू—परिहितानि बहुकाल स्थविरेण श्लक्ष्णानि, त वृत्तात स्थविरं, प्रतिजगाद स्थविरा, तिलरक्षाधिकारी सोऽप्यारयत् ॥ २७ ॥ नाहमेकमपि तिलमद्मि, स्थविरा—स्नुषा मयैवमज्ञाप्यत स्थविर,—मिथ्यैवाऽदायि त्वया ममाल न रक्षिष्याम्यतस्तिलान् इत्यादि ॥ २८ ॥

स्त्रीए कह्यु के, (लुण माटे) मारो शु अधिकार छे ? पछी घेर आवीने तेणे पोतानी माने ते वळदोनु वृत्तात कह्यु, (ते समये) ते कातवानु काम करती हती, अने (ते पण वेहेगी होवाथी) कहेवा लागी के, सुतर जाडु के झीणु थाय के जाडु थाय, डोसानु वस्त्र थशे ॥ २५ ॥ पुननी वहुए कह्यु के, लुण नाखवामा मारो शु अधिकार छे ? सासु बोली, हवे ते डोसाने झीणा सुतरना कपडा पेहेरवानो वखत गयो, वहु बोली के, सर्व कामनी सासुने फिकर होय, हु घरना काममा काइ न जाणु ॥२६॥ सासुए कह्यु, डोसाए तो घणो वखत आछा कपडा पहेर्या, पछी ते वृत्तात डोसीए डोसाने कह्यु हवे ते डोसो तलना रक्षणनो उपरी हतो, तेथी ते पण कहेवा लाग्यो के ॥ २७ ॥ हु तो तलनो एक पण दाणो खातो नथी, डोसी बोली के, मे तो वहुने एम कह्यु, डोसो बोल्यो के ते मारापर जूठुज कलक चडाव्यु छे, हवेथी हु तल साचवीश नही, इत्यादि ॥ २८ ॥

एव योऽन्यस्मिन्नुपदिष्टेऽन्यदनुजापते स्वाभिप्रायाऽनुसार्येव स बधिरकुटुंबोपम, यदागम —॥ २९ ॥ अन्न पुट्ठो अन्न । जो साहइ सो गुरुण बधिरुव्व ॥ न य सीसो जो अन्न । मुणेइ अणुभासए अन्न ॥ ३० ॥ इति ॥ कुत्सितो ग्रह, इदमित्थमेवेत्यायव्ययुक्तत्वादिविचाराऽनपेक्ष एकांताभिनिवेश, सोऽस्यास्तीत्यसौ कुग्रहवान् लोहग्राहकनरवत्, तथाहि—॥ ३१ ॥ चत्वारो नरा धनार्जनायोत्तरापथे प्राप्ता, उपार्जितधना लोही, कुशी कारयित्वा ता, स्वीकृत्य च स्वदेशंप्रति प्रस्थितवत: ॥ ३२ ॥

एवी रीते जे कइ कहेवाथी, सामो कइ उल्टोज उत्तर आपे छे, ते पोताना अभिप्रायने अनुसरनारो बेहेरा कुटुंब जेवोज जाणवो-आगममा पण कह्यु छे के ॥ २९॥ जेने पुछे कइ, अने तेनो उत्तर कइ अे जुदोज आपे छे, ते गुरु नहीं, पण बेहेरा जेवो तेने जाणवो ऐम्ज ते शिष्य पण नहीं, के जे अन्य जाणे, अने तेनो उत्तर कइ अन्यज आपे ॥ ३० ॥ इति ॥ कुत्सित जे ग्रह, ते कुग्रह कहेवाय, अर्थात् आ आमज छे, एवी रीते लाभ, हानि, आवक जावक तथा युक्त अयुक्तपणा आदिकना विचारनी अपेक्षा, कर्या विना, एकात जे कदाग्रह ते कुग्रह कहेवाय, अने तेवो कुग्रह जेने होय ते लोखंड लेनार मनुष्यनी पेठे कुग्रहवाळो कहेवाय, ते उदाहरण कहे छे ॥ ३१ ॥ चार मनुष्यो धन कमावा माटे उत्तर तरफ चाल्या, धन मेळवीने, तथा लोखंडनी कोशो करावीने, अने ते लेइने पोताना देश तरफ चाल्या ॥ ३२ ॥

अतराटव्या निधानीकृतास्ताम्रमयी कुशीर्दृष्ट्वा गृहीतवंतो लोहीहज्झित्वा, तुर्य पुनर्नेच्छति, वक्ति च, एको ग्रह पुरुषाणामिति ॥ ३३ ॥ एव रौप्यसौवर्ण-कुशीप्राडुर्भावेऽपरे प्राचीनपरित्यागेन विशिष्टग्रहणे बहुशो ज्ञाप्यमानोऽपि तुर्यो नै-च्छत्प्राक्तनत्याग, नाऽवैच्च हित चेतसीति ॥ ३४ ॥ एव बहूपदिष्टोऽपि य स्व-कदाग्रह न मुचसि सोऽनुपदेश्य, यदुक्त—कुग्गहगहगहिआण । मुद्धो जो देइ धम्मउवएस ॥ सो चम्मासीकुक्कर—वय—णमि खवेइ कप्पूर ॥ ३५ इति ॥

रस्ते वनमा दाटेली त्रावानी कोशोने जोईने, त्रणजणो जेमी ते ग्रहण करी, परतु चोथा मनुष्ये तेम ते त्यजवानु इच्छयु नही, अने तेथी तेणे कह्यु के, पुरुषोए पोतानी एकज वात राखवी जोइये ॥ ३३ ॥ एवी रीते रुपानी तथा सोनानी कोशो प्रगट होते छते, बीजाओए तेने पेहेली कोश छोडीने आ उत्तम कोश लेवा माटे घणु समजाव्या, परतु ते चोथा मनुष्ये पेहेला ग्रहण करेली कोशने तजवानु इच्छयु नही, अने एवी रीते तेणे पोतानु हित मनमा विचार्यु नही ॥ ३४ ॥ एवी रीते घणो उपदेश देवाथी पण जे पोतानो कदाग्रह छोडतो नथी, ते पण उपदेशने लायक नथी, कह्यु छे के—जेओने कदाग्रहरूपी ग्रहे ग्रहण करेला छे, तेवा मनुष्योने जे मूढ माणस धर्मोपदेश आपे छे, ते चामडु खानार कुतराना मढामा कपूर नाखवा जेवु करे छे ॥ ३५ ॥ इति ॥

पामरो लोकप्रसिद्ध, तस्य सम, पामरस्वरूप च कथानकाद् ज्ञेय, तच्चेद, तथा-हि शालिग्रामे कश्चित्कौटुंबिक., तस्य शरदि पक्व शालि, कर्मकर गवेपयता च तेन दृष्टो भिक्षां भ्रमन् पामर एक ॥ ३६ ॥ भोजितो दधिकूरेण, भणितश्च यदि मे कृपिलवनादि करोपि तदा नित्यमीदृग् भोजयामि, तेनोक्त करोमि, परं न वेद्मि कथ क्रियत इति ॥ ३७ ॥ कौटुंबिकेनोक्त शिक्षयामि अन्येनोचे एवमस्तु, कौटुंबिक. प्राह यद्यथाह करोमि तत्त्वयापि तथैव कार्य, तेनोक्तम-स्त्वेव ॥ ३८ ॥ तत पामरस्य नीरघटमर्पयित्वा छगणिकां गृहीत्वा प्रवृत्त क्षेत्र प्रति, गत्वा च तत्र क्षिप्ता कौटुंबिकेन छगणिका ॥ ३९ ॥

पामर (एटले समज विनानो) अने ते लोकोमा प्रसिद्ध छे, तेना सरखो, वळी ते पामरनु स्वरूप कथाथी जाणवु, ते नीचे मुजब छे, ते कहे छेः—शालि नामना गाममा कोइक कुटंबी रहेतो हतो, शरद ऋतुमा तेना (खेतरमा) कमोद पाकी, तेथी ते कोइ चाकरने शोधवा लाग्यो, एटलामा भिक्षा माटे रखडता एक पामरने तेणे जोयो ॥ ३६ ॥ तेने दहीं भात खवराव्या, अने पछी तेने कह्यु के, जो तु मारा खेतरनी कापणी आदिकनु काम करीश, तो हु तने हमेशा आवु खवरावीश, त्यारे तेणे कह्यु के, हु करीश, परन्तु केम करवु? ते हु जाणतो नथी ॥ ३७ ॥ कौटुंबिके कह्यु के, हु तने शीखावीश, त्यारे ते पामरे कह्यु के, बहु सारु, पछी कौटुंबिके तेने कह्यु के, जे कइ हु जेवी रीते करु, ते तारे पण तेवी रीते करवु, त्यारे पामरे कह्यु के, बहु सारु ॥ ३८ ॥ पछी ते पामरने पाणीनो घडो आपीने, तथा पोते छाण एकठु करवानी पावडी लेइने खेतर जवा लाग्यो, त्या जइने ते कौटुंबिके ते पावडी खेतरमा फगावी ॥ ३९ ॥

अपरेण क्षिप्तो घटो भग्न, रुष्ट कौटुंविक, प्रतिरुष्ट परोऽपि, ताडित कौटुंविकेन, प्रतिताडित. सोऽप्यनेन, लग्न युद्ध, कुट्टित कौटुंविक कथमपि नष्ट ॥ ४० ॥ नश्यतश्च वृक्षाग्रे लग्न परिधानवस्त्र, अन्येनापि पृष्टत आगच्छता स्वकीय छोटयित्वा मुक्त, प्राप्तो ग्रामद्वार कौटुंविक ॥ ४१ ॥ नग्नत्वात् परिधानार्थं गृहीत तेनोदकार्थं गच्छत्या पत्न्या उत्तरीयांशुक, अपरेण परिधानांशुकमपि भयविह्वल प्रविष्टो गृहकोणके कौटुंविको, अपरोऽपि तदन्यस्मिन् ॥ ४२ ॥ यावन्मिलितो लोक, किमेतदिति कौटुंविको दर्शयति पामर, सोऽपि तमेवेत्यादि तत स कथमपि प्रज्ञापितो लोकेनेति ॥ ४३ ॥

ते जोइ पेला पामरे पण घडो फगाव्यो, तेथी ते भागी गयो, त्यारे कुटुंबी तेनापर गुस्से थयो, त्यारे पामर पण तेनापर सामो गुस्से थयो, कौटुंविके तेने मार्यो, तो पामरे पण तेने सामो मार्यो, एवी रीते बन्ने वच्चे मार मारी चाली, पछी ते कुटुंबीने मार पडवाथी ते केमे करीने त्यांथी नाठो ॥ ४० ॥ पछी नासता थका तेनुं पहेरवानुं कपडुं (धोतीयुं) वृक्ष आगळमां वळगी रह्युं, ते जोइ पाछळ आवता पामरे पण पोतानुं धोतीयुं काढीने (वृक्षपर) मूकी दीधुं, पछी छेवटे ते कुटुंबी गामने दरवाजे आव्यो. ॥ ४१ ॥ तथा नग्न होवाथी तेणे पोतानी स्त्रीनो साडलो ग्रहण कर्यो, के जे पाणी भरवा माटे त्यांथी जती हती, ते जोइ पेला पामरे तेणीनो घाघरो पण लेइ लीधो, पछी ते कुटुंबी भयभीत थइने घरना खूणामां भराइ गयो, त्यारे पामर पण त्यां बीजा खूणामां जइ बेठो ॥ ४२ ॥ पछी एटलामां लोको एकठा थइ गया, अने पूछवा लाग्या के, आ शुं छे? त्यारे कुटुंबी पामरने देखाडवा लाग्यो, अने ते पामर पण कुटुंबिने देखाडवा लाग्यो, इत्यादि पछी ते पामरने लोकोए केटलीक महेनते समजाव्यो ॥ ४३ ॥

एव कर्त्तव्याकर्त्तव्याद्युपदेशेऽपि तद्विषयाद्यनभिज्ञ. पामरसमोऽनुपदेश्यः तदुक्तं यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा । शास्त्रं तस्य करोति किं ॥ लोचनाभ्यां विहीनस्य । प्रदीपः किं करिष्यति ॥ ४४ ॥ इति ॥ तथा श्रुतमेव गृह्णातीति, श्रुतमात्र ग्राही, न तंत्रयुक्तिज्ञ-तापसवत, तथाहि—क्वचिद्ग्रामे कश्चिद् द्विज पापभीरुस्तापसत्व प्रपेदे, श्रुतं चानेन कृपया धर्म इति, ग्लानोऽभूत् कोप्यन्यदा तापस ॥ ४५ ॥ उत्पन्नस्तस्य संनिपात., वारितं शीत वारि, क्वापि गतेष्वन्यतापसेषु रोगिणा नव्यतापसस्य पार्श्वे शीतं वारि प्रार्थित, कृपया धर्म इति कृत्वा दत्त ॥ ४६ ॥

एवी रीते अमुक कार्य करवा योग्य छे, अमुक कार्य करवा योग्य नथी, इत्यादिक उपदेश आप्यो होय, तोपण तेना विषय आदिकने नहीं जाणनारो एवो ते पामर सरखो मनुष्य उपदेशने लायक नथी, कह्यु छे के—जेने पोतानेज अक्कल नथी, तेने शास्त्र शु करी शके ? केमके जे आंखोथी अंध छे, तेने दीपक शु करी शके ? ॥ ४४ ॥ इति ॥ वळी जे फक्त सांभळेलुंज ग्रहण करे, ते श्रुतमात्रग्राही कहेवाय, अने तेवो मनुष्य तापसनी पेठे तत्रयुक्ति जाणी शकतो नथी, ते तापसनु उदाहरण कहे छे, कोइक गाममा कोइक ब्राह्मण रहेतो हतो, ते पापथी डरतो होवाथी तेणे तापसपणु अंगीकार कर्यु, वळी तेणे सांभळ्युहतु के, दयावडे करीने धर्म थाय छे, पछी एवामा एक दहाडो कोइक तापस मांदो पड्यो ॥ ४५ ॥ अने तेने सन्निपात थयो, तेथी तेने ठंडु पाणी आपवु बंध करवामा आव्यु हतु; पछी बीजो तापस त्याथी ज्यारे जतो रहेतो ते रोगीए ते नवा तापस पासे ठंडु पाणी माग्यु, त्यारे ते नवा तापसे विचार्यु के, दयाथी धर्म थाय छे, एम विचारी तेणे तेने ठंडु पाणी आप्यु ॥ ४६ ॥

तेन श्वासोऽतिक्लेश रोगी, आकुष्टश्च नव्यतापसोऽपरे, रे मूर्ख हतोऽसौ त्वया, किं वा न सज्ञाव्यमज्ञानिन इति ॥ ४७ ॥ चिंतितं च तेन अज्ञान्यहं, तत् ज्ञानमधीये, श्रुतं च तपसा ज्ञानाऽवाप्ति, यत —तपसैव प्रपश्यति, त्रैलोक्य सचराचर, इति तत्स्वाधीन तप करोमीत्यनाख्याय कस्यापि गतो गिरिगुफां, प्रारब्ध तप फलादेरपि त्यागेन ॥ ४८ ॥ अतिगतेषु च कियत्स्वपि दिनेषु पीडित क्षुधा, कण्ठगतप्राणश्च प्रेक्षितस्तद् गवेषणपरैस्तापसै उक्त च, न खल्वित्थ तप क्रियते, समाधान हि मूल धर्मस्येति ॥ ४९ ॥

अने तेथी ते रोगी घणु कष्ट पाम्यो, त्यारे बीजा तापसो ते नवा तापसपर गुस्से थया के, अरे! मुर्ख! तें तो तेने मारी नाख्यो, (पछी तेओए विचार्युं के) अज्ञानी शु नथी करतो? ॥ ४७ ॥ पछी ते नवा तापसे विचार्यु के, हु अज्ञानी छु, माटे ज्ञाननो अभ्यास करु, वळी तेणे सांभळ्यु हतु के, तपथी ज्ञान मळे छे, केमके तपथीज चराचर एवा त्रणे लोकने जोइ शकाय छे, माटे जेथी ज्ञान मळे, एवो तप हु करु, एम विचारी कोइने कह्या विना ते पर्वतनी गुफामा गयो, अने त्यां फळआदिकनो पण त्याग करीने तेणे तप तपवा माड्यो ॥ ४८ ॥ एवी रीते केटलाक दिवसो गया बाद, ते क्षुधाथी दुःख पामवा लाग्यो, अने तेना प्राण कठे आव्या एटलामा तेनी शोध माटे निकळेला तापसोए तेने जोयो, अने तेने कह्यु के, अरे! आम तप न थाय, धर्मनु मूळ तो समाधान एटले समताभाव रहेवापणु छे ॥ ४९ ॥

तत समाधाने यत्न करोमीत्यगमद् ग्राम स, तत्र च पूजा भक्तजनेभ्य, किय-द्भिर्दिनैर्लब्धं च द्रव्य ज्ञातस्वरूपैश्च धूर्तै. प्रारब्ध परिचय. गतस्तद्विश्वास, आग्यातश्च स्वाभिमत समाधानमूलो धर्मस्तत्पुर ॥ ५० ॥ लब्धोपायैश्च तैर्ग-णिकाढौकनादिप्रयोगेणापहृत तद्धन, ज्ञातश्च लोकैर्निर्घाटितश्चेति ॥ ५१ ॥ एव श्रुतमात्रग्राही वचनभावार्थाऽनालोचक शास्त्रोपदेशानामनर्ह, यदुक्त—विचारसारा अपि शास्त्रवाचो मूढैर्गृहीता विफलीभवति ॥ मितपचग्राम्यदरिद्रदारा । कुर्वन्त्युदारा अपि कि कदाचित् ॥ ५२ ॥

(ते सांभळी तेणे विचार्यु के) हवे हु समाधान माटे यत्न करु, एम विचारि ते गाममा गयो, अने त्या भक्तजनो तरफथी तेने सत्कार मळ्यो. केटलेक दिवसे धन पण मेळव्यु, एटलामा ते वृत्तात केटलाक ठगोने मालुम पडवाथी, तेओए ते तापसनो परिचय करवा माड्यो, तापस पण तेओनो विश्वासी थयो, अने तेथी तेणे पोते स्वीकारेलो समाधान मूळवाळो धर्म तेओनी आगळ कही संभळाव्यो ॥ ५० ॥ ते ठगोए पण उपाय मळ्याथी, तेनी पासे वेश्याने मोकलवा आदिक प्रयोगोवडे करीने तेनु धन हरी लीधु; पछी ते वातनी लोकोने मालुम पडवाथी, तेओए ते तापसने कहाडी मेल्यो ॥ ५१ ॥ एवी रीते फक्त सांभळेलुज ग्रहण करनारो मनुष्य वचनना भावार्थने नहीं विचारनारो होवाथी शास्त्रना उपदेशने लायक नथी, कह्यु छे के—मूढोए ग्रहण करेली उत्तम विचारवाळी एवी पण शास्त्रनी वाणी निष्फळ थाय छे, केमके उदार एवी पण जो तु राधनारी एवी गामडीआनी दरिद्र स्त्री शु क्यारे पण कंइ उदारता करी शके छे? ॥ ५२ ॥

ये चाऽविषयज्ञाऽविशेषज्ञाऽमतिमच्छून्यादयोऽप्ययोग्या ग्रंथांतरेषु प्रतिपादितास्ते-ऽप्येतेष्वेवातर्भवतीति न पृथगुक्ता इति ॥ ५३ ॥ नानाविधानऽयोग्यानिति मत्वा धर्मत्वमुपदिशत ॥ योग्येष्वेव यत स्यात् । शुद्धा जावारिविजयश्री. ॥ ५४ ॥

॥ इति चतुर्थस्तरग ॥

वळी विषयने नहीं जाणनार, विशेषने नहीं जाणनार, निर्बुद्धि तथा शून्य आदिकोने बीजा ग्रंथोमा जे अयोग्य जणाव्या छे, तेओनो पण आनी अन्दरज समावेश थाय छे, माटे तेओने जुदा पाडीने कह्या नथी, इति ॥ ५३ ॥ एवी रीते विविध प्रकारना अयोग्य मनुष्योने ध्यानमा लेइने, योग्यो प्रत्येज धर्मनो उपदेश आपो ? के जेथी आत्र शत्रुओनो विजय करनारी लक्ष्मी सुलज थाय ५४ ॥

॥ एवी रीते चोथो तरग समाप्त थयो ॥

इति चतुर्थस्तरंगः समाप्तः

अथ पंचमस्तरंगः

योग्याऽयोग्यानेव दृष्टांतैराह—मूलम्—गिरिसिर पणाल मरुथल । कसिणावणि जलहिसुत्तिमणिखाणी ॥ धम्मोवएसवासे फलजणणे जीवदिठ्ठंता ॥ १ ॥ धर्मोपदेश-वृष्टौ फलजनने च, जीवदिठ्ठंत्ति जीवाना दृष्टांता गिरिशिर प्रभृतय षड् भवति, षष्ठी लोप प्राकृतत्वात् ॥ २ ॥

वळी ते योग्य तथा अयोग्योने ज दृष्टांतो पूर्वक कहे छे—मूळनो अर्थ–धर्मोपदेशनी वृष्टि होते छते, तेनु फळ उत्पन्न करवामां गिरिशिखर, प्रणालिका, मरुस्थल, कृष्णभूमी समुद्रनो द्वीप, तथा मणिनी खाण सरखा जीवोना दृष्टांतो जाणवा ॥ १ ॥ धर्मोपदेशनी वृष्टि होते छते फळनी उत्पत्ति माटे जीवोना गिरिशिखर आदिक छ दृष्टांतो छे, अहीं प्राकृत भाषा होवाथी छठ्ठी विभक्तिनो लोप थयो छे ॥ २ ॥

यथांहि जलधरवर्षणे सति स्थानविशेषेण फलजननाऽजननादिविये षट्प्रकारता दृश्यते, तथा गुरूपदेशोऽपि योग्याऽयोग्यजीवरूपस्थानविशेषेण प्रतिबोधादिरूपफललाभादि षोढा विज्ञाव्यते ॥ ३ ॥ एतदेव प्रत्येक ज्ञावयति, गिरिशिर पर्वतशीर्षं शिलादिरूप ॥ ४ ॥ तत्र यथा जलदजल स्वल्प बहु बहुतर वा पतित सत् सद्यो लुठित्वा याति, न तु क्षणमपि मिलति, दूरेऽन्दः, तथा केषुचिज्जीवेषु धर्मोपदेशोऽप्येवमेव प्रमादादिनाऽवज्ञोपयोगातरव्यग्रचित्तत्वादिना चाऽनवधारणेनैव निष्फल एव स्यात् ॥ ५ ॥

वरसाद वर्षते छते स्थानविशेषे करीने फळनी उत्पत्ति तथा अनुत्पत्ति आदिकना विषयमां जेम छ प्रकारो देखायछे, तेम गुरुना उपदेशमां पण योग्य अयोग्य जीवरूप स्थान विशेषे करीने प्रतिबोध आदिकरूप जे फळ लाभ आदिक, ते पण छ प्रकारनो देखाय छे ॥ ३ ॥ हवे तेज दरेक प्रकारनु स्वरूप कहे छे, गिरिशिखर एटले पत्थर आदिकरूप पर्वतनु शिखर जाणवु ॥ ४ ॥ तेपर पडेनुं थोडु, घणु अथवा वधारे घणु एवु वरसादनुं पाणी जेम तुरतज ढळी जाय छे, अने क्षणवार पण थोभतु नथी, तथा दूर गयाथी उलटी अदर निष्फल थाय छे, तेम केटलाक जीवो प्रत्ये धर्मोपदेश पण एवीज रीते प्रमाद आदिके करीने तथा अवज्ञा, बीजी बाबतमां उपयोग तथा विह्वल चित्तपणा आदिकवडे करीने तेमज नहीं अवधारण करवावडे करीने ज्यारे निष्फळज थाय छे ॥ ५ ॥

कुत पुन परिणति, श्रवण तु वहिर्वृत्त्या पारतन्त्र्यादिनाऽभिमानादिना वा स्याद् वटुकवत्, तथाहि—॥ ६ ॥ क्वचित्सन्निवेशे द्विजन्मा वटु धर्मं श्रावयति, स तु तत्कण्ठघटिका चलती विस्मित इव प्रेक्षते ॥ ७ ॥ कियदुपदिश्योवाच द्विज', ज्ञात तत्त्वमिति, वटुरुवाच ज्ञात, द्विज —कथ, वटु'—तवैषा कण्ठघटिकाऽनवरत चलतीति॥८॥ द्विज — रे मूर्ख कि तवैतया, किंचिद्वस्तु निरूप्यते, वटु — एव करिष्यामीति द्विज पुन कियदुपदिश्याऽप्राक्षीत्, निरूपित किंचित्, वटु — निरूपित, द्विज —कथं ॥ ९ ॥

त्यारे तेनु परिणमवापणु तो क्याथीज थाय ? मात्र बहारना देखावरूपे परतन्त्रपणा आदिकथी अथवा अभिमान आदिकथी बटुकनी पेठे श्रवण थाय, ते बटुकनु उदाहरण कहे छे ॥ ६ ॥ कोइक गाममा एक ब्राह्मण एक बालकने धर्म सम्भळाववा लाग्यो, त्यारे ते बालक तो चालता एवा ते ब्राह्मणना गळाना काकलाने आश्चर्य जेवु जाणीने जोवा लाग्यो ॥ ७ ॥ केटलोक उपदेश दीधा बाद ब्राह्मणे ते बालकने कह्यु के, तें कइ तत्त्व जाण्यु ? त्यारे ते बालके जवाब आप्यो के, में जाण्यु छे ब्राह्मणे पूछ्यु शु जाण्यु त्यारे बालके कह्यु के, तमारा गळानो काकलो जरा पण थोभ्याविना चालतो रह्यो हतो, ए में जाण्यु ? ॥ ८॥ ब्राह्मणे कह्यु के, अरे' मूर्ख ! तेनु तारे शु प्रयोजन हतु ? कंइक तत्त्व जोवु जोइए, बालके कह्यु के, हवे हु तेम करीश. वळी ब्राह्मणे फरीरे केटलोक उपदेश देइने पुछ्यु के हवे केम कइ तत्त्व जाण्यु ? बालके कह्यु हवे जाण्यु, ब्राह्मणे पुछ्यु शु जाण्यु ? ॥ ९ ॥

वटु·—यावत्त्वया किंचिद् जणित, तावदितो दरात् कीटिकाः सप्तशतानि सप्तोत्तराणि निर्गतानीति, द्विज —रे मूर्ख किं तवैताभिः, यदहं व्याख्यामि तत्रैव किंचिच्चितय ॥ १० ॥ वटुः—करिष्याम्येवं, द्विज, कियदुपदिश्य पुनराख्यत् रे किं चितितं, वटु.— कदा त्वमित उत्थास्यसीति चितित, ततस्त्यक्तः स द्विजेनेति एव कालसौकरिसौकरि-कादयोऽकादयोऽप्यत्रोदाहरणानीति ॥११॥ पणाल्त्ति पर्वतस्यैव पाषाणमयं नदीनिर्झरो-त्तरणमार्गात्मक जिह्वकादिरूप, प्रासादादीना वा जलनिर्गमाध्वरूप प्रणाल ॥ १२ ॥

त्यारे बाळके कह्यु के, जेटलीवारमां तमे कहेल कह्युं, तेटलीवारमां आ दरमांथी सातसो सात कीडीओ निकळी हती. ब्राह्मणे कह्यु के, अरे ! मूर्ख ! तेनु तारे शु प्रयोजन हतु ? हु तने जे वह कहु छु, तेमाज कर तत्र विचार ? ॥ १० ॥ बाळके कह्यु के ठीक हवे तेम करीश, वळी ब्राह्मणे केटलोक उपदेश दीधा बाद कह्यु के, अरे ! हवे कर विचार्यु ? त्यारे ते बाळके जवाब आप्यो के, हवे तमे अहींथी क्यारे उठशो ? ए मैं विचार्यु छे, पछी ते ब्राह्मणे तेने तजी दीधो, एवी रीते अहीं काल सौकरिक आदिकना उदाहरणो पण जाणवा. ॥ ११ ॥ प्रणालिका एटले पर्वतनोज पत्थरनो जीभादि आकाररूप मार्ग, के ज्यांथी नदीनु झरणु उतरे छे, अथवा मेहेल आदिकोनी पाणीने जवाना मार्गरूप खाळ जाणवी ॥ १२ ॥

तत्र हि जलदजल खलहलकारि दृश्यते जलदे स्थितेऽपि कियत्समयं वहति, पर न कापि जलपरिणतिः, जलव्यपगमे मार्दवदूर्वाङ्कुरोत्पत्त्याद्यादर्शनात् ॥ १३ ॥ एव केचिज्जीवा गुम्फित कथागाथाश्लोकादि परोपदेशनाद्यर्थं स्वपाण्डित्यख्यापनार्थं वाऽवधारयन्त्यधीयते च, न तु तेषां हृदयेषु किमपि परिणमति ॥ १४ ॥ कषायमिथ्यात्वादितिक्तात्मकमार्दवपुण्यमनोरथाद्यभावात्, बहुविधकथकनटपुस्तकवृत्तावाचकव्यासागारमर्दकाचार्यादिवत् ॥ १५ ॥ इति ॥

तेवी मणाश्चिकामां मेघनु वरसादनु खलहल करतु पाणी देखाय छे, वरसाद रही गया बाद पण केटलीक वार सुधी ते वह्या करे छे, परंतु तेमां जळ ठरी शकतु नथी, अने एवी रीते जळ निकळी गया बाद तेमां कोमळता, जीनाम के अंकुराओनी उत्पत्ति आदिक होइ शकतु नथी ॥ १३ ॥ एवी रीते केटलाक जीवो गुम्फ कहेला कथा, गाथा तथा श्लोक आदिक परने उपदेश देवा माटे अथवा तो पोतानी पण्डिताइ जणाववा माटे धारी राखे छे, तथा भणे छे, परंतु तेओना हृदयमां कइ पण परिणमतु नथी ॥ १४ ॥ केमके तेओने कषाय, तथा मिथ्यात्व आदिकने तजवानी इच्छारूप कोमळता तथा पवित्र मनोरथ आदिकनो अभाव होय छे, कोनी पेठे? तो के विविध प्रकारनी कथा कहेनार नट, पोथी माहेला रीगणानी जेवु वाचनार व्यास, तथा अगार मर्दक आचार्यनी पेठे जाणवा ॥ १५ ॥ इति ॥

मरुस्थलि, मारवस्थलेषु स्वल्पा वृष्टि. सिकतास्वेव विलीयते, न तु ज्ञायतेऽपि, वहुतरादिवृष्टौ सामान्यतृणानां करीरशमीवनखमादीना तरूणा चपलमुद्गादिना धान्याना च प्रायो नीरसानामेवोद्गमः ॥ १६ ॥ न च दूर्वादीनामाम्रराजादनकदलीनालिकेरीपूगनागवल्लीद्राक्षादितरुश्रेणिधा शालिगोधूमादिधान्याना, गुडखण्डशर्करादिहेतुकेक्षुवाटिकादीना वा प्राय. सरसाना समुत्पत्तिः ॥ १७ ॥ एव केषुचिज्जीवेषु स्वल्पे गुरूपदेशे न काचित्परिणति· १८ ॥

मरुस्थल एटले मारवाडनी भूमी, के जेमा थयेली स्वल्प वृष्टि रेतीमाज समाइ जाय छे, अने जणाती पण नथी, अने कदाच त्या जो वधारे वृष्टि थाय तो, सामान्य प्रकारनु घास, केर, खीजड आदिक वृक्षो तथा चोला मग आदिक धान्यो, एम प्राये करीने रस रहित पदार्थोनी उत्पत्ति थाय छे; ॥ १६ ॥ परतु प्राये करीने रसवाला एवा दुर्वा (घो) आदिक घासनी, आंबा, रायण, केळ, नाळीयेरी, सोपारी, नागरवेल तथा द्राक्ष आदिक वृक्षो तथा वेलडीओनी, चोखा, गहु आदिक धान्योनी, अथवा गोळ, खाड तथा साकर आदिकना हेतुरूप एवा सेलडीना वाड आदिकनी उत्पत्ति थती नथी ॥ १७ ॥ एवी रीते केटलाक जीवोने स्वल्प गुरुपदेश मळते छते. कइ पण धर्म परिणमतो नथी, ॥ १८ ॥

यद्दूपदेशो तु किंचिद् नावोत्पत्त्या दाक्षिण्यादिना वा जिनगुरुनामनाऽनतकायाऽनक्ष्या-दिलक्षणस्थूलहिंसादिनियमनमस्कारगुणनसामायिकावश्यकादीना स्वल्पनावचित्तैका-ग्र्यान्नावयसम्यग्विधि-अनादरादिनाऽल्पफलत्वेन नीरसाना कियतां प्रतिपत्तिरनुष्ठितिश्च स्यात् ॥१९॥ न तु दृढनावादिनिर्महाफलत्वेन सरसाना शुद्धदर्शनदेशविरतिसचित्तप-रिहारब्रह्मव्रतसर्वविरत्यादीना ॥ २० ॥ ते च क्रियारुचा पुद्गलपरावर्त्तेन, मुहूर्त्तमपि सम्यक्त्वपरिणत्याऽर्धपुद्गलपरावर्त्तेन, क्रियाऽभ्यासादिना नवांतरे, कदाचित् सम्यग्-ज्ञानक्रियालाभादिना स्वल्पैरपि वा नवैर्मुक्तौ गामिन एव, तत्कालमनुजव्यंतरादिनवा-श्च प्राप्नुवंति श्यामलवणिग्वत्, तथाहि—॥ २१ ॥

वळी तेने जो घणो उपदेश देवामा आवे, तो पण कंइक नाव उत्पन्न थवाथी अथवा दाक्षिणता आदिकवडे करीने जिनने तथा गुरुने नमस्कार करवामा तथा अनंतकाय अने अनक्ष्य आदिक रूप स्थूलहिंसा आदिकना नियममा, नमस्कार गणवामा, तथा सामायिक अने आवश्यक आदिकमा थोडा नाव, चित्तना एकाग्रपणानो अनाव तथा सम्यगविधिना अनादर आदिकपणाथ करीने अल्प फळरूपे केटलीक नीरस क्रियाओनो स्वीकार तथा तेओनु अनुष्ठान थाय छे, ॥ १९ ॥ परंतु दृढ नाव आदिकवडे करीने महान् फळरूपे थती रसवाळी एवी शुद्ध समकीत, देश विरति, सचित्तनो त्याग, ब्रह्मचर्य व्रत, तथा सर्व विरति आदिक रूप क्रियाओनो स्वीकार तथा अनुष्ठान तेओ करी शकता नथी ॥ २० ॥ वळी तेओ क्रियानी रुचिवडे करीने पुद्गलपरावर्त्त, तेमज मुहूर्त्तमात्र समकीतनी प्राप्तिथी अर्धपुद्गलपरावर्त्त, तथा क्रियाना अभ्यास आदिकवडे करीने नवांतरमा, तेमज कदाच सम्यग् ज्ञान अने क्रियाना लाभ आदिकवडे करीने थोडा नवोमा पण मोक्षगामीज होय छे, तथा तत्कालज मनुष्य तथा व्यंतर आदिकना नवोने श्यामल वणिकनी पेठे प्राप्त थाय छे, ते श्यामलवणिकनु उदाहरण कहे छे—॥ २१ ॥

कमलापुर्यां कुलधरश्यामलवणिजौ बहुधनौ, अन्यदोद्याने क्रीडितुं गतौ, तत्राक्रन्दं श्रुत्वाऽग्रतो गच्छन्तौ धनेश्वरेभ्यसुतं मलयचन्द्रं षोडशनारीभिः सह क्रीडन्तं सर्पदष्टं ददृशतुः ॥ २२ ॥ तावत्तत्र चारणश्रमण आप. विद्याधरवृन्दं च, तत्र धनेश्वरेण पुत्रभिक्षां देहीत्यभ्यर्थितः कोऽपि विद्याधरः, तेन च मुनिपदरजसोज्जीवितो मलयचन्द्रः ॥ २३ ॥ स च कस्मान्मेलापकोऽयमित्यादि प्रश्नयन् पित्रा निवेदिताऽशेषवृत्तान्तो मुनिं ननाम, मुनिरभाणीत् भो कुमार एकाहिविषनाशेऽपि मोहाहिविषविधुरोऽसि ॥ २४ ॥

कमळापुरीमां घणा धनवाळा कुळधर अने श्यामल नामना बे व्यापारीओ हता. एक समये तेओ क्रीडा करवाने उद्यानमां गया, एटलामां त्यां आक्रंद थतो सांभळीने जेवा तेओ आगळ जाय छे, तो सोळ स्त्रीओ साथे क्रीडा करता एवा धनेश्वर शेठना पुत्रने तेओए जोयो, के जेने सर्प करड्यो हतो ॥ २२ ॥ एटलामां त्यां कोइक चारण मुनि तथा विद्याधरोनो समूह आव्यो, त्यां धनेश्वर शेठे कोइक विद्याधरने प्रार्थना करी के, मने पुत्रभिक्षा आपो? त्यारे ते विद्याधरे मुनिना चरणनी रजथी मलयचंद्रने जीवतो कर्यो ॥ २३ ॥ त्यारे ते मलयचंद्रे पुछ्युं के, आ मेळावडो शा माटे थयो छे? त्यारे तेना पिताए तेने सघळो वृत्तांत जणाव्यो, तेणे मुनिने नमस्कार कर्यो, त्यारे मुनिए तेने कह्युं के, हे कुमार! तारा एक सर्पना झेरनो नाश तो थयो छे, परंतु हजु मोहरूपी सर्पना झेरथी तुं व्याकुळ थयेलो छु ॥ २४ ॥

अष्टमदस्थानफणो रत्यरतिरौद्ररसनो हास्यभयजीमदंष्ट्रो मोहमहाविषधरो रौद्र एतेन दष्टं जगदप्यज्ञानगरलाहत न किंचिद्धिताऽहिते चिंतयति गुरुमांत्रिक एवा-पनयति तन्मोहविष ॥ २९ ॥ ततस्तद्विनाशे यतस्वेति, युष्मत्प्रसादात्तदपि न-श्यति विधिमुपदिशतेति कुमारेणोक्ते पुनर्मुनिरुवाच सम्यक्त्वमंडले द्विविधशिक्षादा-नपूर्वं यतिधर्ममंत्रो देय इति ॥ ३० ॥

ते मोहरूपी महान भयंकर सर्प आठ मदना स्थानोरूपी फणावालो, रति अरतिरूपी भयंकर जिह्वावालो, हास्य तथा भयरूपी भयंकर दाढावालो छे तेणे डसेलुं जगत अज्ञानरूपी झेरथी हणायुं थकुं कंइ पण हित अहित विचारी शकतुं नथी, ते मोहरूपी सर्पना झेरने गुरुरूपी मंत्रवादीज फक्त दूर करी शके छे ॥ २९ ॥ माटे ते मोहरूपी सर्पना झेरनो नाश करवा माटे तुं प्रयत्न कर? त्यारे ते कुमारे कह्युं के, आप साहेबनी कृपाथी ते पण नाश पामशे, माटे ते झेर दूर करवानी विधि आप साहेब बतावो? त्यारे फरीने मुनिए कह्युं के, सम्यक्त्वरूपी मंडलमां बे प्रकारनी * शिक्षाना आपनपूर्वक साधुधर्मरूपी मंत्रनो प्रयोग करवो. ए तेनी विधि छे ॥ ३०

* ग्रहण शिक्षा अने आसेवन शिक्षा.

तत स पोडशभार्याभि सह प्रवव्राज, तत्साहस दृष्ट्वानेके प्राव्रजन्, कुलधरोऽपि श्रद्धाधर्मं प्रपन्न., श्यामलस्तु न प्राबुध्यत, कुलधरो मैत्रीसफलतायै धर्मं प्रतिपिपादयिषु श्यामल गुरुपार्श्वं पुन पुनर्नयति, धर्मं श्रावयति ॥ २७ ॥ क्रमात् कियन्नियमप्रतिपत्ति चक्रे स, सामायिकमेक यत्नात् करोति, सामायिकावसरे च क्रमाद्विकथादिप्रमादपर कुलधरेण शिक्षितोऽयं मच्छिद्रप्रेक्षीति दूयते हृदि ॥ २८ ॥ तद् ज्ञात्वा तेनोपेक्षित क्रमान्मृतो दिव्यद्धर्यल्पर्द्धि. सुरो जज्ञे, भव भ्रान्त्वा शिवं गमी ॥२९॥ कुलधरस्तु शुद्धधर्मपर शक्रसामानिको भूत्वा विदेहेषु सेत्स्यतीति ॥३०॥

पछी तेणे पोतानी सोळ स्त्रीओ सहित दीक्षा लीधी, वळी तेनु साहस जोइने त्या अनेक मनुष्योए दीक्षा लीधी, कुलधरे पण श्रावक धर्म अगीकार कर्यो, परतु श्यामलने बोध लाग्यो नहीं, तेथी कुलधर पोतानी मित्राइ सफल करवा माटे श्यामलने धर्म पमाडवाने अर्थे वारवार गुरु पासे लेइ जाय छे, तथा धर्म सभळावे छे ॥२७॥ अनुक्रमे केटलाक नियमो स्वीकारवानु तेणे कर्यु, जतनाथी सामायिक करे छे, पछी अनुक्रमे सामायिक समये ते विकथा आदिक प्रमादमा पडवा लाग्यो, त्यारे कुलधरे तेने (तेम नहीं करवा माटे) शिखामण आपी परतु आ मारा छिद्रो जुए छे, एम विचारी मनमा दुभावा लाग्यो ॥ २८ ॥ ते जाणीने कुलधरे तेनी उपेक्षा करी अनुक्रमे मृत्यु पामीने ते स्वल्प ऋद्धिवाळो देवलोकमा देवरूपे उत्पन्न थयो, भव भमीने ते मोक्षे जशे ॥ २९ ॥ कुलधरतो शुद्ध धर्ममां तत्पर थयो, अने छेवटे शक्रसामानिक देव थइने महाविदेहक्षेत्रमा मोक्षे जशे ॥ ३० ॥

कसिणावणित्ति, कृष्णावन्यामुपलक्षणाद्वर्वरारूपाया कुकणसुराष्ट्रमालवकादिसंबधिन्या यथा स्वल्पायामपि वृष्टौ किंचित किंचित, बहुवृष्टौ तु बहुदूर्वादितृणाना सहका-रादितरूणा द्राक्षेक्षुवाटादीना शालिगोधूमादीनां धान्याना च प्राय सरसानामे-वोत्पत्ति ॥ ३१ ॥ तथा केषुचिज्जीवेषु स्वल्पेऽपि गुरूपदेशे श्रुते बोधिपरिणति स्यात, ततश्च शुद्धदर्शनदेशविरतिसचित्तपरिहारब्रह्मव्रतादीन भावदार्ढ्यादिभिर्महा-फलत्वेन सरसानेव प्रतिपद्यतेऽनुतिष्ठति च ॥ ३२ ॥

कृष्णभूमी एटले उपलक्षणथी जेमा सारी रीते उत्तम प्रकारनु धान्य आदिक पाकी शके, एवी कुकण, सुराष्ट्र तथा मालवा आदिकनी उष्दरारूप भूमी जाणवी, के जेमा जेम थोडी वृष्टि होते छते पण कइक कइक निपजे छे, अने घणी वृष्टि होते छते तो दुर्वा (धो) आदिक घासनी, आंबा आदिक वृक्षोनी, द्राक्ष तथा सेलडीना वाडा आदिकनी तथा चावल अने घउ आदिक धान्योनी, एम प्राये करीने रसयुक्त पदार्थोनीज उत्पत्ति थाय छे ॥ ३१ ॥ तेम केटलाक जीवो अने थोडो पण गुरुनो उपदेश सांभळवाथी बोधि बीजनी प्राप्ति थाय छे, अने तेथी तेओ रसयुक्त एवा शुद्ध सम्यक्त्व, देशविरति, सचित्तनो परिहार तथा ब्रह्मचर्यव्रतआदिकोने, भावनी दृढता आदिकवडे करीने अंगीकार करे छे, तथा तेओनुं अनुष्ठान पण करे छे ॥ ३२ ॥

ते चासन्नसिद्धिका सप्ताष्टादिभवैस्तृतीयभवे वा मुक्तिगामिन एव श्रीऋषभशान्ति नेमिपार्श्वश्रीमहावीरजिनाद्यभवधनसार्थवाहश्रीषेणनृपधनधनवतीमरुभूतिनयसारादिवत् ॥ ३३ ॥ आनंदकामदेवादिदशश्रावकवच्चा. आनंदादीनां स्वरूप चेदं ॥ ३४ ॥ वाणिअगामपुरम्मी । आणंदो नाम गिहवई आसी ॥ सिवनंदा से भज्जा । ढ-ससहस्सगोउला चउरो ॥ ३५ ॥ निहिववहारकलंतर । गएसु कणयकोडिबार-सग ॥ सो सिरिवीरजिणेसर—पयमूले सावओ जाओ ॥ ३६ ॥

अने तेओ श्रीऋषभदेव, शांतिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, तथा श्रीमहावीर प्रभुना (अनुक्रमे) पेहेला भवना धन सार्थवाह, श्रीषेणराजा, धनधनवती, मरुभूति तथा नयसार आदिकोनी पेठे नजदीक सिद्धिवाळा, अथवा सात, आठ भवे, अथवा त्रीजे भवे मोक्षगामी थाय छे, ॥ ३३ ॥ अथवा आनंद तथा कामदेव आदिक दश श्रावकोनी पेठे जाणवा, ते आनंद आदिकोनुं स्वरूप नीचे मुजब छे ॥ ३४ ॥ वाणिज्य गाम नामना नगरमां आणंद नामे एक गृहपति हतो, तेने शिवनंदा नामे स्त्री हती, तथा तेने दश हजार गायोना चार गोकुलो हता ॥ ३५ ॥ निधान, व्यापार तथा व्याजे मळीने तेनी पासे बारक्रोड सोना मोहोरो हती, अने ते श्रीवीर प्रभुना चरण कमलमां श्रावक थयो ॥ ३६ ॥

चपाइ कामदेवो । जद्दानज्जो सुसावगो जाओ ॥ उग्गोडद्ध अठ्ठरस—कचणको- डीण जो सामी ॥ ३७ ॥ कासीए चुल्लणिपिआ सामानज्जा य गोउला अठ्ठ ॥ चउवीसकणयकोडी । सड्ढाणसिरोमणी जाओ ॥ ३८ ॥ कासीइ सुरादेवो । धन्ना नज्जा य गोउला छच्च ॥ कणयठ्ठारसकोडी । गहिअवओ सावओ जाओ ॥ ३९ ॥ आलन्निआणयरीए । नामेण चुल्लसयगओ सड्ढो ॥ बहुला नामेण पिया । रिद्धि से कामदेवसमा ॥ ४० ॥

चपानगरीमा कामदेव नामनो उत्तम श्रावक हतो, के जेने नद्रा नामे स्त्री हती, तथा छ गोकुलो हता, अने ते अढार क्रोड सोना मोहोरोनो स्वामी हतो ॥ ३७ ॥ काशीनगरीमा चुल्लनी पिता नामे श्रावक हतो, तेने श्यामा नामे स्त्री हती, तथा आठ गोकुलो हता, अने चोवीस क्रोड सोना मोहोरो तेनी पासे हती, तथा ते श्रावकोमा शिरोमणि हतो ॥ ३८ ॥ वळी काशीनगरीमा सुरादेव नामे श्रावक हतो, तेने धन्ना नामे स्त्री हती, तथा छ गोकुलो हता, अढार क्रोड सोना मोहोरो तेनी पासे हती, तथा ते व्रतधारी श्रावक हतो ३९ ॥ आलन्निका नगरीमा चुल्लशतक नामे श्रावक हतो, तेने बहुला नामे स्त्री हती, तथा तेनी काम- देव जेटली ऋद्धि हती ॥ ४० ॥

कपिल्लपट्टणमी । सड्ढो नामेण कुडकोलिअओ ॥ पुस्सा पुण तस्स पिआ । रिद्धि सिरिकामदेवसमा ॥ ४१ ॥ सद्दालपुत्तनामा । पोलासंमी कुलाल जाओ ॥ भज्जा य अग्गिमित्ता । कचणकोडी अ से तिन्नि ॥ ४२ ॥ चउवीसकणयकोडी गोउल अट्ठेव राजगिहनयरे ॥ सयगो भज्जा तरस । रेवइ अट्ठसेसकोडी-ओ॥ ४३ ॥ सावत्थीनयरीए नदणीपिअ नाम सड्ढओ जाओ ॥ अस्सिणि नामा भज्जा । आणंदसमो अ रिद्धिए ॥ ४४ ॥

कपिल्लपुर पाटणमा कुडकोलिक नामे श्रावक हतो, तेने पुष्पा नामे स्त्री हती, तथा तेनी रिद्धि पण कामदेव श्रावक जेटली हती ॥ ४१ ॥ पोलासपुरमा सद्दालपुत्र नामे श्रावक हतो, ते जातनो कुंभार हतो तेने अग्निमित्रा नामे स्त्री हती, तथा तेनी पासे त्रण क्रोड सोना मोहोरो हती, ॥ ४२ ॥ वळी राजग्रही नगरीमा चोवीस क्रोड सोना मोहोरोवाळो तथा आठ गोकुलवाळो शतक नामे श्रावक हतो, तेने तेर स्त्रीओ हती,* तेमांथी रेवतीनी पण आठ क्रोड सोना मोहोरो हती ॥ ४३ ॥ श्रावस्ती नगरीमा नंदनीपिता नामे श्रावक थयो, तेने अश्विनी नामे स्त्री हती, तथा ते रिद्धिवडे करीने आनंद श्रावक सरखो हतो ॥ ४४ ॥

* तेमां रेवतने आठ क्रोड अने बाकीनी स्त्रीओने एक एक क्रोड सोना मोहोरो हती. (जूओ उपासगदशांग)

सावत्थीवच्छव्वो । लतगपिअ नाम सढ्ढओपवरो ॥ फग्गुणिनामकलत्तो आणंदसमो अ रिद्धिए ॥४५॥ एते दशापि समवसरणे प्राप्ता प्रथमत एव श्रीवर्धमानस्य देशना श्रुत्वा प्रतिबुद्धा सम्यक्त्वमूला द्वादशव्रतीं प्रपेदिरे ॥ ४६ ॥ तत्र पंचमव्रते सर्वेषामपि प्राग्विद्यमानाधिकपरिग्रहनियम सप्तमव्रते त्वानंदस्य अभ्यंगे शतपाकसहस्रपाकतैले, स्नाने जलकुंभाष्टक, दंतशोधने ज्येष्ठमधू, वस्त्रे क्षौमयुग, विलेपने घुसृणश्रीखंडे, आभरणे मुद्रिका, कुसुमे पुंडरीक मालतीदाम च, धूपेऽगुरु, सूपे कलावमुद्गमाषा भक्ते कलमशालि घृते गोघृत, खाद्ये घृतपूरखंडादि शाके सौवस्तिक, धान्यशाके वटकादि, तांबूले कर्पूरैलालवंगादि, फले क्षीरामलक नीरे गगनोदकमित्यादि, एवमन्येषामिति नियमप्रतिपत्ति ॥ ४७ ॥

वळी सावत्था नगरीनो रहेवासी लातकपिता नामे उत्तम श्रावक हतो, तेने फाल्गुनी नामे स्त्री हती, तथा ते पण ऋद्धिवडे करीने आनंद श्रावक सरखो हतो ॥ ४५ ॥ ए दशे श्रावको समवसरणमा आव्या, अने प्रथमज श्रीवर्धमान प्रभुनी देशना सांभळीने तेओ प्रतिबोध पाम्या, तथा सम्यक्त्व मूळ बार व्रतो तेओए अंगी कर्या ॥ ४६ ॥ तेमां पांचमा व्रतमा ते सघळाओए प्रथमथी जेटलो परिग्रह हतो, तेथी अधिकनो नियम कर्यो, सातमां व्रतमां आनंदश्रावकने मर्दनमा शतपाक अने सहस्रपाक तेल, स्नानमा आठ घडा पाणी, दातणमा जेठी मध, वस्त्रमां बे रेशमी कपडां, विलेपनमा केशर चंदन, आभूषणमा वींटी, पुष्पमां कमळ अने मालतीनी माळा, धूपमा अगर, दाळमां कलाव, मग, अडद, भोजनमा कमोदना चावल, घीमा गायनु घी, खाद्यमा घेवर खाजां आदिक, शाकमां सोवस्ति (वनस्पति विशेष) धान्यना शाकमा वडा आदिक तांबूलमां कपूर, एलची तथा लवींग आदि एवी रीते बीजाओनो पण नियमनो स्वीकार जाणवो ॥ ४७ ॥

दशभिरपि विंशतिवर्षाण्येव धर्म आराधित, तत्र चतुर्दशवर्षानंतर षड् वर्षाणि सर्वगृहचिंताव्यापारपरिहार कृत ॥ ४८ ॥ एकादशप्रतिमाराधनादिबहुदुष्करतपस्क्रिया निर्ममिरे, मासिकसंलेखनापूर्वमनशन प्रपेदे ॥ ४९ ॥ प्रांतेऽवधिज्ञानमुत्पादि, आनंदवर्ज्जमन्येषां देवपरीक्षा बभूव, एवं दृढतया धर्ममाराध्य सौधर्मे पृथक् पृथक् विमानेषु चतुष्पल्यायुषो दशापि देवा अभवन् ॥ ५० ॥ ततश्च्युत्वा महाविदेहेषु राजानो भूत्वाऽवसरे दीक्षामादाय केवलं मोक्षं च प्राप्स्यतीति ॥ ५१ ॥

एवी रीते ते दशे श्रावकोए वीस वर्ष पर्यंत धर्म आराध्यो, तेमां पण चौद वर्षो पछी छ वर्ष सुधी सघळी घरनी चिंतानो तेओए त्याग कर्यो हतो, ॥ ४८ ॥ वळी तेओए अगीयार प्रतिमाओने आराधन करवा आदिक घणी आकरी तप क्रिया करी हती, तथा एक मासनी संलेखना पूर्वक तेओए अनशन कर्युं हतुं ॥ ४९ ॥ छेवटे तेओने अवधिज्ञान उत्पन्न थयुं हतुं, आनंद शिवाय बीजाओनी देवोए परीक्षा पण करी हती, एवी रीते दृढताथी धर्म आराधीने ते दशे सौधर्म देवलोकमां जूदा जूदा विमानोमां चार पल्योपमना आयुष्यवाळा देवो थया ॥ ५० ॥ त्यांथी चवीने महाविदेह क्षेत्रमां राजाओ थइने, तथा अवसरे दीक्षा लेइने केवळज्ञान अने मोक्षपद पामसे ॥ ५१ ॥

जलहिसुत्तित्ति, जलधिशुक्तिकासु सजीवासु, जलदे गर्जति वर्षति च स्वनावादूर्ध्व मुख विकाश्य स्थितासु स्वातिनक्षत्रे यावतो यादृशा अणव स्थूला वा जलदजलबिंदव पतंति, तादृशानि तदुदरेषु मौक्तिकानि नवति ॥ ५२ एव केषुचिदुत्तमेषु जीवेषु गुरवो यादृशानि यानि वचनान्युपदिशति, तानि तथैव परिणमति, तदनुष्ठानफलानि च नवति ॥ ५३ ॥ 'उवसमविवेगसवरेति' पदत्रयश्रोत्रनुष्ठातृचिलातीपुत्रवत, 'मिठ नुजेअव्व, मुह सुएअव्व, लोगप्रिओ अप्पा कायव्वो, इति पदत्रय पित्रोक्त श्रुत्वा त्रिलोचनमत्रिपार्श्वात्तदर्थमवगम्य च तथैवानुष्ठातृसोमवसुब्राह्मणवद्या. एते चासन्नसिद्धिका, तृतीयादिसप्ताष्टातर्नवैर्मुक्तिगामिनस्तद्भवमुक्तिगामिन एव वा सनवति ॥ ५४ ॥

जलहिसुत्ति एटले समुद्रनी छीपो, के जेओ जीववाळी होय छे, तथा जेओ स्वनावथीज वरसाद गाजते तथा वरसते छते ऊंचा मुख फाडीने रहेली होय छे, तेमा स्वाति नक्षत्रमा जेटला अने जेवा नाना अथवा मोटा वरसादना जळ बिंदु पडे छे, तेवा तेओना पेटमा मोतीओ थाय छे ॥ ५२ ॥ एवी रीते केटलाक उत्तम जीवो प्रते गुरुओ जेवा जे वचनो उपदेशे छे, ते तेवाज परिणामे छे, अने ते प्रमाणे अनुष्ठानना फळोपण थाय छे ॥ ५३ ॥ (कोनी पेठे? तोके) उपशम, विवेक अने संवर ए त्रण पदोने सांजळनार तथा ते प्रमाणे अनुष्ठान करनार चिलाती पुत्रनी पठे, अथवा 'मीठु करीने खावु, सुखे सुवु तथा लोकप्रिय आत्मा करवो' एवी रीतना पिताए केहेला त्रणे वचनो सांजळीने, तथा त्रिलोचन मंत्री पासेथी तेनो अर्थ जाणीने तेज प्रमाणे अनुष्ठान करनार सोमवसु ब्राह्मणनी पेठे, एवी रीतना मनुष्यो नजदीक सिद्धिवाळा, अथवा त्रीजाथी मांडी सात आठ नवसुधिमा मोक्षे जनारा अथवा तेज नवे मोक्षे जनारा संजवे छे ॥५४॥

मणिखाणित्ति, मणिखानिषु यथा लघवोऽल्पतेजसोऽपि जलकणा इव पतिता वृहत्तरमहातेजस्कचिंतामणिप्रमुखरत्नोत्पत्तिवृद्धिहेतवो भवति ॥ ५५ ॥ तथा केषुचिज्जीवेषु स्वल्पान्यपि पाक्षित्योपदेशवचनानि महाज्ञानदर्शनचारित्ररूपबोधे समुत्पत्त्यै वृद्धये च महाशुभाऽनुष्ठानाय च भवति ॥ ५६ ॥ यथा श्रीवर्धमानजिनेन वेदार्थमात्रकथन गौतमादिषु, यथा च श्रीजिनैस्त्रिपदीमात्रार्पणं सर्वगणधरेषु, यथा वा भो अणेगपिक्खिआ एगपिक्खिओ दट्ठुमिच्छइ, इति वचनमिंद्रनागे, तत्स्वरूप यथा ॥ ५७ ॥ वसंतपुरे धनश्रेष्ठिनो गृह मार्योच्छिन्नममानुष कृत, इंद्रनागो नाम दारक, स बुहित., स च क्षुधितो ग्रान पानीयादि मार्गयति ॥ ५८ ॥

मणिखाणि, एटले मणिनी खाणोमां जेम नाना अने अल्प तेजवाळा, एवा पण जळबिंदुओ पडने छते, मोटा अने महा तेजवाळा चिंतामणि प्रमुख रत्नोनी उत्पत्ति तथा वृद्धिना हेतुरूप थाय छे ॥ ५५ ॥ तेम केटलाक जीवो प्रत्ये अल्प एवा पण पक्षिताइ भरेला उपदेशना वचनो महाज्ञान, दर्शन तथा चारित्ररूप बोधिबीजनी उत्पत्ति तथा वृद्धि माटे अने महा शुभ अनुष्ठान माटे थाय छे ॥ ५६ ॥ जेम श्रीवर्धमान प्रभुए गौतम आदिकोने कहेलो वेदनो अर्थ मात्र, तथा सर्व गणधरो प्रत्ये जिनेश्वरोनु मात्र त्रिपदीनु आपवुं, अथवा 'हे अनेक पिक्खवाळा! एक पिक्खवाळो तने जोवाने इच्छे छे,' एवी रीतनु इंद्रनाग प्रत्ये कहेलु वचन जाणवु. ते इंद्रनागनु वृत्तांत नीचे मुजब छे ॥ ५७ ॥ वसंतपुरमा मरकीए धनश्रेष्ठिनु घर मनुष्य रहित सूनु कर्यु, त्या इंद्रनाग नामनो छोकरो बची गयो, ते भूख्यो थवाथी ग्रामनो पासेथी पाणी आदिक मागवा लाग्यो ॥ ५८ ॥

यावत्सर्वान् मृतान् पश्यति द्वारमपि लोकेन कष्टैः पिहितं, तत्र शुनश्छिद्रेण निर्गत्य पुरमध्ये कर्परेण भिक्षां हिंडते, लोकस्तस्य दत्ते, एवं स संवर्धते ॥ ५९ ॥ इतश्चैक सार्थवाहो राजगृहगंतुकामो घोषणां कारयति, तां श्रुत्वा स सार्थेन समं प्रस्थितः, तत्र तेन सार्थे कूरो लब्धः, स भुक्तो न जीर्णः, द्वितीयदिनेऽजीर्णतो न भिक्षामटितः ॥ ६० ॥ सार्थवाहेनाऽचिंति नूनमुपोषितोऽयं, तृतीयदिवसे सार्थवाहेन तस्य बहुस्निग्धं च दत्तं, स तदजीर्णाद् द्वौ दिवसौ स्थितः ॥ ६१ ॥

एटलामां सगां अने मरेलां जाणीने लोकोए तेनुं द्वार काष्ठोथी ढांकी दीधुं, तेथी कुतरानी पेठे तेमांथी मार्ग करीने ते द्रमक बहार निकल्यो, तथा हाथमां खप्पर लेइने नगरमां ते भिक्षा मागवा लाग्यो, लोको तेने देवा लाग्या, अने एवी रीते ते वृद्धि पामवा लाग्यो ॥ ५९ ॥ एटलामां एक सार्थवाहे राजगृही जवा माटे घोषणा करावी, ते सांभळीने ते द्रमक ते सार्थनी साथे चालतो थयो, ते सार्थमां तेने भात खावा मल्या, ते तेणे खाधा, पण पच्या नहीं, अने तेथी अजीर्णने लीधे बीजे दिवसे ते भिक्षा करवा गयो नहीं ॥ ६० ॥ त्यारे सार्थवाहे विचार्यु के, खरेखर तेने उपवास हशे, पछी त्रीजे दिवसे सार्थवाहे तेने घणां घी आदिकवाळुं भोजन दीधुं, अने तेना अजीर्णथी ते बे दिवसो सुधी भुख्यो रह्यो ॥ ६१ ॥

सार्थवाहो वेत्ति एष पष्ठकृत्, ततोऽस्य श्रद्धा जाता, अपरदिवसे भ्रमन् सार्थवाहे- नाह्वापित, गतदिनयो किं नागत, तुष्णीके तस्मिन् ज्ञातं नूनमेष पष्ठोजीति ॥ ६२ ॥ ततस्तस्य वहु दत्त तेन, पुनर्द्वौ दिवसावजीर्णेन स्थित, पष्ठोजीति लोकोऽप्यादरवानभूत, ततो निमंत्र्यमाणस्याप्यन्यस्य पिंड न गृह्णाति, लोको जानात्येष एकपिंडिक इति ॥ ६३ ॥ सार्थवाहेनाऽज्ञाणि अन्यस्य माग्रहीर्यावन्न- गरं गम्यते तावदहमेव दास्ये, प्राप्तो नगर, सार्थवाहेन निजगृहे तस्य मठ. कारि- त, तत स शिरो मुंडयित्वा काषायिकवस्त्राणि परिधत्ते ॥ ६४ ॥

त्यारे सार्थवाहे जाण्यु के, एणे छठ कर्यो हशे, तेथी तेने (तेनापर) श्रद्धा थइ, बीजे दिवसे (भिक्षा माटे) ज्यारे ते भमवा लाग्यो, त्यारे सार्थवाहे तेने बोलावीने पुछ्यु के, गया बे दिवसमां तु केम न आव्यो, त्यारे ते मौन रहेवाथी तेणे जाण्यु के, खरेखर आ छठ करनारो छे ॥ ६२ ॥ तेथी तेने तेणे घणु आप्यु, वळी अजीर्ण थवाथी ते बे दिवस थोभी गयो, अने त्यारथी आ छठ्ठनु पारणु करनारो छे, एम जणावाथी लोको तेनो आदर सत्कार करवा लाग्या, पछी बीजा लोको तेने निमंत्रण करे, तोपण ते बीजानो पिंड ग्रहण करे नहीं, त्यारे लोको कहेवा लाग्या के, आ एकपिंडी छे ॥ ६३ ॥ पछी सार्थवाहे तेने कह्यु के, हवे ज्यां- सुधी आपणे नगरमां जइये, त्यां सुधी तारे बीजानो पिंड लेवो नहीं, हुंज तने आपवा करीश, पछी ते नगरमां पहोंच्यो, त्यां सार्थवाहे पोताना घरमां तेने मठ करावी आप्यो, अने त्यारथी ते मस्तक मुंडावीने भगवां वस्त्रो पहेरवा लाग्यो ॥ ६४ ॥

लोके ख्यातो जात, शनै शनै सार्थवाहस्यापि भिक्ष नेच्छति, अन्यस्य गृहे न याति, तत पारणदिने तस्य लोक स्वय भक्तमानयति ॥ ६५ ॥ एकस्य प्रतीच्छति, ततो लोको न वेत्ति, कस्य प्रतीष्टमिति, ततस्तज् ज्ञातु भेरी कृता यस्यात्त तत्ताडिताया भेर्या शेषा व्रजते ॥ ६६ ॥ एव याति काले राजगृहे नगरे श्रीवर्धमान समवसृत साधवो भिक्षार्थ सदेशयतो भगवता भणिता, मुहूर्त्त तिष्ठत, यतोऽनेषणाऽधुना, तस्मिन् भुक्ते भणिता गच्छत ॥ ६७ ॥

पछी तो ते दुनियामा प्रसिद्ध थयो, अने सार्थवाहना पिन्डने पण न इच्छवा लाग्यो, बीजाने घेर जाय नहीं, तेथी पारणाने दिवसे लोको पोतेज तेने माटे भोजन लाववा लाग्या ॥ ६५ ॥ तेओमाथी एकनु ते ग्रहण करवा लाग्यो, तेथी लोकोने जणावा न लाग्यु के, तेणे कोनु भोजन ग्रहण कर्यु, पछी ते जाणवा माटे तेओए एक भेरी बनावी, पछी जेनु भोजन ते ग्रहण करे, ते माणस त्यारे ते भेरी बजावे, त्यारे बाकीना लोको पाछा वळी जाय ॥ ६६ ॥ एवी रीते केटलोक काळ गया बाद राजग्रही नगरीमा श्रीवर्धमान प्रभु समोसर्या, त्यारे साधुओ भिक्षा माटे ज्यारे आदेश मागवा लाग्या, त्यारे भगवाने तेओने कह्यु के, एक मुहूर्त्तवार सबुर करो ? केमके हमणा अनेषणा छे, एटले अशुद्धनो आहार मळे तेम छे, पछी ज्यारे ते दुर्गत भोजन करी लीधु, त्यारे भगवाने साधुओने कह्यु के, हवे गोचरी जाओ ॥ ६७ ॥

गौतमश्चोक्तो मम वचनेन त जण, जो, अनेकपिंडिक एकपिंडिकस्त्वाद्रष्टुमिच्छति ॥ ६८ ॥ ततो गौतमेन तथा जणितो रुष्ट., यूयमनेकानि पिंडशतानि आहारयत, अहमेक पिंडं जुजे, ततोऽहमेवैकपिंडिक ॥ ६९ ॥ मुहूर्त्तांतराडुपशाताश्चतयति, नैते मृपाजापिण, कथ नु जवेदेव, हु ज्ञातोऽर्थ., जवाम्यनेकपिंडिक, यतो यद्दिने मम पारणक तद्दिनमनेकानि पिंडशतानि क्रियते ॥ ७० ॥ एतेत्वकृतमकारित जुजते, तत्सत्यमुक्तमिति चितयन् जाति स्मृत्वा प्रत्येकबुद्धो जात, अध्ययन जापित्वा सिद्ध इति, एते च तद्जवसिद्धिका एवेति ॥ ७१ ॥

वळी जगवाने गौतम स्वामीने कह्यु के, मारा वचनथी ते इंद्रनागने जइने कहे के हे! अनेक पिंड ग्रहण करनारा एक पिंड ग्रहण करनारो तने जोवाने इच्छे छे ॥ ६८ ॥ पछी गौतम स्वामीए तेने तेम कहेवाथी ते क्रोधायमान थयो, अने कहेवा लाग्यो के, तमो तो सेंकडो गमे अनेक पिंडोनु जोजन करो छो, अने हु तो एक पिंडनु जोजन करु छु, माटे हुज एक पिंडवाळो तो छु ॥ ६९ ॥ पछी मुहुर्त्त बाद शात थवाथी ते विचारवा लाग्यो के, आ साधुजी जनुतो जोले नहीं, अने एमते केम थाय? अरे? हवे मने मालुम पड्यु, हुंज अनेक पिंडवाळो थइ शकु छु, केमके जे दिवसे मने पारणु होय छे, ते दिवसे सेंकडो गमे पिंडो (मारे माटे) करवामा आवे छे ॥ ७० ॥ एओतो कोइए नहीं करेल तथा नहीं करावेल पिंड जमे छे, तेथी तेमणे सत्य कह्यु छे, आ प्रमाणे चिंतवतो ते इंद्रनाग जातिस्मरण ज्ञान प्राप्त करीने प्रत्येक बुद्ध थयो अने अध्ययनने जापित करी ते सिद्ध थइ गयो. एओ तद्जव सिद्धवाळाज छे ॥ ७१ ॥

एतेषु षड्भेदेषु जंतुषु प्रथमे द्वये त्याज्या., मरुस्थलादिसदृशो पुंचतुर्षु चोपदेष्टव्यमिति ॥ ७१ ॥ षोढेति विदित्वा नरभिदोऽग्रिमाग्रिमसमैर्बुद्धैर्जाव्य ॥ जत्र रिपुजयश्रिया स्या—दासन्नमव्ययसुख यत् ॥ ७३ ॥

॥ इति षष्टस्तरंग ॥

अने आ साधुओ तो नहीं करेवु अने नही करावेवु भोजन करे छे, माटे गौतमस्वामीए मने सत्य कह्यु छे, एम विचारता तेने जातिस्मरणज्ञान थयाथी ते प्रत्येक बुद्ध थयो अने अध्ययन कहीने सिद्ध थयो ॥ ७१ ॥

एवी रीते छ प्रकारना मनुष्यना भेदो जाणीने विद्वानोए, उंच उंच भेदो जेवा थवु, के जेथी ससार-रूपी शत्रुने जीतवानी लक्ष्मीवडे करीने मोक्षसुख नजदीक आवे ॥ ७३ ॥

॥ एवी रीते छट्ठो तरंग समाप्त थयो ॥

इति षष्ठस्तरंगः समाप्तः

अथ सप्तमस्तरंगः

पुनर्घटदृष्टांतेन योग्याऽयोग्यानेवाह—मूलम्— सुह असुह दव्ववासिअ ॥ वम्मा-ऽवम्मा अ वासिआ य घडा ॥ सुहअसुह धम्मवास । पडुच्च जीवाण दि-ट्ठंता ॥ १ ॥

वळी पण घडाना दृष्टांत करीने योग्य तथा अयोग्योनुं स्वरुप कहे छे.—मूळनो अर्थ–शुभ द्रव्यथी वासित थयेला, तथा अशुभ द्रव्यथी वासित थयेला, तेमज वमी करी शकाय तेवा अने खानी न करी शकाय तेवा तथा नहीं वासित थयेला, एम पाच प्रकारना घडाओ जाणवा, ते प्रमाणे शुभ अने अशुभ एवी धर्मनी वासनाने अपेक्षीने जीवोना दृष्टांतो जाणवा ॥ १ ॥

इह घटा द्विधा, वासिता अवासिताश्च, वासिता अपि द्विधा शुभद्रव्यवासिता अशुभद्रव्यवासिताश्च ॥ २ ॥ तत्र ये कर्पूराऽगुरुचंदनादिभिर्द्रव्यैर्वासितास्ते शुभद्रव्यवासिता., ये पुन पलाण्डुलशुनसुरातैलादिभिर्वासितास्तेऽशुभद्रव्यवासिता., उभयेऽपिपुनर्द्विधा, वास्या अवास्याश्च ॥ ३ ॥ तत्र ये द्रव्यांतरसंबंधे पूर्ववास त्यजंति ते वास्या, इतरे अवास्या., अवासिता नाम ये केनापि द्रव्येण न वासिता, एते पंचघटा ॥ ४ ॥ सुहअसुहधम्मेत्ति, शुभ. सम्यग् जीवदयादिमूलत्वेनोभयलोकहितो जैनो धर्म ॥ ५ ॥

अहीं घडा बे प्रकारना छे, एक वासित थयेला अने बीजा नहीं वासित थयेला, वासित थयेला पण बे प्रकारना जाणवा, शुभ द्रव्यथी वासित थयेला अने अशुभ द्रव्यथी वासित थयेला, ॥ २ ॥ तेमां जे कपूर, अगुरु, तथा चंदन आदिक द्रव्योथी वासित थयेला छे, ते अशुभद्रव्यवासित कहेवाय, तथा जे डुंगळी, लसण, मदिरा तथा तेल आदिकथी वासित थयेला छे, ते अशुभद्रव्यथी वासित कहेवाय; वळी तेओ बन्ने पाछा बे प्रकारना छे, वासी करी शकाय तेवा अने वासी न करी शकाय तेवा. ॥ ३ ॥ तेमां जे बीजा द्रव्यना संबंधथी पूर्वनी वासने तजे छे, ते वासी करी शकाय तेवा, कहेवाय, अने तेथी उलटा न वासी करी शकाय तेवा कहेवाय, तथा अवासित एटले जे कोइ पण द्रव्यथी वासित थयेला नथी. ए पांचे जातना घडाओ ॥ ४ ॥ शुभ धर्म एटले सम्यक् तथा जीवदया आदिकना मूळपणाये करीने बन्ने लोकमां हितकारी एवो जैन धर्म जाणवो ॥ ५ ॥

तद्विपरीत पुनरशुभ, तयोर्गाढ वासना प्रतीत्य जीवाना दृष्टांता भवंति, तथाहि —जीवा अपि द्विधा वासिता अवासिताश्च ॥ ६ ॥ तत्राऽवासिता ये केनापि दर्शनेन न वासिता, तदाकाल एव च बोधयितुमारब्धा, श्रीवर्धमानदेशनाप्रतिबुद्धातिमुक्तमेघकुमारादिवत् ॥ ७ ॥ वासिता अपि द्विधा, सम्यग्धर्मेण मिथ्यात्वादिना च, उभयेऽपि च द्विधा, वाम्या अवाम्याश्च, तत्र ये सुगुर्वादिसामग्र्या मिथ्यात्वादिवासना वमंति, तेऽशुभधर्मवासना प्रतीत्य वाम्या ॥ ८ ॥ श्रीइंद्रभूत्याद्येकादशगणधरश्रीप्रभवशय्यंभवसिद्धसेनगोविंदवाचकश्रीहरिभद्रसूरिधनपालपण्डितादिवत्॥९॥

अने तेथी विपरीत ते अशुभ धर्म जाणवो ते बन्नेनी वासनाने आश्रीने जीवोना दृष्टांतरूप थाय छे, ते कहे छे—जीवो पण बे प्रकारना छे, एक वासित ने बीजा अवासित ॥ ६ ॥ तेमां अवासित एटले कोइ पण दर्शनथी जे वासित थयेला नथी, अने तेज वखते जेओने प्रतिबोधवा मांडेला छे, एवा श्रीवर्धमानप्रभुनी देशनाथी प्रतिबोध पामेला अतिमुक्त तथा मेघकुमार आदिकनी पेठे जाणवा ॥ ७ ॥ वासित पण बे प्रकारना छे सम्यग् धर्मथी वासित थयेला अने, मिथ्यात्वआदिकथी वासित थयेला, वळी ते बन्ने पण बे प्रकारना छे वमीशकाय एवा अने न वमीशकाय तेवा, तेमां जेओ सुगुरुआदिकनी सामग्री होते छते मिथ्यात्वआदिकनी वासनाने वमी नाखे छे, तेओ अशुभ धर्मनी वासनाने आश्रीने वमी शकाय तेवा छे, ॥ ८॥ अने तेवा श्रीइंद्रभूति आदिक अग्यार गणधरो श्रीप्रभवस्वामी, शय्यंभवस्वामी, सिद्धसेनदिवाकर, गोविंद वाचक, श्रीहरिभद्रसूरि तथा धनपालपण्डितआदिक मनुष्यो जाणवा ॥ ९ ॥

ये च सुगुर्वादिसामग्र्यामपि मिथ्यात्वाद्यशुभधर्मवासं न वमति ते पुनरवाम्या., श्री-कालकसूरिवचनःऽप्रतिबुद्धतद्भागिनेयतुरुमिणीनगरीशदत्तनृपादिवत् ॥ १० ॥ * तुरुमिण्यां दत्तनामब्राह्मणमन्त्रिणा राज्यं स्वायत्तीकृत्य जितशत्रुनृपं निष्कास्य स्वय राज्य कुर्वता पुण्यार्थं बहवो यागा कृता ॥ ११ ॥ तत्र मातुलकालकाचार्यागमनमातृप्रहिततत्पार्श्वदत्तनृपागम ,धर्मोक्तौ यागफलप्रश्ने नृपेण कृते, जीवदयाधर्म , पुन पृष्टे हिसा दुर्गतिहेतु ॥ १२ ॥

वळी जेओ सुगुरु आदिकनी सामग्री मळ्ये छते पण मिथ्यात्व आदिक अशुभ धर्मनी वासनाने तजता नथी, तेओ न वामी शकाय तेवा कहेवाय छे, अने तेवा श्रीकालिक सूरिना वचनथी नहीं प्रतिबोध पामेला तेमना भाणेज एवा तुरुमिणी नगरीना स्वामी दत्तराजा आदिकनी पेठे जाणवा ॥ १० ॥ * तुरुमिणी नगरीमां दत्त नामना ब्राह्मण मन्त्रिए राज्य स्वाधीन करीने, तथा जितशत्रु राजाने कहाडी मुकीने, पोते राज्य करवा मांड्यु, तथा पुण्य माटे तेणे घणा यज्ञो कर्या ॥ ११ ॥ ते नगरमां तेना मामा कालकाचार्य पधार्या, त्यारे दत्त राजानी माए मोकलवाथी, ते दत्त राजा तेमनी पासे आव्यो, धर्म संबंधि चर्चामां यज्ञना फळ माटे राजाए प्रश्न करवाथी आचार्यजीए जीवदयामय धर्म कह्यो, फरीने पुछवाथी आचार्यजीए कह्युं के, हिंसा ए दुर्गतिनो हेतु छे ॥ १२ ॥

---

* आ कथा एक प्रतिमां छे, अने बीजी प्रतियां नथी आपी.

पुनर्दत्त आह, वक मा वदतु, यागफलं किं, ततो मृत्युमाश्रित्योक्तं नरकगति, दत्तेनोक्तमहं नरके यास्यामि, गुरु,—क संदेह ॥ १३ ॥ कदा, सप्तमे दिने, कथं-केनाभिज्ञानेन, मुखेविट्पातात्, दत्तेनोक्तं त्वं क्व यास्यसि, गुरु—देवलोके ॥ १४ ॥ तेन रुष्टेन रक्षिता, सप्तदिनानंतर मारणादि चिंतयित्वा, तत स्व सर्वं पुर सशोध्यावासे स्थितोऽष्टमदिनभ्रमेण बहिरश्वारूढो गुरूणां मारणार्थं गच्छन्गाढवपुश्चितार्दितेन वृद्धमालिकेन पुरीष कृत्वा कुसुमत्याग ॥ १५ ॥ तदुपर्यश्वाङ्घिघातोच्छलच्छिद्मुखप्रवेशेन नरकगमन निश्चित्य लोकैरेव कुंभिपाकेन मारित, गुरुत्व स्वर्ग गता, इति दत्तनृपकथा ॥ १६ ॥

वळी ग्ने कह्यु के, तमो आयो जवाब नहीं आपो? यज्ञनु फळ शुं छे? ते कहो? त्यारे मृत्युने आश्रीने आचार्यजीए कह्यु के, नरकगति छे, त्यारे दत्ते कह्यु के, शुं हुं नरकमां जइश? गुरुए कह्यु के, एमां शुं संदेह छे? ॥ १३ ॥ त्यारे ग्ने पूछ्यु के, क्यारे? गुरुए कह्यु सातमे दिवसे ग्ने कह्यु के केवी रीते अने शुं पराणथी? गुरुए कह्यु मुखमां विष्टा पडवाथी, त्यारे दत्ते फरीने पूछ्यु के, तुं क्यां जइश? त्यारे गुरुए कह्यु के, हुं देवलोकमां जइश ॥ १४ ॥ पछी तेणे क्रोधायमान थइ, सात दिवस बाद गुरुने मारवा आदिकनो विचार करीने त्यां राख्या, पछी ते पोते आखु नगर साफ करावीने मेहेलमां रह्यो, तथा आठमा दिवसना भ्रमथी बहार निकळी घोडापर चडी गुरुने मारवा माटे जवा लाग्यो, एटलामां (मार्गमां) घणीज देह चिंताथी पीडायेला एक वृद्ध माळीये झाडो फरीने उपर पुष्पोथी विष्टाने ढांकी दीधी ॥ १५ ॥ तेपर घोडानो पग लागवाथी तेमांथी विष्टा उछळीने ते दत्तना मुखमां पडी, अने तेथी तेना नरके जवानो निश्चय करीने लोकोएज तेने रीबावी रीबावीने मारी नाख्यो, तथा गुरु महाराज स्वर्गे पधार्या, एवी रीते दत्त राजानी कथा जाणवी ॥ १६ ॥

ये पुनःकुगुर्वादिसंगत्या सम्यग्दर्शनचारित्रादि वमति, ते शुभधर्मवासं प्रतीत्य वा-स्या, बौद्धसंगत्यैकविंशतिकृत्वोऽर्हद्धर्मत्यागिश्रीहरिभद्रसूरिशिष्यपश्चात्तदुपज्ञललितविस्तराप्रतिबुद्धश्रीसिद्धर्षिवत् ॥ १७ ॥ ये तु कुगुर्वादिकुसंगतावपि सम्यग्दर्शनचारित्रादि न वमति, ते शुभधर्मवासं प्रतीत्याऽवाम्याः, श्रीथावच्चापुत्रगुरुप्रतिबोधितशुकपरिव्राजकशिष्यसुदर्शनश्रेष्ठिवत् ॥ १८ ॥ तेषु ये शुभधर्मवासं प्रतीत्य वाम्याः, अशुभधर्मवासं प्रतीत्याऽवाम्याश्च ते उभये अयोग्याः, शेषास्त्रयो योग्या इति ॥१९ ॥

वळी जेओ कुगुरु आदिकनी संगतिथी सम्यग दर्शन तथा चारित्र आदिकने वमी नाखे छे, तेओ शुभ धर्मनी वासनाने आश्रीने वामी शकाय तेवा कहेवाय छे, अने तेवा बौद्धोनी संगतिथी एकवीसवार जैन धर्मनो त्याग करनार श्री हरिभद्रसूरिना शिष्य, तथा पाछळथी श्रीहरिभद्रसूरिए रचेली ललितविस्तराथी प्रतिबोध पामेला श्रीसिद्धर्षिनी पेठे जाणवा ॥ १७ ॥ वळी जेओ कुगुरुआदिकोनी कुसंगति होते छते पण सम्यग् दर्शन तथा चारित्र आदिकने वमता नथी, तेओ शुभ धर्मनी वासनाने आश्रीने न वामी शकाय तेवा कहेवाय छे, अने तेवा श्रीथावच्चापुत्रगुरुए प्रतिबोधेला शुकपरिव्राजकना शिष्य सुदर्शन शेठनी पेठे जाणवा ॥ १८ ॥ तेओमा जेओ शुभ धर्मनी वासनाने आश्रीने वामी शकाय तेवा तथा अशुभ धर्मनी वासनाने आश्रीने जेओ न वामी शकाय तेवा, एम बन्ने प्रकारना अयोग्य मनुष्यो छे, अने बाकीना त्रण प्रकारना योग्य मनुष्यो छे ॥ १९ ॥

इति निबुध्य घटोपमया स्फुट ।तनुभृतो भुवि पचविधान् बुधा.॥ सुकृतवासमवाम्य-
तयोत्तम ॥ श्रयत दुर्जयकर्मजयश्रिये ॥ २० ॥

॥ इति सप्तमस्तरग ॥

एवी रीते रमानी उपमाथी जगतमा पाच प्रकारना मनुष्योने प्रगट रीत जाणीने हे विद्वानो नरमी शकाय एवी रीते धर्मनी उत्तम वासनानो, दुर्जय एवा कर्मोने जीतवानी लक्ष्मी माटे आश्रय करो ॥ २० ॥

॥ एवी रीते सातमो तरग जाणवो ॥

इति सप्तमस्तरंगः समाप्तः

अथ अष्टमस्तरंगः

पुनरपि न्नयतरेण योग्याऽयोग्यविचारमाह ॥—जह वरजलन्नरे अ सरे । वायस साणेन्नहसमाइण ॥ चायछिहणासिअथरइ । सुगुरुवएसे तह जिआण ॥ १ ॥

फरीने पण जूदा प्रकारथी योग्य अयोग्यनो विचार कहे छे गूळनो अर्थ—जेम उत्तम जळथी नरेला तळावमां कागडा, कुतरा, हाथी तथा हंस आदिको अनुक्रमे त्याग, चाटवानु, तृप्ति तथा स्नेह बतावे छे, तेम सुगुरुना उपदेश प्रत्ये जीवोनु स्वरूप जाणवु ॥ १ ॥

व्याख्या—यथा वर निर्मलं जलं तेन भृते सरसि वायसश्वानइभहंसादीनां (मकार प्राकृतत्वादलाक्षणिक, प्राणानामिति गम्य) त्यागो लेहनमाशितताऽरतिश्च क्रमाद् नवति (विनक्तिलोप प्राकृतत्वात्) ॥ २ ॥ तथा सुगुरूपदेशेऽपि अधमादीनां जीवानां त्यागादयो नवतीति पिमार्थ ॥ ३॥ अथैतद् नाव्यते, यथा निर्मलजलपूर्णे महासरसि वायसस्तृषातुरोऽपि प्राप्तो न जलं पिबति, न च वपुर्गतमलतापादिव्यपगमार्थं स्नाति ॥ ४ ॥

व्याख्या—जेम उत्तम एवा निर्मळ जळथी नरेला तळावमां कागडा, कुतरा, हाथी तथा हंस आदिकोनो (अहीं प्राकृत नाषा होवाथी मकार अलाक्षणिक छे, प्राण पयेलाओने एवुं अध्याहार जाणवुं) अनुक्रमे त्याग, चाटवानुं, तृप्ति तथा स्नेह थाय छे, (प्राकृत नाषा होवाथी विनक्तिनो लोप थयो छे) ॥ २ ॥ तेम सुगुरुना उपदेशमा पण अधमआदिक जीवोनो त्याग आदिक थाय छे, एवी रीतनो समुदायार्थ जाणवो ॥ ३ ॥ हवे तेनुं वर्णन करे छे, जेम निर्मळ जळथी नरेला मोटा तळावमां गयेलो तृषातुर कागडो पण पाणी पीतो नथी, तेमज शरीरे रहेला मेल तथा ताप आदिकने दूर करवा माटे स्नान पण करतो नथी ॥ ४ ॥

किंतु तच्चस्था जनस्नानादिमलिनकियज्जलभृतेषु गोष्पदेषु कुड्यविलादिषु आविल जलं स्वल्पं पिबति, नारीशिरस्थविमलजलभृतघटादिषु वाऽशुचिचञ्चुक्षेपेण जल-विनाशयति, नतु स्वयं तृप्यति ॥ ५ ॥ तथा केचदधमा जीवा अनिगृहीत-तीव्रमिथ्यात्ववासनावशाद् बहुलकर्मतादिहेतुकप्रमादादिवशाद्वा श्रीजिनधर्मं द्विषतो दयादिगुणविशुद्धश्रीसर्वज्ञागमजलनिभृते महासरस्तुल्ये सुगुरूपदेशेऽपि हस्तिना मार-येत्तु जिनभवनं प्रविशेदित्यादिकुशास्त्राण्युच्चारयतोऽनिवापमकुर्वाणास्त्यजन्ति, लोहखुररौहिणेयपूर्वावस्थादिवत् ॥ ६ ॥

परंतु ते तजीने माणसना स्नान आदिकथी मलीन थयेला एवा केटलाक पाणीथी *भरेला नाना खाबोचीयामा अथवा भगरना काणा आदिकोमा रहेला गंदा पाणीने स्वल्प पीये छे, अथवा स्त्रीना मस्तकउपर रहेला निर्मल जळथी भरेला घडा आदिकोमा पोतानी गंदी चांच नाखीने ते जळने बगाडे छे, परंतु पोते तृप्त थता नथी ॥ ५ ॥ तेम केटलाक अधम जीवो धारण करेली एवी तीव्र मिथ्यात्वनी वासनाना वशथी, अथवा भारे कर्मीपणा आदिकना हेतुरूप प्रमाद आदिकना वशथी श्री जनधर्म प्रत्ये द्वेष करता थका, दया आदिक गुणोथी शुद्ध एवा श्री सर्वज्ञ प्रभुना प्ररूपेला आगमोरूपी जळथी भरेला, अने महान् तळाव सरखा सुगुरुना उपदेशने विषे 'हाथीथी मराइ जवु सारं परंतु जिनभुवनमा प्रवेश करवो नहीं' इत्यादि कुशास्त्रोने उच्चारता थका अनिवापण नहीं करीने ते सदुपदेशनो त्याग करे छे, (कोनी पेठे ? तो के) लोहखुर तथा रौहिणेय चोरनी पूर्व अवस्थानी पेठे ॥ ६ ॥

* गोष्पद—गायना पगना प्रमाण, नाना

कदाचिच्च परेभ्य श्रीगुरूक्तकथाश्लोकवचनादिसारस्य प्रवाद श्रुत्वा गोप्पदादितुल्य-न्यस्तं श्रुतपूर्विभ्य[1] शृण्वति ॥ ७ ॥ काका इव जलघट श्रोतृहृदयबोधमपि-मिथ्याकुतर्कादिभिर्विवर्तयति विनाशयत्यपि, अथवा गोप्पदाजपार्श्वस्थादिषु रति कुर्वते, गच्छनिर्गतेषु नारीशिर स्थघटजलसमेषु मरीच्यादिषु कपिलादिवद्रति दधत-स्तद्धर्मं च विनाशयति ॥ ८ ॥ तत्रकपिलोदाहरण यथा–इहवे भरहे इमीसे उसप्पिणीए भरहचक्कवट्टिसुओ मरीइनाम भगवओ उसभसामिस्स देसण सुत्रा पडिबुद्धो पव्वइओ ॥ ए ॥

वळी कदाचित बीजा पासेथी श्री गुरुए कहेला कथा, श्लोक तथा वचनो वगेरेना सारना प्रवाद (लो कवाद) ने सांभळीने जेमणे प्रथम श्रवण कर्यु छे एवा गायोनी खरी जेवा पासत्थादिक पासेथी ते वातने सांभळे छे ॥७॥ तेमज कागडाओ जेम जळना घडाने, तेम सांभळनाराओना हृदयना बोधने पण खोटा कुतर्क आदिक वडे करीने, वि तर्के छे तथा नष्ट पण करे छे, अथवा नाना खाबोचीया सरखा पासत्थादिको प्रत्ये अभिलाष करे छे, अने गच्छथी निकळी गयेला एवा स्त्रीना मस्तकपर रहेला घडाना जळ सरखा मरीचि आदिको प्रत्ये कपिल आदिकनी पेठे रुचि ध रता थका तेना धर्मने नष्ट करे छे॥८॥ त्यां कपिलनु उदाहरण नीचे मुजब छे –आज भरतक्षेत्रमां आ उत्सर्पिणीमां भरत चक्रवर्तिनो पुत्र, के जेनु मरीचि नाम हतु, तेणे भगवान श्री ऋषभदेव स्वामिनी देशना सांभळीने प्रतिबोध पामी दी-क्षा लीधी ॥ ए ॥

[1] श्रुतपूर्वं यैस्ते श्रुतपूर्विणः तेभ्यः।

ङाणि आणि एगारसगाणि, कियतमवि समय पालिअ सामन्न, कलिट्ठकम्मोदएण जाओ से अन्हाणपरिसहो ॥ १० ॥ तक्कालोचिअसुद्धभावणयाए पवत्तिअ प-परिव्वायगलिंग, तथा च श्रीआवश्यकनिर्युक्तौ ॥ ११ ॥ समणा तिदंड-विरया इत्यादिगाथाषट्क तत्स्वरूपोपदर्शक, विहरइ सम जगवया, देनेइ साहुधम्म, पुच्छिओ किंतु ममेरीसोत्ति निंदइ अप्पाण ॥ १२ ॥उवसते उवणेइ साहूण, अन्नया धम्मकहाए अक्खित्तो कविलो उवणीओ साहुण, नरुच्चइसे, जपिअ मणेण असमे इमिणा, किमेत्थ चेव धम्मो न पुण तुहसासणे ॥ १३ ॥

अग्यारे अगोनो तेणे अन्यास कर्यो, तथा केटलोक काळ सुधि तेणे साधुपणु पाळ्यु, परतु क्लिष्ट कर्मोना उदयथी तेने अज्ञान परिसह थयो ॥ १० ॥ अने तेथी तेणे तत्काळ उचित शुद्ध नावनावमे करीने परिव्राजकलिंग प्रवर्त्ताव्यु, तेमज श्री आवश्यक निर्युक्तिमा पण कह्यु छे के ॥ ११ ॥ साधुओ त्रण दडोथी विरतिवाळा होय छे, इत्यादिक छ गाथामा तेनु स्वरूप देखाड्यु छे पछी ते मरीचि प्रभुनी साथे विचरवा लाग्यो, साधुधर्मने उपदेशवा लाग्यो, वळी जो कोइ पूछे के, तमारो धर्म आवो केम छे? त्यारे ते पोताने निन्दवा लागे ॥ १२ ॥ ज्यारे कोइ प्रतिबोध पामे त्यारे तेने साधु पासे लेइ जाय, एक दहामो कपिल नामे मनुष्य तेनी धर्मकथाथी प्रतिबोध पाम्यो, अने तेथी तेने साधु पासे ते लेइ गयो, परतु तेने ते साधुनो धर्म रुच्यो नहीं, तेथी तेणे (मरिचीने) कह्यु के, मोरे आ साधुधर्मनी जरुर नथी, शु अहीज धर्म छे? अने तमारा शासनमा धर्म नथी? ॥ १३ ॥

अणरिहोएसोत्तिनाउं नाउण, ममाविकज्ज पेक्खिारगेणेति समालोचिउण जपिअ-
मणेण कविला इत्थति इहयपि ॥ १४ ॥ दुब्भासिएण वद्धिओ ससारो पव्वाविओ क-
विलो साहिओ किरिआकलावोत्ति, एवमाइ गथतराओ नेअमित्ति ॥ १५ ॥
अत्र वायससदृश कपिल:, महासरस्तुल्य सुगुरूपदेश परित्यज्य घटजलसमे मरी
चिवचने रतिकारित्वात्, तथा स घटजलमिव निर्मल स्वरूप सम्यक्प्ररूपणादिक मरी-
चेर्धर्म कविला इत्थपि इहयपि इत्यादि दुरतससारकारणवितथप्ररूपणादिहेतुत्वना-
दिना विनाशितवाश्चेति ॥ १६ ॥

ते सांभळी मरीचिए जाण्युं के, आ साधुधर्मने अयोग्य छे, एम जाणीने, तथा मारे पण एक वैयावच्च करनारनी
जरुर छे, एम पण विचारीने तेणे कपिलने कह्यु के, हे कपिल अहीं पण धर्म छे अने, मारे त्यां पण धर्म छे ॥ १४ ॥
एवी रीतना दुर्भाषितथी मरीचिनो ससार वध्यो, पछी कपिलने तेणे दीक्षा आपी, तथा क्रियानो समूह पण शिख-
व्यो, इत्यादिक विशेष वृत्तांत बीजा ग्रथथी जाणी लेवु ॥ १५ ॥ अहीं कागडा सरखो कपिल जाणवो, अने तेणे
महान् तळाव सरखा सुगुरुना उपदेशने तजीने घडाना जळसरखा मरीचिना वचनमां अभिलाष कर्यो, अने तेम करीने
घडाना जळसरखा निर्मळ अने स्वरूप सम्यक् प्ररूपणादिकरूप मरीचिना धर्मने, 'हे कपिल' त्यां पण धर्म छे अने
अहीं पण छे,' इत्यादि दुरत ससारना कारणरूप जे जूठु प्ररूपण आदिक तेना हेतुरूप थवा वडे करीने, तेणे ते
धर्मनो विनाश पण कर्यो ॥ १६ ॥

ते चाऽजव्या दूरजव्या विराधितधर्मत्वेन दुर्लजबोधिका दुर्गतिबद्धायुष्का वा जवति ॥ १७ ॥ साणत्ति, यथा श्वान तृषातुरोऽपि तादृशे सरसि प्राप्तो, यदि प्राप्नोति तदा गोष्पदादिषु, चेत्सरसि मुखमेवाग्रत कृत्वा लेहनं करोति, न तु यथेष्ट घुटघुटे पिबति ॥ १८ ॥ न च स्नानादि कुरुते, तथा केचिज्जीवा अनजिगृहितमिथ्यात्वा जिनधर्मे माध्यस्थ्यादिनाजस्तादृशे गुरूपदेशे सारस्यादिना किंचिदजिलाष कुर्वाणा अपि अधिकविरतिदानमिथ्यात्विस्वजनलोकापवादादिजियाऽधिक संपूर्णमुपदेश न शृणवति ॥ १९ ॥

वळी तेवा मनुष्यो अजव्य, दूरजव्य तथा धर्मने विराधवाथी दुर्लज बोधवाळा अथवा दुर्गतिमा बांध्या आयुष्यवाळा थाय छे ॥ १७ ॥ श्वान एटले कुतरो जो के तृषातुर होय तोपण तेवा म्होटा सरोवर प्रत्ये जतो नथी, अने कदाच जाय तो पण नाना खाबोचीयां आदिकमां जाय छे, अने तेम नहीं तो तळावमां मुखनेज आगळ करीने चाट्या करे छे, परंतु यथेष्ट रीते एटले इच्छा मुजब घुटके घुटके ते पाणी पीतो नथी ॥ १८ ॥ तेम स्नान आदिक पण करतो नथी, एवी रीते केटलाक जीवो मिथ्यात्वनो आग्रह नहीं करीने जिनधर्मना मध्यस्थपणा आदिकने जजता थका तेवी रीतना गुरुना उपदेशमां सारणा आदिकथी कंइक अजिला-षने करता थका पण, अधिक विरति, दान, तथा मिथ्यात्वी एवा सगा माणसोना अपवाद आदिकना जयथी अधिक तथा संपूर्ण उपदेश सांजळता नथी ॥ १९ ॥

किल्वंतरातरा सरसकथाश्लोकादि वियत् शृण्वाति अवधारयति च, कियती बोधि तृप्तिमाप्नुवत्यनुतिष्ठति च ॥ ३० ॥ ते च धर्माभ्यासवशाद्विशिष्य दुर्गतिं नाप्नुवति, तां प्राप्ता अपि पुनर्बोधि लभंते, गोत्रूतिवसुत्रूतिविप्रद्वयवत् ॥ ३१ ॥ इत्ति, यथा गजस्तृपातापाद्याक्रांतस्तादृशे सरसि प्राप्तो यथेष्ट जलपानेनाशिततां तृप्तिं करोति, स्वस्य स्नानजलक्रीडादिना मलतापापहारं च ॥ ३२ ॥ परं स्नात्वा निर्गतो धूल्या- स्मानं खरटयति, पुनःपुनः स्नानखरटनादि कुरुते, तथा केचिज्जीवा मध्यमजावा गुरूपदेशं सम्यग् शृण्वंत्यवधारयंत्यनुतिष्ठंति साह्लादं तृप्यंति, मिथ्यात्वविषयतृष्णा- कषायादितापमलापहारेण शुद्ध्यंति च ॥ ३३ ॥

परंतु कन्चे कन्चे रसयुक्त कथा श्लोक आदिक केटलुक सांभळे छे, तथा धारे छे, तथा केटलाक बोध- रूपी तृप्तिने पामे छे, तथा ते मुजब अनुष्ठान पण करे छे ॥ ३० ॥ अने तेवा मनुष्यो धर्माभ्यासना वशथी विशेष प्रकारे दुर्गति पामता नथी, तथा पामे तो पण फरीने बोध पामे छे, (कोनी पेठे? तो के) गोत्रूति तथा वसुत्रूति नामे बे ब्राह्मणोनी पेठे ॥ ३१ ॥ हवे इत्त एटले हाथी. तृषा तथा ताप आदिकथी व्याकुल थयो थको तेवा तळावमां जाय छे, तथा इच्छा मुजब जळपानवडे करीने तृप्ति करे छे, तेमज स्नान तथा जळ क्रीडा आदिकवडे करीने पोताना मेल तथा तापने दूर पण करे छे ॥ ३२ ॥ परंतु स्नान कर्या बाद बहार निकळीने धुळथी पाछो पोताने खरडे छे, एम वारवार स्नान तथा धुळथी खरडावापणुं करे छे, एवी रीते केटलाक जीवो मध्यम जातवाळा थया थका गुरुना उपदेशने सम्यग प्रकारे सांभळे छे, अवधारे छे, ते मुजब अनुष्ठान करे छे, अने तेम करी हर्ष सहित तृप्ति पामे छे, तेमज मिथ्यात्व, विषय, तृष्णा तथा कषाय आदिकरूप ताप अने मेलना विनाशथी शुद्ध पण थाय छे ॥ ३३ ॥

परमऽदृढचित्ततया पुनस्तादृग्सामग्र्या कुतीर्थिकवचनश्रवणादिना तदनुष्ठानाऽनुरागा-
दिनातत्तपोविद्याचमत्कारादिना विषयतृष्णावह्वारम्भादिना आत्मानं धूल्येव मलिन-
यति ॥ २४ ॥ पुनर्गुरूपदेशस्नानोक्तरूपखरंटनादि च कुर्वाणा मनुष्यगतिहीनसुरग-
त्यादिप्रायोग्य पुण्यकर्मोपार्जयति, पूर्वगाथाप्रथितश्यामद्रवणिग्वत् ॥ २५ ॥ केचित्तु
बहुक्षालनाऽल्पखरंटनादि कुर्वाणा उत्तमसुरायुरपि बध्नन्ति आसन्नसिद्धिकाश्च भवंति
॥ २६ ॥

परतु चित्तनु दृढपणु नहीं होवाथी फरीने तेवी सामग्री मळ्ये छते कुतीर्थीओना वचनना श्रवण आदिक वडे करीने, तथा तेओना अनुष्ठानना अनुराग आदिकवडे करीने, तेमज तेओना तप, विद्या तथा चमत्कार आदिकथी विषय, तृष्णा तथा घणा आरंभ आदिकवडे करीने, जाणे धूळथी होय नहीं, तेम पोताने मलिन करेछे॥ २४ ॥ वळी गुरुना उपदेशरूप स्नान करे छे, तथा वळी धूळथी खरडावा आदिकपणु करे छे, अने तेम करता थका मनुष्य गति नीच देवगति आदिकने योग्य पुण्यकर्म उपार्जन करे छे, कोनी पेठे तो के, पूर्वनी गाथामा वर्णवेला श्यामनवणिकनी पेठे ॥ २५ ॥ वळी केटलाकतो घणु स्नान अने अल्प खरडावापणु करता थका उत्तम देवप णानु आयु पण बांधे छे, अने नजीक मोक्ष पामवावाळा पण थायछे ॥ २६ ॥

हसन्ति, हंसो यथा तादृग् सरः संप्राप्य तत्रैव वसन् रतिं कुरुते, निर्मलजलपानस्नानमृणालभक्षणादिना सरस्येव तत्परिसरे वा तिष्ठन् शैत्यपावित्र्यसुखान्यनुभवन् रजोमलाऽपावित्र्यतापान्न विदन्ति ॥ २७ ॥ तथा केचिज्जीवाः सद्गुरूपदेशं श्रुत्वा तत्रैव रतिं कुर्वाणा मनोवाक्कायैस्तदनुध्यानतदनुगतसूत्रार्थोच्चारभणनतदनुष्ठित्यादिभिस्तदेव परिशीलयंतो मिथ्यात्विवचनश्रवणोद्भवधर्माऽस्थैर्यादिमालिन्यबह्वारम्भादिपापभवक्लेशादितापान्नानुभवन्ति ॥ २८ ॥ उत्तरोत्तरज्ञानदर्शनदेशविरतिसर्वविरत्यनुष्ठानादिभिरासन्नसिद्धिका एव भवन्ति, तस्मिन्नेव भवे द्वितीये वा भवे सिध्यन्ति, आनन्दादिश्रीवीरश्रावकदशवत् ॥ २९ ॥

वळी जेम हंस तेवुं तळाव पामीने त्यांज वसतो थको आनंद करे छे, तेमज निर्मळ जळनुं पान स्नान तथा कमळना भक्षण आदिक पूर्वक तळावमांज अथवा तेनी आसपासना प्रदेशमां रह्यो थको, तेमज शीतळता अने पवित्रताना सुखोने अनुभवतो थको रज, मेल तथा अपवित्रता अने तापने जाणतो नथी ॥ २७ ॥ तेम केटलाक जीवो सद्गुरुनो उपदेश सांभळीने तेमांज अभिलाष करता थका मन, वचन अने कायावडे करीने, ते मुजब ध्यान, ते मुजब सूत्रार्थ उच्चार, अभ्यास अने ते मुजब क्रिया आदिकथी तेनुंज परिशीलन करता थका मिथ्यात्विओना वचनोने सांभळवाथी उत्पन्न थयेला धर्मनी अस्थिरता आदिक मेल, घणा आरंभ आदिकनुं पाप, तथा संसारना क्लेश आदिक तापने अनुभवता नथी ॥ २८ ॥ तेमज उत्तरोत्तर ज्ञान, दर्शन, देशविरति तथा सर्वविरति आदिकना अनुष्ठान आदिक वडे करीने नजदीक सिद्धिवाळाज थाय छे, तथा तेज भवे अथवा बीजे भवे मोक्षे जाय छे, (कोनी पेठे? तोके) श्रीवीर प्रभुना आनंद आदिक दश श्रावकोनी पेठे ॥ २९ ॥

परमऽव्हचिन्ततया पुनस्ताहग्सामग्र्या कुतीर्थिकवचनश्रवणादिना तदनुष्ठानाऽनुरागा-
दिनातत्तपोविद्याचमत्कारादिना विषयतृष्णाव्यवहारत्वादिना आरम्भान धूर्ववत् मलिन-
यति ॥ ५४ ॥ पुनर्गुरूपदेशस्नानेनकल्पवरटनादि च कुर्वाणा मनुष्यगतिहीनसुरग-
त्यादिभावेष्य पुण्यकर्मोपार्जयति, पूर्वगाथाप्रथितश्यामलवणिग्वत् ॥ ५५ ॥ केचित्तु
वहुकालनाऽप्यवरटनादि कुर्वाणा उत्तमसुरासुरपि वध्नन्ति आसन्नसिद्धिकाश्च भवति
॥ ५६ ॥

परन्तु चित्रतु दक्षपणु नहीं होवाथी फरीने तेवी सामग्री मळवा छते कुतीर्थिओना वचनना श्रवण आदिक वडे करीने, तथा तेओना अनुष्ठानना अनुराग आदिकवडे करीने, तेमज तेओना तप, विद्या तथा चमत्कार आदिकथी विषय, तृष्णा तथा गृहा आरंभ आदिकवडे करीने, आगळ प्रमाणे होय नहीं, तेम पोताने मलिन करेछे॥ ५४ ॥ वळी गुरुना उपदेशरूप स्नान करे छे, तथा वळी पूर्णपणे स्वच्छता आदिकपणु करे छे, अने तेम करता थका मनुष्य गति नीच देवगति आदिकने योग्य पुण्यकर्म उपार्जन करे छे, कोनी पेठे तो के, पूर्वनी गाथामां कहेला श्यामलवणिकनी पेठे ॥ ५५ ॥ वळी केटलाकतो घणा काळ सुधी स्नान अने अल्प स्वच्छतापणु करता थका उत्तम देव पण आयु पण बांधे छे, अने नजीक मोक्ष पामनारा पण थाय छे ॥ ५६ ॥

हसन्ति, हंसो यथा तादृग् सरः सम्प्राप्य तत्रैव वसन् रतिं कुरुते, निर्मलजलपान-स्नानमृणालभक्षणादिना सरस्येव तत्परिसरे वा तिष्ठन् शैत्यपावित्र्यसुखान्यनुभवन् रजोमलाऽपावित्र्यतापान्न विदति ॥ २७ ॥ तथा केचिज्जीवा सद्गुरूपदेशं श्रुत्वा तत्रैव रतिं कुर्वाणा मनोवाक्कायैस्तदनुध्यानतदनुगतसूत्रार्थोच्चारभणनतदनुष्ठित्यादिभि-स्तदेव परिशीलयतो मिथ्यात्विवचनश्रवणोद्भवधर्माऽस्थैर्यादिमालिन्यबह्वारम्भादिपापभ-वक्लेशादितापान्नानुभवति ॥ २८ ॥ उत्तरोत्तरज्ञानदर्शनदेशविरतिसर्वविरत्यनुष्ठाना-दिभिरासन्नसिद्धिका एव भवति, तस्मिन्नेव भवे द्वितीये वा भवे सिध्यंति, आनंदादिश्रीवीरश्रावकदशवत् ॥ २९ ॥

वळी जेम हंस तेवु तळाव पामीने त्यांज वसतो थको आनंद करे छे, तेमज निर्मळ जळनु पान स्नान तथा कमळना भक्षण आदिक पूर्वक तळावमांज अथवा तेनी आसपासना प्रदेशमां रह्यो थको, तेमज शीतळता अने पवित्रताना सुखोने अनुभवतो थको रज, मेल तथा अपवित्रता अने तापने जाणतो नथी ॥ २७ ॥ तेम केटलाक जीवो सद्गुरुनो उपदेश सांभळीने तेमांज अभिलाष करता थका मन, वचन अने कायावडे करीने, ते मुजब ध्यान, ते मुजब सूत्रार्थ उच्चार, अभ्यास अने ते मुजब क्रिया आदिकथी तेनुज परिशीलन करता थका मिथ्या-त्विओना वचनोने सांभळवाथी उत्पन्न थयेला धर्मनी अस्थिरता आदिक मेल, घणा आरंभ आदिकनुं पाप, तथा संसारना क्लेश आदिक तापने अनुभवता नथी ॥ २८ ॥ तेमज उत्तरोत्तर ज्ञान, दर्शन, देशविरति तथा सर्वविरति आदिकना अनुष्ठान आदिक वडे करीने नजदीक सिद्धिवाळाज थाय छे ; तथा तेज भवे अथवा बीजे भवे मोक्षे जाय छे, (कोनी पेठे ? तोके) श्रीवीर प्रभुना आनंद आदिक दश श्रावकोनी पेठे ॥ २९ ॥

श्रीमदुदायनदशार्णभद्रशुकपरिव्राजकाऽभ्रोजितसुदर्शनश्रेष्ठिकुमारपालभूपालादिवद्वा ॥ ३० ॥ आदिशब्दाद् दृष्टांतचतुष्टयेऽपि प्रत्येकं योजिताऽशुचितमपकैकरुचि-ग्रामशूकर,स्नानाद्यरुचिवोकुट निर्मलपकिलजलोभयसमानरुचिमहिष,सरोनद्येकपरिशी-लनरुचिचक्रवाकादिदृष्टांता अपि ज्ञेया ॥ ३१ ॥ एवं दृष्टांतोपदेशमधिगम्य शि-वार्थिभिरुत्तरोत्तरदृष्टांतसदृशैः सर्वशक्त्या भाव्यं भव्यजीवैर्येन शिवसुखसंपदः करत-ललुठिताश्च सुप्रापा भवतीति ॥ ३२ ॥

अथवा श्रीमान् उदायन, दशार्णभद्र, शुक परिव्राजकथी नहीं क्षोभेला सुदर्शन शेठ तथा कुमारपाळ राजा आदिकनी पेठे जाणवा ॥ ३० ॥ आदि शब्दथी ते चारे दृष्टांतोमां, अनुक्रमे दरेकनी साथे जोडवामां आवता अत्यंत गंदा कादवनी रुचिवाळा गामडाना सूकर (भूंड) स्नान आदिकनी अरुचिवाळो गोकळो, निर्मळ अने कादववाळा एम बन्ने जातना जलमां तुल्य रुचिवाळो पाडो, तळाव तथा नदीना जळनाज परिशीलननी रुचिवाळो चक्रवाक, इत्यादि दृष्टांतो पण जाणवां ॥ ३१ ॥ एवी रीते दृष्टांतोना उपदेशने मेळवीने मोक्षना अर्थी भव्य माणसोए उत्तरोत्तर दृष्टांत सरखा सर्व शक्तिथी थवुं, के जेथी मोक्षसुखनी संपदाओ जाणे हथेळीमां लोटती होय नहीं, तेम सुलभ थाय ॥ ३२ ॥

इत्युत्तरोत्तरनिदर्शनसंनिभा जो । भव्योत्तमा भवत सद्गुरुवाक्तटाके ॥ येनाप्य
संस्कृतिसुखानि जयश्रियाऽष्ट—कर्मद्विषां विलसथाक्षयमोक्षलक्ष्म्या ॥ ३३ ॥

॥ इति तपाश्रीमुनिसुंदरसूरिविरचिते उपदेशरत्नाकरे अष्टमस्तरंगः ॥

एवी रीते हे उत्तम भव्य लोको! तमो सद्गुरुनी वाणीरूपी तलावमां उत्तरोत्तर (मार्ग) दृष्टांत सरखा थाओ? के जेथी संसारना सुखो पामीने, आठे कर्मोरूपी शत्रुओनी जयलक्ष्मीवडे करीने अक्षय एवी मोक्षरूपी लक्ष्मी साथे तमो विलास करो ॥ ३३ ॥ " एवी रीते तपगच्छवाला श्रीमुनिसुंदर सूरिए रचेला उपदेश रत्ना-कर [illegible] थम "

इति अष्टमस्तरंगः समाप्तः

अथ नवमस्तरंगः

पुनर्न्नंग्यतरेण योग्याऽयोग्यानेवाह—मूलम् सप्प जलूगा वका । वकगवीसंनिहा चउह जीवा ॥ परिणमइ जेसु सव्वं । विसतारिसनासपयम्वं ॥ १ ॥

वळी प्रकारांतरें करीने योग्य तथा अयोग्योनुज स्वरूप कहे छे—मूळनो अर्थः—सर्प, जळो, वंध्यागाय, तथा अवध्या गाय, सरखा चार प्रकारना जीवो होयछे, के जेओने आपेलु सघलु कडवेर, तद्रूप, नाश तथा दूधरूपे परिणामे छे ॥ १ ॥

सर्पो, जलौका, वध्यागौ अवंध्या च एतत्सन्निभाश्चतुर्धा शिष्या जीवा वा जवति, सारूप्यनिरूपणार्थमुत्तरार्धमाह ॥ २ ॥ परिणामइत्यादि, येषु प्रदत्त सर्वं क्रमाद् विषतादृशनाशपयोरूप परिणमतीति पिण्डार्थ ॥ ३ ॥ तत्र यथा विषभृतां सशर्करदुग्धादेरपि पान विषायैव कल्पते, एवमेकेषा जीवाना शिष्याणा वा सुगुरोर्हिता सारा विविधा अप्युपदेशा सर्वेऽपि दूरे गुणा, प्रत्युताऽनर्थपरंपरायै जवंति ॥ ४ ॥ यथा श्रीपार्श्वजिनेशहितवचनानि पञ्चाग्निसाधनपरस्य कमठस्य ॥ ५ ॥ आह च—मूर्खैरपक्वबोधैश्च । सहालापश्चतु फल ॥ वाचा व्ययो मनस्ताप—स्ताडन दुष्प्रवादन ॥ ६ ॥

सर्प, जळो, वध्यागाय, तथा अवध्यागाय, तेओ सरखा चार प्रकारना शिष्यो अथवा जीवो होयछे, हवे तेओनु तुल्यपणु देखाडवामाटे उत्तरार्द्ध कहे छे ॥ २ ॥ जेओने आपेलु सर्व कइ अनुक्रमे झेर, तद्रुपपणु, विनाश तथा दूधरूपे परिणमेछे, एवो समुदायार्थ जाणवो ॥ ३ ॥ तेमां जेम झेरी प्राणीओने आपेलु साकर सहित दूध आदिकनु पान पण झेररूपेज थाय छे, तेम केटलाक जीवोने अथवा शिष्योने आपेला सुगुरुना हितकारी अने उत्तम एवा नानाप्रकारना सर्व उपदेशो पण, गुणो तो दूरे रह्या, परतु उलटा दोषोनी श्रेणि उत्पन्न करनारा थाय छे ॥ ४ ॥ जेम श्रीपार्श्वप्रभुनां हितकारी वचनो पञ्चाग्नि तापनारा कमठ प्रत्ये थया तेम ॥ ५ ॥ कह्यु छे के—काचा बोधवाळा अने मूर्खोनी साथे आलाप करवाथी वचनोनो व्यय, मनने खेद, ताडना तथा अपवाद एम चार प्रकारना फळो थाय छे ॥ ६ ॥

अन्यत्राप्युक्त—नाऽनाम्य नाम्यते दारु । न शस्त्र क्रमतेऽश्मनि ॥ सूचीमुख्या द्वाऽशिष्ये । नोपदेश सुखावह ॥ ७ ॥ तथाहि—क्वचिद्वने वानरयूथ शीतार्दितं खद्योतं गुंजा वाऽग्निधिया शुष्कतृणपर्णैराछाद्य प्रसार्य भुजाद्यंगानि तापमनोरथसुखमनुभवति ॥ ८ ॥ तत्रैक शाखामृगो भृश शीतार्त्तस्तन्मुहुर्मुहुर्धमति, सूचिमुखी पक्षिणी तत्रासन्ना प्राह ॥ ९ ॥ जड मा क्लिश्य, नाय वह्नि, गुंजाय्येतत्, पुन पुन कथने तेन वानरेण रुषा शिलायामास्फाल्य सा हतेति ॥ १० ॥ एवविधा. शिष्या जीवा वा सर्पसदृशा इति ॥ ११ ॥

वीजी जगोए पण कह्यु छे के, न नमावी शकाय तेवु वृक्ष नमावी शकातु नथी, तेमज पत्थरपर हथीयार चाली शकतु नथी, तेवी रीते कुशिष्य प्रत्ये आपेलो उपदेश, सूचीमुखीपक्षिणीना उपदेशनी पेठे सुखकारी थतो नथी ॥ ७ ॥ ते सूचीमुखी पक्षिणीनु उदाहरण नीचे कहे छे काईक वनमां ठंडीथी पीडायेलु वादराओनु टोलु पतगीआ अथवा चणोठीओने अग्निनी बुध्धिथी सूका पादडाओथी ढाकीने, तथा पोताना हाथ आदिक अवयवोने पसारीने तापना मनोरथ सबधि सुखने अनुभवे छे ॥८॥ त्या एक वादरो ठंडीथी अत्यत पीडीत थयो थको तेने वारवार फुके छे; एटलामा त्या नजदीक रहेली सूचीमुखी पक्षिणी (सूघरी) तेने कहेवा लागी के ॥ ९ ॥ हे जड, वृथा प्रयत्न न कर ? आ कइ अग्नि नथी, आ तो चणोठी आदिक छे, एवी रीते वारवार कहेवाथी ते वादरे गुस्से थइने, तेणीने पत्थरपर पछाडीने मारी नाखी ॥ १० ॥ माटे एवी रीतना शिष्यो अथवा जीवो सर्प सरखा छे, ॥ ११ ॥

तथा यद्धज्जलौकसो यादृश रक्तादिक पिबति तादृशमेवोदरगत धारयंति, न पुन परिणामांतर किमपि प्रापयति ॥ १२ ॥ एवमेके जीवा. श्रीगुरूपदेशादि यथाश्रुत धारयति न पुनर्विशेषबोधजनकत्वापादनेन परिणामातर प्रापयति, साधुज्ञिर्नटो न विलोक्यत इत्युक्ते नटीविलोकिमुन्यादिवत् कुलपुत्रकवच्च ॥ १३ ॥ तथाहि एकस्मिन् पुरे एका स्त्री नर्त्तरि मृते लघुपुत्र परगृहकर्मादिभिर्जीवयत्, स सुतो वर्धमानो मातर पृच्छति, कथ मम पिता आजीविका कृतवान् ॥ १४ ॥ माताह अवलगनेन, स आह अहमप्यवलगामि, साह न जानास्यवलगितु, स आह कथमवलग्यते? ॥ १५ ॥

वळी जेम जळो जेनु रुधिर आदिक. पीये छे, तेनुज पोताना पेटनी अदर ते धारी राखे छे, परतु तेमा कइ पण जातनो ते फेरफार करी शकती नथी ॥ १२ ॥ एवी रीते केटलाक जीवो, जेम साम्भळ्यो होय तेम श्री गुरुनो उपदेश आदिक धारी राखे छे, परतु विशेष प्रकारना बोधने उत्पन्न करवा वडे करीने परिणामातरने प्राप्त करी शकता नथी, (कोनी पेठे? तोके) साधुओए नट न जोवो एम कह्या छता नटीने जोनार साधुओनी पेठे, तथा कुलपुत्रनी पेठे ॥ १३ ॥ ते कुलपुत्रनु दृष्टात कहे छे—एक नगरमा एक स्त्री, पोतानो स्वामी गुजरी जवाथी पोताना नाना पुत्रने बीजाना घरमा काम आदिक करीने उछेरवा लागी, पछी ज्यारे ते पुत्र मह्टोटो थयो त्यारे तेणे पोतानी माने पुछ्युं के, मारो पिता केवी रीते आजीविका करतो? ॥ १४ ॥ त्यारे माताए कह्यु के, कोइनी सेवा करीने ते आजीविका चलावतो हतो, त्यारे पुत्रे कह्यु के, हु पण त्यारे कोइनी सेवा करु, त्यारे माताए कह्यु के, तु हजु सेवा करवानु जाणतो नथी, पुत्रे कह्यु केम सेवा कराय? ॥ १५ ॥

साहु विनय कुर्वीथा॰, कीदृशो विनय इत्युक्ते पुन साहु, योत्कार कर्तव्यो, नीच चंक्रमितव्य, छंदोऽनुवर्तिना जाव्यमिति ॥ १६ ॥ तत स नृप कचिदवलगितु नगर प्रति प्रतस्थे, अतराले अनेन व्याधा मृगग्रहणाय रह स्था दृष्टा, गाढस्वरेण योत्कारो जणित॰ ॥ १७ ॥ त श्रुत्वा मृगास्त्रस्ता., तै. कुट्टित, सद्भावे कथिते मुक्त., जणित च यदेदृशं प्रेक्षेथा, तदा रहो नीचैर्गतव्य ॥ १८ ॥ ततस्तेन रजका दृष्टा, ततो रह॰ शनै॰शनैर्याति, रजकाणा च प्राग् वस्त्राणि ह्रियंते तैर्गूढ-पुरुषा नियुक्ताश्चौरप्रचारविलोकनाय ॥ १९ ॥ तैश्चौर इति कृत्वा बद्ध, सद्भावे कथिते मुक्त॰, तैर्जणितं च, एवविधे शुद्धं जवस्विति वाच्य ॥ २० ॥

त्यारे माताए कह्युं के, तारे विनय करवो जोइये वळी पुत्रे पूछ्युं के, विनय केवो होय? त्यारे तेणीए कह्युं के, जुहार करवो, धीरे रहीने चालवुं, तथा (शेठनी) इच्छा मुजब वर्तवुं ॥ १६ ॥ पछी ते कोइक राजानी सेवा माटे नगर प्रत्ये चाल्यो, वच्चे मार्गमां तेणे हरिणोने पकडवा माटे गुप्त रीते रहेला पारधिओने दीठा, त्यारे मोटा अवाजथी तेणे जुहार कर्यो ॥ १७ ॥ ते सांभळीने हरिणो चमक्या, तेथी पारधिओए तेने मार्यो तथा खरी वात कहेवाथी छोड्यो; अने वळी कह्युं के, ज्यारे आवुं जो, त्यारे गुप्त रीते हळवेथी जावुं ॥ १८ ॥ पछी तेणे धोबीओने जोया, त्यारे गुप्त रीते ते धीरे धीरे जवा लाग्यो, हवे धोबीओना प्रथमथीज वस्त्रो चोराता हता, तेथी तेओए चोरोनी तपास माटे गुप्त माणसो राख्या हता, ॥ १९ ॥ तेओए तेने चोर जाणीने बांध्यो खरी वात कह्या बाद छोड्यो, अने कह्युं के, ज्यारे आम होय त्यारे शुद्ध थाओ? एम कहेवुं ॥ २० ॥

ततोऽग्रे बीजान्युप्यते, तेन तत्र जणित शुद्ध जवतु, तैरपि हत., सद्भावे कथिते मुक्त, उक्त च ॥ २१ ॥ ईदृशो वहु जवत्वित्युच्यते, अन्यत्र मृतक नीयमानं दृष्ट्वा वदति, ईदृश वहु जवतु ॥ २२ ॥ तत्रापि हतो मुक्तश्च, तथैव उक्त च, ईदृशे ज-ण्यते, एवविधस्यात्यत वियोगो जवतु, अन्यत्र विवाहे जणति अत्यत वियोगो जवतु ॥ २३ ॥ तत्रापि कुट्टितो मुक्तश्च, तथैव उक्त च, ईदृशे जण्यते, नित्यमेवविधानि प्रेक्षध्व, शाश्वत च जवत्वेतत् ॥ २४ ॥ अन्यत्र निगमबद्ध दण्डिक दृष्ट्वा जणति, नि-त्यमेवविधानि प्रेक्षस्व, शाश्वत च जवत्वेतत्, तत्रापि हतो मुक्तश्च, तथैव जणित ॥ २५ ॥

पछी आगळ चालतां बीजो वाववामां आवता हता, त्यां तेणे कह्युं के, शुद्ध थाओ? तेओए पण तेने मार्यो, खरी रीतना कहेवाथी छोड्यो, अने कह्युं के ॥ २१ ॥ आवे समये घणुं थाओ? एम कहेवाय, पछी बीजी जगोए मडदुं लेइ जवातुं जोइने तेणे कह्युं के, आवुं घणुं थाओ? ॥ २२ ॥ त्यां पण मार पड्यो अने छुट्यो, अने वळी तेने कह्युं के, आवुं होय त्यारे एम कहेवुं के, आवानो अत्यंत वियोग थाओ? वळी बीजी जगोए विवाह थतो हतो, त्यां जइ कह्युं के, अत्यंत वियोग थाओ? ॥ २३ ॥ त्यां पण मार पड्यो, अने छोड्यो तेमज शीखव्युं के, ज्यारे आवुं होय, त्यारे एम कहेवुं के, आवां कार्यों हमेशां जुओ? तथा आवुं शाश्वतुं थाओ? ॥ २४ ॥ वळी बीजी जगोए बेडीथी बंधेला कोटवाळने जोइने कह्युं के, आवुं हमेशां तुं जो? तथा आवुं शाश्वतुं थाओ? त्यां पण मार पड्यो, अने छोड्यो, तथा कह्युं के ॥ २५ ॥

एवंविधे लघु मोक्षो नवत्वित्युच्यते, अन्ये मित्रसघाटक कुर्वंति तत्र जणति, लघुमोक्षो नवतु, तत्रापि हतो मुक्तश्च ॥ २६ ॥ तथैव क्रमादेकं ग्रामाधिपतिपुत्रमाश्रितस्त सेवते, अन्यदा डुर्निक्षे तस्य गृहे रब्बा सिद्धा, ग्रामाधिपनार्यया जणितः स, याहि सनाजनमध्यात् शब्दायस्व स्वामिन ॥ २७ ॥ यतो रब्बा शीतला अयोग्या नवति, तेन गत्वा तथैव गाढस्वर जणित, स, लज्जित', गृहागतेन तेन ताडितो नणितश्च, ईदृशे कार्ये शनैः कर्णे कथ्यते ॥ २८ ॥ अन्यदा गृह प्रदीप्त, ततो गत्वा कर्णे शनै' कथयति यावत् तावत् गृह सर्वं प्रज्वलित, ताडितो जणितश्च ॥ २९ ॥

आवु ज्यारे होय त्यारे एम कहेवु के, जलदी बुटकारो थाओ? एटलामा कोइक लोको मित्रोने एकठा करवानु करे छे, त्यां जइ कह्यु के, जलदी बुटापणु थाओ? त्या पण तेने मार पड्यो, अने बुट्यो ॥ २६ ॥ एवी रीते अनुक्रमे एक गामना स्वामिना पुत्रनो आश्रय करीने तेनी सेवा करवा लाग्यो, एक वखत दुकालमा तेने घेर राब तैयार करी हती, तेथी गामना स्वामिनी स्त्रीए तेने कह्यु के, तु जा? अने सनाना लोको माहेथी तारा शेठने बोलावी लाव? ॥ २७ ॥ केमके राब ठरी तथा अयोग्य थइ जाय छे, त्यारे तेणे त्या जइने मोटा अवाजथी ते मुजब कह्युं ते सांजळी शेठने लाज आवी, तथा घेर आवीने तेने मार्यो, अने कह्यु के, आवा कामना धीरेथी कानमां कहेवु ॥ २८ ॥ एक वखते घरमां आग लागी, तेथी जइने धीरेथी जेटलामा कानमा कहे छे, तेटलामा तो आखुं घर बळी गयु; ते वखते पण तेने मार पड्यो, अने शिखाव्यु के ॥ २९ ॥

एवंविधे आत्मनैव नीरमादौ कृत्वा गोजक्तादपि क्षिप्यते, यथाऽग्निर्विध्यायति ॥ ३० ॥ अन्यदा वेणीं धूपयतस्तस्य शिरसि गोजक्त क्षिप्तमित्यादि ॥ ३१ ॥ यथैष कुलपुत्रो यथाश्रुतमेवाऽवधारयत वचन, न तु तदभिप्रायविषयविशेषाद्यवबुद्धवान् ॥ ३२ ॥ एवं श्रुतमात्रग्राहिणो वचनविषयतात्पर्यायनभिज्ञा जीवा जलौक सदृशा इति, यथाच सा जलौका शूलाप्रयोगादिना पीत रुधिर निश्चौत्यमाना परिणामे दुःखिनी नवति ॥ ३३ ॥ तथा तेऽपि इहापि दुःखिन स्यु पदे पदे दृष्टान्तीकृतकुलपुत्रवदेव परत्रापि चेति ॥ ३४ ॥

ज्यारे आग थाय त्यारे पोतेज पाणीथी मांडीने गायना छाण मुत्र पण उपर नाखवु, के जेथी आग बुझी जाय ॥ ३० ॥ एक वखते शेठ पोते पोतानो चोटलो धुपता हता, ते वखते तेमना माथा उपर तेणे गायनु छाण फेंकवु, इत्यादि ॥ ३१ ॥ एवी रीते जेम ते कुलपुत्रे जेवु सांभल्यु हतु, तेवुज वचन धारी राख्यु हतु, परंतु तेना अभिप्रायना विषय संबंधि जेदने ते जाणी शक्यो नहीं ॥ ३२ ॥ एवी रीते फक्त सांभळेलुंज ग्रहण करनारा, तथा वचनोना विषयना तात्पर्य आदिकने नहीं जाणता, जीवो जळो सरखा जाणवा, वळी जेम ते जळो शूल वींचवा आदिकना प्रयोगवडे करीने पीधेलु रुधिर नीचोवाती थकी परिणामे दुःखी थाय छे ॥ ३३ ॥ तेम ते जीवो पण उपर मुजब दृष्टान्तरूप करेला कुलपुत्रनी पेठे आ लोक अने परलोकमां पण पगले पगले दुःखी थाय छे ॥ ३४ ॥

वध्येति यथा वध्याया गोर्दुग्धार्थिना बहुविधसरसघृतादिकचारिधान्यकार्पसिका-
दि बह्वपि दीयमान निष्फल दुग्धाद्यकारित्वात् ॥ ३५ ॥ तथा केषाचिज्जीवानां
बहुविधा अपि सुगुरूपदेशा निष्फलीजवंति ब्रह्मदत्तचक्रयादीनामिव तदुक्तं—
॥ ३६ ॥ उवएससहस्सेहि वि । वोहिज्जतो न बुजहाई कोई ॥ जह वम्भदत्त-
राया । उदायनिव मारओ चेव ॥३७॥ इति॥ तथा अवंध्याया धेनो पुनर्यथा यत्
किंचित् तृणाद्यपि दत्तं दुग्धादितया परिणमति, एव केषाचित् स्वल्पमपि गुरूपदिष्ट
महाफलाय कल्पते ॥ ३८ ॥ उपशमविवेकसंवरेति त्रिपद्यपि चिलातीपुत्रस्येव, ब-
हुपिच्छिआ एगपिच्छिओ दहु मिच्छई, इति वचनमिंद्रनागस्येव, यावज्जीवमनाकुट्टि-
रस्माकमिति वचन धर्मरुचेरिव चेति ॥ ३९ ॥

वध्या एटले जेम वाझणी गायने दूधनो अर्थी मनुष्य घणा प्रकारना सरस घी आदिक चारो धान्य तथा कपास आदिक घणु आपे छे, तोपण दूध नही करवाथी ते जेम निष्फळ जाय छे ॥ ३५ ॥ तेम केटलाक जीवोने घणा प्रकारना सुगुरुना उपदेशो पण ब्रह्मदत्त चक्री आदिकोनी पेठे निष्फळ थाय छे, ते माटे कहुं छे के ॥ ३६ ॥ ब्रह्मदत्त राजा, तथा उदायीने मारनार मनुष्यनी, जेम हजारोगमे उपदेशोथी बोध दइये, तोपण केटलाकोने उपदेश लागतो नथी ॥३७॥ इति वळी अवन्ध्य गायने जेम जे कइ घास आदिक देवामा आवे छे, अने ते दूधरूपे परिणमे छे, तेम केटलाक मनुष्योने अल्प एवो पण गुरुनो उपदेश महान् फळदायक थाय छे ॥ ३८ ॥ जेम 'उपशम, विवेक अने सवर' ए त्रण पदो चिलाती पुत्रने, तथा 'हे बहु पिछवाळा! एक पिछवाळो तने जोवाने इच्छे छे' एवु वचन जेम इद्रनाग प्रत्ये, तथा छेक जीवीत पर्यंत अनारंभिपणु अमारु एवु वचन धर्मरुचि प्रत्ये॥ ३९ ॥

विषभृदादिनिदर्शनतो गुणा—ऽगुणजमतरमित्युपदेशग ॥ अभिनिवुध्य यतेत सुधी-
र्गुणा—द्यभिसमीह्य विमोहजयश्रिये ॥ ५० ॥

॥ इति तपाश्रीमुनिसुदरसुरिविरचिते श्रीउपदेशरत्नाकरे नवमस्तरग ॥

एवी रीते उपदेशनी अदर रहेला गुण तथा अवगुणथी उत्पन्न थता अतरने फेरवाळा आदिकना उदा-
हरणथी जाणीने, उत्तम बुद्धिवान् माणसे गुणो आदिकने जोडने मोहनो जय करवानी लक्ष्मी माटे यत्न करवो ॥ ५० ॥

॥ एवी रीते तपगच्छवाळा श्रीमुनिसुदरसूरिजीए रचेला श्रीउपदेशरत्नाकर नामे प्रथम नवमो तरग समाप्त थयो ॥

इति नवमस्तरंगः समाप्तः

अथ दशमस्तरंगः

उभयलोकसुखावहस्य सम्यग्धर्मस्योपदेश सर्वत्र गुणावह एवेति तदारम्भे योग्याऽयोग्यस्वरूपनिरूपण व्यर्थमित्याशंकानिरासाय आह ॥ १ ॥

बन्ने लोकमां सुखकारी एवा सम्यग् धर्मनो उपदेश सर्व जगाए गुणकारीज छे, एटलामाटे तेना आरंभमा योग्य अयोग्यना स्वरूपनु निरूपण करवु व्यर्थ छे, एवी रीतनी आशंका दूर करवा माटे हवे कहे छे ॥ १ ॥

मूलम्—जिन्नाजिन्नजराइसु । होइ जहा इक्कमेव गोखीरं ॥ गुणदोसप्पयवत्तिकरं सुहगुरुवयणं तह जीएसु ॥ १ ॥ जीर्णाऽजीर्णज्वरयोः, आदिशब्दात् पित्तश्लेष्मादिषु च, यथा एकमेव गोक्षीरं क्रमात् गुणदोषोत्पत्तिकरं जवति, जीर्णज्वरे पित्तादौ च गुणकरं, अजिनवज्वरे श्लेष्मादौ च दोषकरं ॥ ३ ॥ तथा गोदुग्धवत् माधुर्यादिगुणमुजयलोकहितावहं, सम्यग् धर्मतत्त्वैकप्ररूपकं सुगुरुवचनं जीवेषु योग्याऽयोग्येषु क्रमात् गुणदोषोत्पत्तिकरं स्यात् ॥ ४ ॥ जीर्णमिथ्यात्वमोहनीयादिकर्मतया योग्येषु गुणकरं, श्रीवर्धमानजिनवचनं श्रीइन्द्रजूत्यादिष्विव, श्रीथावच्चापुत्रसूरिवचनं सुदर्शनश्रेष्ठिशुकपरिव्राजकादिष्विव च ॥ ५ ॥

मूळनो अर्थ.—जीर्ण तथा अजीर्ण ताव आदिकमां, एकज एवुं पण गायनुं दूध, जेम गुण अने दोषनी उत्पत्ति करनारुं छे, तेम जीवो प्रत्ये शुज गुरुनुं वचन पण गुणदोष करनारुं छे ॥ १ ॥ जीर्ण तथा अजीर्ण ज्वरमां, आदि शब्दथी पित्त तथा श्लेष्म आदिकमां पण, जेम एकज एवुं गायनुं दूध, अनुक्रमे गुणदोषनी उत्पत्ति करनारुं थाय छे, अर्थात् जीर्णज्वर तथा पित्त आदिकमां जेम ते गुणकारी छे, तथा नवा तावमां अने श्लेष्म आदिकमां दोषकारी छे ॥ ३ ॥ तेम गायना दूधनी पेठे मधुरता आदिक गुणोवाळुं, बन्ने लोकमां हितकारी, तथा एक सम्यग् धर्मने प्ररूपनारुं एवुं सुगुरुनुं वचन, योग्य तथा अयोग्य जीवो प्रत्ये अनुक्रमे गुणदोषनी उत्पत्ति करनारुं थाय छे ॥ ४ ॥ अर्थात् जीर्ण थयेला एवा मिथ्यात्व मोहनीयादिक कर्मपणाये करीने योग्यो प्रत्ये गुणकारी थाय छे; (कोनी पेठे? तो के) श्री वर्धमान प्रभुनुं वचन जेम श्री इंद्रजूति आदिको प्रत्ये, तथा श्री थावच्चापुत्र आचार्यनुं वचन जेम सुदर्शन शेठ तथा शुकपरिव्राजक प्रत्ये ॥ ५ ॥

बहुलतत्कर्मतया योग्यतामनाप्तेषु च दोषोत्पत्तिकर, यथा श्रीपार्श्वजिनस्य हितोपदेश पञ्चाग्निसाधनादिकष्टानुष्ठानपरे कमठतापसे, ततो योग्याऽयोग्यपरीक्षा फलवतीति ॥ ६ ॥

॥ इति श्रीतपागच्छे श्रीमुनिसुंदरसूरिविरचिते श्रीउपदेशरत्नाकरे दशमस्तरग समाप्त ॥

वळी जारे कर्मीपणाथी योग्यताने नहीं प्राप्त थयेला मनुष्यो प्रत्ये ते दोषनी उत्पत्ति करनार थाय छे, जेम श्रीपार्श्वप्रभुनो हितोपदेश, पंचाग्नि साधन आदिक कष्ट क्रियामां तत्पर थयेला कमठतापस प्रत्ये थयो, माटे योग्य अयोग्यनी परीक्षा फळवाळी छे ॥ ६ ॥

॥ एवी रीते श्री तपगच्छमां श्री मुनिसुंदरसूरिजीए रचेला श्री उपदेशरत्नाकरमां दशमो तरंग समाप्त थयो ॥

एकादशस्तरंगः

पुनरस्यैवार्थस्य दृढीकरणायाह—मूलम्—इकावि मेहवुट्ठी । मणिमुत्ताविविहधन्नफलहेउ ॥ रयणागराइसु जहा । सुहगुरुवयणं तह जीएसु ॥ १ ॥

वळी तेज अर्थने दृढ करवा माटे कहे छे.—मूळनो अर्थः—जेम एकज एवी मेघनी वृष्टि रत्नाकर आदिकोने विषे, मणि, मोती, विविध प्रकारना धान्य तथा फळोना हेतुरूप थाय छे, तेम जीवो प्रत्ये शुभ गुरुनुं वचन जाणवुं ॥ १ ॥

यथा एकापि मेघवृष्टि रत्नाकरे रोहणा—चलादौ, आदिशब्दान्मुक्ताफलाकरे ताम्रपर्ण्यादौ विविधधान्यफलाकरादिषु च क्षेत्रविशेषेण, विविधाना उत्तममध्यमाधमादीना मणीना मुक्ताफलानां धान्याना फलानामुपलक्षणादन्येषामपि विविधौषध्यादीना च निष्पत्तिहेतु ॥ २ ॥ तथा सद्गुरुवचन जीवेषु उत्तमोत्तमादिषु स्वस्वयोग्यताद्यनुसारेण मणिमुक्ताफलादिसमधर्मादिफलसिद्धिहेतुर्भवति ॥ ३ ॥ तथा चोक्त—आम्रे निंबे सुनीथे कचवरनिचये शुक्तिमध्येऽहिवक्त्रे। औषध्यादौ विषद्रौ गुरुसरसि गिरौ पाण्डुभूकृष्णभूम्यो. ॥ इक्षुक्षेत्रे कषायद्रुमवनगहने मेघमुक्त यथाम्ब—स्तद्वत्पात्रेषु दत्त गुरुवदनजव वाक्यमायाति पाक ॥ ४ ॥

जेम एक ज्वी पण मेघनी वृष्टि, रत्नाकरमा, एटले रोहणाचल आदिकमा, आदि शब्दथी मोतीओनी ज्या उत्पत्ति थाय छे, तेम, ताम्रपर्णी नदी आदिकमा तथा क्षेत्र विशेषकरीने ज्या नाना प्रकारना धान्य तथा फल आदिको उत्पन्न थाय छे त्या, नाना प्रकारना उत्तम, मध्यम आदिक मणिओनी मोतीओनी धान्योनी, फलोनी तथा उपलक्षणथी विविधप्रकारनी ओषधि आदिक अन्यप्रकारनी वस्तुओनी पण उत्पत्तिना हेतुरूप थाय छे ॥ २ ॥ तेम सद्गुरुनु वचन पण उत्तमोत्तम आदिक जीवो प्रत्ये पोतपोतानी योग्यताने अनुसारे, मणि तथा मोति आदिक सरखा धर्म आदिक फलोनी उत्पत्तिना हेतुरूप थाय छे ॥ ३ ॥ कह्युछे के—आम्रपर, लींबडापर उत्तमतीर्थमा, कचराना ढगमा, छीपमा, सर्पना मुखमा ओषधी आदिकमा, झेरी वृक्षपर, मोटा तळावमा, पर्वतपर सफेद तथा श्याम भूमीपर, सेलडीना वाढमा तथा कषायना वृक्षोवाळा घाटा वनमा, वरसादनु पाणी जेम विविध प्रकारनो पाक उपजावे छे, तेम गुरुना मुखथी निकळेलु वाक्य पात्रो प्रत्ये देवाथी फळने प्राप्त थाय छे ॥ ४ ॥

ततो योग्यस्वरूपं सम्यगवधार्य योग्येभ्योपदेश्यमिति॥ ९ ॥

॥ इति एकादशस्तरंग. समाप्त· ॥

माटे योग्य मनुष्यनु स्वरुप सारी रीते जाणीने योग्यो प्रत्येज उपदेश देवो ॥ ९ ॥

॥एवी रीते अग्यारमो तरंग समाप्त थयो ॥

एकादशस्तरंगः समाप्तः

अथ द्वादशमस्तरंग:

इदानीं प्रकारांतरेण योग्याऽयोग्यस्वरूपप्रकटनाय आगमगाथामेवाह—मूलम् ॥—
सेल घण कुडगचालणि । परिपूणग हंस महिस मेसे अ ॥ मसग जलुग बिराली
जाहग गोभेरि आभीरी ॥ १ ॥

हवे बीजा प्रकारथी योग्य तथा अयोग्यनुं स्वरूप प्रगट करवा माटे आगमनी गाथाज कहे छे, मूळनो अर्थ.—मगशेल पाषाण अने वरसाद, घडो, चालणी, सुघरीनो माळो, हंस, पाडो, घेटो, मशक, जळो, बीलाडी, शेरो, गाय, भेरी तथा आभीरी, (एटलां उदाहरणो जाणवां) ॥ १ ॥

एतानि शिष्ययोग्याऽयोग्यत्वप्रतिपादकान्युदाहरणानीति ॥ २ ॥ सेलत्ति, शैल. मुद्ग-प्रमाण पाषाणविशेष, घनो मेघ., शैलश्च घनश्च शैलघन. तदुदाहरणं प्रथम ॥ ३ ॥ कुटो घटः, चालणी प्रतीता परिपूणक सुघरीचिटिकागृह, हंसमहिषमेषमश-कजलौकाबिडालाश्च प्रतीता. ॥ ४ ॥ जाहक· सेहुलक गौ त्नेरी आजीरी च प्रतीता ॥ ५ ॥ उदाहरण च द्विधा जवति, चरित कल्पित च, उक्त च—चरिय व कप्पिय वा आहरण डुविहमेव पन्नत्त, अत्थस्स साहणट्ठा इंधणमिव ओयणट्ठाए ॥ ६ ॥

एवी रीते उपर वर्णवेला उदाहरणो शिष्यना योग्य अयोग्यपणाने प्रतिपादन करनारा छे ॥ २ ॥ शैल एटले मग जेवमो पाषाणविशेष, तथा घन एटले मेघ, अर्थात् मगशेलीओ पाषाण अने मेघ, ए पेहेलु उदाहरण जाणवु ॥ ३ ॥ कुट एटले घडो, चालणी प्रसिद्ध छे, परिपूणक एटले सुघरी नामनी चकलीओनो मालो, हंस, पाडो, घेटो, मशक, जलो, तथा बिलाडी. ए प्रसिद्ध छे ॥ ४ ॥ जाहक एटले शेरो, गाय तथा आजीरी एटले ग्वालण ए प्रसिद्ध छे ॥ ५ ॥ हवे उदाहरण बे प्रकारनु होय छे, एक चरित एटले साचु बनेलु तथा बीजु कल्पित वस्तु छे के—जेम चावल माटे इंधन, तेम अर्थने साधवा माटे चरितरूप अने कल्पित एम बे प्रकारनु उदाहरण कहेलु छे ॥ ६ ॥

तत्थ इम कप्पिय, त जहा, मुग्गसेलो पुरक्खलसंवट्टतो—य महामेहो जंबुदीवप-माणो तत्थ य नारयत्थाणीतो कलह आजोएइ मुग्सेल नणति ॥ ७ ॥ तुज्ऊ नामग्गहणे कए पुरक्खलसवट्टतो नणइ जहा ण एगाए धाराएविराएमित्ति, नह्नीति नावार्थं ॥ ८ ॥ सेलो जप्पासितो नणइ, जइमे तिलतुसतिनागपि उल्लेइ तो नामननहामि ॥ ए ॥ पम्हामेहस्स मूले नणइ मुग्सेलवयणाइ, ततो सो कुवितो सव्वायरेण जुगप्पमाणाहि धाराहि वरसिउमारद्धो ॥ १० ॥ सत्तरत्तेवुट्ठो चितेइ इयाणि गतो सो वरागोत्ति ठितो, इयरो मिसमिसतो उज्जलतरो जातो दिप्पिउमारद्धो नणइ जोहारोत्ति, मेगो लज्जितो गतो ॥ ११ ॥

तेमा आ कल्पित दृष्टात छे ते कहे छे मगशेलीओ पाषाण मग जेवडो हतो, तथा पुष्करावर्त्त महामेघ जबूद्वीप जेवडो हतो, तेने नारदे अहीं आवीने परस्पर कलह कराव्यो, पछे ते मगशेलीआने कहे छे के ॥ ७ ॥ तारु नाम ग्रहण करवाथी पुष्करावर्त्त मेघ कहे छे के, हु तेने मारी एक धाराथी गळावी नाखु, अर्थात् नष्ट करु ॥ ८ ॥ त्यारे मगशेलीओ गर्व लावीने कहे छे के, जो मारा तिलतुष मात्र भागने पण ते गळावे, तो हु मारु नाम पण धारण करु नहीं ॥ ए ॥ पछी मेघ पासे जइने नारदे मगशेलीयाना वचनो कह्या, तेथी ते कोपायमान थइने घोसरा जेवडी धाराओथी सर्व प्रकारना आदरे करीने वरसवा लाग्यो ॥ १० ॥ सात रात सुधी वरस्या बाद ते विचारवा लाग्यो के, हवे ते वराक एवो मगशेलीओ नष्ट थयो हशे, एम विचारी ते बध पड्यो, एटलामां तो ते मगशेलीयो चकचकाट करतो वधारे उज्ज्वल थयो, तथा दीपायमान थइने मेघने जुहार करवा लाग्यो, त्यारे मेघ लज्जायमान थइ चालतो थयो ॥ ११ ॥

एव कोइ सीसो मुग्गसेलसमाणो एगपि पय नावगाहइ, ततो अन्नो आयरिओ गज्जंतो आगओ ॥ १२ ॥ एहण गाहेमि, पठति च गर्वाध्मातमानस —आचार्यस्यैव तज्जाड्य यच्छिष्यो नावबुध्यते ॥ १३ ॥ गावो गोपालकेनैव कुतीर्थेनावतारिता, ततो पढावेउमारद्धो, म सक्कितो लज्जितो ॥ १४ ॥ एरिस्स न दायव्वं, कस्मादिति चेत् उच्यते, इह यस्माद्वन्ध्या गौ शिर स्तनजघनपृष्टपुच्छोदरादौ सस्नेह स्पृष्टा सती दुग्धप्रदायिनी भवति ॥ १५ ॥ तथा स्वाभाव्यादेव मेपोऽपि सम्यक्पाठ्यमानोऽपि पदमप्येकं नावगाहति, ततो न तस्य तावदुपकार. ॥ १६ ॥

एवी रीते कोइक शिष्य के जे मगशेलीआ सरखो होय, ते एक पदनो पण अभ्यास करी शकतो नथी, त्यारे बीजो आचार्य गाजतो थको आवे छे ॥ १२ ॥ अने कहे छे के, हु ते शिष्यने भणावी आपु, तेमज वळी मनमा गर्व लावीने ते आचार्य कहे छे के, शिष्य जे भणी शकतो नथी, तेनु कारण आचार्यनीज मूर्खाइ छे ॥ १३ ॥ गायोने गोवाळेज अवळे मार्गे चरावी छे, इत्यादिक वचनोने तेने भणाववा लागे छे, परतु भणवी नहीं शकवाथी ते लज्जातुर थाय छे ॥ १४ ॥ माटे एवी रीतना शिष्यने धर्मोपदेशादिक नहीं देवु, शामाटे? एम जो कोइ शका करे, तो ते माटे कहीये छीये के, वाझणी गायने मस्तक, स्तन, साथळ, पीठ, पुच्छ तथा उदर आदिक प्रत्ये स्नेहसहित स्पर्श करवाथी पण ते दूध देइ शकती नथी ॥ १५ ॥ तेम आ शिष्य पण, सारी रीते भणाव्या छता पण स्वभावथीज एक पण पदने जाणी शकतो नथी; अने तेथी ते प्रत्ये उपकार थइ शकतो नथी ॥ १६ ॥

तत्थ इम कप्पिय, त जहा, मुग्गसेलो पुरक्खलसवट्टतो—य महामेहो जबुद्दीवप-माणो तत्थ य नारयत्थाणीतो कलह आजोएइ मुग्सेल जणति ॥ ७ ॥ तु-ज्झ नामग्गहणे कए पुरक्खलसवट्टतो जणइ जहा ण एगाए धाराएविराएमित्ति, नहीति जावार्य ॥ ८ ॥ सेलो जप्पासितो जणइ, जइमे तिलतुसतिजागपि उल्लेइ तो नामनरहामि ॥ ९ ॥ पह्यमेहस्स मूले जणइ मुग्सेलवयणाइ, ततो सो कुवितो सव्वायरेण जुगप्पमाणाहि धाराहि वरसिउमारद्धो ॥ १० ॥ सत्तरत्तेवुट्ठो चितेइ इ-याणि गतो सो वरागोत्ति ठितो, इयरो मिसमिसतो उज्जलतरो जातो दिप्पिउमारद्धो जणइ जोहारोत्ति, मेगो लजितो गतो ॥ ११ ॥

तेमा आ कल्पित दृष्टात छे ते कहे छे मगशेलीओ पाषाण मग जेवडो हतो, तथा पुष्करावर्त्त महामेघ जबूद्वीप जेवडो हतो, तेने नारदे अहीं आवीने परस्पर कलह कराव्यो, पछे ते मगशेलीआने कहे छे के ॥ ७ ॥ तारु नाम ग्रहण करतांथी पुष्करावर्त्त मेघ कहे छे के, हु तेने मारी एक धारायी गळावी नाखु, अर्थात् नष्ट कर ॥ ८ ॥ त्यारे मगशेलीओ गर्व आवीने कहे छे के, जो मारा तिलतुष मात्र भागने पण ते गळावे, तो हु मारु नाम पण धारण करु नहीं ॥ ९ ॥ पछी मेघ पासे जइने नारदे मगशेलीयाना वचनो कह्या, तेथी ते कोपायमान थइने धोंसरा जेवडी धाराओथी सर्व प्रकारना आदरे करीने वरसवा लाग्यो ॥ १० ॥ सात रात सुधी वरस्या बाद ते विचारवा लाग्यो के, हवे ते वराक एवो मगशेलीओ नष्ट थयो हशे, एम विचारी ते बध पड्यो, एटलामा तो ते मगशेलीयो चकचकाट करतो वधारे उज्ज्वल थयो, तथा दीपायमान थइने मेघने जुहार करवा लाग्यो, त्यारे मेघ लज्जायमान थइ चालतो थयो ॥ ११ ॥

एव कोइ सीसो मुग्गसेलसमाणो एगपि पयं नावगाहइ, ततो अन्नो आयरिओ गजतो आगतो ॥ १२ ॥ एहणं गाहेमि, पठति च गर्वाध्मातमानसः—आचार्यस्यैव तज्जाड्य यच्छिष्यो नावबुध्यते ॥ १३ ॥ गावो गोपालकेनैव कुतीर्थेनावतारिता, ततो पढावेउमारद्धो, म सक्किनो, लज्जितो ॥ १४ ॥ एरिस्स न दायव्वं, कस्मादिति चेत् उच्यते, इह यस्मान्न वंध्या गौ शिर स्तनजघनपृष्टपुच्छोदरादौ सस्नेहं स्पृष्टा सती दुग्धप्रदायिनी जवति ॥ १५ ॥ तथा स्वाजाव्यादेव मेपोऽपि सम्यक्पाठ्यमानोऽपि पदमप्येकं नावगाहति, ततो न तस्य तावडुपकार. ॥ १६ ॥

एवी रीते कोइक शिष्य के जे मगशेळीआ सरखो होय, ते एक पदनो पण अभ्यास करी शकतो नथी, त्यारे बीजो आचार्य गाजतो थको आवे छे ॥ १२ ॥ अने कहे छे के, हु ते शिष्यने जणावी आपु, तेमज वळी मनमा गर्व लावीने ते आचार्य कहे छे के, शिष्य जे जणी शकतो नथी, तेनु कारण आचार्यनीज मूर्खाइ छे ॥ १३ ॥ गायोने गोवाळेज अवळे मार्गे चरावी छे, इत्यादिक ववमीने तेने जणाववा लागे छे, परतु जणावी नहीं शकवाथी ते लज्जातुर थाय छे ॥ १४ ॥ माटे एवी रीतना शिष्यने धर्मोपदेशादिक नहीं देवु, शामाटे? एम जो कोइ शका करे, तो ते माटे कहीये छीये के, वाझणी गायने मस्तक, स्तन, सायळ, पीठ, पुच्छ तथा उदर आदिक प्रत्ये स्नेहसहित स्पर्श करवाथी पण ते दूध देइ शकती नथी ॥ १५ ॥ तेम आ शिष्य पण, सारी रीते जणाव्या छता पण स्वजावथीज एक पण पदने जाणी शकतो नथी; अने तेथी ते प्रत्ये उपकार थइ शकतो नथी ॥ १६ ॥

आस्ता तस्योपकाराऽभाव, प्रत्युताचार्ये सूत्रेवाऽपकीर्त्तिरुपजायते, यथा न सम्यक् कौशल्यमाचार्यस्यव्याख्याया, इदं वाऽध्ययनं न समीचीन, कथमयमन्यथा नावबुध्यते, इति ॥ १७ ॥ अपि च तथाविधकुशिष्यपाठने तस्याऽवधानाऽभावात् उत्तरोत्तर-सूत्राऽर्थाऽनवगाहनत सूरे सकलावपि शास्त्रांतरगतौ सूत्रार्थौ प्रशमाविशतोऽन्ये-षामपि च पटुश्रोतृणामुत्तरोत्तरसूत्रार्थावगाहनहानिप्रसंग ॥ १८ ॥ उक्तञ्च— आयरिए सुत्तमिय । परिवाओ सुत्तअत्थपलिमथो ॥ अन्नेसि पिय हाणी पुट्ठाविन दुद्धया वझा ॥ १९ ॥

वळी तेने उपकार न थाय, ए वात तो दूर रही, परंतु उलटी आचार्यनी तथा सूत्रनी पण अपकीर्त्ति थाय छे, जेमके, व्याख्यान आपवामां आचार्यनी हुशीयारी नथी, अथवा आ शास्त्र सारं (सुगम) नथी, जो तेम न होय तो आने प्रतिबोध केम न लागे ? इति ॥ १७ ॥ वळी तेवा प्रकारना कुशिष्यने भणाववाथी अने तेने ते अभ्यास स्मरणमां नहीं रहेवाथी आचार्यने पण उत्तरोत्तर सूत्रार्थोनु अवगाहन न थवाथी, शास्त्रांतरमां रहेला सघळा सूत्रार्थो नाशने प्राप्त थाय छे, अने तेथी बुद्धिवान् एवा बीजा श्रोताओने पण उत्तरोत्तर सूत्रार्थने जाणवानी हानिनो प्रसंग थाय छे ॥ १८ ॥ कह्यु छे के—(मृगशेलीया सरखा कुशिष्यने भणाववाथी) आचार्यनो तथा सूत्रनो अपवाद थाय छे, सूत्र अर्थनु ओछवसापणु थाय छे, तथा अन्य श्रोताओने पण हानि थाय छे, केमके स्पर्श कर्याथी पण कंइ वांझणी गाय दूझती नथी ॥ १९ ॥

मुद्गशैलप्रतिपक्षभूते योग्यशिष्यविषये दृष्टांत. कृष्णभूमिप्रदेश, तत्र हि प्रभूतमपि निपतित जलं तत्रैवांत परिणमति ॥ २० ॥ न पुन. किंचिदपि ततो बहिरपगच्छति, एव यो विनेय सकलसूत्रार्थग्रहणधारणे समर्थः स कृष्णभूमिप्रदेशतुल्य, स च योग्यस्ततस्तस्मै दातव्यमिदमध्ययनमिति ॥ २१ ॥ उक्त चवुट्टे वि दोणमेहे । न कण्ह भोमाउ लोट्टए उदय ॥ गहणधारणासमत्थे । इयदेयमच्छिदिकारिंमि ॥ २२ ॥ सप्रति कुटदृष्टातभावना, कुटा घटास्ते द्विविधास्तद्यथा, नवीना जीर्णाश्च, नवीना ये सप्रत्येव पाकत. समानीता, जीर्णा द्विविधा भाविता अभाविताश्च, भाविता द्विविधा, प्रशस्तद्रव्यभाविता अप्रशस्तद्रव्यभाविताश्च॥२३॥

मगशेळीयाथी प्रतिपक्षरूप एवा योग्य शिष्यना विषयमां श्यामभूमीनो प्रदेश दृष्टांतरूपे जाणवो, केमके तेमां घणेज घणु एवु पण जळ, तेमांज परिणामे छे, एटले समाइ जाय छे ॥ २० ॥ परंतु तेमांथी किंचित् मात्र पण बहार निकळी जतु नथी, एवी रीते जे शिष्य सघळा सूत्रार्थने ग्रहण करवामां तथा धारण करवामां समर्थ छे, ते कृष्णभूमीना प्रदेश सरखो छे, अने ते योग्य छे, माटे तेने आ शास्त्र भणाववुं ॥ २१ ॥ कह्यु छे के-द्रोणमेघ वरसते छते पण श्याम भूमीपरथी पाणी वही जतु नथी, माटे (सूत्रार्थने) ग्रहण करवामां तथा धारण करवामां समर्थ, अने आदथी अंत सुधी संपूर्ण अभ्यास करनारा शिष्य प्रत्ये शास्त्रोपदेश देवो ॥ २२ ॥ हवे घडाना दृष्टांतनी भावना कहे छे, कुट एटले घडा, अने ते बे प्रकारना छे, नवा अने जुना, नवा एटले पाकमांथी तुरत लावेला, जुना घडा बे प्रकारना छे, वासेला अने नहीं वासेला, वासेला बे प्रकारना, उत्तम पदार्थथी वासेला अने खराब पदार्थथी वासेला ॥ २३ ॥

तत्र ये कर्पूरागुरुचंदनादिभिः प्रशस्तद्रव्यैर्भावितास्ते प्रशस्तद्रव्यभाविताः, ये पुनः पलाण्डुलशुनसुरातैलादिभिर्भावितास्तेऽप्रशस्तद्रव्यभाविता ॥ २४ ॥ प्रशस्तद्रव्यवासिता अपि द्विधा वाम्या अवाम्याश्च, अभाविता नाम ये केनापि द्रव्येण न वासिता ॥ २५ ॥ एवंशिष्या अपि प्रथमतो द्विधा, नवीना जीर्णाश्च, तत्र ये बाल्यभावे वर्तमाना अज्ञानिनः, संप्रत्येवाऽवबोधयितुमारब्धास्ते नवीना ॥ २६ ॥ जीर्णा द्विविधा भाविता अभाविताश्च, तत्राऽभाविता ये केनापि दर्शनेन न वासिता, भाविता द्विविधा कुप्रावचनिकपार्श्वस्थादिभिः संविग्नैश्च ॥ २७ ॥

तेमां कपुर, अगर तथा चन्दन आदिकथी जे वासेला छे, ते शुभ पदार्थोथी वासेला कहेवाय, अने जे डुंगळी (प्याज) लसण, मदिरा तथा तेल आदिकोथी वासेला छे, ते अशुभ पदार्थोथी वासेला कहेवाय ॥ २४ ॥ शुभ पदार्थोथी वासेला घडाओ पण बे प्रकारना छे, एक खाली करी शकाय तेवा, अने बीजा खाली न करी शकाय तेवा, हवे नहीं वासेला एटले जे कोइ पण पदार्थथी वासित थयेला नथी ते ॥ २५ ॥ एवी रीते शिष्यो पण प्रथम बे प्रकारना होय छे, नवा अने जुना, तेमां जेओ बाल्य अवस्थामां वर्त्तनारा अज्ञानीओ छे, तथा जेओने हमणांज बोध आपवा मांड्यो छे, तेओ नवा शिष्यो कहेवाय छे ॥ २६ ॥ हवे जुना शिष्यो बे प्रकारना छे, वासित थयेला अने नहीं वासित थयेला, तेमां नहीं वासित थयेला एटले जेओ कोइ पण दर्शनथी वासित थयेला नथी, वासित थयेला शिष्यो बे प्रकारना छे, कुशास्त्रने प्ररूपनारा पासत्था आदिकोथी वासित थयेला, अने बीजा संवेगीओथी वासित थयेला ॥ २७ ॥

कुप्रावचनिकपार्श्वस्यादिभिरपि नाविता द्विधा, वाम्या अवाम्याश्च, सविग्नैरपि नाविता द्विधा., वाम्या अवाम्याश्च ॥ २८ ॥ तत्र ये नवीना ये जीर्णा अनाविता ये च कुप्रावचनिकादिनाविता अपि वाम्या, ये च सविग्ननाविता अवाम्यास्ते सर्वेपि योग्या, शेषा अयोग्या. ॥ २९ ॥ अथवाऽन्यथाकुटदृष्टातनावना, इह चत्वार. कुटास्तद्यथा, छिद्रकुटः, कण्ठहीनकुट., खण्डकुट, सपूर्णकुटश्च ॥ ३० ॥ यस्याधोबुध्ने छिद्र स छिद्रकुट., यस्य पुनरोष्टपरिमण्डलाऽजाव. स कण्ठहीन कुट, यस्य पुनरेकपार्श्वे खण्डेन हीनता स खण्डकुट., एव शिष्या अपि चत्वारो वेदितव्या. ॥ ३१ ॥

कुशास्त्रने प्ररूपनारा पासत्या आदिकोवडे करीने वासित थयेला शिष्यो पण बे प्रकारना छे, वामी शकाय तेवा, अने न वामी शकाय तेवा, सवेगीओथी वासित थयेलाओ पण बे प्रकारना छे, वामी शकाय तेवा, अने न वामी शकाय तेवा ॥ २८ ॥ तेओमा जेओ नवा, जेओ जुना अने नहीं वासेला, जेओ कुप्रावचनिकादिकोथी वासित छता वामी शकाय तेवा, जेओ सवेगीओथी वासित अने न वामी शकाय तेवा, एटला सर्वे योग्य शिष्यो छ, अने वाकीना अयोग्य शिष्यो छे ॥ २९ ॥ अथवा ते घडाना दृष्टातनी भावना बीजी रीते पण (नीचे मुजब) जाणवी, अहीं चार प्रकारना घडाओ छे. अने ते नीचे मुजब छे, छिद्रवाळो घडो, काठा विनानो घडो, टुकडा थयेलो घडो, अने सपूर्ण घडो ॥ ३० ॥ जे घडाना नीचेना भागमा छिद्र होय, ते छिद्रवाळो घडो कहेवाय, जे घडाना गळापर काठो न होय, ते काठाविनानो घडो कहेवाय; तेमज जे घडामा एक बाजुनो टुकडो न होय, ते भागेलो घडो कहेवाय, एवी रीते शिष्यो पण चार प्रकारना जाणवा ॥ ३१ ॥

तत्र यो व्याख्यानमण्डल्यामुपविष्ट सर्वमर्थमवबुध्यते, व्याख्यानादुत्थितश्च न किमपि स्मरति स छिद्रकुटसमान ॥ ३२ ॥ यथाहि छिद्रकुटो यावत्तदवस्थ एव गाढमवनितलसंलग्नोऽवतिष्ठते तावन्न किमपि जल तत श्रवति, स्तोक वा किंचिदिति ॥ ३३ ॥ एवमेषोऽपि यावदाचार्यं पूर्वापरानुसधानेन सूत्रार्थमुपदिशति तदवबुध्यते, उत्थितश्चेद्व्याख्यानमण्टया, तर्हि स्वय पूर्वापरानुसधानविकलत्वान्न किमप्यनुस्मरति ॥ ३४ ॥ यस्तु व्याख्यानमण्डल्यामप्युपविष्टोऽर्धमात्र त्रिभागचतुष्कवा हीन वा सूत्रार्थमवधारयति, यथावधारित च स्मरति स खण्डकुटसम ॥ ३५ ॥

तेमा जे शिष्य व्याख्यान मण्डळीमा बेठो थको सर्व अर्थने जाणे छे, तथा व्याख्यानथी उठ्या बाद जे कइ पण याद राखी शकतो नथी, ते शिष्य छिद्रवाळा घडा समान छे ॥ ३२ ॥ जेम छिद्रवाळो घडो ज्यासुधि एवीज रीते गाढपणे पृथ्वी पर [illegible] त्यासुधि तेमाथी जरा पण पाणी निकळतु नथी, अने निकळे छे, तोपण थोडु अथवा किंचित् निकळे छे ॥ ३३ ॥ एवीरीते ज्यासुधि आ आचार्य पण पूर्वापरना अनुसधानपूर्वक करीने सूत्रार्थने उपदेशे छे, त्यासुधि तेटलु ते जाणे छे, अने व्याख्यान मण्डळीमाथी जो उठी जाय तो पछी पोते पूर्वापरना अनुसधानना [illegible] कइ पण याद राखी शकतो नथी ॥ ३४ ॥ वळी जे शिष्य व्याख्यान मण्डळीमा बेसीने पण अर्धो अथवा चोथो भाग अथवा तेथी पण ओछा सूत्रार्थ जाणे छे, तथा जाणीने पुनः जे धारी राखे छे, ते [illegible] समान छे ॥ ३५ ॥

यस्तु किंचिदून सूत्रार्थमवधारयति, पश्चादपि च तथैव स्मरति स कण्ठहीनकुटसमानः ॥ ३६ ॥ यस्तु सकलमपि सूत्रार्थमाचार्योक्तं यथावदवधारयति, पश्चादपि च तथैव स्मृतिपथमवतारयति स संपूर्णकुटसमान ॥ ३७ ॥ अत्र छिद्रकुटसमान एकान्तेनाऽयोग्य., शेषा यथोत्तर प्रधाना' प्रधानतरा ॥ ३८ ॥ सम्प्रति चालनी दृष्टान्तभावना, चालनी लोकप्रसिद्धा यया कणिकादि चाल्यते, तत्र यथा चालन्यामुदकं प्रक्षिप्यमाण तत्क्षणादेव गच्छति, न पुन. कियतमपि कालमवतिष्ठते ॥ ३९ ॥ तथा यस्य सूत्रार्थः प्रदीयमानो यदेव कर्णे प्रविशति तदैव विस्मृतिपथमुपैति, स चालनीसमानः ॥ ४० ॥

परंतु जे कंइक ओछा एवा सूत्रार्थने धारी राखे छे, अने पाछळथी पण तेज मुजब जे याद राखे छे, ते कांठा विनाना घडा सरखो छे, ॥ ३६ ॥ वळी जे शिष्य आचार्ये कहेला सघळा सूत्रार्थने यथार्थ रीते धारी राखे छे, तथा पाछळथी पण तेवीज रीते याद राखे छे, ते संपूर्ण घडा सरखो छे ॥ ३७ ॥ अहीं छिद्रवाळा घडा सरखो एकांते अयोग्य छे, अने बाकीना उत्तरोत्तर श्रेष्ठ तथा वधारे श्रेष्ठ छे ॥ ३८ ॥ हवे चाळणीना दृष्टांतनी भावना कहे छे, चाळणी ए दुनियामां प्रसिद्ध छे, के जेणे करीने कणकी (आटो) आदिक चाळवामा आवे छे, ते चाळणीमां रेडातुं पाणी जेम तुरतज निकळी जाय छे, परंतु थोडो वखत पण ठेरी शकतु नथी ॥ ३९ ॥ तेम जेने उपदेशातो सूत्रार्थ ज्यारे कर्णमां प्रवेश करे छे, त्यारेज भूली जवामा आवे छे. ते शिष्य चाळणी सरखो छे ॥ ४० ॥

तया च मुद्गशैलच्छिद्रकुटचालनीसमानशिष्यभेदप्रदर्शनार्थमुक्त भाष्यकृता—सेलेय-छिद्दुचालणिमिहो कहा सोउ उठ्ठियाणतु ॥ छिद्दुआह तत्थविठो ॥ ४१ ॥ सुमरिसु-सरामि नेयाणि ॥ एगेण विसइ बीएणनीइकणेण चालणी आह ॥ धन्नोत्थ आहसेलो, जं पविसइ नीइया तुज्झ ॥ ४२ ॥ तत एषोऽपि चालणीसमानो न योग्य चालनी-प्रतिपक्षभूत च वरावलनिर्मापिततापसभाजन ततोहि बिंदुमात्रमपि जल न स्रव ति ॥ ४३ ॥ उक्तच—तावसखउरकढिणय चालणिपडिवक्खवु न सवइ दवपि । ततस्त त्समानो योग्य ॥ ४४ ॥

वळी मगशैलीयो पाषाण, छिद्रवाळो घडो तथा चालणी समान शिष्योना भेदो देखाडवा माटे भाष्यकारे पण कह्यु छे के — मगशैलीयो पाषाण छिद्रवाळो घडो तथा चालणी कथा साम्भळीने ऊठ्या, छिद्रयुक्त घडाए कह्यु के ॥ ४१ ॥ हु त्या बेसीने कथा सारी रीते स्मरण करु छु, अने बीजा घडा तमो तेम करी शकता नथी, त्यारे चालणीए कह्यु के, हु तो एवी छु के, मारे तो एक बाजुथी पेस के, तुरत बीजी बाजुएथी निकळी जाय छे, माटे तु धन्य छे, त्यारे मगशैलीओ बोल्यो के, हे छिद्र घडा तारा मध्ये पण जेटु प्रवेश थाय छे, तेटुज निकळे छे ॥ ४२ ॥ माटे ते छिद्र घट पण चालणी सरखो छे, अने तेथी योग्य नथी, चालणीनु प्रतिपक्षरूप वासळनु बनावेलु तापसनु भाजन जाणवु; केमके तेमाथी बिंदुमात्र पण जळ निकळी शकतु नथी ॥ ४३ ॥ कह्यु छे के—चालणीना प्रतिपक्षी दृष्टान्तरूप तापसनु खप्पर छे, के जेमाथी एक बिंदु जेटलु जळ पण झरतु नथी, माटे ते सरखो शिष्य योग्य छे ॥ [illegible] ॥

सम्प्रति परिपूणकदृष्टान्तो भाव्यते, परिपूणको नाम घृतक्षीरगालन, सुगृहाभिधचटकाकुलायो वा, तेन ह्याभीर्यो घृत गालयति ॥ ४५ ॥ ततो यथा स परिपूणक कचवर धारयति, घृतमुज्झति, तथा शिष्योऽपि यो व्याख्यावाचनादौ दोषानभिगृह्णाति, गुणास्तु मुचति, स परिपूणकसमान, स चाऽयोग्यः ॥ ४६ ॥ आह चूर्णिकृत्—वक्खाणाइसु दोसे । हिययंमि ठवेइ मुयइ गुणजालं ॥ सो सीसो उअजोग्गो । भणियो परिपुणगसमाणो ॥ ४७ ॥ आह, सर्वज्ञमतेऽपि दोषा सन्तीत्यश्रद्धेयमेतत्, सत्यमुक्तमत्र भाष्यकृता ॥ ४८ ॥

हवे परिपूणकनु दृष्टांत कहे छे, परिपूणक एटले घी तथा दूध गाळवानी गळणी, अथवा सुघरी नामनी चीडीनो माळो जाणवो, ते गळणीथी ग्वालणो घी गाळे छे ॥ ४५ ॥ माटे जेम ते गळणी कचरो राखे छे, अने घीने छोडी दे छे, तेम शिष्य पण जे, व्याख्या तथा वाचना आदिकमां दोषोने ग्रहण करे छे, तथा गुणोने छोडी दे छे, ते शिष्य गळणी अथवा सुघरीना माळा सरखो छे, अने ते अयोग्य छे ॥ ४६ ॥ चूर्णिकार पण कहे छे के,—जे शिष्य व्याख्यान आदिकमां दोषोने तो हृदयमां धारण करे छे, अने गुणोना समूहने तजे छे, ते गळणी सरखा शिष्यने पण अयोग्य कह्यो छे ॥ ४७ ॥ अहीं कोइ शंका करे छे के, सर्वज्ञना मतमां पण दोषो सभवे छे, माटे ते वात श्रद्धा करवा लायक नथी, त्यारे तेनुं उत्तर आपे छे के, ते माटे अहीं भाष्यकारे कह्यु छे—के —॥ ४८ ॥

सव्वन्नुप्पामन्ना । दोसा हु न संति जिणमए केवि ॥ जं अणुवउत्तकहणं । अपत्तमासाज्ज व हवंति ॥ ४९ ॥ संप्रति हंसदृष्टांतजावना, यथा हंस क्षीरमुदकमिश्रितमपि उदकमपहाय क्षीरमापिबति, तथा शिष्योऽपि यो गुरोरनुपयोगसंजवान् दोषान् अवधूय गुणानेव केवलानादत्ते, स हंससमानः ॥ ५० ॥ स चैकांतेन योग्य, ननु हंस क्षीरमुदकमिश्रितमपि कथं विजक्तीकरोति, येन क्षीरमेव केवलमापिबति, नतूदकमिति ॥ ५१ ॥ उच्यते, जिह्वाया अम्लत्वेन कूर्चकीजूय पृथग्जवनात्, उक्तंच—अंबत्तणेण जीहाए । कूचिया होइ खीरमुदगंपि ॥ हंसो मुत्तूण जलं आवियइ पयं तह सुसीसो ॥ ५२ ॥

सर्वज्ञ प्रजुए कहेला एवा जिनमतनी अंदर कोइ पण दोषो नथी, एवी रीतना सर्वज्ञ प्रजुना मतमां जे अनुपयोगपणुं कहेलुं ते कुपात्रने आश्रीने जाणवुं, अर्थात् कुपात्र मनुष्य तेम कहे छे ॥ ४९ ॥ हवे हंसना दृष्टांतनी जावना कहे छे, जेम हंस पासे दूध अने जळ मिश्रित करीने मूक्यां होय, परंतु तेमांथी जळने तजीने ते दूध पीये छे, तेम शिष्य पण के जे, गुरुना अनुपयोगथी उत्पन्न थयेला दोषोने छोमीने केवळ गुणोनेज ग्रहण करे छे, ते हंस सरखो छे ॥ ५० ॥ अने ते एकांते योग्य छे, अहीं शंका करे छे के जळथी मिश्रित थयेला दूधने पण हंस केम जुदुं करी शके छे? के जेथी ते केवळ दूधज पीये छे, अने पाणी पीतो नथी ॥ ५१ ॥ ते माटे कहे छे के, तेनी जीजमां खटाश होवाथी ते कुचो थइने जुदुं पमे छे, तेथी,—कह्युं छे के—जीजनी खटाशथी जळमां रहेलुं दूध पण कूचारूप थाय छे, अने तेथी हंस जळ छोमीने दूध पीये छे माटे सुशिष्य पण ते हंस सरखो होय छे ॥ ५२ ॥

मोत्तूण इह दोसे । गुरुणोणुवउत्तनासियाईए ॥ गिएहइ गुणे उ जोसो । जोग्गो समयत्थसारस्स ॥ ५३ ॥ इदानीं महिषदृष्टांतनावना, यथा महिषो निपानस्थानमवाप्त सन् उदकमध्ये तदुदकं मुहुर्मुहु शृंगाभ्यां ताडयन्नवगाहमानश्च सकलमपि कलुषीकरोति, ततो न स्वयं पातु शक्नोति, नापि यूथं ॥ ५४ ॥ तद्वच्छिष्योऽपि यो व्याख्यानप्रबंधावसरेऽकांडएव कुत्सप्रश्नाभिः कलहविकथादिभिर्वा आत्मनः परेषां चानुयोगश्रवणविघातमाधत्ते, स महिषसमान. ॥ ५५ ॥ स चैकांतेनाऽयोग्यः उक्त च—सयमवि न पियइ महिसो । न य जूहं पिवइ डोलियं उदयं ॥ विग्गह विकहाहि तह । अथक्कपुच्छाहि य कुसीसो ॥ ५६ ॥

गुरु अनुपयोगपणाथी कहेला इह दोषोने पण छोडीने जे गुणोने ग्रहण करे छे, ते शिष्य सूत्रार्थना सारने योग्य छे ॥ ५३ ॥ हवे पाडाना दृष्टांतनी नावना कहे छे, जेम पाडो जळाशय प्रत्ये प्राप्त थयो थको तेमा रहेला पाणीने वारंवार शिंगडाओथी उछाळतो थको तथा अंदर अवगाहना करतो थको सघळु जळ मेलु करे छे, अने तेथी पोते पी शकतो नथी, तेम पोताना टोळाने पण पीवा देतो नथी ॥ ५४ ॥ तेनी पेठे शिष्य पण के जे, व्याख्यान वचाती वखते विना अवसरेज नकामा सवालोथी अथवा क्लेशनी विकथा आदिकवडे करीने पोताने अने परने अनुयोगना श्रवणनो विघात करे छे, ते शिष्य पाडा सरखो छे ॥ ५५ ॥ अने ते एकांते अयोग्य छे. कह्यु छे के, पाडो पोते पण पाणी पीतो नथी, तेम ते डोळी नाखीने पोताना टोळाने पण पीवा देतो नथी; तेम कुशिष्य पण विग्रह कथाओथी तथा निरर्थक प्रश्नोथी व्याख्यानने डोळी नाखे छे ५६ ॥

मेषोदाहरणजावना, यथा मेषो वदनस्य तनुत्वात् स्वयं च निभृतात्मा गोष्पदसात्रस्थितमपि जलमकलुषीकुर्वन् पिबति ॥ ५७ ॥ तथा य शिष्योऽपि पदमात्रमपि विनयपुरस्सरमाचार्यचित्तं प्रसादयन् पृछति स मेषसमान, स चैकान्तेन योग्य. ॥ ५८ ॥ मशकदृष्टान्तजावना, य शिष्यो मशक इव जात्यादिकमुद्घट्टयन् गुरोर्मनसि व्यथामुत्पादयति स मशकसमान, स चाऽयोग्य ॥ ५९ ॥ जलौकादृष्टान्तजावना, यथा जलौका शरीरमदुन्वती रुधिरमाकर्षति, तथा शिष्योऽपि योऽदुन्वन् श्रुतज्ञानमापिबति स जलूकासमान ॥ ६० ॥ उक्तंच—जलूगावमदूमिंतो । पियइ सुसीसोवि सुयनाण ॥ ६१ ॥

हवे घेटाना दृष्टान्तनी जावना कहे छे, जेम घेटो पोतानु मुख सूक्ष्म होवाथी पोते गायना पगला जेटला पण स्थानमां रहेला पाणीने नहा मलीन करतो थको धराइने पीये छे ॥ ५७ ॥ तेम जे शिष्य पण एक पद मात्र पण विनयपूर्वक आचार्यना चित्तने खुशी करतो थको पूछे छे, ते घेटा सरखो छे, अने ते एकान्ते योग्य छे ॥ ५८ ॥ हवे मशकना दृष्टान्तनी जावना कहे छे, जे शिष्य मशकनी पेठे जाति आदिक खुद्धी करीने गुरुना मनमा खेद उपजावे छे, तेने मशक समान जाणवो, अने ते अयोग्य छे ॥ ५९ ॥ हवे जलोना दृष्टान्तनी जावना कहे छे, जेम जलो शरीरने दुखाव्या विना रुधिर खेंचे छे तेम शिष्य पण जे गुरुने दुखाव्या विना श्रुतज्ञानरूप रसने पीये छे, ते जलो सरखो छे ॥ ६० ॥ कह्यु छे के-जलोनी पेठे दुखाव्या विना उत्तम शिष्य पण श्रुतज्ञाननो रस पीये छे ॥ ६१ ॥

विमालीदृष्टान्तभावना यथा विमाली भाजनस्थं क्षीरं भूमौ विनिपात्य पिबति, तथाऽदुष्टस्वभावत्वात् शिष्योऽपि यो विनयकरणादिभीततया न साक्षाद्गुरुसमीपे गत्वा शृणोति ॥ ६२ ॥ किंतु व्याख्यानादुत्थितेभ्यः केभ्यश्चित्स विमालीसमानः स चाऽयोग्य ॥ ६३ ॥ तथा जाहकस्तिर्यग्विशेषस्तदुदाहरणभावना, यथा जाहकः स्तोकं स्तोकं क्षीरं पीत्वा पार्श्वाणि लेढि तथा शिष्योऽपि यः पूर्वगृहीतं सूत्रमर्थं वा अतिपरिचितं कृत्वा अन्यं पृच्छति स जाहकसमानः स च योग्य ॥ ६४ ॥ संप्रति गोदृष्टान्तभावना, यथा केनापि कौटुंबिकेन कस्मिंश्चित्पर्वणि चतुर्भ्यश्चतुर्वेदपारगामिभ्यो विप्रेभ्यो गौर्दत्ता, ततस्ते परस्परं चिंतयामासुर्ययमेका गौश्चतुर्णामस्माकं ॥ ६५ ॥

हवे बिलाडीना दृष्टांतनी भावना कहे छे, जेम बिलाडी भाजनमां रहेलुं दूध भूमीपर पाडीने पीये छे, तेम शिष्य पण के जे दुष्ट स्वभाववालो होवाथी विनय करवा आदिकथी डरीने साक्षात् गुरु पासे जइ सांभलतो नथी ॥ ६२ ॥ परंतु व्याख्यान सांभळीने उठेला एवा केटलाक मनुष्यो पासेथी सांभळे छे, ते बिलाडीनी समान छे, तथा अयोग्य छे ॥ ६३ ॥ वळी जाहक एटले एक जातनुं तिर्यंच, तेना उदाहरणनी भावना कहे छे, जेम जाहक (शेरो) थोडुं थोडुं दूध पीने पडखां चाटे छे, तेम शिष्य पण जे पूर्वे ग्रहण करेला सूत्र अथवा अर्थने अतिपरिचयवाळो करीने बीजाने पूछे छे, ते जाहक सरखो छे, तथा ते योग्य छे ॥ ६४ ॥ हवे गायना दृष्टांतनी भावना कहे छे; जेम कोइक कुटुंबिए कोइक पर्वने विषे चार वेदोने जाणनारा एवा चार ब्राह्मणो प्रत्ये एक गाय आपी, तेथी तेओ परस्पर चिंतववा लाग्या के, आ एक गाय आपणा चारेनी छे ॥ ६५ ॥

तत कथ कर्त्तव्या, तत्रैकेनोक्त, परिपाट्या डुह्यतामिति, तच्च समीचीन प्रतिज्ञात-मिति सर्वै प्रतिपन्न ॥ ६६ ॥ ततो यस्य प्रथमदिवसे गौरागता तेन चिंतित यथाहमद्यैव धोक्ष्यामि, कल्ये पुनरन्यो धोक्ष्यति, किं निरर्थिकामस्याश्चारिं ददामि ॥ ६७ ॥ ततो न किंचिदपि तस्यै तेन दत्त, एव शेषैरपि, तत सा श्वपाककुल-निपतितेव तृणसलिलादिविरहिता गतासुरभूत् ॥ ६८ ॥ तत समुत्थितस्तेषा धि-ग्जातीयानामवर्णवादो लोके, शेषगोदानादिलाभव्यवच्छेदश्च ॥ ६९ ॥ एव शिष्या अपि चिंतयति न खलु केवलमस्माकमाचार्यो व्याख्यानयति, किंतु प्रतीच्छकानामपि॥७०॥

माटे हवे तेनु शु करवु ? त्या एके कह्यु के, वारा फरती आपणे ते दोवी, एम करवु सारु छे, एम विचारी सघळाओए ते अंगीकार कर्युं ॥ ६६ ॥ पछी पेहेले दिवसे जेनी पासे गाय आवी. तेणे विचार्यु के, हु तो आजेज फक्त दोइश, अने काले तो बीजो दोशे, माटे आ गायने हु फोकट चारो शामाटे नाखु ? ॥ ६७ ॥ एम विचारी तेणे तेने कइ पण चारो आप्यो नहीं, अने एवी रीते बीजाओए पण चारो आप्यो नहीं, अने तेथी ते गाय जाणे कसाइ खानामा पडी होय नहीं, तेम घास पाणी विना मृत्यु पामी ॥ ६८ ॥ अने तेथी ते नीच ब्राह्मणोनो जगतमा अवर्णवाद थयो, अने त्यारथी तेओए बीजी गायो मळवा आदिकनो लाभ पण गुमाव्यो ॥ ६९ ॥ एवी रीते शिष्यो पण के जेओ एम विचारे छे के, आचार्य महाराज केवळ अमारे माटेज कइ व्याख्यान आपता नथी, परतु *प्रतीच्छक साधुओ माटे पण व्याख्यान आपे छे ॥ ७० ॥

*अन्य गच्छादिकमाथी शास्त्र अभ्यासादिक माटे आवेला साधुओ, मेहमान साधुओ. प्रातीच्छको (आवश्यक निर्युक्ति टीका वगेरे जुओ)

ततस्तएव विनयादिक करिष्यति किमस्माकमिति प्रातीछिका अप्येव चितयति निज शिष्या सर्व करिष्यति किमस्माक कियत्कालावस्थायिनामिति ॥ ७१ ॥ ततस्तेपामेव चितयतामवांतराल एवाचार्यो विषीदति, लोके च तेषामवर्णवादो जायते ॥ ७२ ॥ अन्यत्रापिगछांतरे दुर्लभौ तेषा सूत्रार्थौ, ततस्ते गोप्रतिग्राहकचतुर्द्विजानय इवाऽयोग्या द्रष्टव्या ॥ ७३ ॥ उक्त च—अन्ने दुज्झइ कल्लं । निरछयं से वहामि किं चारि ॥ चउचरणगवीउमया । अवन्नहाणी उवडुयाण ॥ ७४ ॥ सीसा पडिछगाण । जरोत्ति तेविय हु सीसगजरोत्ति ॥ नकरति सुत्तहाणी । अन्नत्थ वि-दुल्लह तेसि ॥ ७५ ॥

माटे तेओज तेमनो विनय आदिक करशे, अमारे शी जरर छे? वळी बीजा प्रातीच्छको पण एमज विचारे छे के, तेना पोताना शिष्यो सघळु करशे, अने थोमो वखत रहेनारा एवा अमारे ते विनय आदिक करवानी शी जरर छे? ॥ ७१ ॥ एवी रीते तेओना एम विचारथी आचार्यजी महाराज तो वच्चेज सीदाया करे छे, अने दुनीयामा ते शिष्योनो अवर्णवाद थाय छे ॥ ७२ ॥ वळी तेम करवाथी बीजा गच्छमा पण तेओने सूत्रार्थ मळवो मुश्केल थाय छे, माटे तेवा शिष्योने, गायने ग्रहण करनारा ते चार ब्राह्मणोनी पेठे अयोग्य जाणवा ॥ ७३ ॥ कह्यु छे के–काव तो बीजो दोसे, माटे फोकट शा माटे हु चारो नाखु? एवो विचार करवाथी ते ब्राह्मणोये गाय गुमावी, अन्य लाभनी तेओने हानि थइ, तेमज तेओनो अवर्णवाद पण थयो, (एवो भावार्थ छे) ॥ ७४ ॥ शिष्यो गुरुनो विनय बीजा साधुओने भळावे छे, अने ते बीजा साधुओ वळी शिष्योने भळावे छे; अने एवी रीते गुरुनो विनय आदिक न थवाथी सूत्रनी हाणी थाय छे, अने बीजा गच्छमा पण तेओने वाचना दुर्लभ थाय छे ॥ ७५ ॥

एष एव गोदृष्टांत प्रतिपक्षेऽपि योजनीय, यथा कश्चित्कौटुंबिको धर्मश्रद्धया चतुर्भ्यश्चतुर्वेदपारगामिभ्यो गां दत्तवान् ॥ ७६ ॥ तेऽपिपूर्ववत्परिपाट्या दोग्धुमारब्धास्तत्र यस्य प्रथमदिवसे सा गौरागता स चिंतितवान् ॥ ७७ ॥ यद्यहमस्याश्चारि न दास्यामि तत क्षुधा धातुक्षयात्प्राणानपहास्यति, ततो मे लोकेषु एते गोहत्याकारका इत्यवर्णवादो भविष्यति पुनरपि चाऽस्मभ्य न कोऽपि गवादिक दास्यति ॥ ७८ ॥ अपिच यदि मदीयचारिचरणेन पुष्टा सती शेषैरपि ब्राह्मणैर्धोक्ष्यते ततो मे महानऽनुग्रहो भविष्यति अहमपि च परिपाट्या पुनरप्येनां धोक्ष्यामि ॥ ७९ ॥

वळी एवी रीतनु आ गायनु दृष्टांत तेथी प्रतिपक्ष दृष्टांतरूपे पण नीचे मुजब जोडी लेवु, जेम कोइक कुटुंबीए धर्मनी श्रद्धाथी चार वेदोने जाणनारा चार ब्राह्मणो प्रत्ये एक गाय आपी ॥ ७६ ॥ अने ते ब्राह्मणो पण पूर्वनी पेठे वारा फरती दोवा लाग्या, तेओमा जेने त्यां प्रथम दिवसे गाय आवी, तेणे विचार्यु के ॥ ७७ ॥ जो हु आ गायने चारो नही आपु, तो ते क्षुधाथी धातुक्षय थवाथी प्राणोने छोडी देशे, अने तेथी आ ब्राह्मणो तो गौहत्या करनारा छे, एवी रीतनो दुनीयामा अवर्णवाद थशे, अने तेथी फरीने अमोने कोइ पण गाय आदिक आपशे नही ॥ ७८ ॥ वळी जो आ गाय मारो चारो खाइने पुष्ट थशे, तो बीजा ब्राह्मणो पण तेने दोइ शकशे अने तेथी *मारो तेओना उपर महोटो अनुग्रह थशे, अने वळी मारो वारो आव्येथी हु पण तेने दोइ शकीश ॥ ७९ ॥

* मारो मोटो उपगार थाशे

ततोऽवश्यमस्ये दातव्या चारिरिति दत्तो चारि, एव शेषा अपि दत्त, तेन सर्वे-ऽपि चिरकाल दुग्धाऽन्यवहारभाजिनो जाता, लोकेच समुच्छलित साधुवाद, अन्नेन च प्रभूतमन्यदपि गवाधिक ॥ ८० ॥ एवं येऽपि विनेयाश्चिंतयति यदि वयमाचार्यस्य न किमपि विनयादिक विधातारस्तत एषोऽवसीदन्नवश्यमपगतासुर्भविष्यति लोके च कुशिष्या इमे इत्यवर्णवाद ॥ ८१ ॥ ततो गच्छांतरेऽपि न वयमवकाशं लप्स्यामहे, अपि चास्माकमेष प्रव्रज्याशिक्षाव्रतारोपणादिकरणतो महोपकारी, संप्रति च जगति दुर्लभं श्रुतरत्नमुपयच्छन् वर्त्तते ॥ ८२ ॥ ततोऽवश्यमेतस्य विनयादिकमस्माभि· कर्त्तव्य, अन्यच्च यदस्मदीयविनयादिना साहायकबलेन प्रातीच्छिकानामप्याचार्यत उपकार ॥८३॥

माटे आ गायने मारे जरुर चारो देवो जोइये, एम विचारी तेणे गायने चारो आप्यो, अने एवी रीते बीजाओए पण आप्यो, अने तेथी सघळाओ घणा काळसुधि दूधनु भोजन करनारा थया, लोकोमा पण तेओनो यश फेलायो; अने तेथी गाय आदिक बीजुं पण तेओने घणु दान मळ्यु ॥ ८० ॥ एवी रीते शिष्यो पण, के जेओ एम विचारे के जो अमो आचार्यनो विनय आदिक कइ नहीं करीये, तो आ आचार्य खरेखर सीदाइ सीदाइने मृत्यु पामशे, अने लोकमां पण अपवाद थशे के, आ कुशिष्यो थया ॥ ८१ ॥ वळी बीजा गच्छमा पण अमोने स्थान नहीं मळे, तेमज वळी आ आचार्य अमोने दीक्षा, शिखामण तथा व्रत आदिक आपवाथी अमारा मोटा उपकारी छे, वळी हमणा पण जगतमा दुर्लभ एवुं ज्ञानरत्न अमोने ते आपे छे ॥ ८२ ॥ माटे अमारे अवश्य तेनो विनय आदिक करवो जोइये; वळी अमारा विनय आदिकरूप सहायकारी बळवडे करीने जो बीजा साधुओने पण आचार्यथी उपकार थशे ॥ ८३ ॥

किमस्मान्निर्न लब्ध, द्विगुणतरपुण्यलाभस्याऽस्माक भावात् ॥ ७४ ॥ प्रातीच्छिका अपि ये चिंतयति, अनुपकृतोपकारी जगत्रानाचार्योऽस्माक, को नामान्यो महानमेव व्याख्या-प्रयासमस्मन्निमित्त विदधाति ॥ ७५ ॥ तत किमेतेषा वय प्रत्युपकर्तु शक्ता., तथापि यत्कुर्म सोऽस्माक महान् लाभ इति परनिरपेक्ष विनयाद्विकमादधते ॥ ७६ ॥ तेषा नावसीदत्याचार्योऽव्यवच्छिन्ना च सूत्रार्थप्रवृत्ति., समुच्छलति च सर्वत्र साधुवाद , गच्छांतरे च तेषा सुलभ श्रुतज्ञान, परलोके च सुगत्यादिलाभ ॥ ७७ ॥ भेर्युदाहरण यथा, 'बारवइए वासुदेवस्स तिन्नि भेरीओ' त जहा, सगामिया अब्भुइया कोमुइया ॥ ७८ ॥

तो तेमा अमार शु जशे ? तेथी तो उलगे अमोने बेवडो पुण्यनो लाभ थशे ॥ ७४ ॥ वळी ते अन्य साधुओ पण एम चिंतवे के, आचार्यजी महाराज तो अमारा, विना उपकार कर्ये पण उपकारी छे, केमके अमारे माटे आवो म्होटो व्याख्याननो प्रयास बीजो कोण करशे ॥ ७५ ॥ वळी शु अमो तेमनापर प्रत्युपकार करवाने शक्तिवत छीये ? तोपण अमो जे कइ करीए छीए, ते अमोने म्होटा लाभरूप छे, एम विचारी परनी अपेक्षा राख्या विना तेओ विनय आदिक करे छे ॥ ७६ ॥ तेओना आचार्य सीदाता नथी, तेम सूत्रार्थनी प्रवृत्तिनो पण विच्छेद थतो नथी, सघळी जगोए यशवाद फेलाय छे, तथा बीजा गच्छमा पण तेओने श्रुतज्ञान सुलभ थाय छे, अने परलोकमा सुगति आदिकनो लाभ मळे छे ॥ ७७ ॥ हवे भेरीनु दृष्टात नीचे मुजब छे· द्वारमती (द्वारिका) नगरीमा वासुदेवने त्रण भेरीओ हती, ते नीचे मुजब—सग्रामनी भेरी, मगलिकनी भेरी, तथा कौमुदी महोत्सवनी भेरी ॥ ७८ ॥

तत्र प्रथमा सग्रामकाले समुपस्थिते सामंतादीना ज्ञापनार्थं वाद्यते, द्वितीया पुनरागतुके कस्मिश्चित्प्रयोजने समुद्भूते लोकाना सामतादीना परिज्ञापनाय ॥ ८९ ॥ तृतीया कौमुदीमहोत्सवाद्युत्सवज्ञापनार्थं, ततो ॥ तिस्सिवि गोसीसचंदणमईतो देवतापरिग्गाहिया ॥ ९० ॥ तो तस्स चउथी जेरी असिवप्पसमणी, तीसे उप्पत्ती कहिज्जइ ॥ ९१ ॥ तेणं कालेण तेण समएण सक्को देविंदो सो तत्थ देवलोगे सुरमज्झे वासुदेवस्स गुणकित्तण करेइ ॥ ९२ ॥ अहो उत्तमपुरिसा एए अवगुणं न गिह्णंति, नीएण य जुद्धेण न जुज्झंति तत्थ एगो देवो असद्दहंतो आगओ ॥ ९३ ॥

तेमा पेहेली जेरी सग्राम सबधि वखत आव्येथी सामत आदिकोने जाण थवा माटे वगाडवामा आवे छे, बीजी जेरी कोइ परोणो आव्येथी, अथवा कइक प्रयोजन पड्येथी लोको तथा सामत आदिकोने जाण थवा माटे वगाडाय छे ॥ ८९ ॥ तथा त्रीजी कौमुदी महोत्सव आदिक उत्सव जणाववा माटे वगाडाय छे, ते त्रणे जेरीओ देवताधिष्ठित तथा गोशीर्षचंदननी बनावेली हती ॥ ९० ॥ वळी तेनी पासे उपद्रवो नाश करनारी चोथी जेरी हती, तेनी उत्पत्ति कहे छे ॥ ९१ ॥ ते काळे तथा ते समयने विषे देवोनो स्वामी इंद्र त्या देवलोकमा देवोनी माहे वासुदेवना गुणोनु वर्णन करवा लाग्यो ॥ ९२ ॥ के, अहो! उत्तम पुरुषो अवगुण ग्रहण करता नथी, * तेम नीच युद्धथी युद्ध करता नथी, एटलामा त्या एक देवने ते वचनपर श्रद्धा नहीं आववाथी ते वासुदेव पासे आव्यो ॥ ९३ ॥

* फक्त न्याय युक्त युद्धथीज युद्ध करे छे.

॥ वासुदेवोत्ति जिणसगास वदगोपडित्तो, सो अतरा कालसुणयरूव मययंविउव्वइ + डुव्रुन्निगध ॥ ८४ ॥ तस्स गधेण सव्वो लोगो पराजग्गो, वासुदेवेण दिठो ज-णिय वणेण, अहो इमस्स कालसुणयस्स पडुरा दंता मरगयजायणनिहित्तमुत्ता-वलिव्व रेहति ॥ ८५ ॥ देवो चितेइ, सच्च गुणग्गाही, ततो वासुदेवस्स आस-रयण गहाय पहावितो, सो [1]वडुरापालएण नातो, तेण कूविय, जाहा आसो-हीरइ ॥ ८६ ॥ ततो कुमारा रायाणो य निग्गया, ते देवेण हयविहयाकाउण नासिया, वासुदेवो निग्गओ जणइ, कीस मम आसरयण हरसि ॥ ८७ ॥

वासुदेव पण जिनेश्वर प्रभुने वान्दवा माटे जतो हतो, वच्चे ते देवताए मरेला तथा दुर्गंधवाला काला कुतरानु रूप विकुर्व्यु ॥ ८४ ॥ तेनी गधथी सघला लोको दूर जाग्या, परन्तु वासुदेवे ते कुतराने जोइने तेनु वर्णन कर्यु के, अहो! आ काला कुतराना सफेद दातो जाणे मरकतमणिना वासनमा राखेली मोतीओनी माळा होय नही, तेवा शोभे छे ॥ ८५ ॥ त्यारे देवे विचार्यु के, खरेखर वासुदेव गुणग्राही छे, पछी ते देव वासुदेवनो अश्वरत्न (उत्तम घोडो) ग्रहण करीने नाठ्यो, तेनी अश्वपाळने खबर पडवाथी तेणे पोकार कर्या के, घोडो हरी जाय छे ॥ ८६ ॥ ते साभळी राजाओ अने कुमारो तेनी पाछळ जवाने निकळ्या; तेमने पण ते देवे हतप्रहत करीने मार्या, त्यारे वासुदेवे निकळीने तेने कह्यु के, मारो घोडो तु शामाटे हरी जाय छे? ॥ ८७ ॥

[1] मदुरा–अश्वशाळा (घोडाहार, तबेलो) तस्या पालकेन रक्षकेन

एसो मम आसो तुज्झ न होइ, देवो भणति इमं जुज्झे पराजिऊण गिण्हाहि वासुदेवेण भणिय बाढं किह जुज्झामो, तुमं भूमीए अह च रहेण तोरह गे-ण्हह ॥ ९८ ॥ देवो भणइ, अल मे रहेण, एवं आसो हत्थी पडिसिद्धो, बा-हुजुद्धाइयाइ सव्वाउ पडिसेहेइ ॥ ९९ ॥ तोखायं केण जुज्झेण जुज्झियव्वं, देवो भणइ अहिट्ठाणजुद्धेण, वासुदेवेण भणिअ पराजितोऽहं. नेहि आसरयण नाह नीयजुद्धेण जुज्झामि ॥ १०० ॥ तो देवो तुट्ठो समाणो भणति वरेहि वर किं ते देमि, वासुदेवेण भणिय, असिवोवसमणिं भेरिं देही, तेण दिन्ना एसा तीसे भेरीए उप्पत्ती ॥ १०१ ॥

आ मारो घोमो छे, तारो नथी, त्यारे देवे कह्यु के, तमे युद्ध करो? अने पराजय करी घोमो ग्रहण करो, त्यारे वासुदेवे कह्यु के, युद्ध केवी रीते कराय, तमो भूमीपर छो, अने हु रथपर छु, माटे तमो पण रथ ग्रहण करो? ॥ ९८ ॥ त्यारे देवे कह्यु के, मारे रथनी जरुर नथी, एवी रीते घोमा तथा हाथीनो पण निषेध कर्यो, ठेठ बाहु युद्ध आदिक सर्व युद्धोनो तेणे निषेध कर्यो ॥ ९९ ॥ त्यारे वळी वासुदेवे कह्यु के कया युद्धथी युद्ध करवु? देवे कह्यु के, अधिष्ठान युद्धथी युद्ध करवु, ते सांभळी वासुदेवे कह्यु के, हु हार्यो, माटे अश्वरत्न लेइ जा? हु नीच युद्धथी लमतो नथी ॥ १०० ॥ त्यारे देवता तुष्टमान थइने मानसहित कहेवा लाग्यो के, तु वरदान माग? हु तने शु आपु? त्यारे वासुदेवे कह्यु के, उपद्रव उपशमावनारी भेरी आप? तेथी तेणे आपी एवी रीते ते भेरीनी उत्पत्ति जाणवी ॥ १०१ ॥

कथीकयसुत्तत्थो । गुरूविजोग्गो न जासियव्वस्स ॥ अविणासियसुत्तत्था । सीसायरिया विणिदिठा ॥ १११ ॥ अत्र सिक्खियमाणेण इति सुशिक्षितोऽहं स्वयमेव नान्यं पृच्छामीति मानेन गलितं विस्मृतं संपूर्ण करोतीत्यर्थः, शेषं सुगमं ॥११२॥ सप्रत्याजीरीदृष्टांतजावना, कश्चिदाजीरो निजजार्यया सह विक्रयाय घृतं गव्या गृहीत्वा पत्तनमवतीर्णश्चतुष्पथे च समागत्य वणिगापणेषु पणायितुं प्रवृत्तो ॥ ११३ ॥ घटितश्च पणायागसटकस्ततः समारब्धे घृतमापे गव्या अधस्तादवस्थिता आजीरी घृतं जर्त्रा वारकेण समर्प्यमाणं प्रतीच्छति ॥ ११४ ॥ ततः कथमप्यर्पणे ग्रहणेवाऽनुपयोगतोऽपातरालेः वारको लघुघटरूपो निपत्य खरूशो जग्न ॥ ११५ ॥

गुरुपण (तेमज) कथारूप करेला जे सूत्रार्थ जेणे एवा व्याख्यान करवा लायक नथी, जेओए सूत्रार्थनो विनाश नथी कर्यो, एवा शिष्यो तथा आचार्योने ज (योग्य) कह्या छे ॥ १११ ॥ अहीं 'शिक्षितमाने करीने ए शास्त्रनो एवो अर्थ करवो के हुं तो सारी रीते पोतानीमेळेज शीखेलो छुं ? बीजाओने पूछीश नहीं. इत्यादि अहंकारे करीने जली गयेलुं जे संपूर्ण करे छे, एवो अर्थ जाणवो, बाकीनुं सुगम छे ॥ ११२ ॥ हवे आजारी तथा रबारणना दृष्टांतनी जावना कहे छे, कोइक रबारी पोतानी स्त्री साथे, वेचवामाटे गाडीमां घी जरीने शहेरमां आव्यो, तथा पछी चउटामां आवीने वणिकोनी दुकानोमां जावताव पूछवा लाग्यो ॥ ११३ ॥ पछी ज्यारे सोदो थयो त्यारे घीनुं मापुं जरवा मांड्युं त्यारे गाडीनी नीचे बेठी, तथा तेनो स्वामी गाडीपरथी घीनां घडा जे आपतो हतो, ते लेती हती ॥ ११४ ॥ एटलामां लेतां देतां अचानक वच्चे एक नानो घीनो घडो नीचे पडीने टुकडे टुकडा थइ गयो ॥ ११५ ॥

ततो घृतहानिदूनमना पतिरुल्लपितु खरपरुषवाक्यानि प्रावर्त्तयत् ॥ ११६ ॥ हा-
ततो घृतहानिदूनमना पतिरुल्लपितु खरपरुषवाक्यानि प्रावर्त्तयत् ॥ ११६ ॥ हा-
पापीयसि दुःशीले कामविह्वलितमानसा तरुणिमाऽभिरमणीय पुरुषांतरमवलोकसे,
न सम्यगुद्धारकमभिगृह्णासि ॥ ११७ ॥ तत सा खरपरुषवाक्यश्रवणात समुद्भूतको-
पावेशवशोच्छलितकंपितपीनपयोधरा, स्फुरदधरबिंबोष्ठी ॥ ११८ ॥ दूरोत्पाटितभ्रूरेखा-
धनुरवष्टंभतो नाराचश्रेणिमिव कृष्णकटाक्षसततिमविरत प्रतिक्षिपती प्रत्युवाच ॥
११९ ॥ हा ग्रामेयकाधम घृतघटमप्यवगणय्य विदग्धमत्ताकामिनीना मुखारविंदान्य-
वलोकसे, न चैतावताऽवतिष्ठसे ॥ १२० ॥ खरपरुषवाक्यैर्मामप्यधिक्षिपसि, तत. स
एव प्रत्युक्तोऽतीवज्वलितकोपानलो यत् किमप्यसबद्ध जल्पितु लग्न., साप्येव ॥१२१॥

एवी रीते घीनु नुकशान थवाथी स्वामीनु मन दुभावा लाग्यु, अने तेथी ते ग्वाळणने आकरा वचनो
बोलवा लाग्यो के, ॥ ११६ ॥ अरे! पापणी! छिनाळ! कामदेवथी पीडित मनवाळी! जुवानीथी मनोहर
लागता बीजा पुरुषने जोया करे छे? अने घीनो घडो बराबर झेली नथी ॥ ११७ ॥ एवी रीतना आकरा
वचनो सांभळवाथी ते ग्वाळण उत्पन्न थयेला क्रोधना आवेशना वशथी जेणीना पुष्ट स्तनो उछळवा तथा कंपवा
लाग्या छे, एवी, तथा जेणीना होठ स्फुरायमान थइ रह्या छे, एवी ॥ ११८ ॥ उंची करेली भ्रूकुटीनी रेखारूपी
धनुष्यना आधारथी बाणोनी श्रेणिनी पेठे श्याम कटाक्षोनी श्रेणिने एकदम फेंकती थकी बोलवा लागी के ॥११९॥
अरे! नीच गामडीया! घीना घडानी पण अवगणना करीने चालाकीवाळी मदोमत्त कामी स्त्रीओना मुख-
कमळोने तु जोया करे छे? वळी एटलेथी पण संतोष नहीं पामीने ॥ १२० ॥ आकरा वचनोथी मने पण वखोडे
छे? पछी एवी रीतना सामा वचनो कहेवाथी अत्यंत सळगेल छे क्रोधरूपी अग्नि जेनो एवो ते स्वामी जेम
तेम गाळो आपवा तेणीने देवा लाग्यो, अने ते ग्वाळण पण एवीज रीते तेने गाळो देवा लागी ॥ १२१ ॥

ततः समभूत्तयोः केशाकेशि युद्धं, ततो विस्रस्तपादादिन्यासतः सकलमपि प्रायो गल्लीघृतं भूमौ निपतितं, ततः किंचित् शोषमुपगतं, अवशेषं चावलीढं श्वभिः ॥ १२२ ॥ गल्लीघृतमपि शेषीभूतमपहृतं पश्यतोहरैः, सार्थिका अपि स्वं स्वं घृतं विक्रीय स्वग्राममगमनं प्रपन्नाः ॥ १२३ ॥ ततः प्रभूतदिवसभागातिक्रमेणापसृते युद्धे स्वास्थ्ये च लब्धे यत्किंचित् प्रथमतो विक्रीतं घृतं, तद्द्रव्यमादाय तयोः स्वग्रामं गच्छतो ॥ १२४ ॥ अत्रान्तरालेऽस्तगते सहस्रभानौ, सर्वतः प्रसरमभिगृह्णति तमोविताने पारस्कन्दिनः समागत्य वासांसि द्रव्यं बलीवर्दौ चाऽपहृतवन्तः ॥ १२५ ॥

पछी तेओ वच्चे एक बीजाना केशो खचवा पर्यंत लडाइ चाली, अने तेथी आमातेमला पगो पडवाथी मायें करी गाडीमां रहेलु सघलु घी पृथ्वीपर ढोलाइ गयु, अने तेथी थोडुक तो जमीनमां सोसाइ गयु, अने बाकी रह्यु ते कुतरा चाटी गया ॥ १२२ ॥ गाडीमां जे कइंक बाकी रही गयु हतु ते हाथ चालाकीवाळा चोरोए चोरी लीधु, सथवारावाळाओ पण पोतपोतानु घी वेचीने पोताने गाम चाल्या गया ॥ १२३ ॥ पछी दिवसनो घणो खरो भाग व्यतीत थया बाद तेओनी लडाइ बंध पडी, तथा ज्यारे तेओ ठंडा पड्या त्यारे पेहेलेथी जे कइ घी वेचायु हतु, तेनु द्रव्य लेइने, तेओ बन्ने पोताने गाम जवा लाग्या ॥ १२४ ॥ एटलामां बन्ने सूर्य अस्त थवाथी चारेकोरथी अंधकारनो समूह विस्तार पाम्यो, अने तेथी चोरोए आवीने तेओना कपडा, द्रव्य तथा बळदो पण लइ लीधा ॥ १२५ ॥

तत एव तौ महतो दुःखस्य भाजनमजायेतां, एष दृष्टान्तोऽयमर्थोपनयः ॥ १२६ ॥ यो विनेयोऽन्यथा प्ररूपयन्नधीयानो वा खरपरुषवाक्यैराचार्येण शिक्षितोऽधिक्षेपपुरःसरं प्रतिवदति, यथा त्वयैवेत्थमहं शिक्षितः, किमिदानीं निह्नुषे, इत्यादि ॥ १२७ ॥ स न केवलमात्मानं संसारे पातयति, किंत्वाचार्यमपि खरपरुषप्रत्युच्चारणादिना तीव्रतीव्रतरकोपानलज्वालनात् ॥ १२८ ॥ भवति कुविनेया मृदोरपि गुरोः खरपरुषप्रत्युच्चारणादिना प्रकोपकाः, उक्तं चोत्तराध्ययनेषु ॥ १२९ ॥ आणासवा-थूलवया कुसीला । मिउपि चंडं पकरंति सीसा इति ॥ १३० ॥

अने एवी रीते तेओ बन्ने महादुःखने पात्र थया, ए उपर मुजबनुं तो दृष्टांत छे, परंतु तेना अर्थनो उपनय तो नीचे मुजब छे ॥ १२६ ॥ शिष्य के जे, उलटी रीते प्ररूपणा करतो होय, अथवा अभ्यास करतो होय, तेने आकरां वचनोथी आचार्य शिखामण आपे, अने ते वखते सामो थइने प्रतिवचनो कहे के, तमे मने एवी रीते शीखव्युं छे, हवे शामाटे गोपवो छो ? इत्यादि ॥ १२७ ॥ एवी रीतनो ते शिष्य केवल पोतानेज संसारमां पाडतो नथी, परंतु आकरां वचनो सामां बोलवा आदिकथी तथा वधारे वधारे क्रोधरूपी अग्निने प्रदीप्त करवाथी आचार्य-महाराजने पण संसारमां पाडे छे ॥ १२८ ॥ वळी एवी रीते कुशिष्यो कोमळतावाळा गुरुने पण आकरां वचनो बोलवा आदिकथी कोप उत्पन्न करनारा थाय छे, उत्तराध्ययनमां कह्युं छे के ॥ १२९ ॥ आज्ञाविनाना, स्थूल व्रतवाळा तथा कुशीलीया एवा शिष्यो कोमळ गुरुने पण क्रोधित करे छे. ॥ १३० ॥

अपि च गुणगुरवो गुरवस्ततस्ते यदि कथमपि दुष्टशैक्षशिक्षापनेन कोपमुपागमस्त-थापि तेषां जगवदाज्ञावर्त्तित्वादल्पपापत्वाजा मिथ्यादुष्कृतादिमात्रेणापि विशुद्धिरुप-जायते ॥ १३१ ॥ शिष्यस्तु जगवदाज्ञाविलोपतो गुर्वाशातनायाश्चोपचिताऽशुजगुरु-कर्मा दीर्घतरजाजी ॥ १३२ ॥ किंचैव स वर्त्तमानो मतिमानपि श्रुतरत्नबहिर्जवति, अन्यत्राऽपि तस्य दुर्लजश्रुतत्वात् ॥ १३३ ॥ को हि नाम सचेतनो दीर्घतरजीविताऽजिलाषी सर्प्पमुखे स्वहस्तेन पयोबिंदून् प्रक्षिपतीति ॥ १३४ ॥ स एकातेनाऽयोग्य, प्रतिपक्षजावनायामपीदमेव कथानक परिजावनीय ॥ १३५ ॥

वळी पण गुरुओ गुणाथी मोहोटा छे, अने तेओ कदाच कोइ कारणथी दुष्ट शिष्यने शिखामण आपवाथी क्रोध पामे, तोपण तेओ प्रजुनी आज्ञामा वर्त्तता होवाथी तेओने स्वल्प पाप लागे छे, अने ते फक्त मिथ्या दुष्कृत आपवाथीज शुद्ध थइ जाय छे, ॥ १३१ ॥ अने शिष्य तो प्रजुनी आज्ञाने लोपवाथी तथा गुरुनी आसातनाथी अशुज कर्माने उपार्जन करवाथी जारेकर्मा थयो थको दीर्घ संसारने जजनारो थाय छे ॥ १३२ ॥ वळी एवी रीते वर्त्तनारो शिष्य बुद्धिवान होय तोपण ज्ञानरत्नथी बाह्य थाय छे, तेम बीजा गच्छांतर आदिकमा पण तेने ज्ञान मळवु दुर्लज थाय छे ॥ १३३ ॥ वळी घणा काळ सुधी जीववानो अजिलाषी चतुर एवो कयो माणस एवो होय के जे पोताने हाथे सर्पना मुखमां दूधना टिपुओ रेडे ? ॥ १३४ ॥ माटे एवा प्रकारनो शिष्य एकांते अयोग्य छे, वळी उपर वर्णवेलु आजीरीनु दृष्टांत प्रतिपक्ष जावनामा पण नीचे मुजब जाववु ॥ १३५ ॥

केवलमिह घृतघटे भग्ने सति द्वावपि तौ दपती त्वरित त्वरित कर्परैर्यथाशक्ति घृत गृहीतवतौ, स्तोकमेव विननाश ॥ १३६ ॥ निदति चात्मानमाभीरो यथा हा मया न घृतघटस्ते सम्यक्समर्पितः, आभीर्यपि वदति समर्पितस्त्वया सम्यक्, न मया सम्यग् गृहीतस्तत एव तयोर्न कोपावेशडु ख ॥ १३७ ॥ नापि घृतहानिर्नापि सकाल एवान्यसार्थिकै सह ग्राममभिसर्पतामपातराले तस्करावस्कद., ततस्तौ सुखभाजन जातौ ॥ १३८ ॥ एवमिहापि कथचिदनुपयोगादिनाऽन्यथारूपे व्याख्याने कृते सति, पश्चादनुस्मृतयथावस्थितव्याख्यानेन सूरिणा शिष्य पूर्वमुक्त व्याख्यान चिंतयत प्रति एव वक्तव्य ॥ १३९ ॥

फक्त अहीं घीनो घडो ज्यारे भागी गयो त्यारे, ते बन्ने स्त्री भरतारे मळीने तुरत तुरत ते घीने जेटलुं लेवाय तेटलु कावलीओवडे लेइ लेवु जोइए हतु अने तेम करवाथी फक्त थोडोज नुकसान थात ॥ १३६ ॥ वळी ते ग्वालीए पण पोतानेज ठपको आपवो जोइता हतो के, अरे मे ते घीनो घडो तने जाळवीने न आप्यो, तेम ग्वालणे पण एम कहेवु जोइतुं हतु के, तमोए तो मने ते घडो जाळवीने आप्यो, परन्तु मे ते जाळवीने लीधो नहीं, एम जो तेओ बोलते, तो तेओने क्रोधना आवेशनु दुःख थते नहीं ॥ १३७ तेम घीनी हानि पण न थात, तथा वहेला वहेलाज बीजा साथीओनी साथे गाम जवात, अने तेथी रस्ते चोरोनो उपद्रव पण न थात, अने एवी रीते तेओ सुखना पात्ररूप थात ॥ १३८ ॥ एवी रीते अहीं पण कोइ रीते उपयोग आदिक विना आचार्य महाराजथी जो कइ उलटी रीते व्याख्यान कराइ गयु होय अने पाछळथी ते व्याख्याननु ज्यारे यथास्थित स्वरूप याद आव्यु होय, तो आचार्यजी महाराजे, शिष्य ज्यारे पेले कहेलु व्याख्यान विचारतो होय त्यारे एम कहेवु जोइये के ॥ १३९ ॥

अथ त्रयोदशस्तरंगः

एवं बहुधा श्रोतृविषयं योग्याऽयोग्यस्वरूप निरूप्येदानीं योग्यानेव कतिचिदाह—मूलम्—अत्थी समत्थ मज्झत्थ । परिरकखगधारगावि से सन्नू ॥ अपमत्त थिर जिइंदीअ । धम्मस्स पसाहगा पाय ॥ १ ॥

एवी रीते घणे प्रकारे श्रोताओ संबंधि योग्य अयोग्यनुं स्वरूप निरूपण करीने, हवे केटलाक योग्योनुंज वर्णन करे छे—मूलनो अर्थ—अर्थी, समर्थ, मध्यस्थ, परीक्षक, धारक, विशेषज्ञ, प्रमादविनानो, स्थिरचित्तवाळो तथा जितेंद्रिय, एटला प्राय करीने धर्मना प्रसाधक एटले योग्य छे ॥ १ ॥

पदघटना स्पष्टा, तत्रार्थिस्वरूपमाह, अत्थी पुण जो धम्म । निहिमिव नट्ठ गवेसए सम्मं ॥ तज्जाणगे अ पुच्छइ । सुविआरी तूसए लहिउं ॥ २ ॥ अन्यत्रापि, अत्थी एत्थ सो पुण । जो ससारिअत्तयं परिवहतो ॥ एसो च्चिअ परमत्थो । सेसोणत्थोत्तिमन्नतो ॥ ३॥ पुच्छइ गुरुणो तव्भेय । विसयववहारनिच्छयाइगय ॥ तस्स सरूव अणुदिण । मज्झ हिअ कयसमुट्ठाणो ॥ ४ ॥ धम्मिअजणेणुरज्जइ । सज्जइ अ ससत्तिओ अणुट्ठाणे ॥ वज्जइ अ तव्विरुद्ध—प्पवित्तिपवणं जण दूरे ॥ ५ ॥ तक्कहनिसामणेण वि । हरिसिज्जइ खिज्जइ असुहकिच्चे ॥ धम्मत्थीण इमे । दूरविरुद्धासमायारा ॥ ६॥

आ गाथानी पदरचना स्पष्ट छे, तेमां अर्थीनुं स्वरूप कहे छे, जे माणस नष्ट थयेला निधाधनने जेम, तेम धर्मने सम्यक् प्रकारे गवेषे छे, तथा धर्मना जाणकारने पूछ्याकरे छे, तेमज धर्मने मेळवीने जे संतुष्ट थाय छे, तेने उत्तम विचारवाळो अर्थी जाणवो ॥ २ ॥ बीजी जगोए पण कह्युं छे के, अहीं अर्थी तेने जाणवो, के जे, संसारसंबंधि भयने धारण करतो होय, तथा तेम करवुं तेज परमार्थ छे, अने बाकीनुं निरर्थक छे, एम जे माने छे, ते अर्थी छे, ॥ ३ ॥ वळी जे, गुरुप्रते धर्मना भेद तथा विषयेन पूछे छे, तथा संसारथी वैराग्ययुक्त थइने हमेशां हृदयनी अंदर निश्चय व्यवहारपूर्वक ते धर्मनुं स्वरूप चिंतवे छे, तेने अर्थी जाणवो ॥ ४ ॥ वळी जे धर्मी मनुष्यप्रते अनुराग धारण करे छे, तेम समर्थ यथोचित्त धर्मक्रियामां जे तत्पर थाय छे, तेमज जे धर्मविरुद्ध प्रवृत्ति करनारा मनुष्यने दूर तजे छे ॥ ५ ॥ वळी धर्मकथा सांभळवामां पण जे हर्षित थाय छे, तथा अशुभ कार्यमां जे अनादरपणुं धारे छे, तथा जेणे विरुद्ध आचरणो दूर कर्यां छे तेओने धर्मना अर्थी मनुष्यो जाणवा ॥६॥

अथ त्रयोदशस्तरंगः

एन वहुधा श्रोतृविषय योग्याऽयोग्यस्वरूप निरूप्येदानीं योग्यानेव कतिचिदाह—मूलम्—अत्थी समत्थ मज्झत्थ । परिरवगधारगावि से सन्नू ॥ अपमत्त थिर जिइंदीअ । धम्मरस पसाहगा पाय ॥ १ ॥

एवी रीते घणे प्रकारे श्रोताओ संबंधि योग्य अयोग्यनु स्वरूप निरूपण करीने, हवे केटलाक योग्योनुज वर्णन करे छे—मूलनो अर्थ—अर्थी, समर्थ, मध्यस्थ, परीक्षक, धारक, विशेषज्ञ, प्रमादविनानो, स्थिरचित्तवाळो तथा जितेंद्रिय, एटला प्रायें करीने धर्मना प्रसाधक एटले योग्य छे ॥ १ ॥

पदघटना स्पष्टा, तत्रार्थिस्वरूपमाह, अत्थी पुण जो धम्मं । निहिमिव नट्ठं गवे-
सए सम्मं ॥ तज्जाणगे अ पुच्छइ । सुविआरी तूसए लहिउं ॥ २ ॥ अन्य-
त्रापि, अत्थी एत्थ सो पुण । जो संसारिअजय परिवहंतो ॥ एसो च्चिअ पर-
मत्थो । सेसोणत्थोत्तिमन्नंतो ॥ ३॥ पुच्छइ गुरुणो तद्धेयं । विसयववहारनिच्छ-
याइगयं ॥ तस्स सरूवं अणुदिणं । मज्झ हिअ कयसमुट्ठाणो ॥ ४ ॥ धम्मिअ-
जणेणुरज्जइ । सज्जइ अ ससत्तिओ अणुट्ठाणे ॥ वज्जइ अ तव्विरुद्ध—प्पवि-
त्तिपवणं जणं दूरे ॥ ५ ॥ तक्कहनिसामणेण वि । हरिसिज्जइ खिज्जइ असुहकिच्चे
॥ धम्माणत्थीण इमे । दूरविरुद्धासमायारा ॥ ६॥

आ गाथानी पदरचना स्पष्ट छे, तेमा अर्थीनुं स्वरूप कहे छे, जे माणस नष्ट थयेला निधाधनने जेम, तेम धर्मने सम्यक् प्रकारे गवेषे छे, तथा धर्मना जाणकारने पूछ्या करे छे, तेमज धर्मने मेळवीने जे संतुष्ट थाय छे, तेने उत्तम विचारवाळो अर्थी जाणवो ॥ २ ॥ बीजी जगोए पण कह्यु छे के, अहीं अर्थी तेने जाणवो, के जे, संसारसंबंधि जयने धारण करतो होय, तथा तेम करवु तेज परमार्थ छे, अने बाकीनु निरर्थक छे, एम जे माने छे, ते अर्थी छे, ॥ ३ ॥ वळी जे गुरुप्रते धर्मना भेद तथा विषयने पूछे छे, तथा संसारथी वैराग्ययुक्त थइने हमेशां हृदयनी अंदर निश्चय व्यवहारपूर्वक ते धर्मनुं स्वरूप चितवे छे, तेने अर्थी जाणवो ॥ ४ ॥ वळी जे धर्मी मनुष्यप्रते अनुराग धारण करे छे, तेम समर्थ थयोथको धर्मक्रियामां जे तत्पर थाय छे, तेमज जे धर्मविरुद्ध प्रवृत्ति करनारा मनुष्यने दूर तजे छे ॥ ५ ॥ वळी धर्मकथा सांभळवामां पण जे हर्षित थाय छे, तथा अशुभ कार्यमां जे अनादरपणु धारे छे, तथा जेणे विरुद्ध आचरणो दूर कर्या छे तेओने धर्मना अर्थी मनुष्यो जाणवो ॥६॥

इअलक्खणो अ नेओ । अत्थी जोग्गो विसेसधम्मस्स ॥ एअविलक्खणरूवो य । जाणियव्वो अजुग्गोत्ति ॥ ७ ॥ अपिच, जह जोअणमि इच्छा जज्जोवइआण जहव अणुरागो ॥ तहअत्थित्त सार । परलोअपहाणचिठासु ॥ ८ ॥ न य विज्जोवि हुविज्जत । गुरुअरोगपि रोगिण दट्ठु ॥ अणत्थिमयतिगिछिचि अ । तिगिछित वछई कहवि ॥ ए ॥ किंच, सयुक्ष्यमाण इव जस्मनि वह्निशून्ये, सन्नाप्यमाण इव वा बधिरे मनुष्ये, अर्थित्ववर्जितहृदि प्रविधीयमान सपद्यते हि विफल सुधियां प्रयास, ततोऽर्थी धर्मस्य योग्य सोमवसुविप्रवत् ॥ १० ॥ कौशाम्ब्या सोमवसुर्विप्रोऽन्यदा कथकपार्श्वे धर्म श्रुत्वाऽप्राक्षीत्, भो कस्य पार्श्वे सम्यग् धर्मोऽस्ति ॥ ११ ॥

एवी रीतना उपर वर्णवेला लक्षणवालो मनुष्यने अर्थी जाणवो अने ते विशेष धर्मने योग्य छे, तथा तेथी उलटा लक्षणवालाने अयोग्य जाणवो ॥ ७ ॥ वळी पण, जोजनमां जेम इच्छा थाय छे, तथा जेम स्त्रीपर अनुराग थाय छे तेम परलोक संबंधी उत्तम चेष्टाओमां जे अर्थिपणु धारण करवु, ते सारभूत छे ॥ ८ ॥ जेने पोता माटे औषध करववानी इच्छा नथी, एवा महोटा रोगवाळा रोगीने जोने पण तेनी दवा करवाने वैद्य कोइ पण रीते इच्छा करतो नथी ॥ ए ॥ वळी अग्निरहित राखमा संधुक्रण मूकवानीपेठे, तथा बहेरा मनुष्यप्रते जाणण करवानीपेठे, अर्थीपणाथी रहित हृदयवाळा मनुष्य प्रते उत्तम बुद्धिवानोनो (धर्मोपदेश आदिकनो) प्रयास निष्फळ थाय छे, माटे सोमवसु ब्राह्मणनी पेठे अर्थी मनुष्य धर्मने योग्य छे ॥ १० ॥ कौशाम्बी नगरीमां सोमवसु नामना ब्राह्मणे एक वखते कथा कहेनार पासेथी धर्म सांभळीने तेने पूछ्यु के, उत्तम धर्म कोनी पासे छे ॥ ११ ॥

कथक प्रोचे, 'मिष्ठ भुंजेअव्व, सुहं सुएअव्व, लोगप्पिओ अप्पा कायव्वो' एतत्पदत्रयस्यार्थं य सम्यगवगच्छति पालयति च, तत्पार्श्वे सम्यग्धर्मः ॥ १२ ॥ तत स विविधान् दर्शनिनस्तदर्थं पृच्छन् क्वचिद्ग्रामे तपासमठे प्रापत्, तापसपार्श्वेऽर्थं पृच्छति ॥ १३ ॥ सोऽप्याह, अस्मद्गुरुणाप्येवमेवादिष्ट, परमर्थो नाऽख्यायि, ततो मया स्वधियेत्थ क्रियते ॥ १४ ॥ मन्त्रौषधादिविधिभिर्लोकप्रिय आत्मा कृत., तेनाहं मिष्ट भोजन लभे, इह मठे निश्चित. सुखेन स्वपिमीति ॥ १५ ॥ तच्छ्रुत्वा दध्यौ द्विज, नायमर्थं सगच्छते, यत —मतोसहिपमुहेहिं । जायइ जीवाण घायणं नूण ॥ ता लोगपिओ अप्पा । कह परमत्थेण इअ होई ॥ १६ ॥

कथा करनारे कह्यु के, 'मिष्टान्न खावु, सुखे सुवु, तथा लोकप्रिय आत्मा करवो' ए त्रण पदोनो अर्थ जे सम्यक् प्रकारे जाणे छे, अने पाळे छे तेनी पासे उत्तम धर्म छे ॥ १२ ॥ पछी ते ब्राह्मण जूदा जूदा दर्शनोवाळाने तेनो अर्थ पूछतो थको कोइक गाममां तापसना मठमां पहोंच्यो, तथा तापसने तेनो अर्थ पूछवा लाग्यो ॥ १३ ॥ त्यारे ते तापसे पण कह्यु के, अमारा गुरुए पण एमज कह्यु छे, परतु तेनो अर्थ कह्यो नथी, अने तेथी हु मारी बुद्धिपूर्वक नीचे मुजब करु छु ॥ १४ ॥ मत्र तथा औषधी आदिकनी विधियी मे लोकप्रिय आत्मा कर्यो छे, अने तेथी मने मिष्टान्न भोजन मळे छे, अने आ मठमा निश्चित थइ सुखे सुतो रहु छु ॥ १५ ॥ ते सांभळीने ब्राह्मणे विचार्यु के, आ अर्थ लागु पडी शकतो नथी, केमके—मत्र, औषधी आदिकथी खरेखर जीवोनो विघात थाय छे, माटे परमार्थथी लोकप्रिय आत्मा शी रीते थाय ? ॥ १६ ॥

पाएण मिछत्तं । जणेइ जीवाण गाढरसगिद्धिं तत्तो जवपरिवुड्ढी । ता परमत्थेण कहुअमिण ॥ १७ ॥ सुखशय्यापि धर्मार्थिना निषिद्धा, यडुक्तं—सुखशय्यासनं स्नानं तांबूलं वस्त्रमल्लं ॥ दंतकाष्टं सुगंधं च । ब्रह्मचर्यस्य दूषणं ॥ १८ ॥ ततस्तं पृष्टुं तत्स-तीर्थ्यपार्श्वे गतोऽर्थं पृच्छति, स प्राह, एकांतरोपवासकरणेन मिष्टं भुंजे, अध्ययनध्यानपरः सुखं स्वपिमि, निरीहत्वेन लोकप्रियोऽस्मीति ॥ १ए ॥ एतदाकर्ण्य पुनरचिंतयदिभ्यं, एष वरीयान्, परमेषोऽपि यत्र भुंक्ते तत्रैतदर्थं जोजने निष्पाद्यमाने महती जीवविराधने-ति कथं लोकप्रियत्वं, ततः पाटलीपुत्रे प्राप्तः ॥२०॥ सुलोचनमंत्रिपुत्रीं नरवाहनारूढां महोत्सवादागच्छंतीं दृष्ट्वा कश्चिदप्राक्षीत्, केयमित्यादि ॥ २१ ॥

मिष्टान्न जोजन प्राये करीने जीवोनुं अत्यंत रसलंपटपणुं उत्पन्न करे छे, अने तेथी संसारनी वृद्धि थाय छे, तथा तेथी परमार्थे करीने ते जोजन कडवुं छे ॥ १७ ॥ वळी धर्मना अर्थिओ माटे सुख शय्या पण निषेधेली छे, कडुं छे के—सुख शय्यापर बेसवुं, स्नान, तांबूल वस्त्र, आजरण, दातण, तथा सुगंधी, एटलावानां ब्रह्मचर्य प्रत्ये दूषणवाळां छे ॥ १८ ॥ पछी एवी रीते तेने पूछीने तेना सोवती पासे जइने ते पूछवा लाग्यो, त्यारे तेणे कह्युं के, हुं तो एकांतरे उपवास करीने मिष्ट जोजन करुं छुं, तथा शास्त्राभ्यासना ध्यानमां तत्पर थइ सुखे सुउं छुं, तेमज निस्पृहपणाथी हुं लोकप्रिय थइ पड्यो छुं ॥ १ए ॥ ते सांजळीने फरीने ब्राह्मणे विचार्युं के, आ कइक ठीक छे, परंतु ते पण ज्यां जोजन करे छे, त्यां तेने माटे जोजन तैयार कराबुं होवाथी मोटी जीवोनी विराधना थवी जोइये, माटे तेमां पण लोकप्रियपणुं शी रीते घटी शके? पछी ते पाटलीपुर नगरमां गयो ॥ २० ॥ त्यां मनुष्योए उचकेली पालखीमां बेसीने महोत्सवपूर्वक आवती एवी सुलोचनमंत्रिनी पुत्रीने जोइने, तेणे कोइने पूछयुं के, आ कोण छे? इत्यादि ॥ २१ ॥

सोऽप्यधात्, इय मन्त्रिपुत्री नृपसजाया पूरितसमस्या लब्धनृपप्रसादाऽप्येति, सम्यस्या चेय ॥ २२ ॥ तेन शुद्धेन शुध्यति, पूरिता चैव, यत्सर्वव्यापक चित्त । मलिन दोषरेणुभि ॥ सद्विवेकाबुसपर्का—त्तेन शुद्धेन शुध्यति ॥ २३ ॥ तद्वचनकौशल श्रुत्वा चमत्कृतस्तज्जनकमन्त्रिण पार्श्वे पदत्रयार्थ पृच्छति ॥ २४ ॥ मन्त्र्याह, अकृतमकारित शुद्ध मधुकरवृत्त्या लब्ध रागद्वेषविमुक्त मन्त्रादिप्रयोगवर्जितमाहार यो भुक्ते स मिष्टभोजी, अशुद्ध मोदकाद्यपि कटुकमेव ॥२५॥ यदुक्त—'अजय भुजमाणो अ' यश्च सर्वजीवहित सुवर्णाद्यर्थेनि स्पृहश्च स लोकप्रिय . य पुन स्वाध्यायध्यानपरोऽवसरे शेते स सुखशायीति ॥ २६ ॥

त्यारे ते मनुष्ये तेने कह्यु के, आ मन्त्रीनी पुत्री राजसभामा समस्या पूरीने, तथा राजानी कृपा मेळवीने आवे छे, अने ते समस्या नीचे मुजब छे ॥ २२ ॥ 'ते शुद्धथी शुद्ध थाय छे' एवी रीतनी समस्याने नीचे मुजब पूरेली छे, सर्व व्यापक एवु जे चित्त दोषोरूपी रजथी मलिन थयेलु छे, ते सद्विवेकरूपी जलना सगथी जो शुद्ध थाय, तो तेथी आत्मा शुद्ध थाय छे ॥ २३ ॥ एवी रीते तेणीना वचननी कुशळता जोइने आश्चर्य पामेलो ते ब्राह्मण तेणीना पिता मन्त्री पासे ते त्रणे पदोनो अर्थ पूछवा लाग्यो ॥ २४ ॥ त्यारे मन्त्रीए कह्यु के, (पोता माटे) नही करेलु, नहीं करावेलु, शुद्ध, मधुकरवृत्तियी मळेलु, रागद्वेष विनानु तथा मन्त्र आदिकना प्रयोग विनानु जे भोजन करे छे, ते मिष्टान्न भोजन करनारो छे, तथा अशुद्ध एवु लाडु आदिकनु भोजन पण कडवुज छे ॥ २५ ॥ कह्यु छे के—जयणा रहित भोजन करनार अनेक जीवोनो सहार करवाथी पापकर्म बांधे छे अने तेनु कडुक फळ भोगवे छे, वळी जे मनुष्य सर्व जीवोनो हितकारी छे. तथा सुवर्ण आदिक धननो निस्पृही छे, ते लोकप्रिय छे, तथा जे सज्झाय ध्यानमा तत्पर थयो थको अवसरे सुए छे, ते सुखे सुनारो छे ॥ २६ ॥

तन्निशम्य विप्र स्माह, कोऽपि किमीदृशोऽप्यस्ति, मन्त्र्युचे जैनमुनय सत्येव ॥ २७ ॥ तत स तत्र गतो विहरणादौ मिष्टभोजन, प्रतिलेखनादौ रात्रौ च तृतीययामे वैश्रमणोपपाताध्ययनगुणनाकृष्टधनदेन वरदानेऽपि निरीहत्वाल्लोकप्रियत्व, ध्यानपरत्वेन सुखशय्या च परीक्ष्य तद्धर्म प्रपद्य स्वर्ग क्रमान्मोक्ष च प्राप्तवानिति ॥ २८ ॥ तथा समर्थो धर्मस्य योग्य , समर्थलक्षण च,—होइ समत्थो धम्म । कुणमाणो जो न बीहइ परेसि ॥ माइपिइसामिगुरु—जाइआण धम्माउ भिन्नाण ॥ २९ ॥

ते सांभळीने ब्राह्मणे कह्यु के, शु कोइ एवो पण छे? मंत्रीए कह्यु के, जैनमुनिओ एवाज छे ॥ २७ ॥ पछी ते जैनमुनि पासे गयो, त्यां वहोरवा आदिकमा मिष्ट भोजन पडिलेहण आदिकमा तथा रात्रिए त्रीजे पहोरे वैश्रमणोपपात नामना अध्ययनना गणवाथी आकर्षायेला कुबेरे वरदान देवा मांडता पण मुनिओने निस्पृही जोइने तेमनु लोकप्रियपणु जाणु तथा ध्यानमा तत्पर पणाथे करीने सुखशय्या जाणी, एवी रीतनी तेमनी परीक्षा करीने, तथा ते धर्म स्वीकारीने स्वर्ग अने अनुक्रमे ते मोक्षे गयो ॥ २८ ॥ वळी समर्थ माणस पण धर्मने योग्य छे, समर्थनु लक्षण नीचे मुजब छे धर्म करतो थको जे माणस परथी डरतो नथी तेम माता, पिता, स्वामी, गुरु तथा भाइ, के जे भिन्न धर्मवाळा छे तेओथी पण डरतो नथी, ते माणस समर्थ छे ॥ २९ ॥

(जुओ दशवैकालिक सूत्र अध्ययन ४ थु)

तह जो पुव्वच्चिअ देवयाइ तक्कालपूअणाविरहे ॥ वीहेइ नेव तक्कय—विग्घुवसग्गा-
इणहिवि ॥ ३० ॥ हुंतीह केइ पुरिसा । सज्जसमुक्किट्ठविअधम्मजर ॥ पन्ना वि-
ग्घोवहया । हयव्व उज्झति दुइत्ता ॥ ३१ ॥ अपि च, सो धम्मे पडिबुद्धो ।
विग्घोवहओवि जो समुज्जमइ ॥ तयजावे सव्वोविहु । धम्महिगारी जवे इहरा
॥ ३२ ॥ गोत्रदेवीकृतविविधोपसर्गाऽत्याजितस्वधर्मदृढिमश्रीकुमारपालनृपारामन-
दनशुकपरिव्राजकाचार्याऽक्षोभितसुदर्शनश्रेष्ठिमातापित्रादिस्वजनाद्यत्याजितधर्माऽमरद-
त्तादयश्चात्र दृष्टांता जवतीति ॥ ३३ ॥

तेम वळी जे माणसे पूर्वे जे दव आन्हिकोन पूजेला होय, अने तेओनी ते वखते पूजानो विरह थवाथी, ते देवोए करेला विघ्न तथा उपसर्ग आदिकथी पण जे बीतो नथी, ते पण समर्थ छे ॥ ३० ॥ आ जगतमा एवा पण केटलाक पुरुषो छे, के जेओ सहसा धर्मनो जार ग्रहण करीने पाछळथी विघ्नोथी हणाया थका अवळी चालना घोडानी पेठे तेने छोडी आपे छे ॥ ३१ ॥ वळी पण, तेने धर्ममा प्रतिबोध पामेलो जाणवो. के जे, विघ्नोथी हणाया छता पण ते धर्म प्रत्येज उद्यमवंत थइ रहे छे अने विघ्नो जो न नडे, तोतो बीजा पण सघळा धर्मना अधिकारी थइ शके छे ॥ ३२ ॥ अहीं गोत्रदेवीए करेला नाना प्रकारना उपसर्गोथी पण जेणे पोताना धर्मनी दृढता तजी नथी, एवा कुमारपाळ राजा, आरामनंदन, शुक परिव्राजकाचार्यथी नहीं क्षोभ पामेला सुदर्शन शेठ, माता पिता आदिक तथा स्वजन आदिके पण नथी तजावेल धर्म जेने एवा अमरदत्त आदिकना दृष्टांतो अहीं लागु पडे छे ॥ ३३ ॥

तथा मध्यस्थो धर्मग्रहणेऽधिकारी, तल्लक्षणं च, न हु कुग्गहगहिअमई । सुवि-आरी जो सुदक्खयाइगुणो ॥ नकहिं विरत्तदुट्ठो । मज्झत्थो सो सुए भणिओ ॥ ३४ ॥ स एव हि यथास्थित धर्माधर्मादिवस्तुतत्वं परिछिनत्ति, यदुक्तं—विमलंमि दप्पणे जह । पडिबिंबइ पासवत्तिवत्थुगणो ॥ मज्झत्थंमि तहा नणु । सकमई समग्गधम्मगुणो ॥ ३५ ॥ अपिच, अशास्त्रज संस्करणं हि बुद्धे—रलोचनं वस्तुविलोकनं च ॥ आचार्यशिक्षाव्यतिरिक्तमेव । माध्यस्थ्यमाहुः परमं पटुत्वं ॥ ३६ ॥ दृष्टांताश्चात्र प्रागुक्तसोमवसुविप्रादयः, तथा परीक्षको योग्यः, सारेतरवस्तुपरीक्षकत्वात् कुरुचंद्रनृपादिवत् ॥ ३७ ॥

वळी मध्यस्थ मनुष्य पण धर्म ग्रहण करवामां अधिकारी छे, अने तेनुं लक्षण नीचे मुजब छे, जेनी कदाग्रहयुक्त बुद्धि नथी, जे उत्तम विचारवाळो छे, तथा जे दक्षपणा आदिक उत्तम गुणावाळो छे, तेमज जे कयांय पण रागी के द्वेषी नथी, तेने सिद्धांतमां मध्यस्थ कहेलो छे ॥ ३४ ॥ अने तेवो मध्यस्थ मनुष्यज धर्माधर्मादिवस्तुतत्वने यथार्थ रीते जाणी शके छे कयुं छे के—जेम निर्मल दर्पणमां पासे रहेली वस्तुओनां समूहनुं प्रतिबिंब पडे छे, तेम मध्यस्थ मनुष्यमां खरेखर धर्मना सघळा गुणो सक्रमे छे ॥ ३५ ॥ शास्त्रनी सहाय विनाज बुद्धिने सतेज करनार अने चक्षुनी सहाय विनाज वस्तु स्वरूपने विलोकन करनार एवुं आचार्यनी शिक्षा (शीखामण, —केळवणी) विनाज प्राप्त थयेलुं मध्यस्थपणुं परम पटुताकारक छे अर्थात् मध्यस्थता एज खरेखरी पटुता—कुशळता छे ॥ ३६ ॥ अहीं पूर्वे कहेला सोमवसु विप्र आदिकनां दृष्टांतो जाणी लेवां, वळी परीक्षा करनार मनुष्य पण योग्य छे, केमके ते कुरुचंद्र राजा आदिकनी पेठे सार असार वस्तुनी परीक्षा करी शके छे, ॥ ३७ ॥

सारत्यागतोऽसारग्राही
अपरीक्षक. पुनर्मोदकादिग्रहणतो रत्नादित्यागिशिश्वादिवत्
स्यात् ॥ ३८ ॥ तदुक्त—परीक्षका यत्र न सति देशे । नार्घति रत्नानि समुद्र-
जानि ॥ आभीरदेशे किल चन्द्रकात । त्रिभिर्वराटै प्रवदति गोपा॰ ॥ ३९ ॥
तत सम्यग्धर्मवस्तुनोऽपरिच्छेदकत्वादयोग्य॰ स, कुरुचन्द्रनृपकथा त्विय ॥ ४० ॥
काचनपुरे कुरुचन्द्रनृपति कुरुते राज्य, मत्री रोहक, स जैनो राज्ञोऽग्रे जिनधर्म
श्लाघते, राजाह कथ ज्ञायते सत्यमेप धर्म इति ॥ ४१ ॥ मत्र्यूचे, परीक्षया सारे-
तरवस्तुनिर्धार ,यदुक्त—मणिर्लुठतु पादाग्रे । काच. शिरसि धार्यताम् ॥ परीक्षक-
रप्रास॰ काच. काचो मणिर्मणि. ॥ ४२ ॥

अने जे परीक्षा नथी करी शकतो, ते तो मोदक आदिकने लेइ रत्न आदिकनो त्याग करनारा बालक आदिनी पेठे, सार वस्तुने छोडी असार वस्तुने ग्रहण करनारोज थाय ॥ ३८ ॥ कह्यु छे के— जे देशमा परीक्षको नथी, त्या समुद्रमा उत्पन्न थता रत्नोनी मा णी थती नथी, केमके आभीरोना देशमा गोवाळीआओ चद्रकात मणिने त्रण कोडीनो कहे छे ॥ ३९ ॥ माटे धर्मना तत्वने जे सम्यक् प्रकारे जाणतो नथी, ते अयोग्य छे. कुरुचद्र राजानी कथा नीचे मुजब छे ॥ ४० ॥ काचनपुर नामना नगरमा कुरुचद्र नामे राजा राज्य करे छे, तेने रोहक नामे मत्री छे, ते जैन होवाथी राजा पासे जिनधर्मना वखाण करे छे, त्यारे राजाए कह्यु के, ते धर्म साचो छे, ए वात केम जणाय ? ॥ ४१ ॥ मत्रीए कह्यु के, परीक्षा करवाथी सार असार वस्तुनो निर्धार थाय छे. कह्यु छे के, मणि भले पगे रखडतो होय, अने काचने मस्तकपर धारण करातो होय, परतु ज्यारे तेओ परीक्षकना हाथमा आवे, त्यारे काच ते काचज परखाय-अने मणि-ते मणिज-परखाय- ॥ ४२ ॥

अपिच, आगमेन च युक्त्या च । योऽर्थः समभिगम्यते ॥ परीक्ष्य हेमवद् ग्राह्य । पक्षपातग्रहेण किं ॥ ४३ ॥ न च,—पुराण मानवो धर्मः । साङ्गो वेदश्चिकित्सित ॥ आज्ञासिद्धानि चत्वारि न हन्तव्यानि हेतुभिः ॥ इत्यादिकग्रहविलसितं मनस्यवधार्यं ॥ ४४ ॥ यदुक्त—वस्त्वेव तन्नहि भवेत् क्रियतेऽन्यथा यत् कन्छादयेद्दिनमणिं करसपुटेन ॥ सारेतरान्तरविचारवत प्रतीर्यस्तेनाहमेव बत दुर्जनचक्रवर्ती ॥ ४५ ॥ इत्यादि, ततो नृप सर्वदर्शनिना हृद्गतवैराग्यपरीक्षार्थं 'सकुमक्ष वा वयण न वत्ति इति समस्यापदमार्पिपत ॥ ४६ ॥

वळी पण, आगमथी तथा युक्तिथी जे अर्थ सारीरीते जणाय तेनी परीक्षा करीने सुवर्णनीपेठे ग्रहण करवो. पक्षपात ग्रहण करवाथी शुं छे ॥ ४३ ॥ वळी पुराण, मनुस्मृति (मानवशास्त्र) अंगोसहित वेद तथा वैद्यक ए चारे आज्ञाथीज सिद्ध छे, माटे तओने हेतुओथी हणवा नहीं' इत्यादिक कदाग्रहयुक्त वचन मनमा धरवी न जोइये ॥ ४४ ॥ कह्यु छे के—जे वस्तुज न होइ शके के जे अन्यथा कराय, केमके सूर्यने हस्तसपुटथी कोण आच्छादी शके छे? माटे सार तथा असार वस्तुना तफावतनो विचारकरनार प्रत्ये इर्षा करनारो एवु हुज अरे रे! दुर्जनोनो सरदार छु ॥ ४५ ॥ इत्यादि, पछी राजाए सर्व दर्शनीवाळाना हृदयमा रहेला वैराग्यनी परीक्षामाटे 'सुख कुमनवाळु हतु के नहीं' एवी रीतनु समस्यानु पद आप्यु ॥ ४६ ॥

तत प्रथम बौद्ध प्राह, मात्रा विहारमिगएण दिठा । उवासिआ कचणजूसिअगी ॥ वखित्तचित्तेणमए न नाय । स कुन्डलं वा वयणं नवत्ति ॥ ४७ ॥ इत्यादिप्रकारैः सर्वैरप्यपरदर्शनिभिः शृंगाररसेनैव पूरिता सा समस्या विसंवदति धर्मे ॥ ४८ ॥ संन्याकारितो जैनमुनिस्तु—खतस्स दंतस्स जिइंदिअस्स । अज्झप्पजोगे गयमाणसस्स ॥ किमज्झएणेण विचिंतिएण । सकुन्डलं वा वयणं न वत्ति ॥ ४९ ॥ इति नामपूरयत्, तच्छ्रुत्वा चमच्चक्रे पृथ्वीशक्र यत,—क्षणादसारं सारं वा वस्तु सूक्ष्मं परीक्षते ॥ निश्चिनोति मरुत्तूर्णं । तूलोच्चयशिलोच्चयौ ॥ ५० ॥ तत प्रतिबुद्धः प्रपन्नवान् जिनधर्मं क्रमाच्छिवपदमपीति ॥ ५१ ॥

त्यारे प्रथम बौद्धदर्शनवाळो बोल्यो के, हुं ज्यारे मारा विहारमां गयो हतो, त्यारे सुवर्णथी कंपित थयेला शरीरवाळी स्त्री त्यां मेंदेखी में जोइ, परन्तु मारुं चित्त विक्षिप्त थवाथी में जाण्युं नहीं के, मुख कुंडलसहित हतुं के नहीं ॥ ४७ ॥ एवी रीते बीजा सघळा अन्य दर्शनीओए पण ते समस्या शृंगार रसथीज पूर्ण करी, अने तेथी ते धर्म साथे विसंवाद करनारी थइ ॥ ४८ पछी मंत्रीए बोलावेला जैन मुनिए तो (नीचे मुजब ते समस्या पूरी) क्षांत, दांत, जितेंद्रिय, तथा जेनुं मन अध्यात्म योगमां गयुं छे, एवा मारे तेनुं मुख कुंडलवाळुं छे के नहीं? ते संबंधमां विचार करवानीज शी जरुर छे? ॥ ४९ ॥ एवी रीते जैन मुनिए ते समस्या पूरी, ते सांभळीने राजा तो आश्चर्य पाम्यो, केमके सार अथवा असार वस्तुनी परीक्षा क्षणवारमांज निपुणमति करी ले छे, कारणके वायु रुना पुंभडाओना समूहनो तथा पत्थरोना समूहनो तुरत निश्चय करी ले छे ॥ ५० ॥ एवी रीते राजाए प्रतिबोध पामीने जैन धर्म अंगीकार कर्यो अने अनुक्रमे ते मोक्षे पण गयो ॥ ५१ ॥

तथा धारयति यथोक्त धर्माऽधर्मादिवस्तुतत्वमिति धारक, स धर्मस्य योग्य, अणि-मिसनयणा मण—कज्जसाहणा पुप्फदामअमिलाणा ॥ चउरंगुलेण भूमिं न छिवंति सुरा जिणाविंति ॥ ५२ ॥ इति गाथाधारकरौहिणेयवत, उपशमविवेकसंवरेति त्रिप-दीधारकचिलातीपुत्रवत् ॥ ५३ ॥ सर्वत्र ध्यानसमना—क्रचिर्मुच्येत पातकात् ॥ क्रूरक-र्मापि तिमिरे । कृतदीप इवात्रय ॥ इति श्लोकधारककेसरिचोरवत् ॥ ५४ ॥ श्री-वर्धमानजिनसमवसरणागततद्देशनाधारकाधारकैकचित्ततिप्रसिद्धाभिधानकुमारद्वयवच्च त त्सवधश्च 'बोहीए तेणनाणेति' दिनकृत्यगाथावृत्तेर्ज्ञेय, ततश्चाऽधारकोऽयोग्य इति निदर्शित ॥ ५५ ॥

वळी जे धर्म अधर्म आदिक वस्तुतत्वने यथाक्त रीते धारे छे, ते धारक कहेवाय अने ते धर्मने योग्य छे, निमेषरहित आंखोवाळा, मनथी चिंतेला कार्यने साधनारा, जेओनी पुष्पमाला करमाती नथी, तथा जे पृथ्वी थी चार आंगुल अधर रहे छे, तेने देवो जाणवा एम जिनेश्वरो कहे छे, ॥ ५२ ॥ एवी रीतनी गाथाने धारण करनार रौहिणेयक चोरनी पेठे योग्य जाणवा, तेमज 'उपशम, विवेक, अने संवर' एवी रीतना त्रण पदोने धारण करनार चिलाती पुत्रनी पेठे पण योग्य जाणवा ॥ ५३ ॥ ज्या दीपक कर्यो छे, एवु मकान जेम अंधका रथी मुकाय छे, तेम क्रूर कर्मवाळो मनुष्य पण जो सर्व स्थानमां समतासहितु ध्यान धरे, तो ते पापथी मुकाय छे, एवी रीतना श्लोकने धारनारा केसरि चोरनी पेठे पण योग्य जाणवा ॥ ५४ ॥ श्री वर्द्धमान प्रभुना समवसर-णमां आवेला तथा तेमनी देशनाने धारनारा एवा आधारक अने एकचित्त एवा प्रसिद्ध नामवाळा बन्ने कुमारो नी पेठे योग्य जाणवा, ते बन्नेनुं वृत्तांत 'बोहिए तेणनाणए' एवी रीतनी दिनकृत्यनी गाथानी वृत्तियी जाणवु माटे नहीं धारण करनार अयोग्य छे, एम जाणवु ॥ ५५ ॥

तथा वस्त्वऽवस्तुनो कृत्याकृत्ययो स्वपरयोर्वा विशेष जानातीति विशेषज्ञ, स ध-
र्मस्यार्ह. तदुक्तं— वत्थूण गुणदोसे । लक्खेई अपक्खवायभावेण ॥ पाएण वि-
सेसन्नू । उत्तमधम्मारिहो तेण ॥ ७६ ॥ अथवा विशेषमात्मन एव गुणदो-
षादिलक्षणं जानातीति विशेषज्ञ, यदुक्तं—प्रत्यहं प्रत्यवेक्षेत । नरश्चरितमा-
त्मन ॥ किं नु मे पशुभिस्तुल्य । किं नु सत्पुरुषैरिति ॥ ७७ ॥ श्रीधर्मदासग-
णिरपि, जो नवि दिणे दिणे संकलेइ के अज्ज अज्जिआमि गुणा ॥ अगुणेसु अ नहु
खलिओ । कह सो उ करिज्ज अप्पहिअं ॥ ७८ ॥

वळी वस्तु अवस्तुना, कृत्य अकृत्यना, तथा स्वपरना तफावतने जे जाणे छे, ते विशेषज्ञ एटले विशेष
जाणनारो कहेवाय, अने ते धर्मने योग्य छे. कह्युं छे के—विशेषज्ञ माणस प्राये करीने अपक्षपातपणाथी वस्तुना गुण
दोषोने जाणे छे, अने तेथी ते उत्तम धर्मने योग्य छे ॥ ७६ ॥ अथवा विशेषज्ञ एटले पोतानाज गुण दोषरूप
लक्षणरूप विशेषने जे जाणे छे, ते विशेषज्ञ कहेवाय. कह्युं छे के—मनुष्ये हमेशां पोतानुं चरित्र जोवुं
के मारुं चरित्र पशु समान छे? के उत्तम पुरुषो समान छे? ॥ ७७ ॥ श्रीधर्मदास गणीजी महाराजे पण कह्युं
छे के, जे मनुष्य दिन दिन प्रत्ये एकठुं विचारतो नथी, के आजे में कया गुणो मेळव्या? तथा जे अवगुणोमाथी
अटक्यो नथी, ते मनुष्य आत्मानुं हित शी रीते करे? ॥ ७८ ॥

यद्वा विशेषमात्मनो गत्यादिलक्षणं जानातीति विशेषज्ञः, तथा चाह,—इहोपपत्ति-र्मम केन कर्मणा । कुत प्रयातव्यमितो भवादिति ॥ विचारणा यस्य न जायते हृदि । कथं स धर्मप्रवणो भविष्यति ॥ ५९ ॥ अथवा विशेषं कालाद्युचितांगीका-रादिलक्षणं यद्यत्र कालादौ हातुमुपादातु वा युक्तं तदादिस्वरूपमित्यर्थं, स वेत्ति, तथा प्रवर्त्तते च य स विशेषज्ञ ॥ ६० ॥ प्रदीपपात्रे रजसतस्तैलक्षेपाद्भूगतेन तैलेनो-पानद्द्वयजकस्य श्वसुरस्योदार्यादिपरीक्षायै तीव्रोदरव्यथाव्याविर्भूजठरपीडोपशमनिमि त्तमामलकप्रमाणमौक्तिकप्रवालादिचूर्णरोट्टककारकश्रेष्ठिवत् ॥ ६१ ॥

अथवा विशेष एटले आत्माना गति आदिक लक्षणरूप विशेषने जे जाणे छे, ते विशेषज्ञ कहेवाय, वळी कह्युं छे के, कया कर्मथी मारी अहीं उत्पत्ति थइ? तथा आ भवथी हवे मारे क्यां जवुं छे? एवी रीतनो विचार जेना हृदयमां थतो नथी, ते मनुष्य धर्ममां शी रीते तत्पर थशे ॥ ५९ ॥ अथवा विशेष एटले काल आदिक उचित अंगीकार आदिक लक्षणवाळा विशेषने, अर्थात् जे काल आदिकने विषे जे कंइ छोडवुं अथवा ग्रहण करवुं युक्त छे, ते आदिक स्वरूपने जे जाणे छे, तथा ते प्रमाणे जे प्रवर्त्ते छे, ते विशेषज्ञ कहेवाय ॥ ६० ॥ दीवाना पात्रमां उतावळथी पूरता थका पडेलां तेलथी पगरखां चोपडनारा ससराने उदारता आदिकनी परीक्षा माटे पेटमां घणी घणी दुखावो थवाथी पेटमांनी पीडा दूर करवा माटे आंबळा जेवडां मोती तथा प्रवाळां आदिकना चूर्णनो रोटलो करावनारा शेठनी पेठे विशेषज्ञ जाणवो ॥ ६१ ॥

तथा च वधू प्रति तच्छ्रेष्ठिवच.,—य· काकिणीमप्यपथप्रपन्ना—मन्वेपते निष्कसहस्र-तुल्यां ॥ कालेन कोटिष्वपि मुक्तहस्त—स्तस्याऽनुवंध न जहाति लक्ष्मी ॥ ६२ ॥ एवं धर्माधिकारेऽपि विशेषज्ञो योग्य, यदागम.—सव्वत्थ संजमं । संजमओ अ-प्पाणमेव रक्खिज्जा ॥ मुच्चइ अइवायाओ । पुणो विसोही नयाविरई ॥ ६३ ॥ विशेषज्ञविषया दृष्टाताश्चात्र श्रीअभयकुमारमंत्रिश्रीवज्रस्वामिश्रीमदार्यरक्षितसूर्यादयोऽवगंतव्या. ॥ ६४ ॥ तथा अप्रमत्तो निद्राविषयविकथामद्यादिप्रमादरहित., स धर्मस्य योग्य सूरप्रभनृपादिवत्, प्रमादिनो धर्मश्रद्धानादेरप्यनुत्पत्ते, शशिनृपादेरिव, तदुक्त—॥ ६५ ॥ ॥

वळी ते वखते ते शेठे पोताना पुत्रनी वहुने नीचे मुजब वचन कह्यु हतु, जे कुमार्गे वपराती एक कोडीने पण जे हजार सोनामोहोरो सरखी जाणे छे, तथा वखत पडये क्रोडोगमेथी पण जे हाथ छुटो करी ले छे, तेनो संग लक्ष्मी छोडती नथी ॥ ६२ ॥ एवी रीते धर्मसबधी अधिकारमा पण विशेषज्ञ योग्य छे, आगममां पण कह्यु छे के, सर्व अर्थथी पण संयमनी रक्षा करवी, तथा संयमथी पण आत्मानी रक्षा करवी, केमके (जो आत्मा हयात होशे तो) ते पापथी मुक्त थइ फरीने पण शुद्ध थइ शकशे, अने अविरतिपणु रहेशे नहीं ॥ ६३ ॥ अहीं विशेषज्ञना संबधमा श्री अभयकुमार मंत्री, श्री वज्रस्वामी तथा श्रीमान् आर्यरक्षितसूरि आदिको दृष्टांतरूप जाणवा ॥ ६४ ॥ वळी अप्रमादी एटले निद्रा, विषय, विकथा तथा मद्य आदिक प्रमाद विनानो, अने तेवो मनुष्य सूरप्रभराजा आदिकनी पेठे धर्मने योग्य छे, प्रमादिने धर्मनी श्रद्धा आदिकनी पण शशी नृप आदिकनी पेठे प्राप्ति थती नथी कह्युं छे के—॥ ६५ ॥

पापासक्ते चेतसि । धर्मकथा स्थानमेव न लभते ॥ नीलीरक्ते वाससि । कुंकुमरागो दुराधेय. ॥ इति ॥ ६६ ॥ स्थिरो नामैकाग्रचित्त, स धर्मस्य योग्य, अस्थिरचित्ताना क्षीराश्रवादिलब्धिभिरपिबोधयितुमशक्यत्वात्, एकचित्ताभिधकुमारद्वयमध्यात् श्रीवीरवचनाऽप्रतिबुद्धकुमारवत् ॥ ६७ ॥ जितान्यत्यासक्तिपरिहारेण वशीकृतानींद्रियाणि स्पर्शनादीनि येन, स जितेंद्रियो धर्मोपदेशाना योग्य ॥ ६८ ॥ अजितेंद्रियो हि विषयतृष्णया बाध्यते, तद्बाधितश्च न श्रद्धत्ते हितोपदेशादैहिकमपि. दूरे धर्मस्य तथापि सीतारूपाक्षिप्तरावणनृपवत् ॥ ६९ ॥

पापोथी आसक्त थयेला चित्तमा धर्मकथाने तो स्थानज मळतु नथी. केमके गळीथी रंगेला वस्त्रपर केसरनो रग चढी शकतो नथी इति ॥ ६६ ॥ स्थिर एटले एकाग्र चित्तवाळो मनुष्य जाणवो, अने ते धर्मने योग्य छे, वळी जेओनु मन अस्थिर छे, तेओने क्षीरास्रवादिलब्धिवाळाओ पण प्रतिबोधि शकता नथी, (कोनी पेठे? तो के) एक चित्त नामना बे कुमारोमाथी श्री वीरप्रभुना वचनथी नहीं प्रतिबोध पामेला कुमारनी पेठे ॥ ६७ ॥ अत्यत आसक्ति तजवाथकी करीने जितेल छे. अर्थात् वश करेल छे स्पर्श आदिक इंद्रियो जेणे ते जितेंद्रिय कहेवाय, अने ते धर्मोपदेशने योग्य छे ॥ ६८ ॥ वळी जेणे इंद्रियो जितेली नथी एवो मनुष्य विषयनी तृष्णाथी दुःखी थाय छे; अने तेथी दुःखी थयो थको आ लोक सबधी हितोपदेशपर पण ते श्रद्धा करतो नथी, धर्म कथा तो त्यारे दूरज रही, (कोनी पेठे तो के) सीताना रूपथी व्याकुळ थयेला रावण नृपनी पेठे ॥ ६९ ॥

सरस्वतीसाध्वीरूपाक्षिप्तगर्दभिल्लनृपादिवत्, सुकुमालिकाराज्ञीस्पर्शासक्तजितशत्रुनृपवच्च, तत्संबंधसंग्राहक श्लोकश्च, यथा ॥ ७० ॥ बाहुभ्यां शोणितं पीतं—ऊरुमांसं च भक्षितं ॥ भर्ता च निहितः कूपे साधु साधु पतिव्रते ॥ ७१ ॥ इति, ततो जितेन्द्रिय एव धर्मस्य योग्य, एते अर्थिप्रभृतयो धर्मस्य साधका भवंति प्राय इति सटंक. ॥ ७२ ॥ प्रायोग्रहणाच्च तादृक्क्षेत्रादिसामग्रीवशात् क्वचित्प्राप्तधर्मेण केनचिद्व्यभिचारो नाशङ्कनीयः, धर्मसाधकत्वोक्त्या च धर्मोपदेशाना योग्यत्वमाक्षिप्तमेवेति ॥ ७३ ॥ योग्यान् स्वरूपादवगम्य सम्यगित्युल्लसद्देशनया बुधास्तान् ॥ सदानुगृह्णीध्वमितो भयेषां स्फुरति भावारिजयश्रियो यत् ॥ ७४ ॥

तेमज सरस्वती साध्वीना रूपथी मोहित थयेला गर्दभिल्लराजा आदिकनी पेठे तथा सुकुमालिका राणीना स्पर्शमा आसक्त थयेला जितशत्रुराजानी पेठे तेना संबंधने संग्रह करनारो श्लोक नीचे मुजब छे ॥ ७० ॥ भने हाथोमाथी रुधिर पीधु, तथा साथलनु मांस खाधु, तेमज भर्तारने कूवामा नाख्यो माटे पतिव्रता तो घणी सारी नीवडी ! ॥७१॥ इति ॥ माटे जितेन्द्रिय मनुष्यज धर्मने योग्य छे, एवी रीते उपर वर्णवेला अर्थी आदिक मनुष्यो प्राय करीने धर्मना साधक थाय छे, एवो संबंध छे ॥ ७२ ॥ अहीं प्राय शब्दना ग्रहणथी तेवी रीतनी क्षेत्र आदिकनी सामग्रीना वशथी, मळी प्राप्त थयेल धर्म जेने एवा कोइकनी साथे व्याप्त व्यभिचार संबंधी शंका करवी नहीं, वळी धर्मनु साधकपणु कहेवाथी धर्मोपदेश प्रत्ये योग्यपणु पण कहेलुज छे एम जाणी लेवु ॥ ७३ ॥ एवी रीते हे पण्डितो ! उल्लसायमान थती देशनावडे करीने सम्यग् रीते तेओना स्वरूपथी योग्य मनुष्योने जाणीने, तेओपर हमेशा अनुग्रह करो के जेथी भावशत्रुओने जीतवानी लक्ष्मीओ स्फुरणायमान थाय ॥ ७४ ॥

॥ इतिश्रीतपागच्छे श्रीदेवसुंदरसूरिश्रीज्ञानसागरसूरिशिष्यश्रीसोमसुंदरसूरिपट्टालंकारश्रीमुनिसुंदरसूरिविरचिते श्रीउपदेशरत्नाकरे श्रोतृविषययोग्यायोग्यत्वस्वरूपनिरूपणः प्रथमोंश, तरंगा १३, ॥ ग्रंथाग्र १००४ अक्षर ॥ २२ ॥

॥ इति श्री तपगच्छे श्री देवसुंदरसूरि, श्री ज्ञानसागरसूरि, शिष्य श्री सोमसुंदरसूरिनी पाटे अलंकाररूप श्री मुनिसुंदरसूरिए रचेला श्री उपदेशरत्नाकर नामना ग्रंथमा जामनगर निवासि श्राद्धवर्य हंसराजात्मज श्रावक हीरालाले करेला तेना गुजराती जाषांतरमा श्रोताओ संबंधि योग्य अयोग्यना स्वरूपने निरूपण करनारो प्रथम अंश समाप्त थयो; तेमा तेर तरंगो समाप्त थया. ग्रंथाग्रंथना श्लोको १००४ तथा अक्षरो २२ ॥ श्री रस्तु ॥

इति त्रयोदशस्तरंगः समाप्तः

अथ चतुर्दशस्तरंगः

—जुग्गेहि जुग्गपासे । सो पुण जुग्गो गहिज्जए विहिणा ॥ सपुन्नसुहफलो ज । एव चिअ अन्नहा इअर ॥ १ ॥

योग्य मनुष्योए योग्यनी पासे, अने ते पण पाछो योग्य एवो धर्म विधिपूर्वक ग्रहण करवो, के जेथी ते संपूर्ण सुखरूपी फळवाळो थाय छे, अने जो तेथी उलटी रीते ग्रहण कराय तो ते विपरीत फळवाळो थाय छे ॥ १ ॥

इति द्वारगाथाया जुग्गेहिंत्ति गत, अथजुग्गपासेत्ति द्वितीय द्वार विवरितु श्रीगुरुगत योग्याऽयोग्यत्वस्वरूप निरूपयति प्रस्तावागतं श्राद्धादिगतमपि ॥ २ ॥ मूलम्—जह चास कुंच महुर । मोर पिगा हंस कीर करटमुहा ॥ अठ्ठ खगा तह गुरुणो । रूवुवएसाइ किरिआहि ॥ ३ ॥ व्याख्या—चापक्रौंचमधुकरमयूरपिकहंसकीरा प्रसिद्धा, करटो ध्वाङ्क्ष, मुखशब्द प्रमुखार्थ स च प्रत्येकं योज्य, ततश्च यथा चापप्रमुखाश्चापप्रकारा पक्षिण इत्यर्थ. ॥ ४ ॥ एव क्रौंचप्रमुखाः मधुकरप्रमुखा इत्यादि ज्ञेय, रूवुवएसा इत्यादि रूपोपदेशक्रियाभिरष्टेत्यष्टप्रकारा खगा पक्षिण. स्युः, एव गुरवोऽप्यष्टप्रकारा भवतीति पिण्डार्थ ॥ ५ ॥

एवी रीतनी द्वार गाथामा 'योग्या ए' पदनु वर्णन कर्यु, हवे 'योग्य पासे' एवी रीतना बीजा द्वारनु विवरण करवा माटे, श्रीगुरु सबधि योग्य अयोग्यनु स्वरूप, तेमज प्रस्ताव आवेनु श्रावक आदिक सबधि पण योग्य अयोग्यनु स्वरूप निरूपण करे छे ॥ २ ॥ मूळनो अर्थः जेम चाप, क्रौंच, भ्रमर, मयूर, कोयल, हस, पोपट तथा कागडा आदिक आठ पक्षिओ छे. तेम गुरुओ पण रूप उपदेश तथा क्रियाथी आठ प्रकारना छे ॥ ३ ॥ व्याख्या— चाप क्रौंच, भ्रमर, मयूर कोयल, हस अने पोपट ए प्रसिद्ध छे. करट एटले कागडो, ते मुखशब्द अहीं प्रमुखने अर्थे छे, अने ते दरेकनी साथे जोडी देवो, अने तेथी चाप आदिक नाना प्रकारवाळा पक्षिओ जाणवा ॥ ४ ॥ एवी रीते क्रौंच आदिक भ्रमर आदिक, एम जाणवु, एटले रूप उपदेश अने क्रियावडे करीने आठ प्रकारना पक्षिओ होय छे, अने एवी रीते गुरुओ पण आठ प्रकारना होय छे, एवो समुदायार्थ जाणवो ॥ ५ ॥

तत्र रूपोपदेशक्रियाभिरिति सामान्योक्तावपि वचनस्य विशेषविषयत्वात् तद्विशेषा ग्राह्या ॥ ६ ॥ तथाहि खगपक्षे रूप विशिष्टवर्णाकारादिस्वरूप, उपदेश श्रोतृजनाह्लादिवचन, क्रिया पुन शुच्याहारादिरूपा, गुरुपक्षे तु रूप जिनप्रणीतस्तादृक्प्रमाणाद्युपेतो वेष ॥ ७ ॥ उपदेश शुद्धमार्गप्ररूपणा क्रिया च सम्यग्मोक्षमार्गानुष्ठानरूपेति, अपि च रूपोपदेशक्रियारूपैस्त्रिभि पदैरष्टौ भगा, तथाहि—एकैकभगास्त्रय, रूप, उपदेश, क्रिया च, द्विकयोगास्त्रय, रूपोपदेशौ, उपदेशक्रिये, रूपक्रिये च, त्रिकयोग एक, त्रयाऽभावपक्षश्चैक इति ॥ ८ ॥ एतैश्चाष्टभिर्भगैर्यथाऽष्टधा चापादय पक्षिण, तथाऽष्टधा गुरवोऽपि, एतदेव भाव्यते ॥ ९ ॥

तेमा रूप, उपदेश अने क्रियावडे करीने, एम सामान्य प्रकारे कहेते छते पण वचननो विशेष प्रकारनो विषय होवाथी ते सबधि विशेषो पण ग्रहण करवा ॥ ६ ॥ ते कहे छे—पक्षि सबधि पक्षमा उत्तम वर्ण, आकार आदिकना स्वरूपवालु रूप जाणवु, उपदेश एटले श्रोताओने हर्ष करनारु वचन जाणवु, तथा क्रिया एटले पवित्र आहार आदिक रूप जाणवी, गुरुना पक्षमां रूप एटले जिनेश्वर प्रभुए कहेलो तेवी रीतना प्रमाण आदिकवालो वेष जाणवो ॥ ७ ॥ उपदेश एटले शुद्ध मार्गनी प्ररूपणा, तथा क्रिया एटले सम्यक् प्रकारे मोक्षमार्गना अनुष्ठान रूप क्रिया जाणवी, वळी ते रूप उपदेश अने क्रियारूप त्रण पदो वडे करीने आठ भागाओ थाय छे, ते कहे छे—एकेकना त्रण भागा, रूप, उपदेश अने क्रिया, द्विकयोगी त्रण भागा, रूप अने उपदेश, उपदेश अने क्रिया, तथा रूप अने क्रिया, त्रिकयोगी एक भागो, तथा त्रणेना अभावना पक्षवाळो एक भागो ॥ ८ ॥ एवी रीते उपर वर्णवेला आठ भागाओवडे करीने जेम आठ प्रकारना चाष आदिक पक्षिओ होय छे, तेम गुरुओ पण आठ प्रकारना होय छे, तेज स्वरूप हवे कहे छे ॥ ९ ॥

यथा चाषपक्षिणि रूपमस्ति पञ्चवर्णसुन्दरत्वात्, शकुनतया दर्शनीयत्वाच्च, नतूपदेश, वाक्सौंदर्याऽज्ञानात्, नापि क्रिया, कीटाद्याहारित्वात् ॥ १० ॥ तथा केषुचित् गुरुषु रूपमस्ति सुविहितवेषत्वात्, न पुनरुपदेश., शुद्धमार्गाऽप्ररूपकत्वात्, नापि क्रिया निरवद्याहारादिस्वरूपा, प्रमादादिभिस्तदसमाचरणात् ॥ ११ ॥ तदुक्तं—दगपाण पुप्फफलं । अणेसणिज्जं गिहत्थकिच्चाइं ॥ अजया पडिसेवंती । जइवेसविडंबगा नवर ॥ इत्यादि ॥ १२ ॥ एवंविधाश्च बहवोऽपि, सम्प्रति तु दुःखमानुभावतो विशिष्येति न निदर्शनमपेक्षन्ते मागधिकागणिकावशीकृताऽवस्थयतिवेषभाक्कुलवालुकऋष्यादयो वा यथासम्भवं दृष्टान्ता अप्यत्र निवेश्या ॥ १३ ॥

जेम चाष पक्षिमां रूप छे, केमके ते पंचरंगीपणाथी सुन्दर छे तथा ते शकुनरूप ते दर्शन करवा लायक छे परन्तु तेनामां उपदेशनो गुण नथी, केमके तेनी वाणीमां सुंदरपणुं नथी. तेम तेमां क्रिया पण (शुभ) नथी, केमके ते कीडा आदिकनो आहार करनार छे ॥ १० ॥ एवी रीते केटलाक गुरुओमां रूप होय छे, केमके तेमनो वेष सुविहित होय छे, परन्तु उपदेश होतो नथी, केमके ते शुद्ध मार्ग प्ररूपता नथी, तेम निरवद्य आहार आदिरूप क्रिया पण होती नथी, केमके प्रमाद आदिकवडे करीने तेवी क्रियानुं तेओ आचरण करी शकता नथी ॥ ११ ॥ कह्युं छे के—पाणी, माटी, पुष्प, फळ अनेषणीय आहार, गृहस्थनुं कार्य तथा जतना न राखवी ते, एटलावाना साधुना वेषने वगोवनारां छे, तेमां संदेह नथी, इत्यादि ॥ १२ ॥ एवा प्रकारना यतिओ तो हालमां आ पंचम आराना प्रभावथी घणा छे, माटे तेनुं विशेष प्रकारे दृष्टान्त आपवानी कंइ जरुर नथी; तोपण मागधिका, नामे गणिकाथी वश करायेली अवस्थामां रहेवा यतिवेषधारी कुळवालक ऋषि आदिकोनां दृष्टांतो पण अहीं यथासम्भवें जाणी लेवां ॥ १३ ॥

कुलवालके हि यतिवेषोऽस्ति, नतु क्रिया, मागधिकागणिकाप्रसक्ते., विशालानगादिमहारम्भादिप्रवर्त्तकत्वाच्च, नाऽप्युपदेश, सामान्यसाधुत्वेन तदऽनधिकारित्वात्, तादृगुन्मार्गगामिबुध्या गुरुकुलवासत्यागिनस्तस्य शुध्धमार्गप्ररुपकत्वाऽसंजवाच्चेति प्रथमो जगः ॥ १४ ॥ कौंचपक्षिणि यथा रूप नास्ति, दर्शनीयवर्णाकाराद्यजावात्, क्रियापि न, कीटाद्याहारित्वात्, केवलमुपदेशोऽस्ति मधुरगम्भीरजापित्वात् ॥१५॥ तथाच श्रीसमवायांगे वसुदेववर्णके 'सारयनवथणिअमहुरगम्भीरकुचनिग्घोसदुन्दुहिसरा' इति, तद्वृत्तिलेश, शरदि जव शारद, स चासौ नव स्तनितमस्मिन्निर्घोषे, स चेति समास ॥ १६ ॥

केमके कुलवालक ऋषिमा यतिनो वेष तो हतो, परतु (शुन्न) क्रिया नहोती, केमके तेमने मागधिका नामे गणिकानो प्रसग थयो हतो, तथा विशालानगरीने जागवा आदिकना महान् आरम्भनी तेमणे प्रवृत्ति करावी हती, तेमज तेमनी पासे उपदेश पण नहोतो, केमके सामान्य साधुपणु होवाथी ते सबधि तेमने अधिकार नहोतो, तेमज तेवी रीतनी कुमार्गगामी बुध्धिवमे करीने गुरु कुलमा नहीं रहेनारा एवा तेमने शुध्ध मार्गनी प्ररूपणा करवापणानो असजव छे, एवी रीते पहेलो जागो जाणवो ॥ १४ ॥ वळी क्रौंच पक्षिमा जेम रूप नथी, केमके तेनो वर्ण तथा आकार आदिक देखावमा नथी, तेम तेनामा क्रिया पण (शुन्न) नथी, केमके ते कीमा आदिकोनु जक्षण करनार छे, केवळ तेनामा उपदेशनो गुण छे, केमके ते मधुर अने गम्भीर स्वर बोलनारो छे ॥ १५ ॥ श्री समवायांगसूत्रमा वासुदेवना वर्णनमा कह्यु छे के, 'शरद ऋतुना नवा गर्जना करता वरसाद सरखा मधुर अने गम्भीर एवा क्रौंच पक्षीना स्वर सरखा तथा दुदुभिना स्वर सरखा स्वरवाळा वासुदेव' तेनी टीकानो लेश कहे छे, शरद ऋतुमा उत्पन्न थयेलो ते शारद कहेवाय, एवो तथा नवो छे गर्जारव जेना शब्दमा ते, एवो समास थयो ॥ १६ ॥

स चासौ मधुरो गंजीरश्च यः क्रौंचनिर्घोष, पक्षिविशेषनिनादः, तद्वत् डुंडुजिस्वरश्च स्वरो येषां ते वासुदेवा इत्यादि ॥ १७ ॥ एवं केषुचिद्गुरुषु न रूपं, चारित्रवेषाऽजावात्, नापि क्रिया, प्रमादपतितत्वात् उपदेश पुनरस्ति शुद्धमार्गप्ररूपणात्मक, प्रमादजनितपरिव्राजकवेषभृत शुद्धमार्गप्ररूपणावस्थश्रीप्रथमतीर्थपतिपौत्रमरीच्यादिवत् ॥ १८ ॥ पार्श्वस्थादिवच्च, पार्श्वस्थेषु क्रियारहितत्वादेव प्रस्तुतनामप्रवृत्ते, वेषस्यापि प्रायेणाऽजावाच्च ॥ १९ ॥ यदुक्त—वत्थंदुप्पडिलेहिअमपमाणं सकसिअ डुकूलाइ, इत्यादि, शुद्धप्ररूपकत्व तु जवति यथाछदवर्जितानां ॥ २० ॥

एवो मधुर अने गंजीर जे क्रौंच पक्षीनो शब्द, तेनी पेठे तथा दुंदुजिना स्वरनी पेठे छे स्वर जेमनो एवा ते वासुदेवो, इत्यादि ॥ १७ ॥ एवी रीते केटलाक गुरुओमां चारित्रनो वेष न होवाथी रूप नथी होतुं; तेम प्रमादमां पडवाथी क्रिया पण नथी होती, परंतु शुद्ध मार्गनी प्ररूपणा करवारूप उपदेशनो गुण तेओमां होय छे, (कोनी पेठे ? तो के) प्रमादमां पडीने परिव्राजकनो वेष धरनारा तथा शुद्ध मार्गनी प्ररूपणानी अवस्थामां रहेला श्री प्रथम तीर्थंकरना पौत्र मरीचि आदिकनी पेठे ॥ १८ ॥ तेमज पासत्था आदिकोनी पेठे, पासत्थाओमां क्रिया नहीं होवाथीज तेओना ते नामनी प्रवृत्ति थयेली छे, तेम तेओने वेषनो पण प्रायें करीने अजाव छे ॥ १९ ॥ कह्युं छे के—तेओनां वस्त्रो सारी रीते पडिलेहण कर्या विनानां, प्रमाण विनानां तथा किनारीवाळां रेशम आदिकनां होय छे; इत्यादि, वळी जेओए स्वेच्छाचारीपणुं तजेलुं छे, एवा तेओमां शुद्ध प्ररूपणानो गुण तो होय छे ॥ २० ॥

तदुक्त—इत्थ य पासत्थाईहि । संगयं चरणनासयं पाय ॥ समत्तहरं अहछंदए—हितल्लक्खण चेय ॥ २१ ॥ उस्सुत्तमायरंतो, उस्सुत्तंचेव पन्नवेमाणो ॥ एसो उ अहाछंदो । इच्छाछंदुत्तिएगट्ठा ॥ २२ ॥ सछंदमइविगप्पिय । किंचि सुहसायवि-गइपडिबद्धो ॥ तिहि गारवेहि मज्जइ । तं जाणाही अहाछंद ॥ २३ ॥ एवमाइ बहु-विगप्प । उस्सुत्त आयरति सयमेव ॥ अन्नेसि पन्नविति य । सिक्खाए जे अहाछंद ॥ २४ ॥ इत्यादि, प्रतिदिनदशदशप्रतिबोधितृनंदिषेणसदृशास्तु श्राद्धलिंगत्वान्न गुरुपक्तिमर्हतीति द्वितीयो जग ॥ २५ ॥

कहु छे के—पासत्था आदिकनी संगति अहीं घणें करीने चारित्रनो नाश करनारी छे, तथा स्वेच्छा चारिनी संगति सम्यक्त्वने हरनारी छे, तेनु लक्षण नीचे मुजब छे ॥ २१ ॥ उत्सूत्रने आचरतो तथा उत्सूत्रने प्ररूपतो एवो यति स्वेच्छाचारी कहेवाय, ‘ यथाछंद, इच्छाछंद’ ए शब्दो एकार्थवाची छे ॥ २२ ॥ स्वेच्छाचारी मतिना विकल्पोथी किंचित् सुखशीलीओ थइने (घृत, गोळ आदिक) विगयोनो लालचु थयो थको ऋद्धिगर्व आदिकमा जे मग्न थाय छे, तेने स्वेच्छाचारी जाणवो ॥ २३ ॥ इत्यादिक घणा विकल्पोपूर्वक ते पोतेज उत्सूत्रनु आचरण करे छे, तेमज बीजाओने पण उत्सूत्र प्ररूपे छे, तथा शिखामण देता पण तेओ स्वेच्छाचारी थाय छे ॥ २४ ॥ इत्यादि, हमेशा दश दशने प्रतिबोधनारा नन्दिषेण सरखा तो श्रावकना लिंगवाळा होवाथी गुरुपक्तिने लायक थइ शकता नथी, एवी रीते बीजो जाणों जाणवो ॥ २५ ॥

मधुकरो भ्रमरस्तस्यापि खगमनशीलत्वात् खगत्व न विरुद्धं, यथा भ्रमरखगे न रूप, कृष्ण-वर्णत्वात्, नाप्युपदेशः, तत्स्वरस्य तादृगुदात्तत्वमाधुर्याद्ययोगात् ॥ २६ ॥ केवल क्रि-यास्ति, उत्तमकुसुमेषु यथा तदम्लानिपरिमलैकपायित्वात्, तथा केषुचिद् गुरुषु न रूप यतिवेषाऽधारित्वात्, नाप्युपदेश कुतश्चिद्धेतोस्तदनासेवकत्वात् ॥ २७ ॥ क्रिया पुनर-स्ति, यथाविहिता, यथा प्रत्येकबुद्धादिषु, प्रत्येकबुद्धस्वयबुद्धतीर्थकरादयो हि साधर्मि-का इत्यतस्तेषु यतिवेषधारित्वेऽपि तीर्थगतसाधूना प्रवचनलिंगाभ्या न साधर्मिका इत्यत-स्तेषु न यतिवेषधारित्व ॥ २८ ॥

मधुकर एटले भमरो, अने ते पण आकाशमा गमन करनारो होवाथी, तेने पक्षी कहेवामा विरोध नथी, हवे जेम भ्रमर पक्षिमां, ते काळा रंगनो होवाथी रूप नथी, तेम तेमा उपदेशनो गुण पण नथी, केमके तेना स्वरमा तेवा प्रकारनु गंभीरपणु के मीठाश नथी ॥ २६ ॥ केवळ तेमा क्रियानो गुण छे, कारणके ते पुष्पोने ग्लानि उपजाव्या विना, तेमाथी मकरंद पीये छे, एवी रीते केटलाक गुरुओमा रूप होतु नथी, केमके तेओ साधुना वेषने धारण करता नथी, तेम कोइक कारणथी उपदेशने नहीं सेवता होवाथी, तेओमा उपदेशनो गुण पण होतो नथी ॥ २७ ॥ परतु तेओमा प्रत्येक बुद्धादिकोनी माफक यथा विहित एवी शुभ क्रिया होय छे; प्रत्येक बुद्धो, स्वयबुद्धो तथा तीर्थकर आदिको साधर्मिक एटले एक सरखा छे, अने तेथी तेओमा जोके साधु वेषने धरवापणु छे, तोपण शासनमां वर्त्तता एवा साधुओना प्रवचन अने लिंग साथे तेओ सरखापणु धरता नथी, माटे तेओमा साधु वेषने धरवापणुं नथी ॥ २८ ॥

नाप्युपदेशः, देशनाऽनासेवक, प्रत्येकबुद्धादिरित्यागमात् क्रिया त्वस्ति, तद्भंग एव मुक्तिफलेति तृतीयो भंग. ॥ २९ ॥ यथा च मयूरे रूप समस्ति पंचवर्णमनोहर, उपदेशश्च मधुरकेकारूप, पर क्रिया नास्ति सर्पादिरप्याहारकत्वेन निस्त्रिंशत्वात् ॥ ३० ॥ तथा गुरुष्वपि केपुचित् द्वयमस्ति, नतु क्रिया, मथुरामंग्वाचार्यादिवदिति चतुर्थो भंग ॥ ३१ ॥ तत्र मंग्वाचार्यसंबधो यथा, मंगुनामाचार्योऽन्यदा मथुरां पावयामास—श्रुतस्य शान्तेस्तपसा निधान । युगप्रधान तु तदा तमाहु ॥ विहाय कार्यांतरमतराया—न्यानन्नादृत्य मुनीनशेषान् । भक्त्या वशीभूत इवातिभूरि । सूरि सिषेवेऽत्र जनस्तमेव ॥ ३२ ॥

तेम तेओमा उपदेश गुण पण होइ शकतो नथी केमके प्रत्येक बुद्धादिकोने देशनाना नहीं सेवनार आगममां कह्या छे, वळी तेओने तेज भव मोक्ष मळवाना फळरूप क्रिया छे, एवी रीते त्रीजो भांगो जाणवो ॥ २९ ॥ वळी जेम मयूरमां मनोहर पंचरंगीरूप छे, तेम मधुरवाणीरूप उपदेश पण छे, परंतु हिंसक होवाथी करीने सर्प आदिकनो आहार करवाथी तेनामां क्रियारूपी गुण नथी ॥ ३० ॥ तेम केटलाक गुरुओमां पण रूप अने उपदेशरूप बे गुणो तो होय छे, परंतु मथुरावासी मंगु आचार्य आदिकनी पेठे क्रिया होती नथी, एवी रीते चोथो भांगो जाणवो ॥ ३१ ॥ ते मंगु आचार्यनु वृत्तांत नीचे मुजब छे, एक वखते मंगु आचार्ये मथुरा नगरीने पवित्र करी, अर्थात् त्यां आव्या, ते वखते मंगु आचार्यने लोको सिद्धांतना, शांतिना तथा तपना निधानरूप अने युग प्रधान कहेता हता, तथा तेथी घणा लोको बीजुं कार्य छोडीने, तथा बीजा सघळा मुनिओनो पण अनादर करीने जाणे भक्तिथी वश थइ गया होय नहीं, तेम तेनेज सेववा लाग्या ॥ ३२ ॥

न वदकप्रत्नकपाठकेऽस्य । प्रवारयामोऽक्षणिका सदैव ॥ इत्यार्यमगौ वदति प्रदर्पा—
जयादिशेत्येव जना जगुस्ते ॥ ३३ ॥ निष्ठागरिष्ठश्च तपोनिधिश्च । चारित्रवांश्चेति जनै
स्तुवानैः॥ मुनिः स मानाख्यमहाद्रितिग्म—प्रोत्तुंगशृंगं परिरोप्यते स्म ॥ ३४ ॥ वर्धि-
ष्णु ऋद्ध्युत्तरगौरवाख्य शृगांतर तत्र चरन्नवाप॥ अहो अह पूजितपूजिताघ्रि—रित्येप
मेने त्रिजगत् तृणाय ॥ ३५ ॥ एव रसगौरवसातागौरवरूपे अपि शृगे प्राप, तत उद्यत-
विहार त्यक्त्वा नित्यवास प्रपन्नः, जैनकुलादिषु ममत्वमगीचकार ॥३६॥ तत ,आत्मस्तु-
ति श्राद्धकृतामथाऽन्य—निंदाविमिश्रामनुमोदमानः॥ मिथ्याभिमानाऽभिनिविष्टबुद्धि—
र्मिथ्यात्वमूरीकृतवानहयुः ॥ ३७ ॥

रचना करनारा, पूछनारा तथा जाणनाराओथी अमारो तो आरो आवतो नथी. अने एवी रीते अमोने हमेशा क्षणवार पण फुरसद मळती नथी, एवी रीते अहंकारथी मगु आचार्य बोलते छते लोको तेओने 'तमो जय पामो? हुकम फरमावो" एम कहेवा लाग्या ॥ ३३ ॥ वळी तमो निष्ठामा गरिष्ठ छो, तपना भंडार छो, तथा चारित्रयुक्त छो, एवी रीते स्तुति करता लोकोए ते मुनिने मान नामना महान् पर्वतना ऊंचा शिखरपर चढाव्या ॥ ३४॥ वळी एवी रीते ते मानरूपी शिखरपर चढता थका, वृद्धि पामता एवा ऋद्धिगारव नामना बीजा शिखरपर ते चड्या; तथा अहो! पूजनीको पण मारा चरणो पूजे छे, एम विचारीने ते त्रणे जगतने तृण समान मानवा लाग्या ॥ ३५ ॥ तथा एवी रीते अनुक्रमे ते मंगु आचार्य रस गौरव तथा साता गौरवरूपी शिखरपर पण चड्या, तथा पछी उद्यत विहार तजीने एकज जगोए रहेवा लाग्या; तथा जैनकुल× आदिकमा ममता करवा लाग्या ॥ ३६ ॥ पछी बीजाओए करेली निंदाथी मिश्रित थयेली एवी श्रावकोए करेली पोतानी स्तुतिने अनुमोदता थका, तथा मिथ्याऽभिमानना आग्रहवाळी बुद्धियुक्त थया थका अभिमान लावीने मिथ्यात्वपणु भजवा लाग्या ॥ ३७ ॥

× गोचरी प्रमुख माटे जैन कुळमां के अन्य अमुक कुळमाज जवु वगेरे बाबतमा ममत्व धरवा लाग्या एवो अर्थ संभवे छे

अर्थानिनेप्सुर्विपरीतनीति । कामी परवस्त्रीष्विव बद्धरागः॥ धर्मांध्वपगुर्गुरुरार्यमंगु—र्मूलङ्कति प्राप विशेषलिप्सु ॥ ३८॥ सद्दर्शनालोकलसद्विशेष—श्रुत तप सयम इत्यशेष ॥ सदप्यसद्रूपमहो चकार । हहा । महामोहमयोधकार ॥ ३९॥ ततो मृत्वा तत्रैव प्रणालायतनवासी यक्षोऽभूत, स विभगात् प्राग्भवप्रमाद भृश शुशोच, तथा चाह, 'पुरनिद्धमणे जक्खो' इतिमथुरामगुकथा ॥ ४० ॥ पिक कोकिल . तस्मिन् यथोपदेशोऽस्ति पचमगायित्वात् . क्रिया च सहकारमजर्यादिशुच्याहारत्वात तथा चाहु ॥ ४१ ॥

अनीतिवालो मनुष्य जेम धनने इच्छे, तथा कामी पुरुष जेम परस्त्रीमां अभिलाष करे, तेम धर्ममार्गमा चालवाने पागला एवा मगु आचार्य विशेष इच्छा करता थका मूळने पण तोडी बेठा ॥ ३८ ॥ अहो ! ते मगु आचार्य मत् एवा पण सम्यग् दर्शन, सम्यग् ज्ञान, तथा जबसायमान थर्तु विशेष प्रकारनु श्रुत, तप, संयम विगेरे सर्व असत् कर्युं, माटे अरेरे ! मोहरूपी महान् अंधकारनु एवु स्वरूप छे ॥ ३९ ॥ पछी त्याथी मृत्यु पामी ते मगु आचार्यनो जीव तेज नगरनी गटरमा रहेनारा यक्षरूपे उत्पन्न थयो, तथा त्या विभग ज्ञानथी पूर्वजन्मे करेलो प्रमाद जाणीने घणो शोच करवा लाग्यो, कह्यु छे के—'नगरनी गटरनो यक्ष,' एवी रीते मथुरावासी मगु आचार्यनी कथा जाणवी ॥ ४० ॥ हवे पिक एटले कोयल, ते पचम राग गानार होवाथी तेमा उपदेशरूपी गुण छे, तेमज आंबानी माजर आदिकना शुद्ध नहारथी तेमा क्रिया सबधी गुण पण रहेलो छे; कह्यु छे के ॥ ४१ ॥

आहारे शुचिता स्वरे मधुरता नीडे निरारम्भता । वपौ निर्ममता वने रसिकता वाचालता माधवे ॥ त्यक्त्वा त द्विजकोकिल मुनिवर दूरात्पुनर्दाम्भिक वंदते वत सज्जन कृमिभुज चित्रा गति कर्मणा ॥ ४२ ॥ इति, नतुरूप काकादितोऽपि निकृष्टरूपत्वात् तथा केषुचिद् गुरुषु सम्यक् क्रियोपदेशौ स्त , न तु रूप, कुतश्चिद्धेतोर्यतिलिङ्गाऽधारित्वात्. सरस्वतीवालनाहेतुकयतिनेपथ्यागिश्रीकालिकसूरिवत् ॥ ४३ ॥ इति पञ्चमो नग. ॥ हस प्रसिद्ध., यथा तस्मिन् रूप प्रसिद्ध क्रिया च कमलनालाद्याहारादिरूपा, न तूपदेश , पिकशुकादिवत् हसपक्षिणि तदप्रसिद्ध ॥ ४४ ॥

जेम आहारमा पवित्रता छे, स्वरमा माधुर्य छे, माळो बांधवामा निरारम्भपणु छे, वपुमा निर्ममपणु छे, वनमा रसिकपणु छे तथा वसन्तमा जेने वाचालपणु छे, एवा कोकिल पक्षी रूपी मुनिवरने दूर छोडीने, कीडा खानारा पत्नन पक्षी सरखा कपटी यतिने अरेरे! लोको वंदन करे छे, माटे कर्मानी विचित्र गति छे ॥ ४२ ॥ इति रीते कोकिलमा रूप होतु नथी, केमके ते तो कागडाथी पण रूपमा नठारो छे, एवी रीत कटलाक गुरुओमा उत्तम प्रकारनी क्रिया अने उपदेश तो होय छे, परन्तु वेषरूपी रूप होतु नथी, केमके कोइक कारणने लीधे, सरस्वती मा नीने वाळवा माटे मुनिना वेष तजनारा श्री कालिकसूरिनी पेठे मुनिना वेषने ते धारण करता नथी ॥ ४३ ॥ एवी रीते पांचमो भांगो जाणवो ॥ हस ए प्रसिद्ध छे, जेम तमा रूप प्रसिद्ध छे, तेम क्रिया पण कमळ नाळना आहार आदिक रूपी छे, परन्तु तेनामा कोयल तथा पोपट आदिकनी पेठे उपदेशनो गुण नथी, केमके हस पक्षीना नादनी प्रसिद्धि नथी ॥ ४४ ॥

तथा केषुचिद्गुरुषु साधुमात्ररूपेषु द्वयमस्ति, न पुनरुपदेश, गुर्वननुज्ञातत्वादिना तदनधिकारित्वात्, अन्यशाखिचन्द्रादिमहर्षिवत्, इति षष्ठो भंग ॥ ४५ ॥ कीर. शुक, स च बहुविधशास्त्रसूक्तकथादिपरिज्ञानप्रागल्भ्यवानिह गृह्यते, स च रूपेण रमणीय, क्रियया सहकारकदलीदाडिमीफलादिशुच्याहारादिमान्, उपदेशपटुश्च चेतोहरवचनत्वात ॥ ४६ ॥ कस्यचित्तथाविधावसरोचितहितोपदेशकत्वादपि, श्रूयते च शुकद्वासप्तत्यादौ, शुकेन द्वासप्तत्या कथानकैः प्रोषितपतिकाया श्रेष्ठिपत्न्या परसंगनिवारणेन शीलरक्षाकरणादि ॥ ४७ ॥

एवी रीते कव्वाक साधु मात्ररूप गुरुओमां वेष अने क्रिया ए बन्ने तो होय छे, परंतु उपदेश होतो नथी, केमके गुरुए तेम करवानी अनुज्ञा नहीं आपवा आदिकवडे करीने घणा शाखिचन्द्र आदिकनी पेठे उपदेश देवामां तेओने अधिकार होतो नथी एवी रीते छठ्ठो भांगो जाणवो ॥ ४५ ॥ कीर एटले पोपट, अहीं एवा पोपटनुं ग्रहण करवुं के, जे घणा प्रकारना शास्त्रोना उत्तम श्लोको तथा कथा आदिकनी जाननी चतुराइवाळो होय, ते पोपट रूपे मनोहर होय छे, तेम क्रियावडे करीने पण आंबा, केळ, दाडिम, आदिकना पवित्र आहारवाळो होय छे, तेम मनोहर वचनवाळा होवाथी उपदेशमां पण प्रवीण कहेवाय छे ॥ ४६ ॥ केमके तेवो पोपट कोइने अवसरोचित हितोपदेश पण आपे छे, शुकबहुतेरी आदिकमां संभळाय छे के पोपटे बहोतेर कथाओवडे करीने परदेश गयेला पतिवाळी शेठनी स्त्रीने परपुरुषना संग निवारण करवावडे करीने तेणीना शीलनुं रक्षण आदिक कार्य कर्युं छे ॥ ४७ ॥

रत्नसारश्रेष्ठिक्रियादिषु स्थाने स्थाने हितोपदेशादि च, तथा केचित् श्रीगुरवस्त्रय-मपि बिभ्रति श्रीजम्बूश्रीवज्रस्वाम्यादिवत् ॥ ४८ ॥ इति सप्तमो भंग ॥ तथा च करट काकस्तस्मिन् न रूप, लोचनाऽप्रियदर्शनत्वात्, नोपदेशः कटुरटनशीलत्वात्, नापि क्रिया, रोगिजरद्गवादिपश्वादिजीवलोचनोत्पाटनक्षतचञ्चुघट्टनादिकारित्वात् ॥ ४९ ॥ तद्रुधिरमांसमलाद्यशुच्याहारित्वाच, एवं केषुचिदगुरुषु रूप, उपदेश, क्रिया चेति त्रयमपि नास्ति, भावना प्राग्वत्, निदर्शनं च अशुद्धप्ररूपका पार्श्वस्थादय एव, परतीर्थिका लिंगिनो वा ॥ ५० इत्यष्टमो भंग ॥

वळी रत्नसार शेठनी कथा आदिकमां ठेकाणे ठेकाणे (पगले पगले) हितोपदेश आदिक छे, एवी रीते केटलाक गुरु महाराजो रूप क्रिया अने उपदेश, ए त्रणे गुणोने धारण करे छे (जानी पेठे तो के श्री जम्बूस्वामी तथा श्री वज्रस्वामी आदिकनी पेठे ॥ ४८ ॥ एवी रीते सातमो भांगो जाणवो ॥ हवे करट एटले कागडो, तेमां रूप नथी, केमके तेनुं जोवुं मनुष्योनी आंखोने अप्रिय थइ पडे छे, वळी कटुक स्वरवाळो होवाथी तेमां उपदेशनो गुण पण नथी, तेम तेनामां क्रिया पण शुद्ध नथी, कारणके ते रोगी एवी गाय आदिक पशु आदिक जीवोनी आंखो उखेडवी, तथा तेओने पडेला चांदापर चांचो घाचवी इत्यादिक अशुभ क्रियानो करनार छे ॥ ४९ ॥ तेमज ते पशु आदिकोना रुधिर, मांस तथा मल आदिक अपवित्र पदार्थोना भक्षण करनार छे एवी रीते केटलाक गुरुओमां रूप उपदेश के क्रिया ए त्रणे हतां नथी तेनी विशेष भावना (समजण) पूर्वनी पेठे जाणवी अहीं दृष्टांत तरीके अशुद्ध उपदेश प्ररूपनारा पासत्था आदिकोनेज जाणवा, अथवा परतीर्थी लिंग धारीओने जाणवा ॥ ५० ॥ एवी रीते आठमो भांगो जाणवो ॥

॥ प्रमुखवचनाच्च तज्जातीया अपरेऽपि पक्षिणो दृष्टान्तीकार्या, यथासम्भवमिति, एषु चाष्टसु भङ्गेषु क्रियाविकलपक्षाः सर्वेऽप्ययोग्या एव, क्रियासहितपक्षास्तु योग्याः ॥ ५१ ॥ पर तत्राप्युपदेशविकलाः स्वतारकत्वेऽपि न परान् तारयितुं समर्थाः, अशुद्धोपदेशकास्तु स्वपरांश्च जगाध्यौ निमज्जयन्तीति शुद्धोपदेशक्रियायुक्तपक्ष पिकदृष्टान्तसूचित स्वीकारार्हः ॥ ५२ ॥ त्रियोगपक्षश्च कीरदृष्टान्तेन प्रकटित सर्वोत्तम एवेति,—खगाष्टकस्पष्टनिदर्शनैरिति । श्रीमद्गुरून्दृष्टनिधान वितन्वन् ॥ सम्यक्क्रियासारगुणान् परीक्ष्य तान् । भजेत नावारिजयश्रिये बुध ॥७३॥

॥ इति श्रीमुनिसुन्दरसूरिविरचिते श्रीउपदेशरत्नाकरे चतुर्दशस्तरङ्ग ॥

अहीं प्रमुख शब्दथी ते जातिवाळा बीजा पक्षिओने पण योग्यता प्रमाणे दृष्टान्त रूपमा लेवां. ते आठे भांगाओमां क्रिया विनाना सर्व पक्षो अयोग्यज छे, अने क्रिया सहित पक्षो योग्य छे ॥ ॥ ५१ ॥ वळी त्यां पण उपदेश विनाना तो जो के पोताने तारे छे, परतु परने तारवाने समर्थ नथी. वळी अशुद्ध उपदेश देनाराओ तो पोताने अने परने पण संसारसमुद्रमां डुबावे छे, माटे कोयलना दृष्टान्तथी सूचन करेलो एवो शुद्ध उपदेश तथा शुद्ध क्रियावाळो पक्ष स्वीकारवा लायक छे ॥ ५२ ॥ वळी पोपटना दृष्टान्तथी सूचवेलो त्रियोगी पक्ष सर्वथी उत्तमज छे, एवी रीते आठे पक्षिओना स्पष्ट दृष्टान्तो करीने आठ प्रकारना गुरुओने जाणीने तेओमांथी उत्तम क्रिया तथा उत्तम गुणोवाळाओनी परीक्षा करीने तेमने, डाह्या माणसोए जीतवानी लक्ष्मी माटे सेववा ॥ ५३ ॥

॥ एवी रीते श्री मुनिसुन्दर सूरिजीए रचेला श्री उपदेशरत्नाकरमां चौदमो तरङ्ग समाप्त थयो ॥

इति चतुर्दशस्तरंगः समाप्तः

अथ पंचदशस्तरंगः

पुनर्निदर्शनात्तरैर्गुरुस्वरूप प्रस्तावागत श्राद्धादिस्वरूप चाह—मूलम् सोवाग वेस गिहवइ । रायाहरण व मज्झवहिसारा ॥ चउगुरुगिहि धम्मजिया । सुअकिरिया सुद्धि धम्मेहि ॥ १ ॥

वळी बीजा दृष्टांते करीने गुरुनुं स्वरूप तथा प्रस्तावथी आवेनुं श्रावक आदिकनुं स्वरूप पण कहे छे — मूळनो अर्थ —चामार, वेश्या, गृहपति तथा राजाना आंगणनी पेठे मध्य तथा बहारथी सारभूत एवा चार प्रकारना गुरुओ तथा गृहस्थिओ, श्रुत, क्रिया, शुद्धि अने धर्मवडे करीने धर्मरूपी आजीविकावाळा थाय छे ॥ १ ॥

अस्या व्याख्या, श्वपाकवेश्यागृहपतिराज्ञामाजरणानीव मध्ये वहिश्च सारा असाराश्चत्वार इति चतु प्रकारा , श्रुतेन, क्रियया, शुद्ध्या धर्मेण च क्रमाद् गुरवो, गृहीति सामान्योक्तावपि श्रावकरूपा गृहिणो धर्माजीवाश्च जवतीति पिमार्थ. ॥ २ ॥ अथ विस्तारार्थ.तत्र मज्कवहिसारा इत्युक्त्या आजरणाना चतुर्जंगी सूचिता, तथाहि ॥ ३ ॥ कानिचिदाजरणानि मध्येऽतरऽसाराणि, वहिरप्यसाराणि (१) अंतरसाराणि वहिश्च साराणि (२) अत·साराणि वहिरसाराणि (३) मध्ये वहिश्च साराणीति (४) ॥ ४ ॥

हवे ते गाथानी व्याख्या कहे छे, चांमाल वेश्या गृहस्थी तथा राजाना आजरणोनी पेठे मध्ये तथा वहारथी सार अने असारश्रुत, ज्ञान, क्रिया, शुद्धि अने धर्मथी अनुक्रमे गुरुओ चार प्रकारना छे, तथा गृहस्थी एम सामान्यपणे कह्या छता पण श्रावकरूपी गृहस्थिओ जाणवा, अने तेवा श्रावकरूपी गृहस्थिओ पण चार प्रकारे धर्मरूपी आजीविकावाळा थाय छे एवो समुदायार्थ जाणवो ॥ २ ॥ हवे विस्तारवाळो अर्थ कहे छे त्या मध्ये अने वहारथी सार, एम कहीने आजरणोनी चतुर्जंगी सूचन करी, ते कहे छे ॥ ३ ॥ केटलाक आजूषणो अंदरथी पण सारविनाना अने वहारथी पण सार विनाना छे (१) केटलाक अंदरथी असार अने वहारथी सारवाळा छे (२) केटलाक अंदरथी सार अने वहारथी असार छे. (३) अने केटलाक तो अंदरथी अने वहारथी बन्नेथी सारवाळा (४) छे ॥ ४ ॥

टीका — यथा कानामुपलक्षणादन्येषामप्याभीरादीनां नीचजातीनां आभरणानि कथीरा-दिमयत्वेनात शुषिरत्वात्, कर्करादिभृतत्वाद्विना चान्तरसाराणि, तादृक्तेज शोभाद्य-भावाद् बहिश्चाऽसाराणि ॥ ५ ॥ केवलं नूपुरकुण्डलाद्याकारमात्रधारित्वादाभरणानी-त्युच्यते, तैश्च परिहितैर्मया नूपुरादीनि परिहितानीत्यभिमानमात्रसुखं परिधातु ॥ ६ ॥ तथा तेषामाभरणादीनां मुक्तैरपि न किमपि विशिष्य द्रव्यादि अव्यते, नष्टैरपि च न काचिद् द्रव्योत्पत्तिरिति प्रथम आभरणभेद ॥ ७ ॥ तथा वेश्यानां आभरणान्यन्त शुषिरत्वात लाक्षादिभृतत्वाच्चाऽसाराणि, बहिश्च ताम्रादिमयत्वेऽपि स्वर्णेन रसितत्वा-न्मुग्धानां स्वर्णमयत्वबुद्धिहेतुत्वेन साराणीव प्रतिभासते, इति साराणि ॥ ८ ॥

ज्या भाभीरादिक नीच जातिना आभरणो आदिक नीच जातिओना आभूषणो कथिर आदिकना तथा अन्दरथी पोला होवाथी तथा अन्दर कांकरा आदिक भरेला होवाथी अन्दरथी सार विनाना छे. तेमज तेवां तेज तथा शोभा आदिक न होवाथी बहारथी पण सार विनाना छे ॥ ५ ॥ फक्त कांझर तथा कुंडल आदिकनो मात्र आकार धरता होवाथी आभूषणो कहेवाय छे, अने तेवां आभूषणो पहेरवाथी में कांझर आदिक पहेर्यां छे एम फक्त अभिमानरूप सुख पहेरनारने जणाय छे ॥ ६ ॥ वळी ते आभूषणो आभूषणोने घरेणे आदिक मुकवाथी पण, तेथी कंइ विशेष रीते द्रव्य आदिकनो लाभ थतो नथी, तेम ते आभूषणो नाशवाथी पण कंइ द्रव्यनी उत्पत्ति थती नथी, एवी रीते आभूषण संबंधि पहेलो भेद जाणवो ॥ ७ ॥ हवे वेश्याना आभूषणो अंदर पोला होवाथी अने लाख आदिकथी भरेला होवाथी सार विनाना छे, अने बहारथी तांबाना होवा छतां पण उपर सोनानो ढोळ चडाववाथी करीने मुग्ध लोकोने ते सोनाना छे, एवी बुद्धि थवा वडे करीने जाणे सारवाळा होय नहीं तेवां लागे छे, माटे सारवंत छे ॥ ८ ॥

यद्वा बहि सारत्व प्रकारांतरेण जाव्यते, तथाहि—यथाऽऽजरणानि कुलस्त्रियो वस्त्राच्छादनेन गुप्तानि परिदधति. न तथा गणिका, तान्निरनाच्छादनेन स्फुटवृत्त्यैवाङ्गदकुण्डलादीनां परिधानात् ॥ ए ॥ तेन बहिर्द्योतमानताप्रतिज्ञासात्तानि बहिःसाराणीति. तैश्चाऽखण्डैः शुद्धाजरणवत् शोजादि स्यात्, महणकादौ मुक्तैश्च तत्स्वरूपाऽनजिज्ञा मुग्धा उव्याद्यर्पयंति, जग्नैस्तु न कोऽप्यर्थः सिद्ध्यतीति द्वितीयः ॥ १० ॥ तथा गृहिणां व्यवहारिणामाजरणानि सर्वस्वर्णमयत्वाद्दृतर्निघटत्वात्सारााणि, बहिश्च ताहक्प्रौढ रत्नादिजटितत्वाऽजावात् ॥ ११ ॥ तद्योषिदादिजिर्वस्त्राच्छादनादिना गुप्तवृत्त्या परिधानेन वा राजाजरणापेक्षया अनुदरा कन्येत्यादिवत् अल्पसारत्वादसाराणि ॥ १२॥

अर्थः— ते बहारनु सारपणु बीजी रीते बतावे छे, ते कहे छे—जेम कुलीन स्त्रीओ वस्त्रआदिकथी ढांकीने गुप्त रीते आजूषणो पहेरे छे, तेम वेश्याओ गुप्त पहेरती नथी, तेओ तो वस्त्रआदिक ढांक्या विना प्रगट रीतेज बाजुबंध तथा कुंमल आदिक पेहेरे छे ॥ ए ॥ अने तेथी बहारथी चळकता देखावाथी तेओ बाह्यसारवाळा छे, वळी ज्यांसुधी ते अखंम होय त्यांसुधी तो साचां आजूषणनी पेठे शोजा आदिक थाय, तेम घरेणे मूकवाथी पण तेना स्वरूपने नहीं जाणनारा मुग्ध लोको ते साटे द्रव्यआदिक आपे छे, परंतु ते आजूषणो जाग्याथी तेथी कंइ पण स्वार्थ सरतो नथी, एवी रीते बीजो जेद जाणवो ॥ १० ॥ वळी गृहस्थीना एटले व्यापारीओना आजूषणो, साव सोनाना होवाथी तथा अंदर नकोर होवाथी सारजूत छे, तथा बहारथी तेमां तेवा उमदा रत्नआदिक जमेला न होवाथी ॥ ११ ॥ तेमज तेओनी स्त्री आदिको पण वस्त्रो ढांकवा आदिकथी गुप्त रीते पहेरे छे, अने तेथी, राजाना आजूषणोनी अपेक्षाये "आ कन्या उदर विनानी छे" इत्यादिकनी पेठे ते आजूषणो स्वल्प सारवाळां होवाथी असारजूत छे ॥ १२ ॥

२८

तानि चाऽवश्कानि नग्नानि वाऽर्थदानादिकार्यकारीएयेवेति तृतीय. ॥ १३ ॥ तथा राज्ञामाजरणानि प्राग्वद्रुत.साराणि, बहिरपि च लक्षकोट्यादिमूल्यरत्नादिजटितत्वाक्षिनंथत्वेन पुन्निर्नृपयोपिद्भिश्च स्फुटवृत्त्यैव परिधानादिना वा रविकिरणादिवद् द्योतमानत्वेन साराएयेव ॥ १४ ॥ तैश्चाऽखनै. सुखमातिरेकोत्पत्ते., नग्नैरपि च स्वर्णमाणिक्यादिमूल्योत्पत्तेश्चाऽभीष्टसिद्धिरेवेति चतुर्थ· ॥ १५ ॥ एव गुरवोऽतर्बहिश्च श्रुतेन सताऽसता च चतुप्रकारा ज्ञेया, अतर्बहिश्चाऽसारा, अतरसारा बहि सारा·, अंत सारा बहिरसारा., अतर्बहिश्च सारा· ॥ १६ ॥

वळी ते आजूषणो अखंड होय या नागेना होय, तोपण द्रव्यना दान आदिक कार्यने करनारांज छे, एवी रीते त्रीजो जेद जाणवो ॥ १३ ॥ वळी राजानां आजूषणो पूर्वनी पेठे अदरथी सारवाळा, तेम वहारथी पण लाखो क्रोमोनी किमतवाळां रत्नो आदिकथी जमेलां होवाथी, अथवा निर्नयपणे पुरुषो तथा राजानी स्त्रीओ वमे प्रगट रीतेज पहेरवा आदिकथी अथवा सूर्यना किरण आदिकोनी पेठे चळकतां होवाथी सारजूतज छे ॥ १४ ॥ वळी तेओ ज्यासुधी अखंमित होय त्यासुधी पहेरवाथी अत्यत सुखनी प्राप्ति थाय छे अने नागवाथी पण सुवर्ण तथा माणिक्य आदिकोनुं मूल्य उपजवाथी इच्छित सिद्धि थायज छे, एवी रीते चोथो जेद जाणवो ॥ १५ ॥ एवी रीते गुरुओ पण अदर अने वहार छता अने अछता एवा ज्ञाने करीने नीचे मुजब चार प्रकारना जाणवा अदरथी अने वहारथी सार विनाना; अदर सारविनाना अने वहारथी सारवाळा, अदरथी सारवाळा अने वहारथी सार विनाना; तथा अदरथी पण सारवाळा अने वहारथी पण सारवाळा ॥ १६ ॥

तत्र केषाचित् पार्श्वस्थादीनामंतर्हृदये न श्रुतं सम्यक्श्रीजिनागमरूप, तदश्रद्धानात्-लेशतोऽपि तद्भावनाद्यभावाद्वा ॥ १७ ॥ अश्रद्धानादि च तल्लिंगस्य, महाव्रताराधनावश्यकादिसम्यक्क्रियाषड्जीवरक्षापरिणामपालनप्रयत्नादिसंवेगकषायोपशमतत्त्वभावनादेरदर्शनात् ॥ १८ ॥ प्रत्युत 'दगपाणं पुप्फफलं । अणेसणिज्ज गिहत्थकिच्चाइ' इत्यादिप्रमादाना स्फुटवृत्त्यैवासेवनोपलंभात्, पार्श्वस्थादिषु ह्येतेऽनाचारा स्फुटमेवोपलभ्यते ॥ १९ ॥ तथाहि—सनिहिमहाकम्मं । जलफलकुसुमाइसव्वसच्चित्तं निच्चदुतिवारभोअण—विगइलवगाइतंबोलं ॥ २० ॥ वत्थं दुप्पडिलेहिअ—मपमाणसकन्निअं दुकूलाई ॥ सिज्जोवाणहवाहण—आउहतंबाइपत्ताइ ॥२१॥

त्यां केटलाक पासत्था आदिकाना हृदयनी अदर श्री जिनागम रूप सम्यक् प्रकारनु श्रुत होतु नथी, केमके तेओने ते पर श्रद्धा होती नथी, अथवा लेश मात्र पण तेनी भावना आदिकनो तेओने अभाव होय छे ॥ १७ ॥ वळी तेओना लिंगनी पण श्रद्धा आदिक थती नथी केमके तेओमा महाव्रतोनी आराधना, आवश्यक आदिक उत्तम क्रिया, छकाय जीवोनी रक्षानो विचार, तथा ते पाळवामा प्रयत्न आदिक, वैराग्य कषायोनी शांति तथा तत्वोनी भावना आदिक देखातु नथी ॥ १८ ॥ परतु उलटु जळ, माटी, पुष्प, फळनो संग्रह, अने षणीय आहार आदिकनु सेवन, तथा गृहस्थोना कार्य करवा पणु, इत्यादि प्रमादोने प्रगट रीतेज सेवता देखाय छे; केमके पासत्था आदिकोने विषे ए अनाचारो प्रगटज रीते देखाय छे ॥ १९ ॥ ते कहे छे.—सनिधि, आधाकर्म, जळ, फळ, तथा पुष्प आदिक सर्व सचित्तोनु सेवन, हमेशां बे, त्रणवार भोजन विगय तथा लवग आदिक तबोलनु सेवन ॥ २० ॥ सारी रीते नहीं पडिलेहन करेला, प्रमाण विनाना, तथा किनारीवाळां रेशमी वस्त्र आदिकनु पहेरवापणु, शय्या, पगरखां, वाहन, हथीयार, त्रांबा आदिकना पात्रोनु राखवु ॥ २१ ॥

सिरतुरु-खुरमुरु । रयहरमुहपत्ति धारण कज्जे ॥ एगागित्तभमण । सच्छंद चिठिअ-गीअ ॥ २२ ॥ चेइअमढाइवासं । पूआरंभाइ निच्चवासित्त ॥ देवाइ दव्वभोग । जिणहरसालाइकारवण ॥ २३ ॥ न्हाणवट्टणभूसं । ववहार गथसगहकीअ ॥ गामकुलाइममत्त । ×थीनट्ट थीपसग च ॥ २४ ॥ निरयगइहेउ—जोइस । निमि-त्ततेगिच्छमतजोगाइ ॥ मिच्छाइ रायसेव । नीयाणवि पावसाहिज्ज ॥ २५ ॥ सुविहिअसाहुपओसं । तप्पासे धम्मकम्मपडिसेह ॥ सासणपभावणाए । मच्छर-लउडाइकलिकरण ॥ २६ ॥

अलायी मस्तक दाढी मुंडावी, काम पछे रजोहरण तथा मुहपत्ति धारवा, तथा एकाकी भमवु, ए सघळु स्वच्छन्द चेष्टित कयु छे ॥ २२ ॥ पूजा आरंभ आदिक, नित्यवास, देवद्रव्यादिकनु भोगववु, जिनमदिर अने जिनशाळा आदिक बनाववां ॥ २३ ॥ स्नान करवु, मर्दन करवु, आभूषण पहेरवां, व्यापार करवो, ग्रथ सग्रह करवो, क्रीडा करवी, गाम कुळ आदिकनी ममता करवी, स्त्रीनो नाच जोवो, तथा स्त्रीनो प्रसग करवो ॥ २४ ॥ वळी नरकगतिना हेतुरूप एवा ज्योतिष, निमित्त, वैद्यक, मत्र, जोग आदिक साधवा, मिथ्यात्वि राजानी सेवा करवी, नीच प्राणीओने पण पापकार्यमा सहाय आपवी ॥ २५ ॥ उत्तम क्रिया पाळनारा साधुओपर द्वेष करवो, तेमनी पासे धर्म कार्यनो प्रतिषेध करवो, शासननी उन्नतिमा मत्सर करवो, लाकडी आदिकवडे करीने कजीओ करवो ॥ २६ ॥

×'थी परिग्गहो य त्ति' इति द्वितीयपुस्तकपाठ

सीसोदराइफोरुण । नट्टित्त ओहट्टेत गिहियुणाण ॥ जिणपडिमाकयविक्कय । उच्चाटणखुद्दकरणाइ ॥ २७ ॥ थीकरफास धन्ने । संदेह कलतरेण धणदाणं ॥ चट्टरयंसीमगहण नीचकुलस्सावि दव्वेण ॥ २८ ॥ सव्वावजपवत्तण—मुहुत्तदाणाइ सव्वलोयाण ॥ सलाइगिहिघरे वा । खज्जगपागाइकरणाइ ॥ २९ ॥ जक्खवाइगुत्तदेवय—पूयणपूयावणाइमिच्छत्त ॥ सम्मत्ताइनिसेह । तेसि मुल्लेण वाणाण ॥ ३० ॥ इय बहुहासावज । जिणपडिकुट्ठ च गरहियं लोए ॥ जे सेवंति कुकम्मं । करंति गत्र हि निद्धम्मा ॥ ३१ ॥

मस्तक पेट आदिक फोडवा, नाटकागणपणु आचरवु, लोचन माटे गृहस्थीनी स्तुति करवी, जिन प्रतिमानो क्रयविक्रय करवो, उच्चाटन, वशीकरणप्रमुख नीच कार्य करवा ॥ २७ ॥ स्त्रीना हाथनो स्पर्श करवो, धान्यमां संदेह धरवो, व्याजे धन आपवुं, नीच कुळना पण चाकरीया शिष्योने द्रव्य आपी ग्रहण करवा ॥२८॥ सर्व पापोमां प्रवृत्ति करवी, सर्व लोकोने मुहूर्त आदिक जोइ देवां, धर्मशाळामां अथवा गृहस्थीने घेर खाजा पकवान आदिक करवा ॥ २९ ॥ यक्ष आदिक गोत्रदेवतानी पूजा करवी करावी आदिक मिथ्यात्वने स्वीकारवु, सम्यक्त्व आदिकनो निषेध करवो, अथवा किंमत लेइ सम्यक्त्व आदिक देवुं ॥ ३० ॥ एवी रीते घणा प्रकारनुं सावद्य एटले पापवाळुं कार्य जिनेश्वर प्रभुए निषेधेलु, तथा निंदेलु छे, माटे आ लोकमां जे प्राणीओ कुकर्म सेवे छे, तथा करे छे, तेओ खरेखर धर्म विनाना छे ॥ ३१ ॥

इह परलोअहयाणं । सासणजसघाइणं कुदिट्ठीण ॥ कह जिणदंसणमेसिं । को- वेसो किं च नमणाई ॥ ३२ ॥ इत्यादि, अतो न तेषामत.श्रुत, नापि वहि., पाठे व्याख्यादौ च श्रुतस्याऽश्रवणात्, प्रायः षट्भङ्गकादीनां चाणाक्यपचाख्यानकसिंहा- सनद्वात्रिंशिकाविनोदकथाप्रायाणामन्येषामपि लोकाक्षेपकाणां तत् तदाधुनिकादि- नृपमन्त्रिकविप्रभृतिप्रबंधकल्पितसंबंधविशेषोपदेशाना च पाठाद् व्याख्यादौ च प्रयो- जनाच्च ॥ ३३ ॥ ततोऽतर्बहिश्च श्रुताऽज्ञावेन द्विधाप्यसाराः पार्श्वस्थादयो लोको- त्तरा· कुगुरुव प्रथमभङ्गपातिनो ज्ञेयाः ॥ ३४ ॥

वळी एवी रीते आलोक अने परलोकनो नाश करनारा, शासनना जशनो घात करनारा, तथा कुदृष्टिवाळा एवा तेओने जिनदर्शन क्यांथी प्राप्त थाय? तेम उत्तम वेश तथा नमन आदिक पण क्यांथी होय? ॥ ३२ ॥ इत्यादि, माटे तेओने अतरथी पण श्रुत एटले ज्ञान नथी होतु, तेम वहारथी पण नथी होतु? कमके पाठ तथा व्याख्यान आदिकमां तेओने श्रुत होय, पम समजातु नथी, केमके तेओ प्राये करीने छ भङ्गकादिकोनो तेमज चाणाक्य नीति, पचाख्यान, सिंहासन बत्रीसी आदिक विनोद कथाओनो, तेमज वीजां पण जेथी लोकोनां मन रजन थाय तेवां शास्त्रोनो, तथा ते ते हमणाना राजा, मत्रि कवि आदिकोनो प्रबंधोना कल्पित एवा सबध विशेष उपदेशोना पाठथी व्याख्यान आदिक वांचे छे ॥ ३३ ॥ माटे एवी रीतना पासत्था आदिको श्रुतना अज्ञावथी अदरथी अने वहारथी पण सार विनाना छे, तथा ते लोकोत्तर कुगुरुओने पहेला भांगामा रहेला जाणवा ॥ ३४ ॥

एव लौकिका अपि विप्रादयो बौद्धयोगितापसादयश्च वहिरतश्च श्रुताऽभावेन प्रथमत्वंगानुपातिन एव, श्रुताऽभावाश्च तेषां द्विधापि जिनवचनवाह्यत्वात ॥ ३५ ॥ जिनवचनव्यतिरिक्तशास्त्राणां च श्रुतत्वाऽभावात, तेषां श्रुतत्वाऽभावश्च गर्दभलिरुवत् क्षोदाऽक्षमत्वात्, जीववधाऽसत्यस्तैन्याऽब्रह्मादीनामपि धर्मत्वेन प्ररूपकत्वाच्च ॥ ३६ ॥ स्वतडुक्तं धनपालपण्डितेन,—स्पर्शोऽमेध्यभुजां गवामघहरो वद्या विसञ्ज्ञा द्रुमा. । स्वर्गश्छागवधाद्धिनोति च पितॄन् विप्रोपभुक्ताशन ॥ आप्ताश्छद्मपराः सुरा. शिखिहुतं प्रीणाति देवान् हवि. । स्फीतं फल्गु च वल्गु च श्रुतिगिरां को वेत्ति लीलायितं ॥ ३७ ॥

एवी रीते लौकिक एवा ब्राह्मण आदिको, बौद्ध, योगी तथा तापस आदिको बहारथी अने अंदरथी पण श्रुतना अभावें करीने पहेला भागमां वर्तनाराज छे, वळी तेओ जिन वचनथी बाह्य होवाथी तेओने बन्ने रीते श्रुतनो अभाव छे ॥ ३५ ॥ तेम जिन वचन शिवायना शास्त्रोनो श्रुतपणानो अभावज छे, अने ते शास्त्रोनो श्रुतपणानो अभाव गधेडानां शींगडानी पेठे कुटावुं सभी शकतो नथी, केमके तेओमां जीवहिंसा, असत्य, चोरी, तथा अब्रह्म आदिकोने पण धर्मरूपे प्ररूपेला छे ॥ ३६ ॥ ते माटे धनपाळ पंडिते कह्युं छे के, जे श्रुतिनी वाणीमा विष्टा खानारी गायोनो स्पर्श पापोने हरनारो कह्यो छे, सञ्ज्ञारहित वृक्षोने वंदनीक कह्या छे, बकराओनी हिंसाथी स्वर्गप्राप्ति कहेली छे, ब्राह्मणोए खाधेलुं अन्न पितृओने पुष्ट करनारुं कह्युं छे, छद्मस्थ देवोने आप्त तरीके कहेला छे, अग्निमां होमेलुं बलिदान देवोने खुशी करनारुं कहेलुं छे, एवी रीतनी श्रुतिनी वाणीनुं विशाळ अने मनोहर छता निरर्थक चेष्टित कोण जाणी शके तेम छे? ॥ ३७ ॥

योगशास्त्रांतरश्लोकेष्वपि,—अथ दशविधो धर्मो । मिथ्यादृग्भिर्न वीक्षित ॥ योऽपि कश्चित् क्वचित् प्रोचे । सोऽपि वाङ्मात्रनर्त्तन ॥ ३८ ॥ तत्त्वार्थो वाचि सर्वेषां । केषाञ्चन मनस्यपि ॥ क्रिययापि नरीनर्त्ति । नित्य जिनमतस्पृशां ॥ ३९ ॥ वेदशास्त्रपराधीनबुद्धय सूत्रकण्ठका. ॥ न लेशमपि जानन्ति । धर्मरत्नस्य तत्त्वत ॥ ४० ॥ गोमेधनरमेधाश्वमेधाद्यध्वरकारिणां ॥ याज्ञिकानां कुतो धर्म । प्राणिघातविधायिनां ॥४१॥ अश्रद्धेयमसद्भूत । परस्परविरोधि च ॥ वस्तु प्रज्ञपतां धर्म । क. पुराणविधायिनां ॥ ४२ ॥

योगशास्त्रना बीजा श्लोकोमां पण कह्युं छे के, आ दश प्रकारनो धर्म मिथ्यात्विओए जोयेलो नथी, अने कदाच कोइ कइक कहे, ते पण फक्त वचन मात्रनु नाटक छे ॥ ३८ ॥ जैन मतने माननारा एवा सर्व लोकोना वचनमां तत्त्वनो अर्थ रहेलो छे, तथा केटलाकोना मनमां रहेलो छे, अने क्रियारूपे पण हमेशांज नाची रहेलो छे ॥३९॥ फक्त सूत्र मात्रने कंठे करनारा तथा वेदशास्त्रने आधीन बुद्धिवाळा मनुष्यो धर्मरूपी रत्नना लेश मात्रने पण, तत्त्वथी जाणता नथी ॥४०॥ गोमेध, नरमेध तथा, अश्वमेध आदिक यज्ञ करनारा एवा जीवहिंसा करनाराओने धर्म ते क्यांथी होय ? ॥ ४१ ॥ वळी न श्रद्धा करवा लायक, असत् तथा परस्पर विरोधवाळु वचन बोलनारा एवा पुराणीओने पण शी रीते धर्म होय ? ॥ ४२ ॥

असद्भूतव्यवस्थाभि. । पराद् द्रव्यं जिघृक्षता ॥ मृत्पानीयादिभि शौच । स्मार्त्तादीना कुतो ननु ॥ ४३ ॥ ऋतुकाले व्यतिक्रांते । भ्रूणहत्याभिधायिनां ॥ ब्राह्मणाना कुतो ब्रह्म ब्रह्मचर्यप्रज्ञापिनां ॥ ४४ ॥ अदित्सतोऽपि सर्वस्व । यजमानाभिघृक्षता ॥ अर्थार्थं त्यजता प्राणान् । क्वाकिंचन्य द्विजन्मना ॥ ४५ ॥ दिवसे च रजन्या च । मुखमापूर्य खादता ॥ भक्ष्याऽभक्ष्याऽविवेकानां । सौगतानां कुतस्तप. ॥ ४६ ॥ मृद्वी शय्या प्रात. पेया । मध्ये भक्त साय पान ॥ द्राक्षाखण्डं रात्रेर्मध्ये । शाक्योपज्ञ. साधोर्धर्म ॥ ४७ ॥ स्वल्पेष्वप्यपराधेषु । क्षणाच्छाप प्रयच्छतां ॥ लौकिकानामृषीणां न । क्षमालेशोऽपि दृश्यते ॥ ४८ ॥

जूठी व्यवस्थाओथी पर पासेथी द्रव्य ग्रहण करवानी इच्छा करनारा एवा स्मृतिने अनुसरनारा आदिकोने माटी तथा पाणी आदिकथी पवित्रता (धर्म) क्याथी होय? ॥ ४३ ॥ ऋतुकाळ गये छते बाळहत्या कहेनारा, तथा ब्रह्मचर्यनो फक्त बकवाद करनारा ब्राह्मणोने ब्रह्मचर्य (धर्म) क्यांथी होय? ॥ ४४ ॥ देवानी इच्छा नहीं करनारा एवा पण यजमान पासेथी तेनुं सर्वस्व लेवाने इच्छता तथा धनने माटे प्राणने तजनारा एवा ब्राह्मणोने आकिंचनपणु क्याथी होय? ॥ ४५ ॥ दिवसे अने रात्रिए पण मुखने पुरीने खानारा, तेमज भक्ष्य अभक्ष्यनो विवेक नहीं करनारा एवा बौद्धोने तप क्याथी होय? ॥ ४६ ॥ कोमळ शय्या, प्रभाते राब के काजी पीवी, मध्यान्हे भोजन करवु, सांजे दूध आदिक पीवुं, मध्यरात्रिए द्राख खंड खावां, एवो शाक्यमुनिए साधुधर्म कह्यो छे ॥ ४७ ॥ स्वल्प अपराध होते छते पण क्षणवारमा शाप आपनारा एवा लौकिक ऋषिओने क्षमानो लेश मात्र पण देखातो नथी ॥ ४८ ॥

जात्यादिमदडुर्वृत्त—परिनर्तितचेतसा ॥ क्व मार्दवं द्विजातीनां । चतुराश्रमवर्तिनां ॥ ४ए ॥ दम्नसरम्भगर्भाणां । वक्रवृत्तिजुषां वहिः ॥ नवेदार्जवलेशोऽपि । पाखरुव्रतिनां कथं ॥ ५० ॥ गृहिणीगृहपुत्रादि—परिग्रहवतां सदा ॥ द्विजन्मनां कथं मुक्ति—र्लोकैककुलवेश्मनां ॥ ५१ ॥ अरक्तद्विष्टमूढानां । केवलज्ञानशालिनां ॥ ततोऽनवद्यतामेषां । धर्मस्वाख्याततार्हतां ॥ ५२ ॥ रागाद् द्वेषात्तथा मोहात् । नवेद् वितथवादिता ॥ तदनावे कथं नामा—ऽर्हतां वितथवादिता ॥ ५३ ॥ ये तु रागादिनिर्दोषै । कलुषीकृतचेतसः ॥ न तेषां सुनृतां वाचं । प्रसरति कदाचन ॥ ५४ ॥

जाति आदिकनो मद तथा दुराचरणोथी जेओनुं मन नाची रह्युं छे, तथा चार आश्रमोमां जेओ वर्त्ता रहेला छे, एवा ब्राह्मणोने कोमळता क्यांथी होय? ॥ ४ए ॥ हृदयमां कपटवाळा, तथा बहारथी बगलानगत जेवी वृत्तिवाळा एवा पाखंडी व्रतधारीओने सरलपणानो लेश पण क्यांथी होय? ॥ ५० ॥ हमेशां स्त्री, घर तथा पुत्र आदिकना परिग्रहवाळा तथा लोकना तो एक कुलगृह सरखा एवा ब्राह्मणोने त्यागनाव क्यांथी होय? ॥ ५१ ॥ माटे राग द्वेष विनाना अने केवळ ज्ञानथी करीने मनोहर तथा उत्तम व्याख्यानने वाचक एवा श्री अरिहंत प्रभुओनो कहेलो धर्म श्रेष्ठ छे ॥ ५२ ॥ राग, द्वेष अने मोहथी वितथवादीपणुं थाय छे, अने श्री अरिहंत प्रभुओने तो तेओनो अनाव होवाथी तेओमां वितथवादीपणुं क्यांथी संनवे? ॥ ५३ ॥ वळी जेओना मन राग आदिक दोषोथी मलिन थयेलां छे, तेओना सत्य वचनो क्यापि पण होइ शकतां नथी ॥ ५४ ॥

तथाहि—यागहोमादि—कर्माणीष्टानि कुर्वतां ॥ वापीकूपतडागादी—न्यपि पूर्त्ता-न्यनेकशः ॥ ५५ ॥ पशूपघातत· स्वर्ग—लोकसौख्यं च मार्गतां ॥ द्विजेभ्यो भो-जनैर्दत्तैः । पितृतृप्तिं चिकीर्षतां ॥ ५६ ॥ घृतयोन्यादिकरणे । प्रायश्चित्तविधायिनां ॥ पञ्चस्वापत्सु नारीणां । पुनरुद्वाहकारिणां ॥ ५७ ॥ अपत्याऽसत्त्वे स्त्रीषु । क्षे-त्रजापत्यवादिनां ॥ सदोषाणामपि स्त्रीणां । रजसा शुद्धिवादिनां ॥ ५८ ॥ श्रेयो-बुद्ध्याध्वरहत—छागशिश्नोपजीविनां ॥ सौत्रामण्यां सततौ । सीधुपानविधायिनां ॥ ५९ ॥

वळी यज्ञ, हवन आदिक इष्ट कर्मने करनारा, तथा अनेक एवा वाव कुवा तथा तळाव आदिक पूर्तने पण करनारा× ॥ ५५ ॥ वळी पशुओनी हिंसाथी स्वर्ग लोकना सुखनी मागणी करनारा, ब्राह्मणो प्रत्ये भोजन देइने पितृओनी तृप्ति करवानी इच्छा करनारा ॥ ५६ ॥ घृतनी योनि आदिक करीने प्रायश्चित्त करनारा, पांच प्रकारनी आपदाओ पडते छते पुनर्विवाह करनारा ॥ ५७ ॥* स्त्रीने संतान न होते छते क्षेत्रजथी (गोत्रीथी) पुत्र उत्पन्न करवानुं कहेनारा, दोषयुक्त स्त्रीओनी पण रजथी शुद्धि कहेनारा ॥ ५८ ॥ श्रेयनी बुद्धिथी यज्ञ करनारे हणेला बकराना लिंगथी आजीविका चलावनारा, सुत्रामणी तथा सप्ततु यज्ञमां मदिरापान करनारा ॥ ५९ ॥

× उक्त कार्योने तेओ इष्टापूर्त कहे छे

* पोतानी आज्ञाथी पोतानी स्त्री साथे गोत्रज अथवा परपुरुषना संजोगथी उत्पन्न थयेलो पुत्र 'क्षेत्रज' कहेवाय छे. (आवी आज्ञा देनारा शास्त्र केवा प्रमाणिक होय तेज विचारवा योग्य छे) ते संबंधी मनुस्मृतिमां विवेचन छे.

गूयाशिनीनां च गवा । स्पर्शनात्पूतमानिनां ॥ जलादिस्नानमात्रेण । पापशुद्ध्यभिधायिना ॥ ६० ॥ वटाश्वत्थामलक्यादि—द्रुमपूजाविधायिनां ॥ वन्हौ हुतेन हव्येन । देवप्रीणनमानिना ॥ ६१ ॥ क्षुविगोदोहकरणा—दिष्टशांतिकमानिना ॥ योषिद्विरूवनाप्राय—व्रतधर्मोपदेशिना ॥ ६२ ॥ तथा, जटापटलभस्माग—रागकौपीनधारिणा अर्कधत्तूरमाल्लूरै—र्देवपूजाविधायिना ॥ ६३ ॥ कुर्वता गीतनृत्यादि । पुतौ वादयता मुहु ॥ मुहुर्वदननादेना—तोद्यनादविधायिना ॥ ६४ ॥ असत्यज्ञापापूर्वं च । मुनीन् देवान् जनान् घ्नता ॥ विधाय व्रतभंग च । दासीदासत्वमिच्छता ॥ ६५ ॥

विष्टा खानारी गायोना स्पर्शथी पवित्रपणु माननारा, फक्त जळ आदिकना स्नानथी पापोनी शुद्धि कहेनारा ॥ ६० ॥ वड, पीपळा तथा आमली आदिक वृक्षोनी पूजा करनारा, अग्निमां होमेला पदार्थवडे करीने देवोनी खुशी माननारा ॥ ६१ ॥ खुशी उपर गायने दोवाथी विघ्नोनी शांति माननारा, मायें करीने जेथी स्त्रीने दुःख उपजे एवा व्रतोथी धर्म थवानो उपदेश देनारा ॥ ६२ ॥ वळी, जटा, भस्म, लाल चोळेलु शरीर तथा लंगोटने धरनारा, आकडो, धतूरो तथा बिल्लीथी देव पूजा करनारा ॥ ६३ ॥ गीत, नाच आदिक करनारा, वारवार हाथनी ताळीओ वगाडनारा, तेमज वारवार मुखना स्वरथी वाजित्रनो नाद करनारा ॥ ६४ ॥ असत्य वचनपूर्वक मुनि, देवो तथा मनुष्योने हणनारा, व्रतभंग करीने दासी दासपणु इच्छनारा ॥ ६५ ॥

गृह्णता मुंचतां नूयो। नूय. पाशुपतं व्रतं ॥ नेषजादिप्रयोगेण। यूकालक्ष प्रणि-
घ्नता ॥ ६६ ॥ नरास्थिनूषणभृता। शूलखट्वांगवाहिना ॥ कपालनाजननुजा । घ-
टानूपुरधारिणां ॥ ६७ ॥ मद्यमासांगनानोग—प्रसक्ताना निरतरं ॥ युतानुबद्ध-
घटानां। प्रत्यहं गायता मुहु ॥ ६८ ॥ तथा, अनतकायकंदादि—फलमूलद-
लाशिनां ॥ कलत्रपुत्रयुक्ताना। वनवाससुपामपि ॥ ६९ ॥ तथाहि—नक्ष्याऽ
नक्ष्ये पेयाऽपेये। गम्याऽगम्ये समात्मना ॥ योगिनाम्ना प्रसिद्धानां। कौलाचा-
र्यांतवासिना ॥ ७० ॥ अन्येषामपि जैनेन्द्रशासनाऽस्पृष्टचेतसा ॥ क्व धर्म क्व फलं
तस्य। तस्य स्वाख्यातता कथ ॥ ७१ ॥ इति ॥

वळी वारवार पाशुपत व्रतने ग्रहण करता तथा मूकता, औषध आदिक प्रयोगे करीने लाखो गमे जूओने मारनारा ॥ ६६ ॥ मनुष्योना हाडकानां आनूषणोने धारण करनारा, शूलवाळा (खीला जडेला) खाटपर बेसनारा, तुम्बीरूपी नाजनमां नोजन करनारा, घंट तथा झांझर पहेरनारा ॥ ६७ ॥ हमेशां मद्य, मांस तथा स्त्रीना नोगोमां आसक्त थयेला, साथे घंट बांधीने फरनारा, तथा हमेशां वारवार गायन गानारा ॥ ६८ ॥ वळी, अनंतकाय, कंदमूळ आदिक फळ, मूळ तथा पत्र खानारा, वनवासमां रहीने पण स्त्री तथा पुत्रोने साथे राखनारा ॥ ६९ ॥ वळी—नक्ष्य तथा अनक्ष्य, पेय तथा अपेय, गम्य तथा अगम्य ए सघळामां तुल्य अवस्थावाळा, तेमज (बहारथी) योगीना नामथी प्रसिद्ध, अने *कौलाचार्यनी पासे रहेनारा ॥ ७० ॥ तेमज एवा बीजाओ के जेओनां चित्ते श्रीजिनेश्वर प्रभुना शासनने स्पर्श करेलो नथी एवाओने धर्म, तथा धर्मनु फळ, अने उत्तम उपदेशपणु क्यांथी होय? ॥ ७१ ॥ इति ॥

* कौलाचार्य एटले वाममार्गी मिथ्यात्विओ.

इत्युक्ता बहिरतरसारा. प्रथमजंगानुसारिण. कुगुरव, एते च प्रथमजंगाजरणवद् गुर्वाकारधारिणोऽपि वाह्लीकमुग्धमिथ्यादृग्मोहाऽज्ञानांधितचेतस्कजनमान्या अपि च स्फुटारम्भाऽधर्मप्रवृत्तदेवद्रव्यपरिन्नोगपरोपतापिवाक्कुकर्मादिन्निर्विज्ञजनाऽवज्ञास्पदत्वेनेह लोकेऽपि न तथा पूजासुखादिन्नाज. ॥ ७२ ॥ नित्यजीविकाऽपत्योद्वाहनादिचिंताकृपिराजसेवादिन्नि प्रायो दुःखिता एव च, प्रेत्य च नृपाधिकारनिमित्तज्योतिपकथनादिमहारम्नप्रवर्त्तनादिपापे प्रायो निरयादिदुर्गतिगामिन एवेति ॥ ७३ ॥ तदुक्त 'नरिंदनेमित्तिआयजोइसिआ' इपि पद्मचरित्रे नरकगामिजीवाधिकारे, लौकिकैरप्युक्त—॥ ७४ ॥

एवी रीते बहारथी अने अदरथी सारविनाना एटले पेहेला जागाने अनुसरनारा कुगुरुओनु स्वरूप कह्यु, अने तेओ पेहेला जागवाळा आजूषणनी पेठे गुरुना आकारने जो के धारण करे छे, तोपण, तेमज मजुर, जोळा, मिथ्यादृष्टि तथा मोह अने अज्ञानथी अध चित्तवाळा लोकोथी माननीक उता पण प्रगट रीते आरंज, अधर्ममा प्रवर्त्तन, देवद्रव्यनो उपजोग, परने पीमा उपजावनारी वाणी, तथा कुकर्म आदिकोवमे करीने विद्वानोनी अवज्ञाना स्थानरूप होवाथी आ लोकमा पण एवी रीते मान तथा सुख आदिकने जजनारा थइ शकता नथी ॥ ७२ ॥ हमेशा जीवि एवा सतान, विवाह आदिकनी चिता, खेती, तथा राजसेवा आदिकें करीने प्रायें करीने दुःखीज रहे छे, तेम परलोकमा पण राज्याधिकार, निमित्त तथा ज्योतिष् कथन आदिक मोटा आरंजना प्रवर्त्तन आदिक पापोयें करीने प्रायें करी नरक आदिक दुर्गतिमा जनाराज थाय छे ॥ ७३ ॥ कह्यु छे के 'राजा, निमित्तिआ, ज्योतिपी' एम पद्मचरित्रमां नरकगामी जीवोना अधिकारमां कह्यु छे, अन्यदर्शनीओए पण कह्यु छे के ॥ ७४ ॥

अधिकारान्निर्मासै—र्मठपत्यात्रिभिर्दिनैः ॥ शीघ्र नरकवांछा चेद् दिनमेक पुरोहितः ॥ ७५ ॥ लोकोत्तरगुरूनप्याश्रित्यागमेऽपि,—पुल्लेव मुठी जहसे असारे । अयंतिए कूडकहावणे वा ॥ राढामणीवेरुलिअप्पगासे । अमग्घए होइ हु जाणएसु ॥ ७६ ॥ तमतमेणेवउसे अ सीले । सया दुही विप्परिआमुवेई ॥ सधावइनरगतिरिक्खजोणिं । मोणं विराहित्तु असाहुरूवे ॥ ७७ ॥ इत्यादि विशे श्रीउत्तराध्ययने, ॥ तथा गणिकान्तरणवत्केचिदतरसारा प्रागुक्तयुक्त्या बहिस्तुसारा. ॥ ७८ ॥ पाठतो नवपूर्व्यवधिश्रीजिनवचनाध्ययनाध्यापनोपदेशाद्याडंबरभृत्तया स्युः, अगारमर्दकाचार्यादिवत् ॥ ७९ ॥ तथाहि

अधिकारथी त्रण मासे नरक मळे छे, मठपतिपणु धारण करवाथी त्रण दिवसे नरक मळे छे, तथा जो तुरतज नरकनी इच्छा होय, तो एक दिवस सुधि पुरोहितपणु अंगीकार करवु ॥ ७५ ॥ वळी लोकोत्तर गुरुओने आश्रीने पण आगममां पण कह्यु छे के, जेम पोली मुठी सारविनानी छे, अथवा जेम नियमित करेलो खोटो सिक्को सारविनानो छे, (तेम ते द्रव्यसाधु पण उपेक्षा करवा लायक छे) केमके काचनो टुकडो वैडुर्य रत्ननी पेठे कदाच प्रकाश युक्त होय, तोपण तेना परीक्षको आगळ ते किमत विनानोज थइ पडे छे, अर्थात् अज्ञानीओज तेने किमती गणे छे, ॥ ७६ ॥ वळी अंधकाररूप करीने अर्थात् मिथ्यात्वरूप अज्ञाने करीने हणाएलो एवो ते द्रव्ययति हमेशां दुखी थयो थको तत्त्वआदिकोने विषे विपरीतपणु पामे छे, तथा मुनिपणु विराधीने असाधुरूप थयो थको नरक तथा तिर्यंचनी योनि पामे छे ॥ ७७ ॥ इत्यादिक वर्णन श्री उत्तराध्ययन सूत्रना वीसमा अध्ययनमां करेलु छे. वळी केटलाक साधुओ वेश्याना आचूषणनी पेठे पूर्वे कहेली रीति मुजब अंदरथी सार विनाना अने बहारथी सारवाळा छे ॥ ७८ ॥ अने तेवाओ अगारमर्दक आचार्य आदिकनी पेठे, पाठथी छेक नव पूर्व सुधी श्री जिन वचन जणवा, जणाववा तथा उपदेशवा आदिकना आडंबरवाळा होय छे ॥ ७९ ॥ ते कहे छे—

—श्रीविजयसेनसूरे शिष्यै स्वप्ने सूकरो गजकलभशतपञ्चकेन परिवृतो ददृशे, कथित गुरो., सोऽवोचदभव्य कश्चित्सुपरिकर समायास्यति ॥ ८० ॥ तद्दिन एवाऽऽगतो रुद्रदेवनामाचार्य शतपञ्चकेन साधूना, कृतोचिता प्रतिपत्ति ॥ ८१ ॥ निशि परीक्षणार्थं गुरुभिरुक्तै स्थण्डिलमार्गे विकीर्णा साधुभिरङ्गारा, ततस्ते आगतुका साधवस्तेषु पादपातात् किशिकिशिकाशब्दमाकर्ण्य सानुक्रोश मिथ्यादुष्कृतस्थिति वदतो निवर्तते स्म ॥ ८२ ॥ रुद्रदेवस्तु श्रीविजयसेनगुरुकृतसकेतवशादागतुकसाधुषु निद्राणेषु स्वय प्रस्रावव्युत्सर्जनार्थं गच्छस्तथैवाङ्गारेषु किशिकिशिकाशब्द श्रुत्वा हृष्यन् गाढतर तान् समर्द्य प्रावोचत् ॥ ८३ ॥

श्री विजयसेनसूरिना शिष्योए पाचसो हाथीओना बच्चाओथी घेरायेलो सूवर स्वप्नमा जोयो, ते वात तेओए गुरुने कही, त्यारे गुरुए कह्यु के, उत्तम परिवारवालो कोइक अभव्य मनुष्य अहीं आवशे ॥ ८० ॥ एटलामा त्या तेज दिवसे रुद्रदेव नामे आचार्य, पाचसो साधुओ सहित आव्या, तेमनी उचित आगता स्वागता करी ॥ ८१ ॥ रात्रिए परीक्षा माटे गुरुनी आज्ञाथी शिष्योए स्थण्डिल जवाना मार्गमा अगारा विखेर्या, अने तेथी ते नवा आवेला साधुओ, ते अगाराओपर पग पडवाथी 'किशिकिशि' थतो शब्द सांभळीने अनुक्रोशसहित मिथ्यादुष्कृत देता थका पाछा वळवा लाग्या ॥ ८२ ॥ पछी श्रीविजयसेन गुरुए करेला सकेतने वशे नवा आवेला साधुओ ज्यारे (कृत्रिम) निद्रा लेवा लाग्या, त्यारे रुद्रदेव पोते मातु परठववाने बाहिर गया, त्या तेवीज रीते अगाराओ कचरावाथी थतो 'किशिकिशि' शब्द सांभळीने खुशी थया थका ते अगाराओने खूब जोरथी कचरीने बोलवा लाग्या के ॥ ८३ ॥

अहो अर्हद्भिरेतेऽपि जीवा इत्युक्त्वा, दृष्ट तत्प्रतिजाग्रद्भिर्मुनिभिः, प्रज्ञाते गु-रुस्तच्छिष्यानुपपत्तिभिः प्रत्याययत्याऽभव्योऽयमिति त बहिश्चकार ॥ ७४ ॥ तच्छिष्या पुन सर्वे कृत्वा तपो गता दिवं, ततश्च्युत्वा ते सर्वे राजकुलेषूत्पन्ना राजानोऽभूवन् ॥ ७५ ॥ अन्यदा ते सर्वेऽपि वसतपुरे कनकध्वजनृपतिकन्यास्वयंवरमरूपे जग्मु, स च रुद्रदेवस्तदा नानाविधासु योनिषु भ्रमन् करभो बभूव ॥ ७६ ॥ तं चारोपितबृहद्भारं जराजीर्णशरीर महाकायं कृतार्त्तनाद तत्र ते ददृशुः, तं पश्यता चाचिरभूत्तेषा तस्योपरि करुणा, संजात जातिस्मरण ॥ ७७ ॥

अहो ! अरिहंताए आने पण जीव कह्या छे ! हवे आ वृत्तात जागता थका दरेक साधुओए जोयुं; पछी प्रज्ञाते गुरुमहाराजे ते रुद्रदेवना शिष्योने सिद्धातना वचनोपूर्वक खातरी करावी के, ते रुद्रदेव अभव्य छे, एम विचारी तेने गच्छ बहार कर्यो ॥ ७४ ॥ अने तेना सघळा शिष्यो तप करीने देवलोके गया, त्याथी चवीने तेओ सघळा राजकुळमा उत्पन्न थइ राजाओ थया ॥ ७५ ॥ एक दहाडो ते सघळा राजकुमारो वसतपुरमा कनकध्वज राजानी पुत्रीना स्वयवर मडपमा गया; वळी ते रुद्रदेवनो जीव ते वखते विविध प्रकारनी योनिओमा भमतो थको उंटरूप थयो हतो ॥ ७६ ॥ ते उटपर मोहोटो भार भरेलो हतो, तेनुं शरीर वृद्धावस्थाथी जीर्ण थयुं हतुं, तथा मोटुं थयुं हतु, अने तेथी ते दुःख भरेलो स्वर करी रह्यो हतो, एवी हालतमा ते उंटने तेओए जोयो; अने जोताज ते राजकुमारोने तेनापर दया उत्पन्न थइ, तथा तेओने जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न थयु ॥ ७७ ॥

तदनुसारेण विज्ञातं तैरेप सोऽस्मद्गुरुः, अहो विचित्र संसार., यत्तादृशी ज्ञानलक्ष्मीमवाप्य हृदयनावतोऽश्रद्धानो वराकोऽयमिमामवस्था लेभे ॥ ८८ ॥ अनंतं च नव लप्स्यत इति कृपया विमोच्य त सर्वेपि निष्क्राताः ॥ ८९ ॥ इति, एते चाऽन्तव्या दूरनव्या वा वहिर्गुर्वाकारधारिणोऽप्यत श्रीअर्हद्वचनश्रद्धानादिरहित्वेनाऽनतनवजलधिपातिन इत्यंतरसारा वहिश्च सारा, इत्युक्ता द्वितीयनंगपातिन कुगुरुव ॥ ९० ॥ तथा केचिच्चवहार्यान्तरणवदत. सारा वहिश्चाऽसारा', तथाहि—केपाचिदन्तर्हृदये श्रुतमस्ति, श्रीजिनवचनसम्यकृश्रद्धानादिरूप ॥ ९१ ॥

अने तेने अनुसारे तेओए जाएयु के. आ अमारो गुरु छे, अहो ! ससार विचित्र छे, केमके तेवी रीतनी ज्ञानलक्ष्मी पामीने पण अत.करणना नावथी तेपर श्रद्धा नही राखवाथी ते विचारो आ हालत पाम्यो छे '' ॥ ८८ ॥ तथा वळी पण अनता नवो पामशे, एवी रीते तेपर दया लावीने, तथा तेने छोमावीने ते सघळा राजकुमारो त्याथी चाल्या गया ॥ ८९ ॥ इति, एवी रीतना उपर वर्णवेला गुरुओने अन्तवी अथवा दूरनवी जाणवा, तेओ वहारथी जो के ए गुरुनो आकार धारण करे छे, परतु अदरथी श्री अरिहत प्रभुना वचनोपर श्रद्धा आदिक नहीं होवाथी तेओ अनत एवा ससाररूपी समुद्रमा पमे छे, एवी रीते अदरथी सार विनाना तथा वहारथी सारभूत एवा बीजा नागाने अनुसरनारा कुगुरुओनु स्वरूप कह्यु ॥ ९० ॥ वळी केटलाक गुरुओ व्यवहारीना आनूषणनी पेठे अंदरथी सारवाळा अने वहारथी सार विनाना होय छे, ते कहे छे.—केटलाक गुरुओना हृदयमा श्री जिनेश्वर प्रभुना वचनोमा सम्यक् प्रकारनी श्रद्धा आदिकरूप ज्ञान होय छ ॥ ९१ ॥

तल्लिंगस्य षड्जीवरक्षापरिणामनिश्छद्मवृत्तितत्पालनप्रयत्नादेर्दर्शनात् ॥ ९२ ॥ न पुनर्बहि, तादृग्ज्ञानावरणकर्मोदयादिना पाठादौ श्रुतस्याऽनुल्लासात. मापतुषसाध्वादीनामिव, प्रमादतो वा तदपाठात्यवराजर्ष्यादीनामिव ॥ ९३ ॥ तथाहि—विशालायां यवो नाम राजा, तस्यांगजो गर्दभिल्ल., सुता अणुल्लिका, अमात्यो दीर्घपृष्ठश्च ॥ ९४ ॥ नृपोऽन्यदा निशांत्ययामे प्रबुद्धोऽचिंतयत, नूनं प्राग्भवे किमप्यत्यद्भुतं सुकृतं कृतं मया, तस्य प्रभावादब्धिमेखलां भुवमस्खलिताज्ञः शास्मि ॥९५॥ एषा गजादिसंपन्मे, मद्देशे न दुर्भिक्षाद्यपि तत्पुनः सुकृतं कुर्वे, यतः आगामी भवोऽपि सुंदरः स्यादित्यादि ॥ ९६ ॥

केमके तेना चिन्हरूप छकाय जीवोनी रक्षानो परिणाम, निष्कपट आचरण, तथा ते पाळवामा प्रयत्न आदिक तेओमा देखाय छे ॥ ९२ ॥ परंतु तेमनो बहारथी ज्ञानव्यापार देखातो नथी, केमके तेवा प्रकारना ज्ञानावरणी कर्मना उदय आदिकवडे करीने सिद्धांतना पाठ आदिकमा, 'मापतुष' साधु आदिकनी पेठे उल्लास तेओने थतो नथी, अथवा तो यवराज ऋषि आदिकनी पेठे प्रमादथी तेओ शास्त्राऽध्ययन करता नथी ने यवराज ऋषिनु उदाहरण कहे छे ॥९३॥ विशाला नगरीमा यव नामे राजा हतो, तेने गर्दभिल्ल नामे पुत्र, अणुल्लिका नामे पुत्री, तथा दीर्घपृष्ठ नामे प्रधान हतो ॥९४॥ एक वखते रात्रिना छेल्ला पहोरे जागेलो राजा चिंतववा लाग्यो के, पूर्व भवे खरेखर मे कइक पण अद्भुत पुण्य करेलु छे, अने तेना प्रभावथी समुद्रनी मेखलावाळी आ पृथ्वीनु अस्खलित आज्ञापूर्वक हु राज्य करु छु ॥ ९५ ॥ तेमज तेथी आ हाथी आदिकनी संपदा मने मळेली छे, तेम मारा देशमा दुकाळ आदिक पण पडतो नथी, माटे फरीने पण हु पुण्य करु के जेथी मारो आगामी भव पण सुधरे, इत्यादि ॥ ९६ ॥

ततः प्रात सुत राज्ये न्यस्य हितमनुशिष्य च वनप्रासान् गुरून्नत्वा तदुपांतेऽग्रही-
द्व्रत, तीव्र तपस्तप्यते, वैयावृत्यरसत सह गुरुभिर्विहरति, परं गुरुभिर्वहूक्तेऽपि श्रुत
न पठति ॥ ९७ वृद्धोऽह मम नायाति पाठ इत्यादि ब्रूते, अन्यदा वाञ्च दृष्ट्वा श्री-
गुरुभि.सुत प्रतिबोधयितु विशालायां प्रहित, गुरुवच. शिरसा प्रपद्य चलित ॥९८॥
पथ्यचिंतयत् मम पाठ' स्वल्पोऽपि नायाति, किं पुत्रस्याऽन्येषा चोपदेश्यते, इति
॥ ९९ ॥ अत्रांतरे क्वचित् क्षेत्रे यवधान्य जक्षयितुकाम जिया चपलदृश खरप्रति
क्षेत्रपालेन गाथैका प्रोचे॥१००॥उहावसी पहावसी। मम चेव निरिक्खिसी॥ *लक्खिओ
ते अभिप्पाओ जव पच्छेसि गद्दहा ॥ १०१ ॥

पछी प्रभाते पुत्रने राज्यपर बेसाडीने तथा तेने हितशिक्षा आपीने, वनमा आवेला गुरुने नमीने तेमनी पासे
तेणे दीक्षा लीधी; पछी आकरो तप तपवा लाग्या, तथा वैयावच्च करवाना रसथी गुरु साथे विहार करवा लाग्या, परतु
गुरुए घणु कया छता पण ते शास्त्रोनो अभ्यास करे नहीं ॥ ९७ ॥ अने कहे के, हु तो हवे बुढो छु, मने पाठ चडतो
नथी, पछी एक वखते गुरुए ब्राञ्च जोइने तेना पुत्रने प्रतिबोधवाने तेने विशाला नगरीए मोकल्या, ते पण गुरुनु वचन मस्तके
चडावी त्याथी चाल्या॥ ९८ ॥ मार्गमा विचारवा लाग्या के, मने पाठ तो जरा पण आवडतो नथी, तो पछी पुत्रने तथा
बीजाओने हु शु उपदेश आपीश ? ॥ ९९॥ एटलामा कोइक क्षेत्रमा यव नामनु धान्य भक्षण करवानी इच्छावाळा तथा
जयथी चपल दृष्टिवाळा एवा एक गधेडा प्रत्ये ते क्षेत्र रक्षके एक नीचे प्रमाणे गाथा कही॥१००॥ हे गधेडा ! तु आम
दोडे छे, तेम दोडे छे, तेम मने पण तु जुए छे, तारो अभिप्राय में जाण्यो छे, के तु यवने भक्षण करवाने इच्छे छे॥१०१॥

* जाणी उभी तुम्म चायो । जव जक्खमी गच्छहा ॥ इति द्वितीयपुस्तकपाठ ॥

तां श्रुत्वाऽमोघायुध प्रातमित्राऽमन्यत राजर्षि. विद्यावत्ता स्मरन्नग्रे गमया ग्राम र-
समाणेषु शिशुषु एकेन काष्ठखरूपाऽणुल्लिकोल्लिता ॥ १०२ ॥ साऽन्ये. शिशु-
र्निर्गवेपयद्भिर्न दृष्टा, तावदेकेन शिशुना गाथोक्ता ॥ १०३ अओगया तओगया
। जोइज्जंती न दीसइ ॥ अम्हे न दिठा तुम्हे न दिठा । अगडे वुद्दा अणुल्लिया
॥ १०४ ॥ तामपि हर्षात् पठन् कियद्भिर्दिनैर्विशाला प्राप्त, कुम्भकारगृहे नि-
श्यस्यात् ॥ १०५ ॥ तत्रतस्तनो भ्रमंतमुदर प्रत्यूचे कुम्भकृत,-सुकुमाल सुकोमल
। जइलया रत्तिहिंमणसीलणया ॥ अम्ह पसाओ नत्थी भय । दीहपिठाओ
ते भय ॥ १०६ ॥

ते गाथा सांभळीने ते राजऋषि जाणे अमोघ हथीआर मळ्युं होय नहीं तेम मानवा लाग्या, तथा ते गाथाने विद्यानी पेठे स्मरण करता थका आगळ चाल्या, एटलामां एक गामनी पासे केटलाक छोकराओ रमता हता, तेमाना एके काष्टना टुकडारूप अणुल्लिका (मोइ-गीली) उछाळी ॥ १०२ ॥ तेने बीजा बाळको शोधता हता, तेमाना एके काष्टना टुकडारूप अणुल्लिका (मोइ-गीली) उछाळी ॥ १०२ ॥ आम गइ, लाग्या, परतु तेओए तेने दीठी नहीं, त्यारे तेमाना एक छोकराए नीचे मुजब एक गाथा कही ॥ १०३ ॥ आम गइ, तेम गइ, अने जोतायी पण देखाती नथी, अमोए पण न दीठी, तमोए पण न दीठी माटे ते अणुल्लिका (मोइ-गीली) कोइ कुवामा बुडी रही छे ॥ १०४ ॥ पछी ते गाथाने पण हर्षथी भणता थका ते यवराजर्षि केटलेक दिवसे विशाला नगरीमा गया, अने रात्रिए त्या एक कुंभारने घेर रह्या ॥ १०५ ॥ त्यां आम तेम भमता उंदर प्रत्ये कुंभारे नीचे प्रमाणे एक गाथा कही, हे सुकुमाल तथा कोमल अने रात्रिए भटकवाना परिणामे फरनारा एवा हे उंदर! अमारा तरफथी तने कंइपण भय नथी, परतु दीर्घ पृष्ठथी (सर्पथी) तने भय छे ॥ १०६ ॥

एतां गाथात्रयीं कल्पद्रुचिंतामणिकामधेनुत्रयीमिव प्राप्ता मेने स मुनि पुन पुनः परावर्त्तयते ॥ १०७ ॥ अत्रांतरे तत्र पुरे दीर्घपृष्टामात्येन राज्ञ स्वसाऽणुल्लिका स्वगृहान्तर्भूगृहे गोपितास्ति, नृप केनाप्युपायेन निहत्य स्वसुत राज्ये निवेश्यैना पाणौ कारयिष्यामीति ॥ १०८ ॥ राज्ञा भटै. शोधितापि स्वसा न लब्धा, तावन्मन्त्री यवराजर्षिमागत श्रुत्वा, तपसा प्राप्तज्ञानोऽयं भावी, ज्ञानेन च ज्ञात्वा मत्स्वरूप राज्ञे निवेदयिष्यति चेत् तदा नृप सकुल मा निग्रहीष्यतीति किमप्यनागतमुपाय करोमीति ध्यात्वा निश्येवोपनृप प्राप्त ॥१०९॥ पृष्टोऽनवसरागमहेतु, भल मार्गयित्वा स्माह, व्रताद् भग्नस्ते पिताऽत्रागत्य कुम्भकृद्गृहे स्थित , प्रातस्त्वद्राज्य गृहीतेति॥११०॥

एवी रीतनी ते त्रणे गाथाओने ते मुनि कल्पवृक्ष, चिंतामणिरत्न तथा कामधेनु सरखी मानवा लाग्या तथा वारवार तेने याद करवा लाग्या ॥ १०७ ॥ हवे एटलामा ते नगरमा दीर्घपृष्ठ नामना मन्त्रिए राजानी बहेन अणुल्लिकाने पोताना घरमा भोंयरामा पूरी राखी छे, एवा विचारथी के कोइक उपायवडे राजाने मारीने तथा पोताना पुत्रने राज्यपर बेसाडीने तेणीने हु हाथ करु ॥ १०८ ॥ राजाए सुभटो मारफते बहेनने शोधावी, परतु मळी नहीं, एटलामा यवराजर्षिने आवेला सांभळीने मन्त्रिए विचार्यु के आ ऋषिने तपथी ज्ञान प्राप्त थयु हशे, अने ते ज्ञानथी मारु वृत्तात जाणीने जो ते राजाने कहेशे, तो राजा मने कुटुब सहित मारी नाखशे माटे हवे कइक हु पहेलेथी उपाय करु, एम विचारी ते रात्रिएज राजा पासे आव्यो ॥१०९॥ त्यारे राजाए तेने अकाळे आववानु कारण पूछ्यु, पछी लाग जोइने तेणे राजाने कह्यु के तमारो पिता दीक्षाथी पतित थयो छे तथा अहिं आवीने कुभारने घेर उतर्यो छे, अने प्रभाते तारु राज्य ग्रहण करशे ॥ ११० ॥

तदाकर्ण्य नृप. प्रोचे, पिता चेद्राज्यं ददाति तर्हि राज्य मे, तत्पादौ सेविष्ये, मन्त्री प्रोचे नैव युक्त, स्व राज्य नार्प्यते, वध्य. पितापि ॥ १११ ॥ विविधयुक्तिभिस्तेन कै-तवभृता तदपि प्रतिपादितो नृपः पितुर्वधाय निशीथे खड्गहस्तः कुंभकृद्गेह गत., छिद्रेण पितर वीक्षते ॥ ११२ ॥ तावद्यतर्षिणा आद्या गाथा गुणिता, तां श्रुत्वा चिंतित मत्पित्रा ज्ञानेन ज्ञातोऽहमितस्ततः पश्यन्, अपि च यद्ययं ज्ञानी तन्मे स्वसु. शुद्धि वक्तु ॥ ११३ ॥ तावद् द्वितीया गाथा गुणिता तेन, तां श्रुत्वा जात. प्रत्ययः, पिता गुणप्रशसादि चक्रे, पुनराचिंति मत्स्वसा येन गोपिता, तन्नाम प्रकाशयतु पिता ॥ ११४ ॥

ते सांभळी राजाए कह्यु के, जो पिता राज्य लेशे, तो मारु राज्य जाणवु, हु तेना चरणो सेवीश, त्यारे मन्त्रिए कह्यु छे, तेम तो योग्य नथी, पोतानु राज्य कंइ अपाय नहीं, पिताने पण मारवो जोइए ॥१११॥ पछी ते कपटी मन्त्रिए नाना प्रकारनी युक्तिओथी पिताने मारी नाखवानो पण तेनी पासे स्वीकार कराव्यो, अने तेथी राजा मध्यरात्रिए हाथमा खड्ग लइने पिताने मारवा माटे कुंभारने घेर गयो, तथा त्या छिद्र-माथी पिताने जोवा लाग्यो ॥ ११२ ॥ एटलामा यवऋषिए पहेली गाथा गणी, ते सांभळी राजाए विचार्यु के मारा पिताए ज्ञानथी मने आम तेम जोतो जाणी लीधो छे, वळी पण जो ते ज्ञानी होशे तो मारी बहेननी हकीकत पण ते कहेशे ॥ ११३ ॥ एटलामा ते ऋषिए बीजी गाथा गणी, ते सांभळीने तेने खातरी थइ, तथा तेना गुणोनी प्रशसा आदिक ते करवा लाग्यो, वळी तेणे विचार्यु के मारी बहेनने जेणे संतामेली छे. तेनु नाम पण हवे मारा पिता कहेतो ठीक ॥ ११४ ॥

तावत् तृतीया गाथा परावर्त्तिता, ततो नग्नसदेहो हृष्टो द्वारमुद्घाट्यातर्गत ॥ ११५ ॥ पितर ज्ञानिन जिघासु स्वं निदन् मुदश्रुर्मुनि नत्वा स्वापराधप्रकटनपर क्षमितवान्, मुनिर्मौनमेवाकरोत्, तदेव हि सर्वार्थसाधनमिति ॥ ११६ ॥ ततो नृप स्वगृहागतो रात्रिशेषमतिवाह्य प्रातर्मन्त्रिगृह भटै शोधयित्वा भूमिगृहे भगिनी लब्धा, मन्त्रिण देशान्निरकासयत ॥ ११७ ॥ ततो ज्ञानिन मुनि प्रशशस, त च नत्वा तदुक्त धर्म प्रत्यपद्यत मन्त्र्यादिभि पौरैश्च सह, तत स यवराजर्षिर्बंधुवर्ग प्रतिबोध्य गुरुपार्श्वे गत, प्रमाद त्यक्त्वा श्रुत पपाठ, तपस्तप्त्वा दिव ययौ ॥ ११८ ॥ इति यवराजर्षिकथा ॥

एटलामा ते मुनिए त्रीजी गाथा गणी, ते सांभळी तेनो संदेह दूर थवाथी ते खुशी थइने बारणु उघाडी अन्दर गयो ॥ ११५ ॥ तथा ज्ञानी एवा पिताने मारवानी इच्छा करनारा पोताना आत्माने निंदतो थको हर्षना अश्रुओ लावी मुनिने नमी तथा पोतानो अपराध प्रगट करी खमाववा लाग्यो, मुनिए तो मौनज कर्यु, केमके तेज सर्व अर्थोने साधनारु छे ॥ ११६ ॥ पछी राजा पोताने घेर आवीने तथा बाकीनी रात्रि गाळीने प्रभाते सुभटो मारफते मंत्रीनु घर तपासाव्यु, तो भोयरामांथी पोतानी बहेन मळी, अने तेथी मंत्रिने देशनिकाल कर्यो ॥११७॥ पछी ते ज्ञानी मुनिनी प्रशंसा करवा लाग्यो, तथा तेने नमीने तेणे कहेलो धर्म तेणे स्वीकार्यो, तेमज मंत्रि आदिकोए तथा नगरना लोकोए पण ते धर्म स्वीकार्यो; पछी ते यवराज ऋषि बंधु वर्गने प्रतिबोधीने गुरु पासे गया, तथा प्रमाद तजीने शास्त्राभ्यास करवा लाग्या, तथा त्यांथी तप तपी देवलोके गया ॥ ११८ ॥ एवी रीते यवराज ऋषिनी कथा जाणवी ॥

एवमल्पश्रुतस्यापि अनुदरा कन्येत्यादिवदविवक्षया तदध्येतारोऽन्येपि सम्यक्क्रियापरा गुरुवरा वह्नि श्रुतसारत्वाऽभावेऽप्यंत सारत्वेनाश्रितवतां शिवसीमशुभफलदायिनो भवतीति ॥ ११९ ॥ आह परः, ननु अल्पश्रुतस्य कथ स्वपरतारकत्व, यदागम —अवहुस्सुओ तवस्सी । विहरिउकामो अजाणिऊणपहं ॥ अवराहपयसयाइं । काऊण वि जो न याणेइ ॥ १२० ॥ इत्यादि, उच्यते, बहुश्रुतगुरुपरतन्त्रतया सम्यग्धर्मानुष्ठाने स्वय प्रवर्त्तमानाना पराश्च प्रवर्त्तयतामल्पश्रुतानामपि स्वपरतारकत्वमविरुद्ध ॥ १२१ ॥ तदुक्त—गुरुपारततनाण । सद्दहण एअ संगयचेव ॥ इत्तो उ चरित्तीण । मासतुसाईणनिद्दिठ्ठ ॥ १२२ ॥

एवी रीते 'उदर विनानी कन्या' इत्यादिकनी पेठे अल्पश्रुतनी पण अविवक्षाये करीने ते भणनारा बीजाओ पण, के जेओ उत्तम क्रियामा तत्पर होय छे, एवा उत्तम गुरुओने वहारथी जो के श्रुत सारपणानो अभाव होय छे, तोपण अंदरथी सारपणाये करीने आश्रित एवा श्रावक आदिकोने छेक मोक्ष पर्यंतना शुभ फळने देनाराओ थाय छे ॥ ११९ ॥ अहीं वादी शका करे छे के, अल्प श्रुतवाळाने पोताने तथा परने तारवापणु केम सभवे ? केमके आगममा कह्युं छे के, अवहुश्रुत एवो तपस्वी मुनि जिनमार्गने जाण्या विना विहार करवानी इच्छा करतो थको सेंकडो गमे अपराध करीने पण तेओने जाणी शकतो नथी ॥ १२० ॥ इत्यादि, हवे ते वादीने उत्तर आपे छे के, बहुश्रुत एवा गुरुना तावामा रहीने पोते उत्तम प्रकारनी धर्म क्रियामा प्रवर्त्ते छे, तेमज अन्योने पण प्रवर्त्तावे छे, माटे एवी रीतना अल्प श्रुतोने पण पोताने अने परने पण तारवापणु विरोध विनानु छे, अर्थात् तेओ पोताने अने परने पण तारी शके छे ॥ १२१ ॥ कह्यु छे के, गुरु परतत्र ज्ञान अने तेनी सद्दहणा, ए योग्यज छे, अने तेटलामाटेज माषतुष आदिक मुनिओने चारित्रपणुं कहेलु छे ॥ १२२ ॥

किच, अग्गीअस्स इमं कह । गुरुकुलवासाउ कहतओ गीओ ॥ गीआणाकरणा-ओ । कहमेअ नाणओ चेव ॥ १२३ ॥ अधोणधोव्वसया । तस्साणाए जहेव लघेइ ॥ जीमंपि हु कतार । जवकतार इअअगीओ ॥ १२४ ॥ इत्यादि, केचित्पुनर्नृ-पान्तरणरदतयहिश्च सारा, हृदयवहिश्च सम्यक्श्रुतधारित्वात्, रत्नोपमनिरुपमाति-शयविविधलब्धिसमृद्धिजि. समधिकतर दीप्तिभृत्त्वाच्च ॥ १२५ ॥ अत्र श्रीवज्रस्वा-म्यादयो दृष्टाता स्पष्टा एवेति एते चतुर्थजगता. श्रीगुरव. श्रीजिशासनप्रभावनैकप-रा., स्वपरयोस्तारणसमर्था, प्रवहणवदाश्रयणीया जवाब्धि तरीतुकामै. ॥ १२६ ॥

वळी अगीतार्थने चारित्रपणुं शाथी होय? तो के गुरु कुळमां वसवाथी होय, अने तेथी गीतार्थ-पणु केम होय? तो के त्या शास्त्रो साजळवाथी होय, अने ते शास्त्रानु साजळवु शाथी होय? तो के ज्ञानथी होय ॥ १२३ ॥ जेम अध मनुष्य पांगळाना सहायथी तेनी आज्ञा प्रमाणे वर्तवावडे करीने जयकर वनने पण ओळगी जाय छे, तेम अगीतार्थ पण (गीतार्थ गुरुना सहाय।) आ ससाररुपी वनने ओळगी जाय छे ॥ १२४ ॥ इत्यादी, हवे केटलाक गुरुओ राजाना आजूषणनी पेठे अदरथी अने वहारथी पण सारवाळा होय छे, केमके तेओ हृदयमा अने वहारथी पण उत्तम श्रुतने धरनारा होय छे, तेमज रत्न सरखी निरु-पम अतिशयोवाळी नाना प्रकारनी लब्धिरूप समृद्धिआवडे करीने अधिक कातिवाळा होय छे ॥ १२५ ॥ अहीं श्री वज्रस्वामी आदिकोना दृष्टात स्पष्टज छे ए उपर वर्णवेला चोथा जांगावाळा गुरुओ श्री जिन-शासननी प्रभावनामाज तत्पर रहेला छे, तेम पोतान अने परने तारवामा समर्थ छे, माटे जेओने आ ससाररूपी समुद्र तरवानी इच्छा होय, तेओए वहाणनी पेठ तेवा गुरुओनो आदर करवो ॥ १२६ ॥

एतदभावे तृतीयभंगसंगिनोऽपि, आद्यभंगद्वयगुरवस्तु त्याज्या एवेति इत्युक्ता श्रीगुरुगता श्रुतमाश्रित्य चतुर्भंगी ॥ १२७ ॥ अथ क्रियामाश्रित्य श्राद्धानां चतुर्भंगी दर्श्यते, श्रुतमाश्रित्य तु तेषां चतुर्भंगी न घटते, तेषां विशेषश्रुताऽनधिकारित्वात् ॥ १२८ ॥ तदुक्तं—अट्ठप्पवयणमायाणु—गयं सुत्त जहन्नओ पढइ ॥ उक्कोसेण छज्जीवणि तु । जइवयकउज्जोगो ॥ १२९ ॥ इति, तत्र केचिच्छ्राद्धाः क्रियामाश्रित्य श्वपाकान्तरणवदन्तर्बहिश्चाऽसारा, तथाहि—क्रिया खल्वत्र श्राद्धविध्युक्तान व्यवहारशुद्धिजिनपूजागुरुप्रतिपत्तिसुपात्रदानहिंसादिविरतिसामायिकावश्यकादिरूपा ॥ १३० ॥

ए चोथा भांगावाळा गुरुओ कदाच न मळे तो त्रीजा भांगावाळाओने पण स्वीकारवा, परतु पहेला बे भांगावाळा गुरुओने तो तजवाज जोइए, एवी रीते श्रुतने आश्रीने गुरुओ संबंधि चोभंगी कही ॥ १२७ ॥ हवे क्रियाने आश्रीने श्रावकोनी चोभंगी देखाडे छे, श्रुतने आश्रीने तो तेओनी चोभंगी घटी शकती नथी, केमके तेओने विशेष श्रुतनु अधिकारीपणु नथी ॥ १२८ ॥ कह्यु छे के, साधुव्रतमां करेल छे उद्यम जेणे एवो श्रावक जघन्यथी आठ प्रवचन माताने अनुसरनारु श्रुत जाणे, अने उत्कृष्टथी तो छजीवणी अध्ययन सुधी श्रुत जाणे ॥ १२९ ॥ इति, तेमा केटलाक श्रावको तो क्रियाने आश्रीने चंडाळना आनूपानी पेठे अंदरथी अने बहारथी पण सार विनाना होय छे; ते कहे छे—अहीं क्रिया एटले श्रावकोनी विधिपूर्वक क्रिया, जेवी के व्यवहारशुद्धि, जिनपूजा, गुरुसेवा, सुपात्रदान, हिंसा आदिकनी विरति, सामायिक तथा आवश्यक आदिकरूप जाणवी ॥ १३० ॥

सा क्रिया केषाचिदतर्हृदयेरुचिरूपेण नास्ति, बहिश्च करणरूपेणापि नास्ति, केवलं श्राद्धकुलोत्पन्नत्वादिना श्राद्धनाममात्रधारित्वमस्ति ॥ १३१ ॥ ते प्रथमभंगपातिन. श्राद्धा ज्ञेया, एते च धर्मगोचराया रुचेरप्यभावेन सम्यक्त्वादिविकला प्रथमगुणस्थानवर्त्तिनो गृहस्त्रीधनापत्यादिप्रतिबद्धा. कुटुम्बाद्यर्थं विविधारंभपरा इह दुःखिन स्युरपयशोभाजन च ॥ १३२ ॥ प्रेत्य चैकेन्द्रियादिषु गता· सुचिर भव भ्राम्यति धनप्रियश्रेष्ठ्यादिवत्, उक्त च—पुत्ताइसु पडिबद्धा । अन्नाणपमायसगया जीवा ॥ उप्पज्जति धणप्पिय—वणिउव्वेगिंदिएसु बहु ॥ १३३ ॥

ते क्रिया केटलाक श्रावकोना हृदयमा रुचिरूपे नथी होती, तम बहारथी पण करवारूपे क्रिया नथी होती, केवल श्रावकना कुलमा उत्पन्न थवा आदिक करीने नामधारी श्रावकपणु होय छे ॥ १३१ ॥ एवा प्रकारना श्रावकोने पेहेला भागावाळा जाणवा, वळी तेओ धर्म सबधि रुचिना पण अभावे करीने समकीत आदिकथी रहित थया थका प्रथम गुण ठाणामा वर्त्ते छे, तथा घर, स्त्री, धन तथा सतान आदिकना बधन युक्त थया थका कुटुब आदिक माटे नानाप्रकारना आरभोमा पडीने आ लोकमा दु खी तथा अपजशना भाजनरूप थाय छे ॥ १३२ ॥ वळी परलोकमा पण एकेंद्रियादिकमा उत्पन्न थइने धनप्रिय शेठ आदिकनी पेठे घणा काळ सुधि ससारमा भमे छे कह्यु छे के—पुत्र आदिकना बधनमा पडेला तथा अज्ञान अने प्रमादने प्राप्त थयेला जीवो घणु करीने धनप्रिय वणिकनी पेठे एकेंद्रिय आदिकोमा उत्पन्न थाय छे ॥ १३३ ॥

इति श्रीभवभावनायां; केचित् पुनर्हिंसाऽसत्यस्तेन्याऽब्रह्माद्यविरता भक्ष्याऽभक्ष्यपेयाऽपेयादिविवेकविकला इहापि ज्ञातिपंक्तिबहिःकरणधनराज्यादिभ्रंशेन्द्रियाद्यंगच्छेदकुमरणादि प्राप्नुवंति ॥१३४॥ प्रेत्य नरकादि च भीमादिवत्, तथा च भवभावनायामेव,—— पाणिवहेण भीमो । कुणिमाहारेण कुजरनरिंदो ॥ आरंभेहि य अयलो । नरयगईए उदाहरणा ॥ १३५ ॥ न च श्राद्धनाममात्रारोपा साधारता कापि, नाममात्रस्याऽर्थाऽसाधकत्वात्, तत्त्वे च भौमादीना मंगलादिनाम्ना प्रसिद्धानां मंगलाद्यर्थसाधकत्वापत्तेः ॥ १३६ ॥

एम श्री भवभावनामां कह्यु छे. वळी केटलाक तो हिंसा, असत्य, चोरी, तथा अब्रह्मआदिकथी नहीं विरति पामेला, अने भक्ष्य, अभक्ष्य पेय, अपेय आदिकना विवेक विनाना मनुष्यो अहीं पण ज्ञाति बहार थवु, धन तथा राज्य आदिकनो नाश, इंद्रिय आदिक अंगोनो छेद, तथा कुमोत आदिकने प्राप्त थाय छे ॥ १३४ ॥ तथा परलोकमां पण भीम आदिकनी पेठे नरक आदिक पामे छे, वळी भवभावनामांज कह्यु छे के, जीवहिंसाथी भीम, अभक्ष्य भोजनथी कुंजर राजा, तथा आरंभोथी अचल नरके गयो, एवी रीते ए नरक गतिना उदाहरणो जाणवा ॥ १३५ ॥ वळी श्रावकना नाम मात्रथी तेओमां कंइ साधारणपणु होतु नथी, केमके नाम मात्र कंइ कार्य साधी शकतु नथी, अने जो नाम मात्रथी कार्य सधातु होय तो, मंगळ आदिक नामथी प्रसिद्ध एवा भोम आदिकोने मंगल आदिक कार्य साधवानी आपत्ति (प्राप्ति) थाय ॥ १३६ ॥

न च तद्गृह्यते, उक्तं च—ज्योमि मङ्गलनाम विष्टिविषये जङ्गा कणानां क्षये। वृद्धिः शीतलिकेति तीव्रपिटके राजा रज.पर्वणि॥ मिष्टत्वं लवणे विषे च मधुरं जामिः सपत्न्या पुन.। पात्रत्वं च पणाङ्गनासु रुचिरं नाम्ना परं नार्थतः ॥ १३७ ॥ इत्युक्ता श्वपाकाचरणानुसारिण. श्राद्धा ॥ केचित् पुनर्गणिकाचरणवत् क्रियामाश्रित्यान्तर्हृदयेऽसारा क्रियापरिणामाद्यभावात् ॥ १३८ ॥ बहिस्तु सारा ऐहिकज्ञानपूजाद्यर्थं कञ्चिद्धर्मार्थिनं स्वपरकार्यमिसाधयिषया कथञ्चिद्वञ्चयितुं वा सम्यक्श्राद्धानुष्ठाननिर्मितिनिपुणत्वात् ॥ १३९ ॥

अने तेम तो देखातु नथी, कयु छे के, ज्योममां मगळ नाम कहेवाय छे, *विष्टिना विषयमा जद्रा कहेवाय छे, धान्योनो क्षय होते छते वृद्धि कहेवाय छे, तीव्र फोल्ला होते छते शीतळा कहेवाय छे, होळीनो राजा कहेवाय छे, लुणने मीठु कहेवाय छे, झेरने मधुर कहेवाय छे, तथा शोकने बहेन कहे छे, वेश्याओने पात्रपणु कहे छे, ए सघळा नामथी मनोहर छे, पण ते प्रमाणे अर्थसाधक नथी ॥ १३७ ॥ एवी रीते चांडालना आचरण सरखा श्रावको कह्या ॥ वळी केटलाको तो वेश्याना आचरणनी पेठे क्रियाने आश्रीने हृदयमां सार विनाना होय छे, केमके तेओने क्रियानी परिणति आदिकनो अभाव होय छे ॥ १३८ ॥ वळी तेओ बहारथी तो सारवाळा देखाय छे, केमके आ लोक संबंधि ज्ञान तथा पूजा आदिक माटे कोइक धर्मार्थी मनुष्यने पोताना अने परना कार्यने साधवानी इच्छाथी कोइ पण रीते ठगवा माटे सम्यक् प्रकारे श्रावकनी क्रिया करवामां तेओ निपुण होय छे ॥ १३९ ॥

* मजुरी या वननां अर्थमां पण प्रवर्त्ते छे.

दृष्टाताश्च सम्प्रति दुःषमानुभावतोऽनुपद सुलभा धर्मठकास्तादृशा बहवोऽपीति, जिन-दासश्रेष्ठितुरगापहारकब्रह्मचारिचण्डप्रद्योतनृपप्रहिताभयकुमारमंत्रिवधनार्थकपटश्राविकी-भूतगणिकाश्राद्धसुतापाणिग्रहार्थकपटश्राद्धीभूतबुधदासवब्बरकूलकुल्लकविक्राचकश्राद्धा-दयो वा दृष्टाता यथार्हमत्र वाच्या. ॥ १४० ॥ एतेऽपि चाऽभव्या दूरभव्या अपि च स्यु. । गतिरप्येषां प्रथमगुणस्थानिनामिव यथार्हं वाच्या, धर्मानुष्ठानविषयश्रद्धानाद्यभा-वेन सम्यक्त्वरहितत्वात् ॥ १४१ ॥ क्वाऽव जने प्रख्याप्य कुव्यवहारपरद्रोहविश्वासघा-तादिपरत्वेन श्रीजिनधर्मगोचरामुड्डाहनां कुर्वाणानां च तेषां केषांचित् दुरतभवभ्रमणा-द्यपि ॥ १४२ ॥

अहीं हालमां दुःखम कालवा अनुभावथी तेवा दृष्टातो तो पगले पगले मली शके छे, केमके तेवा धर्मठगो बहु देखाय छे, जिनदास शेठनो घोडो हरनार ब्रह्मचारी, चण्डप्रद्योत राजाए मोकलेली तथा अभयकुमार मंत्रिने बांधवा माटे कपटी श्राविका थयेली वेश्या, श्रावकनी पुत्री परणवा माटे कपटी श्रावक थयेल बुद्धदास, तथा बब्बर कूलना कुल्लकने वेचनार श्रावक आदिकना दृष्टातो यथायोग्य रीते अहीं वाची लेवा ॥ १४० ॥ ए उपर वर्णवेला श्रावको अभव्य तथा दूरभव्य पण होइ शके छे । तथा तेओनी गती पण प्रथम गुणठाणावालाओनी पेठे यथायोग्य रीते जाणवी, केमके धर्मक्रियाना विषयवाली श्रद्धा आदिकना अभावे करीने तेओने समकीत रहितपणुं होय छे ॥ १४१ ॥ वली लोकोमा (पोतानुं) श्रावकपणुं प्रसिद्ध करीने खोटो व्यवहार, परनो द्रोह, तथा विश्वासघात आदिकमां तत्पर थइने श्री जैन-धर्मनी हिलना करनारा एवा तेओ केटलाकोने दुरत भवोमा भमवा आदिकपणुं पण थाय छे ॥ १४२ ॥

तदुक्तं—सद्दह नाणाइसु । अबोहिबीयं हविज नियमेण ॥ तत्तो भवपरिवुड्ढी । ता हुज्जा उज्जुववहारी ॥ १४३ ॥ केचित् पुनरत श्रद्धानाद्यभावेऽपि बहिः क्रियाभ्यासादिना प्रेत्य बोधिमपि लभते, सप्ताष्टादिभवैः सिद्धिं वा, वरदत्तश्रेष्ठिनो दासीपुत्रवत्, तथाहि—॥ १४४ ॥ अत्रैव भरते कौशाम्ब्यां नरसिंहो राजा, कनकवती राज्ञी ॥ १४५ ॥ तत्रान्यदाऽवधिज्ञानी वरदत्तसाधुरुद्याने प्राप्तः, तं वंदितुं नगरलोके गते मुनिना धर्मदेशना प्रारब्धा ॥ १४६ ॥ धर्मकथामध्ये मुनिनाऽकस्मात् हसितं, तत् दृष्ट्वा जाताश्चर्या सभ्या मुनिं व्यज्ञपयन् ॥ १४७ ॥

वळी कहे छे के—धर्ममार्गथी जनगो अभ्यास करवा आदिकथी निश्चये करीने अबोधिबीज प्राप्त थाय छे, तथा तेथी संसारनी वृद्धि थाय छे, माटे ऋजुव्यवहारी थवुं ॥ १४३ ॥ वळी केटलाको तो हृदयमां श्रद्धा आदिकनो अभाव होते छते पण बहारथी क्रियाना अभ्यास आदिकवडे करीने परभवमां बोधिबीजने पण प्राप्त थाय छे, अथवा सात आठ भवे मोक्ष पामे छे, (कोनी पेठे? तोके) वरदत्त शेठना दासी पुत्रनी पेठे, ते उदाहरण कहे छे—॥ १४४ ॥ आज भरतक्षेत्रमां कौशाम्बी नगरीमां नरसिंह नामे राजा हतो, तथा तेने कनकवती नामे स्त्री हती ॥ १४५ ॥ हवे एकदा त्यां अवधिज्ञानवाळा वरदत्त नामे साधु उद्यानमां पधार्या, तेने वांदवाने ज्यारे नगरना लोको आव्या, त्यारे मुनिए धर्मदेशना देवा मांडी ॥ १४६ ॥ धर्म कथा कहेतां थकां वच्चे मुनि अकस्मात् हसवा लाग्या, ते जोइ सभासदो आश्चर्य पामी मुनिने पूछवा लाग्या के, ॥ १४७ ॥

* प्रमाणिक

जगवन् अन्येऽपि सत्पुरुषाः कारणं विना न हसंति, रागादिरहिता जवादृशा-स्तु कथं तद्विना हसंतीति हास्यहेतुमादिश ॥ १४८ ॥ साधुरूचे जद्राः शृ-णुत, एतस्य निंबस्य शिखरे समलिकां पश्यत, एषा क्रोधान्मां पादाभ्यां घात-यितुमिच्छति, प्राग्जववैरात ॥ १४९ ॥ तत् श्रुत्वा सकौतुकाः सज्यास्तदाग्जवं पृच्छंति, साधुः समलिकाया. प्रतिबोधार्थं तमाख्याति, समलिकापि हृदयगतार्थक-थनाद्विस्मिता शृणोति ॥ १५० ॥ तथाहि—अत्रैव जरते कनकपुरे धन्यो ना-म्ना श्राद्धः, तस्य जार्या सुंदरी, सा दुःशीला अन्यासक्ता वर्त्तते ॥ १५१ ॥ अन्यदोपपतिनोचे, सुदरि अद्यप्रभृति त्वत्पार्श्वे नायास्यामि, यतस्त्वद्जर्त्तुर्बिजेमि॥१५२॥

हे जगवान! बीजा पण सत्पुरुषो विना कारणे हसता नथी, त्यारे रागआदिकथी रहित एवा आप सरखा तो कारणविना केम हसे? माटे आपना हास्यनु कारण अमोने कहो? ॥ १४८ ॥ त्यारे साधुए कह्यु के, हे जद्रो! तमो सांजळो? आ लींबडाना शिखर उपर रहेले समळीने तमो जुओ? ते समळी पूर्वजवना वैरे करीने क्रोधथी मने पोताना पगोथी मारवाने इच्छे छे ॥ १४९ ॥ ते सांजळीने सजासदोने कौतुक थवाथी तेनो पूर्वजव पूछवा लाग्या, त्यारे साधु पण समळीने प्रतिबोधवा माटे ते वृत्तांत कहेवा लाग्या तथा समळी पण पोताना हृदयमां रहेलो अर्थ कहेवाथी विस्मय पामती थकी सांजळवा लागी ॥ १५० ॥ ते कहे छे—आज जरतक्षेत्रमां कनकपुर नामना नगरमां धन्य नामे श्रावक हतो, तेने सुंदरी नामे स्त्री हती, ते खराब आचरणवाळी होवाथी अन्य पुरुषमां आसक्त हती ॥ १५१ ॥ एक दहाडो तेणीना यारे तेणीने कह्यु के, हे सुंदरि! आजथी मांडीने तारी पासे हुं आवीश नहीं; केमके तारा जरतारथी हुं डरु छु ॥ १५२ ॥

तत् श्रुत्वा भृशं जातदुःखा तमवादीत्, प्रियतम मैवं ब्रूयाः, स्तोकदिनमध्ये तव निःशल्यत्वं करिष्ये ॥ १५३ ॥ अन्यदा दुग्धमध्ये विषं क्षिप्त्वा, जर्तुं परिवेषणार्थं तदानयनाय यावत् सा गृहमध्ये याति, तावद् भुजंगेन दष्टा पतिता, सद्यः प्राणैर्मुक्ता च ॥ १५४ ॥ धन्य श्राद्धो भोजनादुत्थितः, हा किमेतदिति भणन् तां गतप्राणां वीक्ष्याऽज्ञाततच्चरित्रः स्नेहाद् व्यपन्नत ॥ १५५ ॥ सा मृत्वा शार्दूलोऽभूत्, तद्वैराग्याद् धन्यश्राद्धेन दीक्षा गृहीता ॥ १५६ ॥ अन्यदा वने कायोत्सर्गे स्थितः, विधिवशात् तद्भार्याजीवो व्याघ्रस्तत्रागतस्तं ऋषिं दृष्ट्वा प्राग्भववैरात् व्यापादयामास ॥ १५७ ॥

ते सांभळीने अत्यंत दुःखी थइने तेने ते कहेवा लागी के, हे प्रियतम! तमो एम न कहो? थोडा दिवसमां तमारुं ते शल्य हुं दूर करीश ॥ १५३ ॥ पछी एक दहाडो तेणीए दुधमां झेर नाख्युं, अने भर्तारने पीरसवा माटे ते लेवाने जेटलामां घरमां जाय छे, तेटलामां सर्पे दरवाथी ते पडी गइ, अने तुरत मरण हित थइ ॥ १५४ ॥ ते जोइ धन्य श्रावक भोजन करतो थको उठ्यो, तथा हा! आ शुं थयुं? एम बोलतो थको तेणीने मृत्यु पामेली जोइने, तेणीना चरित्रथी अजाण्यो होवाथी ते विलाप करवा लाग्यो ॥ १५५ ॥ पछी ते स्त्री मृत्यु पामीने सिंह थइ, अने धन्य श्रावके वैराग्यथी दीक्षा लीधी ॥ १५६ ॥ एक वखते ते वनमां काउसग्ग ध्याने रह्यो, एटलामां दैवयोगे तेनी स्त्रीना जीवरूप सिंह त्यां आव्यो, तथा पूर्वभवना वैरथी ते मुनिने जोइ तेने मारी नाख्यो ॥ १५७ ॥

स धन्यऋषिर्मृत्वा अच्युते कल्पे प्रापत्, सिंहस्तु चतुर्थे नरके अच्युतकल्पाच्च्युत्वा पुनः स चंपायां दत्तश्राद्धस्य जिनमती नार्या, तयोः पुत्रोऽभूत् वरदत्तनामा ॥ ॥ १५८ ॥ स आबाल्यात् संविग्नो यौवने विशिष्य सम्यक्त्वमूलधर्मोद्यतो दानी विवेकी मधुरवाणी ज्ञातो विनीतश्चाऽभूत् ॥ १५९ ॥ प्राग्भवनार्याजीवस्तु नरकाच्च्युत्वा भव भ्रान्त्वा तस्यैव श्रेष्ठिनो गृहे दासीपुत्रोऽभूत्, स दुष्टो वंचनाशीलो दासीपुत्रेति नाम्ना ख्यातोऽभूत् ॥ १६० ॥ क्रमतः पितरि स्वर्गते वरदत्तो गृहस्वामी बभूव, स प्राग्भवस्नेहाद्दासीपुत्रं सहोदरवत् पश्यति, वस्त्रादि दत्ते ॥ १६१ ॥ दासीपुत्रस्तु वरदत्तं शत्रुवत् पश्यति, तथापि तद्रंजनार्थं किंचित् किंचित् धर्मं कुरुते भाव विनैव ॥ १६२ ॥

एवी रीते ते धन्य मुनि मृत्यु पामीने अच्युत देवलोकमां गयो, तथा सिंह चोथी नरके गयो, पछी अच्युत देवलोकथी चवीने वळी ते मुनिनो जीव चंपा नगरीमां दत्त श्रावकनी जिनमती नामनी स्त्रीनी कुक्षिए वरदत्त नामे पुत्ररूपे थयो ॥ १५८ ॥ ते बेक बाल्यपणाथीज वैराग्यवान् हतो तथा यौवन अवस्थामां विशेष प्रकारे सम्यक्त्वमूळ श्रावक धर्ममां उद्यमवंत थइ दानी, विवेकी, मधुरवाणी, ज्ञात तथा विनयवान् थयो ॥ १५९ ॥ वळी पूर्व भवनी स्त्रीनो जीव नरकथी चवीने तथा संसार भमीने तेज शेठने घेर दासी पुत्र थयो; ते दुष्ट ठगारो दासी पुत्रना नामथी प्रसिद्ध थयो ॥ १६० ॥ अनुक्रमे पिता देवलोके गये छते वरदत्त घरनो मालीक थयो, तथा पूर्व भवना स्नेहथी ते दासी पुत्रने सगा भाइ तरीके जोवा लाग्यो, तथा तेने वस्त्र आदिक आपवा लाग्यो ॥ १६१ ॥ परंतु दासी पुत्र तो तेने शत्रुनी पेठे जोतो हतो, तोपण तेने खुश राखवा माटे भाव विनाज कंइक कंइक धर्म ते करतो हतो ॥ १६२ ॥

तस्य धर्मगुणं दृष्ट्वा तुष्टः श्रेष्ठीति चिंतयति, ममैष भ्राता जिनधर्मानुरागी, परं कर्मवशान्नीचकुले उत्पन्नः श्रीजिनधर्मे च न कुलं प्रधानं ॥१६३॥ यत.—'न कुलं इत्थ पहाणं' ततो ममान्यो भ्राता नाऽभूत्, एष च धर्मतो भ्राता, तस्मान्नृपतिसमक्षमेन भ्रातरं स्थापयामीति ॥ १६४ ॥ तथा तेन कृते दासीपुत्रो लोकैः श्रेष्ठिभ्रातेति बहुमानित, ततः श्रेष्ठी विश्वासात्सर्वं तस्यार्पयति, तथापि स प्राग्भववैरात् श्रेष्ठिनो विश्वासार्थं बाह्यधर्मपरोऽपि श्रेष्ठिनं हन्तुं विविधोपायांश्चिंतयति ॥ १६५ ॥ अन्यदा तालपुट विषं पत्रमध्ये क्षिप्त्वा तद्वीटक तेन शयनसमये श्रेष्ठिनोऽर्पितं, श्रेष्ठी तु तदर्पणात् प्राग् चतुर्विधाहार प्रत्याख्यातवान् ॥ १६६ ॥

तेनो धर्मगुण जोइने खुशी थयेलो शेठ एम विचारतो हतो के, मारो भाइ जैन धर्मनो अनुरागी छे, परंतु कर्मना वशथी नीच कुळमां उत्पन्न थयो छे, तथापि श्री जैन धर्ममां कंइ कुळने प्रधानपणु नथी ॥ १६३ ॥ कह्यु छे के 'अहीं कुळ प्रधान नथी' माटे मारे बीजो भाइ नथी, अने आ मारो धर्मे भाइ छे, माटे राजानी समक्ष हु तेने मारा भाइ तरीके स्थापन करु ॥ १६४ ॥ पछी तेणे तेम कर्याथी आ शेठनो भाइ छे, एम जाणी ते दासी पुत्रने लोको घणु मान आपवा लाग्या, वळी शेठ पण विश्वास लावी तेने सर्व कइ आपवा लाग्या, तो पण पूर्वभवना वैरथी, जोके ते शेठना विश्वास माटे उपरथी धर्ममां तत्पर थयो, परन्तु मनमा शेठने मारवा माटे नाना प्रकारना उपायो चिंतववा लाग्यो ॥ १६५ ॥ एक वखत तालपुट झेर पानमा नाखीने, तेनु बीडु शयन वखते तेणे शेठने आप्यु, शेठे तो ते आपवा पेहेलांज चउविहारनु पच्चखाण कर्यु हतु ॥ १६६ ॥

तथापि तदुपरोधात्तत्र गृहीत्वोपधानस्याधोऽमुचत्, अथ विधिवशात्तानि पत्राणि भूमौ पतितानि प्रातर्दृष्ट्वा वरदत्तश्रेष्ठिनो भार्या गृहीत्वा गृहस्यांगणे यावदागात् तावद्दासीपुत्रं दृष्ट्वोचे, देवर तांबूलं गृहाणेति ॥ १६७ ॥ सोऽपि गृहीत्वा तदभक्षयत्, सहसा भुवि पतितः, स्वामिद्रोहीतीव प्राणैस्त्यक्तः, आर्त्तध्यानान्मृत्वा समलिकैषा जज्ञे, तत्स्वरूपं दृष्ट्वा जातसंवैराग्यो वरदत्तश्रेष्ठी निजं वित्तं सुक्षेत्रे उप्त्वा प्रव्रज्यामग्रहीत् ॥ १६८ ॥ सोऽहं, एतत्स्वचरित्रं युष्माकं मयोक्तं, एवं भवे रागद्वेषविलसितं ज्ञात्वा यद्युक्तं तदाद्रियध्वं, इति श्रुत्वा केऽपि सर्वविरतिं देशविरत्यादि च परे यथाशक्ति प्रत्यपद्यंत ॥ १६९ ॥

तोपण तेना आग्रहथी तेणे ते बीडुं लेइने ओसीका नीचे मक्युं, हवे दैवयोगे ते पान जमीनपर पडी गयां, प्रभाते वरदत्त शेठनी स्त्रीए जोवाथी ते लेइने जेटलामां घरना आंगणा आगल ते आवे छे, तेटलामां दासीपुत्रने जोइ कहेवा लागी के, हे देवर! आ तांबुल ग्रहण करो? ॥ १६७ ॥ तेणे पण ते लेइने खाधु के तुरत जमीनपर पड्यो; स्वामीद्रोही होवाथीज जाणे तुरत जीवथी मुक्त थयो, तथा आर्तध्यानथी मरीने आ समलीरूपे ते उत्पन्न थयो छे, ते वृत्तांत जोइ वरदत्त शेठने संसारथी वैराग्य थवाथी पोतानु धन शुभ मार्गे वापरी तेणे दीक्षा लीधी, ॥ १६८ ॥ अने तेज आ हुं पोते छु, एवी रीते मारु पोतानु चरित्र मे तमोने कह्यु, एवी रीते आ संसारमां रागद्वेषनु चेष्टित जाणीने जे युक्त होय, तेनो आदर करो? एम सांभळीने केटलाकोए सर्वविरतिपणु तथा बीजाओए शक्ति मुजब देशविरतिपणुं आदिक अंगीकार कर्यु ॥ १६९ ॥

सा शकुन्यपि जातजातिस्मरणात् सर्वं तत् साक्षाद् दृष्ट्वा प्रतिबुद्धा, तरुशिखरान्मुनेरग्रत सहसा पतित्वा निज दुश्चरित क्षमयामास ॥ १७० ॥ ततो मुनिवचनादनशन प्रपद्य नमस्कारस्मृतिपरा देवेषूपपन्नेति; एव भावरहितोऽपि कषायकलुषितोऽपि जीवो द्रव्यतोऽपि यदि धर्मं करोति, तदाप्यचिराद् बोधि लभते कश्चिदिति भावरहितधर्मकरणे दासीपुत्रस्य सबध. ॥ १७१ ॥ अत एव च पूर्वस्माद् भागादस्य किंचिद्विशुद्धत्व, एवमग्रेऽपि ज्ञेय, इत्युक्ता द्वितीयभगगामिन. श्राद्धा. ॥ १७२ ॥ तथा केचिछ्राद्धा महेभ्याभरणवदत सारा हृदये सम्यग् धर्मानुष्टानविषयाया रुचे सत्त्वात, बहि. पुनरसारा धर्मवीर्यांतरायोदयादिना नरकादौ बद्धायुष्कत्वादिना वा स्थूलहिंसादिविरतिप्रभृतिधर्मानुष्टाने प्रवृत्त्यनुल्लासात् ॥ १७३ ॥

पछी ते समळी पण जातिस्मरण ज्ञान थवाथी ते सघलु साक्षात् जोइने प्रतिबोध पामी, तथा वृक्षनी टोच परथी तुरत मुनि पासे पडी ने पोतानु दुश्चरित्र खमाववा लागी ॥ १७० ॥ पछी मुनिना वचनथी अनशन करीने नवकारना स्मरण पूर्वक देवोमा उत्पन्न थइ, एवी रीते भाव विनानो तथा कषायोथी मलीन थयेलो पण कोइक जीव, जो द्रव्यथी पण धर्म करे, तो पण तुरत बोधिबीज पामे छे, तेटला माटे भावरहित धर्म करवामा दासीपुत्रनो सबध कह्यो ॥ १७१ ॥ अने तेथीज पूर्वना भागाथी आ भागानु कइक विशेष शुध्धपणु छे, तथा आगळ पण एवीज रीते जाणवु, एवी रीते बीजा भांगाने अनुसरनारा श्रावको कह्या ॥ १७२ ॥ वळी केटलाक श्रावको शाहुकारना आभूषणनी पेठे अदरथी सारवाळा होय छे, केमके तेओना हृदयमा सम्यक् प्रकारे धर्मक्रिया करवाना विषयवाळी रुचि होय छे, परतु बहारथी सारविनाना होय छे, केमके धर्म वीर्यना अतरायना उदय आदिके करीने अथवा नरक आदिकमा आयु बाधवा आदिकथी स्थूल हिंसा आदिकनी विरति आदिक धर्म क्रियामां प्रवृत्ति करवानो तेओने उल्लास थतो नथी ॥ १७३ ॥

क्रियाविषयतीव्ररुचिविशेषात् स्वापत्यानां प्रविव्रजिषूणां निषेधं न करोमि, अन्योऽपि यः कश्चित् प्रव्रजति तस्य प्रव्रज्योत्सवं स्वयं कारयामि, तत्स्वजनानामाजन्मावधिनिर्वाहादिचिंतां च करोमीत्यादि प्रतिपत्तिमान्, सर्वाः स्वसुताः श्रीनेमिपार्श्वे प्रव्राजितपूर्वी स्वयमष्टादशसहस्रसाधुषु कृतिकर्मकृत् श्रीकृष्णनरेन्द्रः, श्रीश्रेणिकनृपादयश्च निदर्शनमत्रेति ॥ १७४ ॥ एते च तृतीयभंगश्राद्धाः क्रियाविरहितत्वेन बहिर्लोकेषु क्रियापरश्राद्धवन्महिमानं न दधतीति बहिरसाराः, अंतःसारतया तु पूर्वमबद्धायुषोऽवांतसम्यक्त्वा वा वैमानिकवर्जमायुर्न बध्नन्त्येव, यदागमः ॥ १७५ ॥— सम्मदिट्ठी जीवो । गच्छइ निअमा विमाणवासीसु ॥ जइ न विगयसम्मत्तो । अहवा न बद्धाउओ नरए ॥ १७६ ॥

क्रिया संबंधि तीव्ररुचिविशेषथी दीक्षा लेवानी इच्छावाळा पोताना संतानोने हुं निषेध करतो नथी, तेम बीजो पण जे कोइ दीक्षा लीये, तेनो दीक्षा महोत्सव हुं पोते करुं छुं, तेमज तेना कुटुंबीओना निर्वाह आदिकनी चिंता छेक जीवित पर्यंत हुं करुं छुं, इत्यादिक अंगीकार करनारा, तेमज पोताना सघळा पुत्रोने श्रीनेमिनाथ प्रभु पासे दीक्षा अपावीने पोते अढार हजार साधुओने वंदना करनारा श्रीकृष्ण राजा, तथा श्रीश्रेणिकराजा आदिकना दृष्टांतो अहीं जाणवा ॥ १७४ ॥ एवी रीतना ए त्रीजा भागवाळा श्रावको क्रियाविनाना होवाथी बहारना लोकोमां क्रियामां तत्पर एवा श्रावकनी पेठे महिमा धारण करता नथी, माटे बहारथी सारविनाना छे, तेमज अंदरथी सारपणायें करीने पूर्वे आयु बांध्याविना समकीतने नहीं वमता थका अथवा वैमानिक शिवायनुं आयु बांधेज छे, आगममां पण कयुं छे के—॥ १७५ ॥ सम्यग् दृष्टी जीव निश्चयें करीने विमानवासीओमां जाय छे, क्यारे ? तोके जो तेनुं सम्यक्त्व न गयुं होय तो, अथवा नरकनुं आयु न बांध्युं होय तो ॥ १७६ ॥

बद्धायुष्का अबद्धायुष्काश्चेत्युज्नयेऽपि चेते प्रायः संख्यातज्नवमध्ये सिद्धिगामिनः स्युः, केचित्तु तृतीयज्नवेऽपीति ॥ १७७ ॥ अथ केचिन्नृपाज्नरणवदंतर्बहिश्च साराः, हृदये रुचिरूपेण बहिः रत्नोपमसातिशयसम्यक्त्वमूलद्वादशव्रतप्रतिमादिसदनुष्ठानविशेषैरधिकतर दीप्तिभृत्त्वेन च, आनंदकामदेवादिश्राद्धवत् ॥ १७८ ॥ एते चेहापि नृपादिजनमध्ये महत्त्वप्रशंसाद्यवाप्य प्रेत्य-द्वादशकल्पावधिसुखसंपदमवाप्नुयुः, जघन्यतस्तृतीयज्नवे ससाष्टज्नवैर्वोत्कर्षत. सिद्धिसुखज्नाजश्च ज्नवेयुरित्युक्तास्तुर्यज्नंगश्राद्धाः ॥१७९॥ एषां च चतुर्णामपि ज्नगाना मिथो विशेष प्रतिज्नग ज्नावित एवेति, एवं क्रियामाश्रित्य ज्नाविता श्राद्धाना चतुर्ज्नंगी ॥ १८० ॥

बांधेलां आयुवाळा अने नहीं बांधेलां आयुवाळा एम बन्ने ज्नेदोवाळा तेओ प्राये करीने संख्याता ज्नवमांहे मोक्षगामी थाय छे, तथा केटलाक तो त्रीजे ज्नवे पण मोक्षे जाय छे ॥ १७७ ॥ वळी केटलाको राजाना आज्नूषणनी पेठे अंदरथी अने बहारथी पण सारवाळा छे, हृदयमां रुचिरूपे करीने तथा बहारथी रत्नसरखा अतिशयवाळा समकीत मूळ बारव्रतो तथा पडिमा आदिकनी उत्तम क्रिया विशेषे करीने आनंद तथा कामदेव आदिक श्रावकोनी पेठे अधिक दीप्तिवाळा होय छे ॥ १७८ ॥ वळी तेओ अहीं पण एक राजा सुधिना लोकोमां मोटाइ तथा प्रशंसा आदिक पामीने परलोकमां बार देवलोक सुधिनी सुख संपदा मेळवे छे, तेमज जघन्यथी त्रीजे ज्नवे अथवा उत्कृष्टे सात आठ ज्नवोमां मोक्षसुखने ज्नजनारा थाय छे, एवी रीते चोथा ज्नांगाना श्रावको कह्या ॥ १७९ ॥ ए चारे ज्नांगाओनो परस्पर ज्नेद दरेक ज्नांगे देखाडेलोज छे; एवी रीते क्रियाने आश्रीने श्रावकोनी चोज्नंगी कही ॥ १८० ॥

अथ धर्मविषया सैव शुद्धिमधिकृत्य चाण्यते, तथाहि—॥ १८१ ॥ धर्मस्यान्तः शु-
द्धिः किल सर्वज्ञप्रणीतत्वादिधर्मप्रवर्त्तकानां सम्यग् जीवाऽजीवादितत्त्वस्याऽवधारण-
पुरस्सरस्थूलेतरसकलजीवरक्षापरिणामसर्वशक्तितद्विषयप्रयत्नशांतिमार्दवार्जवसत्यशौ-
चब्रह्माकिंचन्यादिगुणमयत्वं च ॥ १८२ ॥ बहिः शुद्धिः पुनर्बहिर्मुखजनरंजनशीतातप-
वर्षादिक्लेशसहननानावनवासादिकष्टषष्ठाष्टमादितपःक्रियादि ॥ १८३ ॥ ततश्च
श्वपाकान्तरणवत् कश्चन धर्मोऽन्तः शुद्धेरभावादंतरसारो, बहिः शुद्धेरभावाद् बहिर-
प्यसारश्च, यथा वेदादिविहितो यज्ञस्नानधेनुकन्यादानादिधर्मः ॥ १८४ ॥

हवे धर्म संबंधि शुद्धिने आश्रीने तज चोभंगी देखाडे छे, ते कहे छे ॥ १८१ ॥ धर्मनी अंदरथी शुद्धि, एटले सर्वज्ञ प्रभुए रचेला धर्मने प्रवर्त्तावनाराओनुं सम्यक् प्रकारे जीव अजीव आदिक तत्वोना अव-धारण पूर्वक स्थूल तथा बादर एवा सर्व जीवोना रक्षणनो परिणाम, तथा ते माटे पोतानी सर्व शक्तिथी प्रयत्न, अर्थात् शांति, कोमळता, सरलता, सत्य, पवित्रपणुं, ब्रह्मचर्य तथा परिग्रहरहितपणुं इत्यादिक गुणमयपणुं होय छे, ॥ १८२ ॥ बहारनी शुद्धि एटले बाह्य लोको जेथी खुश थाय, टाढ, तडका, उपर जणावेला गुणो तेमां होय छे ॥ १८२ ॥ बहारनी शुद्धि एटले बाह्य लोको जेथी खुश थाय, टाढ, तडका, तथा वरसाद आदिकना कष्टने सहन करवां, विविध प्रकारना वनवास आदिक कष्ट, तेमज छठ्ठ, अठ्ठम आदिक-नी तपस्यानी क्रिया आदिक रूप जाणवी ॥ १८३ ॥ हवे तेथी कोइक धर्म चांडालना आभूषणनी पेठे अंदर शुद्ध न होवाथी अंदरथी असार छे, तेम बहारथी पण शुद्धिनो अभाव होवाथी बहारथी पण सारविनानो होय छे, जेमके वेद आदिकोमां कहेलो यज्ञ, स्नान, गोदान तथा कन्यादान आदिकरूप धर्म तेवो छे ॥ १८४ ॥

स खल्वसर्वज्ञप्रणीतशास्त्रमूलत्वेन हिंसादिमयत्वेन महारंभहेतुत्वेन चांत·शुद्धेरनावादनरसार ॥ १०५ ॥ एतच्चास्यामेव गाथायां प्राक् श्रीगुरुचतुर्भंग्या लेशतो नानित, तद्‌ धर्मप्रणेतृणा ब्रह्ममहेश्वरादिदेवाना विश्वामित्रादिमहर्षीणा चाऽसर्वज्ञत्व पुनस्तथाविधक्षांत्याद्यभावशापादिप्रवृत्तीन्द्रियाऽजयाऽज्ञानापराधतद्धेतुकानर्थप्राप्त्यादिना सुव्यक्तमेव ॥ १०६ ॥ तदुक्त—ब्रह्मा लूनशिरा हरिर्दृशि सरुक् व्यालुप्तशिश्नो हर । सूर्योऽप्युल्लिखितोऽनलोऽप्यखिलभुक् सोम· कलंकांकित ॥ स्वर्नाथोऽपि विस स्थुल खलु वपु सस्थैरुपस्थै कृत. । सन्मार्गस्खलनाद्‌ भवति विपद प्राय प्रभूणामपि ॥ १०७ ॥

केमके त धर्म सर्वज्ञे नहीं रचेला एवा शास्त्रोरूपी मूळवाळो छे, तेमज हिंसामयपणायें करीने, अने महान् आरंभपणाए करीने अंदर शुद्ध न होवाथी अदरथी सारविनानो छे ॥ १०५ ॥ वळी ते सबधि व्याख्यान आज गाथामां पूर्व श्रीगुरुनी चतुर्भंगीमा लेशथी करेलु छे, वळी एवी रीतनो धर्म बनावनारा ब्रह्मा तथा महादेव आदिक देवोनु तथा विश्वामित्र आदिक महर्षिओनु असर्वज्ञपणु प्रगटज छे, केमके तेओमा तेवी रीतनो क्षमा आदिकनो अभाव, शाप आदिकनी प्रवृत्ति, इन्द्रियोने नहीं जीतवापणु, अज्ञानथी अपराध थवो, तथा ते निमित्ते अनर्थनी प्राप्ति आदिक तेओने थयेलीज छे ॥ १०६ ॥ कयु छे के—ब्रह्मानु मस्तक छेदायु छे, हरिनी आखमा रोग थयो छे महादेवनु लिंग छेदायु छे, सूर्यनी त्वचा उखेडवामा आवी छे, अग्नि पण सर्वभक्षी थयो छे, चद्र कलकी थयो छे, तेमज इद्र पण शरीरमा रहेली योनिओवडे करीने त्रासस्थल शरीरवाळो थयो छे, माटे एवी रीते उत्तम मार्गथी स्खलना पामवाथी समर्थोने पण प्राये करीने आपदाओ थाय छे ॥ १०७ ॥

अतस्तदुक्तस्य धर्मस्य कथंनामातःशुद्धिः, नापि बहिः, बाह्यस्यापि विशेषतपःकष्टानु-
ष्ठानादेस्तत्राऽदर्शनात् ॥ १०८ ॥ अपिच, संवत्सरेण यत्पापं । कैवर्त्तस्येह जायते ॥
एकाहेन तदाप्नोति । अपूतजलसंग्रही ॥ १०९ ॥ अस्तं गते दिवानाथे । आपो रु-
धिरमुच्यते ॥ तत्करैरेव संस्पृष्टा । आपो याति पवित्रताम् ॥ १९० ॥ इत्याद्युक्त्वा
पुनरगलितजलस्नान रात्रिभोजनादि च धर्मत्वेन समाचरता, यज्ञादिषु निष्करुणतया
प्रकटछागादिवधं च कुर्वता, गुडधेनुस्वर्णधेनुज्वलद्गड्डुरिकापापघटादिदानानि प्रतीच्छ-
ता गृहस्थेभ्योऽपि निःशूकतयाऽधिकारम्भवता च द्विजन्मनां स धर्म प्रत्युत ब-
हिर्मुखजनेष्वपि निंदास्पदमित्यतोऽपि बहिरसार इति ॥ १९१ ॥

माटे तेओए कहेला धर्मनी अंदरथी शुद्धि ते क्यांथीज होय? वळी ते धर्मनी बहारथी पण शुद्धि देखाती नथी, केमके बाह्य एवु विशेष प्रकारनु तप तथा कष्ट क्रिया आदिक तेमां जणाती नथी ॥ १०८ ॥ वळी पण, अहीं मच्छीमारने एक वर्षे जेटलुं पाप थाय छे, तेटलुं पाप अणगळ जळ वापरनारने एक दिवसमां थाय छे ॥ १०९ ॥ वळी सूर्य अस्त पामते छते, जळ रुधिरसमान गणाय छे, तथा पाणी तेनाज किरणोथी स्पर्शित थयेलुं जळ पवित्र थाय छे ॥ १९० ॥ इत्यादिक कहीने वळी पण वळी ते धर्म निमित्ते अणगळ जळथी स्नान, तथा रात्रि भोजन करवामां (दोष नथी) माटे एवी रीतनु आचरण करता, तेमज यज्ञ आदिकोमां निर्दयपणे प्रगट रीते बकरा आदिकोनी हिंसा करता, तेमज गोळनी गाय, सुवर्णनी गाय, बळती गाडर तथा पापना घडा आदिकनु दान ग्रहण करता, अने गृहस्थोथी पण निर्दयपणे अधिक आरंभ करता एवा ते ब्राह्मणोनो ते धर्म, उलटो बाह्य लोकोमां पण निंदाने पात्र थाय छे, माटे तेथी पण ते धर्म बहारथी सारविनानो छे ॥ १९१ ॥

एव नास्तिकादिधर्मोऽपि, तस्य द्विधाप्यसारता सुव्यक्तैव, बौद्धाना धर्मोऽप्यत्रैव त्र्यगेऽवतरति, तत्र पात्रपतितमासादेरपि कल्प्यत्वात्, तप कष्टादेर्निषेधाच्च ॥१७२॥ तथाच तन्मत—मृद्वी शय्या प्रातरुत्थाय पेया । भक्त मध्ये पानक चापराह्णे ॥ द्राक्षाखण्ड शर्करा चार्धरात्रे । मोक्षश्चान्ते शाक्यपुत्रेण दृष्ट. ॥ १७३ ॥ ततस्तस्यापि बहिरंतरसारता सुबोधैव, एवमन्येऽपि दत्तकानादय., एवजातीया सर्वे धर्मा अत्रैवातर्भवतीत्युक्त प्रथमो भंग. ॥ १७४ ॥ गतिश्चैतद्धर्मभाजा प्रायो नरकादि, तथा चोक्त तदर्थैरपि—वृक्षा छित्वा पशून् हत्वा । कृत्वा रुधिरकर्दम ॥ यद्येव गम्यते स्वर्गं । नरके केन गम्यते ॥ १७५ ॥

एवी रीते नास्तिक आदिकानो धर्म पण तेवोज जाणवो, केमके तेनु बन्ने रीते असारपणु प्रगट छे, वळी बौद्धोनो धर्म पण तेज भागामा उतरे छे, केमके तेमा पात्रे पडेलु मासादिक पण कल्पनीक कहु छे, तथा तप कष्टादिकनो निषेध करेलो छे ॥ १७२ ॥ ते बौद्धोना मतमा कहु छे के—कोमळ शय्या, तथा प्रभाते उठीने रावजीनु पान करवु, मध्यान्हे भोजन करवु, पाछले पहोरे पानु पान करवु तथा अर्धी रात्रिए द्राक्ष, खांड अने साकर खावी, अने तेम कर्याथी छेवटे मोक्ष मळे छे, एम शाक्यपुत्रे जोयेलु छे ॥ १७३ ॥ माटे ते धर्मनु पण बहारथी अने अंदरथी असारपणु सुखे जणाय तेवुज छे, एवी रीते बीजा पण दत्तज्ञान आदिकोने जाणवा, एवी रीतना सघळा धर्मोनो आज भागामा समावेश थाय छे, एवी रीते पेहेलो भागो कह्यो ॥ १७४ ॥ वळी ते धर्मवाळाओनी गति प्राये करीने नरक आदिकमा थाय छे, तेज मतवाळाओए पण कहु छे के—वृक्षने छेदीने, पशुओने हणीने तथा रुधिरनो कीचड करीने जो स्वर्गमा जवातु होय, तो पछी नरके कोण जशे ? ॥ १७५ ॥

इत्यादि, केषांचित्स्वल्पर्द्धिव्यंतरादिकेति ॥ १९६ ॥ कश्चिद्धर्मः पुनर्गणिकाभरणवदंतरसारो बहिस्तुसार, यथा तापसादीनां धर्म, यत सम्यग्जीवादिस्वरूपाऽनभिज्ञत्वेन जीवरक्षाप्रकारमजानतां ॥ १९७ ॥ विशिष्य तत्परिणामाद्यप्यस्पृशतां स्वल्पापराधेऽपि शापादि प्रयच्छतामनंतकायकंदमूलशेवालफलाद्याहारिणां षड्जीवनिकायोपमर्दप्रवृत्तानां तापसादीनां धर्मस्य नांत शुद्धि कापि ॥ १९८ ॥ बहि शुद्धिस्तु किंचिदस्ति, मुग्धजनरंजकस्य वनवासवल्कलपरिधानकिंचित्तप कष्टानुष्ठानादे सद्भावात्, एतस्माद्धर्मतो गतिरुत्कर्षतो ज्योतिष्कदेवादिषु ॥ १९९ ॥

इत्यादि, वळी तेमाना केटलाकोने कदाच अल्प ऋद्धिवाळी व्यंतर आदिकनी गति प्राप्त थाय छे ॥ १९६ ॥ वळी कोइक धर्म तो वेश्याना आभूषणनी पेठे अंदरथी सारविनानो अने बहारथी सारवाळो होय छे, जेम तापस आदिकोनो धर्म, केमके तेओ सम्यक् प्रकारे जीव आदिकना स्वरूपने नहीं जाणता होवाथी जीव रक्षाना प्रकारथी अज्ञानी होय छे ॥ १९७ ॥ तेमज विशेष प्रकारे ते जीव रक्षाना परिणाम आदिकने पण तेओ स्पर्श करता नथी, वळी स्वल्प अपराध होते छते पण तेओ शाप आदिक आपे छे, अनंतकाय, कंदमूळ, शेवाल तथा फल आदिकनो आहार करे छे, छकाय जीवोनुं उपमर्दन करे छे, माटे तेवा तापस आदिकोना धर्मने अंदरथी कंइ पण शुद्धि होती नथी ॥ १९८ ॥ परंतु बहारथी कंइक तेमां शुद्धि होय छे, केमके मुग्ध लोको जेथी खुशी थाय, तेवा वनवास, वृक्षोनी छालना वस्त्रो पहेरवा तथा कंइक तपरूप कष्टकारी क्रिया आदिक तेमां देखाय छे, एवी रीतना धर्मथी उत्कृष्टी गति ज्योतिष्क देव आदिकमां थाय छे ॥ १९९ ॥

यदागमः—'तावसिया जोइसिआ चरगपरिव्वायवम्भलोगोजा' एवजातीयोऽन्योऽपि धर्मोऽत्र जगे ज्ञेय इति द्वितीयो जग ॥ २०० ॥ अपरो धर्मश्च मध्येऽन्यान्तरएव-दत सारो वहिश्चाऽसार. यथा अविरतसम्यग्दृष्टेर्धर्मं, तस्य सम्यग्देवगुरुधर्मश्रद्धा-नतदाराधनपरिणामपापत्नीरुत्वादिलक्षणाया अत शुद्धे सत्त्वेनात सारत्वात् ॥२०१॥ स्थलवधाद्यविरतितप कष्टानुष्टानादिरहितत्वान्त्या वहिरसारत्वाच्च, सत्यकिविद्याधरा-देरिव, एतद्धर्माराधकाश्च नियमाद्वैमानिकदेवगतिवर्जमायुर्न वध्नति, यदागम·—'सम्मदिट्ठी जीवो, विमाणवज्ज न वधए आउ' इत्युक्तस्तृतीयो धर्म.॥ २०२ ॥

आगममा पण कह्यु छे के–'तापसो ज्योतिषी तथा चरकपरिव्राजको ब्रह्मलोक सुधि जाय छे' वळी एवा प्रकारनो बीजो पण कोइ धर्म, आज जगमा जाणवो, एवी रीते बीजो जगो कह्यो ॥ २०० ॥ वळी कोइक धर्म शाहुकारना आचरणनी पेठ अदरथी सारवाळो अने बहारथी सारविनानो होय छे, जेम अविरति सम्यग् दृष्टिनो धर्म, केमके तेमा सम्यग् देवगुरु अने धर्मपर श्रद्धा, तथा तेना आराधनना परिणामरूप पापोथी डरवापणु इत्यादिक लक्षणवाळी अंदरनी शुद्धि होवाथी, ते अदरथी सारभूत छे ॥ २०१ ॥ तथा स्थूलहिंसा आदिकनी अविरति तथा तपरूप कष्ट क्रिया आदिकना रहितपणाथी ते सत्यकिविद्याधर आदिकनी पेठे बहारथी असार छे, वळी ते धर्मना आराधको निश्चयथी वैमानिक देवगति शिवायनु आयु बांधता नथी, आगममा पण कह्यु छे के—सम्यग् दृष्टी जीव वैमानिक शिवायनु आयु बाधतो नथी, एवी रीते त्रीजा प्रकारनो धर्म कह्यो ॥ २०२ ॥

अथ कश्चिद्धर्मोऽन्तर्बहिश्च सारः, पृथ्वीपत्याभरणवत्, यथा जैनः सर्वविरतिधर्मः, स हि यथोक्तांतःशुद्धिबहिःशुद्धिमत्त्वेन द्विधापि सार एव ॥ २०३ ॥ एतद्भावना सुबोधैवेति न प्रतन्यते, अस्माच्च धर्माज्जघन्यतः सौधर्मे, उत्कर्षतः सर्वार्थसिद्धे सिद्धौ च गतिर्जीवानामिति ॥ २०४ ॥ देशविरतिधर्मोऽप्यत्रैवाऽवतारणीयः, अतः शुद्धिवहिःशुद्धिभावना देशतोऽत्रापि वाच्या, अतो धर्मादुत्कर्षतो द्वादशे कल्पे, जघन्यतः सौधर्मे च गतिः, दृष्टांता यथार्हं स्वयं वाच्याः, इति धर्मविषया शुद्धिमधिकृत्योक्ता चतुर्भंगी ॥ २०५ ॥

वळी कोइक धर्म तो अंदरथी अने बहारथी एम बन्ने प्रकारे सारवाळो होय छे, जेम सर्व विरतिरूप जैन धर्म, ते यथोक्त रीते अंदरथी अने बहारथी पण शुद्धिवाळो होवाथी बन्ने रीते सारवाळोज छे ॥ २०३ ॥ तेनी भावना सुखे समजाय तेवीज छे, माटे तेनो विस्तार करता नथी, आ धर्मथी जघन्यपणे सौधर्म देवलोकमां, तथा उत्कृष्टी सर्वार्थसिद्धिमां तथा मोक्षमां जीवोनी गति थाय छे ॥ २०४ ॥ देशविरतिरूप धर्मने पण आ भागमांज उतारवो, तथा तेमां पण देशथी अंदरनी शुद्धिनी तथा बहारनी शुद्धिनी भावना जाणी लेवी, तेमज आ देशविरतिरूप धर्मथी उत्कृष्टी बारमा देवलोकमां तथा जघन्यथी सौधर्म देवलोकमां गति जाणवी, तथा दृष्टांतो योग्यतापूर्वक पोतानी मेळेज जाणी लेवा. एवी रीते धर्म संबंधि शुद्धिने आश्रीने चोभंगी कही ॥ २०५ ॥

अथ सामान्यतो जीवाना धर्मगुणमधिकृत्य चतुर्भंगी, तथाहि—केचिज्जीवा अपाकान्तरणवद्धर्मतोऽन्तर्बहिश्चाऽसारा., हृदये परिणामतो बहिश्च क्रियातो धर्माऽभावात् ॥ २०६ ॥ कालसौकरिकादिवत् नरकादिगामिनश्चैते ज्ञेया. ॥ २०७ ॥ अन्ये पुनर्गणिकाभरणवदन्तरसारा बहिश्च सारा हृदये धर्मपरिणामस्याऽभावाद्बहिस्तत्क्रियासमाचरणाच्च, द्वादशवर्षीययतिवेषोदायिनृपघातकसाधुवत् ॥ २०८ ॥ निम्बासिकूटरूपकवच्च, एते च केचिदिहाऽप्यऽनर्थभाजनं स्युस्तद्भवदेव, प्रेत्य च नरकादिगामिनो ज्ञेया ॥ २०९ ॥ केचित्पुनरनतिक्षुद्रमनसः क्रियाऽभ्यासादिना प्रेत्य बोधिमपि लभन्ते, ततः आसन्नसिद्धिका अपि भवन्ति, निदर्शनं प्राग्वत् ॥ २१० ॥

हवे सामान्यथी जीवोना धर्मगुणने आश्रीने चोभंगी कहे छे—केटलाक जीवो चाकाननां आभूषणनी पेठे मांयी अंदर अने बहार एम बन्ने प्रकारे सारविनाना होय छे, केमके तेओना हृदयमां परिणामरूपे तथा बहारथी क्रियारूपे धर्मनो अभाव होय छे ॥ २०६ ॥ तथा तेओने कालसौकरिकादिकनी पेठे नरक आदिकमां जनारा जाणवा ॥ २०७ ॥ वळी बीजा केटलाक जीवो वेश्याना आभूषणनी पेठे अंदरथी सारविनाना तथा बहारथी सारवाळा होय छे केमके तेओना हृदयमां धर्म परिणाम होतो नथी, परंतु बहारथी ते संबंधि क्रिया आचरे छे, (कोनी पेठे? तोके) बार वर्ष सुधि साधुनो वेष धरनारा उदायी राजाने मारनार साधुनी पेठे, ॥ २०८ ॥ तथा राजमार्गनी वच्चे रहेनार कूटसाधुनी पेठे, वळी तेओ रत्ननी पेठे तेवा केटलाको आ लोकमां पण अनर्थना पात्ररूप थाय छे, तथा परलोकमां पण तेओने नरक आदिकमां गमन करनारा जाणवा ॥ २०९ ॥ वळी केटलाको अतिक्षुद्र मनवाळा न होवाथी क्रियाना अभ्यास आदिकथी परभवमां बोधिबीजने पण प्राप्त थाय छे. अने तेथी नजदीक सिद्धिवाळा पण थाय छे, अहीं दृष्टांत पूर्वनी पेठेज जाणी लेवा ॥ २१० ॥

वरदत्तश्रेष्ठिदासीपुत्रादयः, केचित्तु तद्भवेऽपि सम्यग् धर्ममपि लभन्ते, क्षुल्लककुमारवत्, नवपरिणीतनागिलाध्यानपरभ्रातृभवदेवोपरोधवशबहुवर्षद्रव्यलिंगधारकभवदत्तवच्चेति द्वितीयो भंगः ॥ २११ ॥ अपरे पुनर्मध्येऽन्तःकरणवदतः सारा, हृदये धर्मपरिणामवत्त्वात् बलभद्रमहर्षिसेवकमृगवत्, बहिस्त्वसाराः, धर्मक्रियारहितत्वेन, तथा चागमः—सुई च लद्धु सद्धं च। वीरिअं पुण दुल्लहं । बहवे रोअमाणावि । नोअणं पडिवज्जए ॥ २१२ ॥ एते चासन्नसिद्धिकाः स्युः, प्रायः क्रियानुष्ठानं विना भवतरणाऽसिद्धेः ॥ यदुक्तं—जाणंतो विहु तरिउं। काइयजोगं न जुंजई जो-उं ॥ सो बुड्डइ सोएणं। एवं नाणी चरणहीणो ॥ २१३ ॥

वरदत्त शेठना दासीपुत्र आदिकना दृष्टांतो जाणवा. वळी केटलाको तो ते भवमा पण सम्यग् धर्मने पण पामे छे, (कोनी पेठे तोके) क्षुल्लक कुमारनी पेठे तथा नवी परणेली नागीला नामनी स्त्रीना ध्यानमा तत्पर रहेला तथा पोताना भाइ भवदेवना आग्रहना वशथी घणा वर्षो सुधि द्रव्य लिंगने धरनारा भवदत्तनी पेठे, एवी रीते बीजो भांगो जाणवो ॥ २११ ॥ वळी त्रीजा केटलाक जीवो शाहुकारना आभूषणनी पेठे अंदरथी सारवाळा होय छे, केमके तेओना हृदयमा बलभद्र महर्षिना सेवक मृगनी पेठे धर्मनो परिणाम होय छे, तथा धर्म क्रियाथी रहित होवाथी बहारथी सारविनाना होय छे, आगममां पण कह्युं छे के—धर्म संबंधि तथा श्रद्धा तो मळवी सहेली छे, परंतु ते माटे वीर्य फोरववु दुर्लभ छे, केमके घणाओने धर्म संबंधि रुचि तो थाय छे, परंतु ते पडिवजता नथी, एटले ते धर्म मुजब क्रिया करी शकता नथी ॥ २१२ ॥ एवी रीतना उपर वर्णवेला जीवो नजदीक मोक्षगामी होय छे, केमके मायें करीने क्रियाना अनुष्ठानविना संसार तरी शकातो नथी ॥ कह्युं छे के—तरवाने जाणतो एवो पण मनुष्य जो कायिकयोगने न जोडे, अर्थात् जो पोताना हाथ पग हलाववारूप क्रिया न करे, तो ते बुडे छे, एवी रीतेज चारित्र विनानो ज्ञानी पण जाणवो ॥ २१३ ॥

इति तृतीयो भंग ॥ अन्ये पुनर्नृपाभरणवद् बहिरतश्च सारा., यथा देशविरता श्रीकुमारपालादय, सर्वविरता श्रीवीरप्राच्यभवनंदनर्ष्यादयश्च, एते च तत्रैव भवे तृतीयादिभवेषु वा सिद्धिगामिन इति चतुर्थो भंग ॥ २१४ ॥ एव गुरुश्रावकधर्मजीवग- ते पृथग् भंगचतुष्टयेऽस्मिन् ॥ यतध्वमत्यद्भितयेषु चेतो । निवेश्य भावारिजयश्रियै ज्ञा ॥ २१५ ॥

॥ इति तपागच्छे श्रीमुनिसुंदरसूरिविरचिते श्रीउपदेशरत्नाकरे श्रीगुरुपरीक्षाधिकारे पंचदशस्तरंग समाप्तः ॥

एवी रीते त्रीजो भागो जाणवो ॥ वळी केटलाक जीवो तो राजाना आभूषणनी पेठे बहारथी अने अंदरथी पण सारवाळा होय छे, जेम देशविरतिधारी श्रीकुमारपाळ राजा आदिको, तथा सर्वविरति एवा श्री वीरप्रभुना पूर्व भववाळा नंदन ऋषि आदिको, वळी तेओ तेज भवे अथवा त्रीजा आदिक भवोमा मोक्षगामी होय छे, एवी रीते चोथो भागो जाणवो ॥ २१४ ॥ एवी रीते गुरु, श्रावक, धर्म, तथा जीवने आश्रीने कहेला एवा आ पृथक्- भूत चारे भांगाओमाथी छेल्ला भेमा मन राखीने, हे पंडितो! तमो भावशत्रुओने जीतवानी लक्ष्मी माटे प्रयत्न करो ॥ २१५ ॥

॥ एवी रीते श्रीतपगच्छमां श्रीमुनिसुंदरसूरिजीए रचेला श्रीउपदेशरत्नाकर नामना ग्रंथमां श्रीगुरुपरीक्षाना अधिकारमा पनरमो तरंग समाप्त थयो ॥ श्रीरस्तु ॥

इति पंचदशस्तरंगः समाप्तः

अथ षोडशस्तरंगः

अथ करुोपमया श्रीचतुर्भंगीमाह—मूलम्—सोवागवेसगिहवइ—रायकरंमोवमा चउह गुरुणो ॥ मुअचरणाईहि—जहुत्तर असाराय साराय ॥ १ ॥

हवे करंडीयानी उपमाए करीने चतुर्भंगी कहे छेः—मूळनो अर्थ—चांडाल, वेश्या, गृहपति तथा राजाना करंडीयानी उपमावाळा श्रुत तथा चारित्र आदिकें करीने उत्तरोत्तर सारविनाना तथा सारवाळा एम चार प्रकारना गुरुओ होय छे ॥ १ ॥

व्याख्या—श्वपाकादीना करमैरुपमा येषां ते चतुर्धा गुरवो जवति, श्रुतचरणादिनि-रसद्भिः सद्भिः सातिशयैश्च हेतुजूतैर्यथोत्तरं असारा साराश्चेति जंगद्वयेन चतुर्ज-गीसूचनादसारतमा असारा, सारा सारतमाश्च जवंतीत्युक्तिसटंक. ॥ २ ॥ तत्र श्रुत-मर्हत्प्रणीतागम, चरण पचमहाव्रतादि, तथा चागम—वय (५) समणधम्म (१०) सयम (१७)। वेआवच्चं (१०) च बजगुत्तिओ (९) ॥ नाणाइतिगं (३) तव (१२)। कोहनिग्गहाइ (४) चरण मेअं ॥ ३ ॥ आदिशब्दात्करणा-दिग्रहः, श्रीसूरिविशेषगुणातिशयलब्धिप्रभृतिग्रहश्च, तत्र करणं पिंडविशुद्ध्यादि, यदागम. ॥ ४ ॥

व्याख्या—चांडाल आदिकोना करंमीयाओनी जे उपमा जेओने एवा चार प्रकारना गुरुओ होय जे, अछता तथा छतां अने अतिशयोवाळा हेतुरूप एवा श्रुतज्ञान तथा चारित्र आदिकोवमे करीने उत्तरोत्तर सारविनाना तथा सारवाळा एम बे जागाओवमे करीने चोजगीना सूचनथी वधारे सारविनाना तथा सारविनाना अने सारवाळा तथा वधारे सारवाळा गुरुओ होय जे, एवो संबंध जे ॥ २ ॥ त्यां श्रुत एटले श्रीअरिहंत प्रजुए प्ररूपेलु आगम, तथा चारित्र एटले पंचमहाव्रतो, दश प्रकारनो श्रमणधर्म, सत्तर जेदे संयम, दश प्रकारनुं वैयावच्च, नव ब्रह्मचर्यनी गुप्तिओ, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, बार जेदे तप, तथा क्रोध आदिक चार कषायोनो निग्रह ए चरणसित्तेरी रूप चारित्र जे ॥ ३ ॥ आदि शब्द थकी करण आदिकने पण ग्रहण करवां; तेमज आश्चर्य संबंधि विशेष गुणो अतिशयो तथा लब्धि आदिकोनो पण संग्रह करवो, तेमां करण एटले पिंडविशुद्धि आदिक, आगममां पण कह्यु छे के—॥ ४ ॥

पिंमविसोही (४) समिई (५) । नावण (१२) पमिना (१२)य इंद्रियनिरोहो (५) ॥ पमिलेहण (२५) गुत्तीओ (३) । अनिग्गहा (४) चेव करणतु ॥ ५ ॥ श्रीसूरिविशेषगुणा प्रतिरूपत्वादय, तडुक्त—पमिरूवो तेअस्सी जुगप्पहा० (१) अपरिस्साचि० (२) ॥ ६ ॥ अतिशया. पुनः सार्धयोजनद्वयादौ डुर्निक्षमरहरत्वादय', विद्यामन्त्रचूर्णादिप्रयोगजन्मानो वा वशीनूतदेवतादिजनिता वा चमत्कारविशेषा ॥ ७ ॥ लब्धयस्तु क्षीरास्रवादय कफविप्रुएमलामर्पौषध्यादयोऽवधिज्ञानादयश्चेति ॥ ८ ॥ अथैतदुन्नाव्यते—यथा श्वपाककररुश्चर्मपरिकर्मोपकरणवर्धादिचर्मांशस्थानतयाऽत्यतमसार', तथा पार्श्वस्यादयः पट्प्रज्ञकगाथाज्योतिषादिरूपसूत्रार्थधारिणस्तथाविधयतिक्रियाविकलाश्चेत्यत्यतमसारा ॥ ९ ॥

चार प्रकारनी पिंमविशुद्धी, पांच प्रकारनी समिति, वार जावना, वार पमिमा, पांच इंद्रिओनो निरोध, पचीस पमिलेहणा, त्रण गुप्ति, तथा चार अनिग्रह एवी रीते करणसित्तेरी जाणवी ॥ ५ ॥ आचार्यना विशेष गुणो प्रतिरूप आदिक जाणवा कहु छे के—प्रतिरूप, तेजस्वी, युगप्रधान आदिक ॥ ६ ॥ अतिशयो एटले अढी योजन आदिकमां दुकाळ तथा मरणने हरावणा आदिकरूप, तथा विद्या, मन्त्र तथा चूर्ण आदिकना प्रयोगथी उत्पन्न थयेला, अथवा वश थयेला एवा देवता आदिके उत्पन्न करेला चमत्कार विशेषो जाणवा ॥ ७ ॥ लब्धिओ एटले क्षीरास्रव आदिको, तथा कफ, शुक, मल, आमर्ष औषधी आदिक तथा अवधिज्ञान आदिक जाणवी ॥ ८ ॥ हवे तेनु विशेष व्याख्यान कहे छे—जेम चांमालनो कुरुडीो चामकानो मढेलो तथा ते सबधि उपकरणरूप वाधरी आदिक चर्मना अंशना स्थानपणाथी करीने अत्यंत सारविनानो छे, तेम पासत्था आदिको पद प्रज्ञक गाथा, ज्योतिष आदिकरूप सूत्रार्थने धरनारा छे, तथा तेवी रीतनी साधु क्रिया विनाना होवाथी तेओ अत्यंत सारविनाना छे ॥ ९ ॥

तेषां तथाविधश्रुतस्य यत्तत्क्रियाणां च सावद्यत्वेन परेषां धर्मोऽनास्थामिथ्यात्वादिपोषकत्वेन च चर्मांशादिसमत्वात्, एतद्भावना च पूर्वगाथायां श्वपाकाभरणदृष्टांतभावनायां कृतास्तीति ततो विशेषार्थिभिर्ज्ञेया ॥ १० ॥ यथा च वेश्याकरण्डको जतुपूरितस्वर्णाभरणादिस्थानत्वात् श्वपाकाभरणत सारोऽपि वक्ष्यमाणकरण्डापेक्षयाऽसार ॥ ११ ॥ तथा केचिद् दुरधीतश्रुतलवा किंचित् क्रियाप्रवर्त्तनेन वागाडम्बरेण च मुग्धजनमावर्जयंतोऽपि परीक्षायां अक्षमत्वादऽसारा, पार्श्वस्थादिभ्य किंचित्सारत्वेऽप्येतेषां विशिष्टचारित्र्यपेक्षया असारत्वमिति ॥ १२ ॥

वळी तेओनुं तेवी रीतनुं श्रुत, जे ते क्रियाना सावद्यपणायें करीने अन्योने धर्मनी अनास्था तथा मिथ्यात्व आदिकना पोषकपणायें करीने चर्मांशादिक समान छे, वळी तेनी भावना पूर्वनी गाथामां चांडालना आभूषणना दृष्टांतनी भावनामां करेली छे, माटे विशेष जाणवाना अर्थीओए त्यांथी जाणवी ॥ १० ॥ वळी जेम वेश्यानो करंडीयो लाखथी भरेला सुवर्णना आभूषण आदिकना स्थानरूप होवाथी चांडालना आभूषणथी जोके सारवाळो छे, तोपण आगळ कहेवामां आवनारा करंडीयानी अपेक्षायें सारविनानो छे ॥ ११ ॥ तेम केटलाक गुरुओ, के जेओ महा मुश्केलीथी श्रुतनो लेश मात्र भणेला छे, तेओ कइक क्रियाना प्रवर्त्तने करीने तथा वचनना आडंबरथी जोके भोळा लोकोने समजावी ले छे, तो पण (गुरु संबंधि खरी) परीक्षामां पसार नहीं थता होवाथी तेओ सारविनाना छे; जोके पासत्था आदिकोथी तेओमां किंचित सारपणुं छे, छतां पण विशेष चारित्रवाननी अपेक्षायें तेओमां असारपणुं छे ॥ १२ ॥

तथा गृहपति श्रीमान् कौटुंबिक., तस्य करंभो यथा विशिष्टमणिस्वर्णाभरणादिस्थानत्वात् सार, एव केचिद् गुरव. स्वसमयपरसमयज्ञा. सम्यक्क्रियादिगुणयुक्ताश्चेति साराः ॥ १३ ॥ तथा च राज्ञ करंभकोऽमूल्यरत्नजटिताभरणाऽमूल्यरत्नादिस्थानत्वात्सारतम', तथा केचिद् गुरव समस्ताचार्यगुणभृतो विशिष्टातिशयविविधलब्धिसमृद्धिपद चेति सारतमा, श्रीगौतमश्रीसुधर्मस्वामिश्रीभद्रबाहुश्रीस्थूलभद्रादिवत् ॥ १४ ॥ श्रुत्वा तदेव गुरुगोचरा चतु—र्भंगी करंभोपमया स्फुटीकृता ॥ सदाश्रियध्व सुगुरून् बुधा यदि। स्पृहा भवद्वेपिजयश्रियेऽस्ति व ॥ १५ ॥

॥ इति तपागच्छनायकश्रीमुनिसुंदरसूरिविरचिते श्रीउपदेशरत्नाकरे षोडशस्तरग समाप्त ॥

तथा गृहपति एटले लक्ष्मीवान् कुटुंबी, तेनो करंभीयो जेम उंचां मणि तथा सुवर्णना आभूषण आदिकना स्थानरूप होवाथी सारवालो छे, तेम केटलाक गुरुओ पोताना अने परना सिद्धांतोने जाणता थका उत्तम क्रिया आदिकना गुणवाला होय छे, माटे तेओ सारवाला छे ॥ १३ ॥ वळी राजानो करंभीयो जेम अमूल्य रत्नोथी जडेला आभूषणो तथा अमूल्य रत्न आदिकोना स्थानरूप होवाथी वधारे सारवालो छे, तेम केटलाक गुरुओ आचार्यना सर्व गुणोथे सहित तथा विशिष्ट प्रकारना अतिशयो अने नाना प्रकारनी लब्धिओनी समृद्धिना स्थानरूप होवाथी वधारे सारवाला छे, (केोनी पेठे ? तो के) श्री गौतमस्वामी, सुधर्मास्वामी, श्रीभद्रबाहुस्वामी तथा श्रीस्थूलभद्र आदिकोनी पेठे ॥ १४ ॥ माटे एवी रीते करंभीयानी उपमाथी प्रगट करेली गुरु संबंधि चोभंगीने सांभळीने हे पंडितो! जो तमोने संसाररूपी शत्रुने जीतवानी लक्ष्मीनी वांछा होय, तो तमो सुगुरुओनो आश्रय करो ?॥ १५ ॥

॥ एवी रीते श्रीतपगच्छनायक श्रीमुनिसुंदरसूरिए रचेला श्रीउपदेशरत्नाकर नामना ग्रंथमा सोळमो तरंग समाप्त थयो॥ श्रीरस्तु॥

इति षोडशस्तरंगः समाप्त :

सिद्दशस्तरंगः

नगुरुचतुर्भंगी प्रस्तावतः सामान्यजीवादिचतुर्भंगीश्चाह—मूलम्

गायरिअसमणसड्ढजिआ सपरुभयाणुभयाणो ।

॥

फरीने फरीने गुरु सरवि चोभंगी तथा प्रस्तारथी सामान्य जीवआदिकोनी पण नो अर्थ—आचार्यो साधुओ, श्रावको अने सामान्य जीवो पोताने, परने, बन्नेने तथा अनु- हेतुथी रनोनी पेठे अन्यथी अने बहारथी सारवाळा तथा सारविनाना यथा यथा चार प्रकार-

व्याख्या—आचार्या श्रमणा श्राद्धा. सामान्यतो जीवाश्च रत्नानीव मध्ये ब-हि सारा असाराश्च नवतीति चतुर्नंगी ॥ २ ॥ तत्र रत्नानामन्तःसारत्व अगणि-तत्वाऽल्पगुरुत्वादिनिः, बहिःसारत्व पुनस्तादृक् तेजोविशेषादिना, आचार्यादीना बहिरन्तःसारत्वे सूत्रकार एव हेतुमाह ॥ ३ ॥ सपरुभयाणुभयाणोवयारओत्ति, स्व-स्य स्वजीवस्य, परेषामन्यभव्यसत्वाना तदुभयस्य अनुभयस्य चोपकारतो हेतो-श्चतुर्भेदा भवतीति गाथार्थः ॥ ४ ॥ एतद्भावयति, यथा कानिचिद्रत्नानि मध्ये बहिश्चाऽसाराणि, यथा काचमणि ॥ ५ ॥ कानिचिच्चान्तरसाराणि बहिश्च सा-राणि मडूस्यादिगर्भितरत्नवत ॥ ६ ॥

व्याख्या—आचार्यो, साधुओ श्रावको अने सामान्य जीवो रत्नोनी पेठे अंदरथी अने बहारथी सारवाळा तथा सारविनाना होय छे, एम चोभंगी जाणवी ॥ २ ॥ तेमा रत्नोनु अंदरथी सारपणु अगणितपणाथी तथा अल्पगुरुपणा आदिकथी जाणवु, अने बहारथी सारपणु तो तेवा प्रकारना तेज विशेष आदिकथी जाणवु, हवे आचार्य आदिकोना बहारथी अने अंदरथी सारपणामां सूत्रकारज हेतु कहे छे ॥ ३ ॥ पोताने एटले पोताना जीवने, परने एटले बीजा भव्य प्राणीओने, तेओ बन्नेने तथा अनुभयने (एटले तेओ बन्नमाथी एकेने पण नहीं) उपकारना हेतुथी ते आचार्य आदिको चार प्रकारना होय छे, एवो गाथानो अर्थ छे ॥ ४ ॥ हवे तेनी विशेष समज कहे छे, जेम केटलाक रत्नो, जेवाके काच, ते अंदरथी अने बहारथी पण सारविनाना होय छे ॥ ५ ॥ वळी केटलाक रत्नो अंदर सारविनाना तथा बहारथी सारवाळा होय छे, जेवाके देडकी आदिक जेना गर्भमा छे. एवा रत्नो ॥ ६ ॥

कानिचित्पुनरंतःसाराणि बहिश्चाऽसाराणि खन्यादिमृन्मलिनजात्यरत्नवत् ॥ ७ ॥ कानिचिन्मध्ये बहिश्च साराण्येव, यथाविधसस्फुरनकोटीमूल्यादिप्रसिद्धजात्यरत्नव-दिति ॥ ८ ॥ तथा केचिदाचार्या प्ररूढप्रमादत्वेनोजयलोकैकांतिकहितं चारि-त्रधर्मं शिथिलयंत स्वात्मनोऽप्यनुपकारिण इत्यंतरऽसारा ॥ ९ ॥ अन्यसत्वेभ्योऽ-पि सम्यग्देशनादिना तं धर्मं न ददतीत्यन्येषामपि नोपकारिण, इति बहिरसाराश्च ॥ १० ॥ ते च पार्श्वस्थादयो ज्ञेया, तत्स्वरूपं च प्राच्यगाथयोक्तमिति प्र-थमो जंग ॥ ११ ॥

वळी केटलाक रत्नो अंदर सारवाळा तथा बहारथी सारविनाना होय छे, जेवांके खाण आदिकनी माटीथी मलीन थयेला उत्तम रत्नो ॥ ७ ॥ वळी केटलाक रत्नो अंदरथी अने बहारथी पण सारवाळांज होय छे, जेवाके योग्यता पूर्वक पालीस करेला क्रोडोनी कीमतवाळा उत्तम रत्नो ॥ ८ ॥ एवी रीते केटलाक आचार्यो घणा प्रमादे करीने बन्ने लोकमा एकांत हितकारी एवा चारित्रधर्मने शिथिल करता थका पोताना पण उपकार करी शकता नथी, माटे तेओ अंदरथी सारविनाना छे ॥ ९ ॥ तेमज अन्य प्राणीओ प्रत्ये पण उत्तम देशना आदिके करीने ते धर्म तेओ आपी शकता नथी, माटे तेओ बीजाओपर पण उपकार करी शकता नथी, एटला माटे तेओ बहारथी पण सारविनाना छे ॥ १० ॥ अने तेवा गुरुओ पासथा आदिकने जाणवा, अने तेओनु स्वरूप प्रथमनी बन्ने गाथाओमां कह्यु छे, एवी रीते पेहेलो भांगो जाणवो ॥ ११ ॥

केचित्पुनर्द्वितीयरत्नवदतरसारा., स्वस्याऽनुपकारित्वात्, भावना प्राग्वत्, तृतीयस्तु सारा., सूत्रार्थप्रथादिभिः शिष्यवर्गस्य, विहारदेशनादिभिरन्यजन्यसत्त्वानां चेह परत्र च द्रव्यतो भावतश्चोपकारकारित्वात् ॥ १२ ॥ एते च संविग्नपाक्षिका ज्ञेया, तथा च तल्लक्षणं—सुद्धं सुसाहुधम्मं । कहेइ निंदइ य निअयमायारं ॥ सुतवस्सिआणपुरओ । होइ अ सव्वोमरायणिओ ॥ १३ ॥ वंदइ न य वंदावइ । किइकम्मं कुणइ कारवे नेअ ॥ अत्तट्ठा न वि दिक्खइ । देइ सुसाहूण बोहेउ ॥ १४ ॥

वळी केटलाक गुरुओ बीजा रत्ननी पेठे अत्यन्त सारविनाना होय छे, केमके तेओ पोतानो उपकार करी शकता नथी, ते सघळी भावना पूर्वनी पेठे जाणवी, वळी तेओ बहारथी सारवाळा होय छे, केमके तेओ सूत्रार्थनी वाचना आदिकवडे करीने शिष्य वर्गनो तथा विहार अने देशना आदिके करीने बीजा भव्य प्राणीओनो आ लोक अने परलोक संबंधि द्रव्यथी अने भावथी उपकार करी शके छे ॥ १२ ॥ अने तेवा संवेगपक्षी गुरुओ जाणवा. वळी तेवा संवेगपक्षीओनुं लक्षण नीचे मुजब कहुं छे—संवेगपक्षी गुरुओ शुद्ध तथा उत्तम साधु धर्म कहे, तथा पोताना आचारने निंदे, तथा उत्तम तपस्वी मुनिराजनी पासे सर्व प्रकारे नम्रता आचरे ॥ १३ ॥ पोते अन्य साधुओ प्रत्ये वंदन करे, परन्तु पोताने कोइ पासे वंदावे नहीं, पोते कृतिकर्म करे, परन्तु बीजा पासे पोताप्रत्ये करावे नहीं, पोता माटे कोइने दीक्षा आपे नहीं, परन्तु पोते प्रतिबोधीने उत्तम साधु पासे कोइने दीक्षा अपावे ॥ १४ ॥

केचित्पुनर्द्वितीयरत्नवदतरसाग., स्वस्याऽनुपकारित्वात्, भावना भाग्वत्, त्रहिस्तु सहसं सूत्रार्थप्रयादिभि. शिष्यवर्गस्य, विहारदेशनादिनिरन्यजनव्यसत्वानां चेह न्तिगुरु श्रेष्ठ्युवाच युष्मत्श्रेोपकारकारित्वात् ॥ १९ ॥ एने च सविज्ञपाक्षिका त्यागार्हत्वक्तादिभिक्षामादत्ते सदा, श्रद्धधम्म-। कहेइ निदइ य निअयमायारं ॥ श्राद्ध स श्राद्धः स्वजनानूचे. ईदृश मुनि यदा पश्यत तदा ॥ २३ ॥ वदइ न य व- र्शयित्वा तस्मै देयं, यथा महाफलं स्यात् ॥ २१ ॥ ततो [illegible] । देइ सुगाहूण यमाने उपयोगेन तमाहारमशुद्ध विज्ञायाऽनादाय च वसतौ गत्वा पाळब्धवान् ॥ २२ ॥

पछीथी त्या श्रीआर्यमहागिरि महाराज भिक्षा माटे पधार्या, त्यारे श्रीसुहस्ती महाराज उभा [illegible] तेमने मान्वा लाग्या, त्यारे श्रीमहागिरि महाराज भिक्षा लीधाविनाज त्यांथी तुरत पाछा वळ्या ॥ १९ ॥ [illegible] जोइने शेठ श्रीसुहस्ति महाराजने कहेवा लाग्या के, "आपना पण शु कोइ गुरु छे? त्यारे आचार्य महाराजे [illegible] के, हे शेठ! अमारा ते गुरु छे, तथा ते हमेशां* त्याग लायक भोजन आदिकनी भिक्षा ले छे; एम कही अहीं तेमना गुणोनु तेमणे वर्णन कर्युं ॥ २० ॥ ते सांभळीने श्रेष्ठ छे श्रद्धा जेने एवो ते श्रावक स्वजनोने कहेवा लाग्यो के, आवा मुनिने ज्यारे तमो जुओ, त्यारे तजवानु भोजन आदिक देखाडीने तेने देवु, के जेथी मोटु फल थाय ॥ २१ ॥ पछी बीजे दिवसे तेओ तेवी रीते ज्यारे आहार देवा लाग्या, त्यारे उपयोगथी ते आहारने अशुद्ध जाणीने, ग्रहण कर्या विना उपाश्रये जइने महागिरिजी सुहस्तीजीने ठपको देवा लाग्या के ॥ २२ ॥

* नांखी देवालायक अरस नीरस भोजन

यत् त्वया द्वौ विनय कृत्वाऽस्माकमनेपणा कृतेति, ततो नैव ब्रूय. करिष्ये इ-त्युक्त्वा श्रीसुहस्ती त क्षमयामासेति ॥ २३ ॥ एव ये गणादिताप्ति विमुच्य स्वा-र्थैकपरास्तेऽत्र भगे ज्ञेया· जिनकल्पिकाचार्यादयश्चात्र निदर्शनमिति तृतीयो भग ॥ २४ ॥ तथा तुर्यरत्नवत् केचिदाचार्या उभयथापि सारा, प्राग्वत् स्वात्मोपकार-परत्वेन, परेषामपीह प्रेत्य च द्रव्यतो भावतश्चोपकारित्वेन च ॥ २५ ॥ त्र्यधिकपञ्च-दशशततापसयथेष्टपरमान्नाहारकेवलज्ञानप्रदायिश्रीगौतमगणधरादिवत्, तदुक्त—न व्यो गुरु सुरतरुर्विहितामितार्धि—र्यत्केवलाय कवलार्थिषु गौतमोऽभूत् ॥ तापातुरेऽ-मृतरस किमु शैत्यमेव । नाऽप्रार्थितोऽपि वितरत्यजरामरत्वं ॥ २६ ॥

तमोए गइ वाने विनय करीने अमांने अनेषणा करी, ते सांजळी सुहस्ती महाराज कहेवा लाग्या के, फरीने हु तेम करीश नहीं, एम कही क्षमा याचवा लाग्या ॥ २३ ॥ एवी रीते जेओ गच्छ आदिकनी तप्तिने तजीने फक्त स्वार्थमाज तत्पर होय छे, तेओने आ भागमा जाणवा, तथा अहीं जिनकल्पी आचार्य आदिकोने दृष्टांतरूपे जाणवा, एवी रीते त्रीजो भागो जाणवो ॥ २४ ॥ वळी केटलाक आचार्यो चोथा रत्ननी पेठे बन्ने प्रकारे सारवाळा होय छे, केमके तेओ पूर्व कह्या प्रमाणे पोताना उपकारमा अने परना उपकारमा तत्पर होवाथी आ लोक अने परलोकमा द्रव्यथी अने भावथी उपकारी होय छे ॥ २५ ॥ (कोनी पेठे? तोके) पदरसो त्रण ताप-सोने इच्छा मुजब क्षीरनु भोजन तथा केवलज्ञान आपनारा श्री गौतमस्वामी गणधर महाराजनी पेठे कयु छे के— वाणु करेल छे घणीज ऋद्धिओ जेणे एवा श्रीगौतमस्वामी गुरु कोइक नवीन प्रकारना कल्पवृक्ष सरखा थया छे, केमके तेमणे कवलना (भोजनना) अर्थी एवा तापसो प्रत्ये केवलज्ञान आप्यु छे! केमके अमृतरस, तापातुर प्राणीने शु स्वत्र शीतलताज आपे छे? नहीं, परंतु प्रार्थना कर्या विना अजरामरपणु पण आपे छे ॥ २६ ॥

श्रीकुमारपालनरेंद्रस्य बहुष्ववसरेषु ऐहिकोपकारकृत्पारत्रिकोपकारकृच्च श्रीहेमसूरि, आमनृपादेर्द्विधाप्युपकारिण श्रीबप्पभट्टिगुर्वादयश्चात्र निदर्शयितव्या इतितुर्यो भग. ॥ २७ ॥ एषु प्रथमभंगगुरवस्त्याज्या एव, द्वितीयभंगगुरवोऽपि सुगुरुयोगसंभवे त्याज्या एव, यतस्तेषां प्रमादाचरणं पश्यतां श्रोतॄणां तदुक्तधर्मेऽप्यनास्थोल्लासादिना प्रायो न तदुपकारसिद्धिरिति ॥ २८ ॥ यथोत्तरमुत्तरभंगगुरुद्वयं च योग्यमित्याराध्यं श्रेयोऽर्थिभिरिति, इत्युक्ता श्रीआचार्यानधिकृत्य चतुर्भंगी ॥ २९ ॥ अथ श्रमणगोचरा सा भाव्यते, तथाहि श्रमणानां स्वोपकारः सम्यक् चरणकरणसमाचरणादि, परोपकारश्च गुरुतपस्विबालवृद्धग्लानवैयावृत्त्यादि, ३० ॥

अहीं श्री कुमारपाल राजाने घणे अवसरे आ लोक संबंधि उपकार करनारा तथा परलोक संबंधि उपकार करनारा श्रीहेमचंद्राचार्य तथा श्रीआमराजा आदिकोने बन्ने प्रकारे उपकार करनारा श्रीबप्पभट्टिगुरु आदिकोने दृष्टांतरूपे जाणवा, एवी रीते चोथो भांगो जाणवो ॥ २७ ॥ हवे ते भांगाओमांथी पहेला भांगाना गुरुओ तो तजवा लायकज छे, बीजा भांगाना गुरुओ पण सुगुरुनो योग मळते छते तजवा लायकज छे, केमके तेओनुं प्रमादी आचरण जोइने तेमणे कहेला धर्मपर श्रोताओने आस्थानो उल्लास आदिक न थवाथी तेओ तरफथी उपकारनी सिद्धि थती नथी ॥ २८ ॥ वळी ते पछीना बन्ने भांगाओवाळा गुरुओ योग्य छे, माटे कल्याणना अर्थीओए तेओने आराधवा जोइये, एवी रीते श्री आचार्योने आश्रीने चोभंगी कही ॥ २९ ॥ हवे साधुने आश्रीने ते चोभंगी कहे छे—साधुओनो स्वोपकार एटले सम्यक् प्रकारे चरण करणना समाचरण आदिकरूप जाणवो, तथा परोपकार एटले गुरु, तपस्वी, बाल, वृद्ध, तथा रोगी साधुनी वैयावच्च आदिकरूप जाणवो, ॥ ३० ॥

सम्यक्सामाचारीप्रवर्त्तनस्थिरीकरणादिकश्च, तत्र काचादिमणिवत् केऽपि श्रमणाः स्वोपकारपरोपकाराभ्यां रहितत्वात् द्विधाप्यसाराः, पार्श्वस्थादय एव ॥ ३१ ॥ केचित्तु द्वितीयरत्नवदंतरसाराः, स्वात्मोपकारहेतुसंयमगुणनिकलत्वात्, बहिस्तुसारा ग्लानत्वाद्यवस्थासु सुसाधूनां वैयावृत्त्याद्युपकारपरत्वात्, ते च संविग्नपाक्षिकादय एव ॥ ३२ ॥ तदुक्तं—कांताररोहमद्धा–णओमे गेलन्नमाइकज्जेसु ॥ सव्वायरेण जयणाइ । कुणइज्ज साहु करणिज्जं ॥ ३३ ॥ एते च मनाग् योग्याः, संविग्नपाक्षिकत्वस्य तृतीयमार्गत्वात्, यदुक्तं—॥ ३४ ॥

तेमज सम्यक् प्रकारे सामाचारीना प्रवर्त्तनरूप तथा तेमां स्थिर करवा आदिकरूप पण परोपकार जाणवो, हवे त्यां काचआदिक मणिनी पेठे केटलाक साधुओ स्वोपकार तथा परोपकारथी रहित होवाथी बन्ने रीते सारविनाना छे, अने तेवा पासत्था आदिकोज छे ॥ ३१ ॥ वळी केटलाको तो बीजा रत्ननी पेठे अंदरथी सारविनाना होय छे, केमके तेओ पोताना उपकारना हेतुरूप एवा संयमगुणथी रहित होय छे, परंतु बहारथी तेओ सारवाळा होय छे, केमके सुसाधुओनी मांदगी आदिक अवस्थामां तेओ तेमनी वैयावच्च आदिक उपकार करवामां तत्पर होय छे, अने तेवा संवेगपक्षी आदिकोनेज जाणवा ॥ ३२ ॥ कह्युं छे के—*कांतार (अटवी), रोध, (नगर–दुर्गादिनो घेरो) अध्वा (दुर्भिक्ष आदिकाळ) अवम (वाळ) अने ग्लानि आदिक कार्य प्रसंगे जे साधुनुं कर्तव्य छे ते अति आदरथी करे अर्थात् तेवे प्रसंगे सुसाधु जनोने अत्यंत सहायभूत थाय. एवो परमार्थ उक्त गाथानो होवो संभवे छे ॥ ३३ ॥ एवी रीतना ते संवेगपक्षीओ कंइक योग्य छे, केमके संवेगपक्षीओनो त्रीजो मार्ग छे कह्युं छे के—॥ ३४ ॥

---

* आ गाथाना पूर्वार्द्धनो अर्थ बहु श्रुतोथी जाणी लेवो

सावज्जजोगपरिवज्जणाई—सव्वुत्तमो जइधम्मो ॥ बीओ सावगधम्मो । तइओ सविग्गपक्खपहो ॥ ३५ ॥ इति द्वितीयो भंग. ॥ केचिच्च तृतीयरत्नवदत सारा, बहि पुनरसारा., स्वार्थैकनिष्टत्वात्, प्रतिमाप्रतिपन्नजिनकल्पिकादिसाधुवदिति तृतीय ॥ ३६ ॥ केचित्तु तुर्यरत्नवद्भजयथापि सारा, स्वस्य परस्य चोपकारित्वात्, श्रीभर-तचक्रिबाहुबलिप्राग्भवबाहुसुबाहुश्रीवसुदेवजीवश्रीनदिषेणादिमहर्षिवदिति चतुर्थ· ॥ ३७ ॥ एते द्वये योग्यास्तद्भवे त्रिचतुरादिभवेषु वा सिद्धिगामिन इति उत्तर-त्राप्येव भावना ज्ञेयेत्युक्ता श्रमणाना चतुर्भंगी ॥ ३८ ॥

सावद्य योगोनो परिवर्जनरूप यतिधर्म सर्वथी उत्तम छे, तेथी उतरतो बीजो श्रावकधर्म छे, तथा तेथी उतरतो त्रीजो संवेगपक्षी धर्म छे ॥ ३५ ॥ एवी रीते बीजो भांगो जाणवो वळी केटलाक साधुओ त्रीजा रत्ननी पेठे अंदरथी सारवाळा तथा बहारथी सारविनाना होय छे, केमके तेओ पडिमाधारी जिनकल्पी साधु आदिकोनी पेठे फक्त स्वार्थमांज तत्पर होय छे, एवी रीते त्रीजो भांगो जाणवो ॥ ३६ ॥ वळी केटलाक साधुओ चोथा रत्ननी पेठे बन्ने प्रकारे सारवाळा होय छे, केमके तेओ पोताना तथा परना एम बन्नेना उपकारी होय छे, (कोनी पेठे ? तो के) श्री भरत चक्री तथा बाहुबलिना पूर्व भवना जीव एवा बाहु सुबाहु तथा श्रीवसुदेवना जीव श्रीनदिषेण महर्षि आदिकनी पेठे, एवी रीते चोथो भांगो जाणवो ॥ ३७ ॥ ए बन्ने भांगावाळा साधुओने योग्य जाणवा, तथा तेओ ते भवे अथवा त्रीजा चोथा आदिक भवे मोक्षगामी थाय छे, एवी रीते आगळ पण एज भावना जाणवी, एवी रीते साधुओनी चोभंगी कही ॥ ३८ ॥

२ ॥

अथ श्राद्धाना सा नाव्यते, तत्र श्राद्धा केचिद्धर्मक्रियासु प्रमादित्वेन स्व नवाब्धौ मज्जयति, धर्मकारणतदुपदेशतत्साहाय्यदानादिविकलत्वेन परं स्वजनपरिजनाद्यमपि न तारयतीत्युभयोपकाररहिता इति काचमणिवदुभयथाप्यसारा, सहदेववत् तज्ज्ञान यथा—॥ ३९ ॥ कुशस्थलपुरे विमलसहदेवौ भ्रातरौ, साधो पार्श्वे प्रतिपन्नधर्मौ, अन्यदा तौ प्रागदेशे व्यवसाय चेलतु ॥ ४० ॥ अर्धपथे निमल पथिकेन राजलनीरादियुतपथ पृष्टो न जानामीत्याह पापत्तीकतया, क्व यास्यसीति पृष्टो यत्र पण्यार्थ ॥ ४१ ॥ निजपुर वदेति, राजधान्या वसामि, न मे किंचित्, त्वया सहा गच्छामीति च पृष्टा स्वेच्छया गच्छता त्व के त्वमिति चाऽवादीत् ॥ ४२ ॥

हवे श्रावकोनी ते चोभंगी कहे छे, त्या केटलाक श्रावको धर्म कियामा प्रमादी रहेवाथी पोताने ससार समुद्रमां बुडाडे छे, तेमज धर्म करावबो, ते सबधि उपदेश देवो, तथा ते माटे सहाय आपवो, इत्यादिक नहीं करवाथी परने एटले पोताना सबधि तथा परिवार आदिकने पण तेओ तारी शकता नथी, माटे तेओ बन्ने रीते उपकार विनाना होय छे, अने तेथी काच मणिनी पेठे महेनतनी माफक तेओ बन्ने रीते सारविनाना छे, ते सहदेवनु उदाहरण नीचे मुजब छे ॥ ३९ ॥ कुशस्थल नामे नगरमां विमल अने सहदेव नामे बे भाइओ हता, तेओए साधु पासेथी धर्म स्वीकार्यो हतो, एक वखते तेओ धन माटे पूर्व देशमां चाल्या ॥ ४० ॥ अर्धे मार्गे कोइ वटेमार्गुए विमलने सारा पाणी आदिकवाळो मार्ग पूछ्यो त्यारे विमले पापना डरथी कह्यु के, मने तेनी खबर नथी, पछी ज्यारे तेणे एम पूछ्यु के तमो क्यां जाओ छो ? त्यारे तेणे कह्यु के, ज्यां व्यापार मळे त्यां ॥ ४१ ॥ तारा नगरनु नाम कहे ? एम पूछवाथी तेणे कह्यु के, हु राजधानीमां रहु छु, मारे कइ नथी, तारी साथे हु आवुं ? एम पूछवाथी तेणे कह्यु के, तमारी इच्छाथी चालता एवा तमोने अमोरो शो संबंध छे ? ॥ ४२ ॥

अथ पाकस्थाने सहागतपथिकेनाग्नियाचने मत्पार्श्वं जुहुय, नाग्निमर्पये, इत्युक्तौ पथिकेनाक्रोशने, वपुर्वृक्ष्यादिना ज्ञापने, प्राणातेऽप्यक्रोशे स्वदिव्यरूपप्राडुःकृता इन्द्रप्रशसावृत्तोक्तौ वस्त्राङ्कुत्तरीये विषापहारमणि निबध्य देवगमेनेष्टं सहदेवादीना तदूत्तोक्तौ ॥ ४३ ॥ नगरक्षोभ दृष्ट्वा प्रश्ने पुरुषोत्तमो राजाऽद्याऽहिदष्टपुत्रजीवयितुः राज्यार्धदानपटह वादयतीत्युक्तौ सहदेवेन वस्त्राञ्चलाचलान्मणि आरता पटहस्पर्शं तज्जीवने सहदेववचसा ॥ ४४ ॥ राज्ञा विमलपार्श्वं आगत्य राज्याभ्यर्थने, तेनारक्तजिघ्याऽग्रहणे गजारूढस्वगृहनयने सहदेवाय राज्यार्धदाने विमलस्याऽनिच्छतोऽपि श्रेष्ठिपद गृहादि चार्पयत् ॥ ४५ ॥

पछी रसोइनी जगोए ते साथे आवेला पथीक तेनी पासेथी अग्नि मागते छते, तेणे कह्यु के, तु मारी पासे भोजन कर हु अग्नि आपीश नहीं, ते सांजळी ते पथिक क्रोध करी शरीर वखरवा आदिकथी तेने पीडाते छते, तथा प्राणांते पण तेने नहीं चलायमान थयेलो जोइ, ते पथीरूप देवे पोतानु स्वर्ग रूप प्रगट कर्यु, तथा इन्द्रे करेली तेनी प्रशसा आदिकनु वृत्तांत तेने कह्युं, तथा आग्रहथी तेने दुपट्टे छेडे झेर दूर करनारुं मणि बांधीने देव गये छते, ते वृत्तांत विमले सहदेव आदिकोने कह्यु ॥ ४३ ॥ एटलामा नगरमा कोलाहल थतो जोइ पृछवाथी मालुम पड्यु के, पुरुषोत्तम राजा आजे सर्प डसेला पोताना पुत्रने जीवाडनारने अरधु राज्य आपवानो पडह वगडावे छे, तेथी सहदेवे बळात्कारे विमलना वस्त्रने छेडेथी मणि लइ पडहने स्पर्श तेने जीवतो कर्यो, तथा सहदेवना वचनथी ॥ ४४ ॥ राजा विमल पासे आवी अरधु राज्य लेवानी प्रार्थना करवा लाग्यो; त्यारे विमले आसक्तना नयथी ते नहीं लेवाथी, राजा तेने हाथीपर चडावी पोताने घेर लइ गयो, तथा सहदेवने अरधु राज्य आपी, विमलनी इच्छा नहोती, तोपण तेने राजाए शेठनी पदवी तथा घर आदिक आप्यु ॥ ४५ ॥

सहदेवस्तु राज्ये विषयेषु ८ गृध्नो महारम्भरतो धर्मं तत्याज, साधर्मिकानप्यपीडयत्-अन्यायकरादिभिः, दूरे तेषां धर्मसाहाय्यादि, विमलेन वारितोऽपि युद्धाद्यकरोत् ॥ ४६ ॥ उवाच च, राजकार्याणि कृतानि विनङ्क्ष्यते, धर्मोऽप्यवसरे करिष्यते, इत्यादि, तत्सङ्गत्या तत्परिवारोऽपि तथैव धर्मपराङ्मुखोऽभूत् ॥ ४७ ॥ सोऽन्यदा वैरिप्रहितघातकेन हतः, प्रथमं नरकं प्रापत् विमलस्तद्वैराग्याद् गाढतरं धर्ममाराध्य स्वर्गंगतो, महाविदेहे सेत्स्यतीति प्रथमो भङ्गः ॥ ४८ ॥ एके पुनश्चारित्रमोहनीयप्राबल्यादिना स्वयं धर्मक्रियासु प्रमादिनोऽपि परैस्ताः कारयन्ति, तदुपदेशसाहाय्यकरणतद्विघ्नवारणादिभिः दीनाऽनाथादीनपि धनादिवस्तुभिरुपकुर्वन्तीति बहिः साररत्नतुल्याः ॥ ४९ ॥

पछी सहदेवे तो राज्य अने विषयमां लुब्ध थइ मोटा आरंभथी धर्मने छोडी दीधो, तथा अन्याय अने कर आदिकोथी साधर्मीओने पण दुःख आपवा लाग्यो; वळी तेओने धर्म आदिकमा सहाय आपवो तो दूर रह्यो, विमले वार्यो छतां पण ते युद्ध आदिक करवा लाग्यो ॥ ४६ ॥ तथा कहेवा लाग्यो के, करेला राजकार्योने तपासवाज जोइये, अवसरे धर्म पण कराशे, इत्यादि, एवी रीते तेनी सोबतथी तेनो परिवार पण तेवीज रीते धर्मथी पराङ्मुख थयो ॥ ४७ ॥ पछी एक वखते वैरीए मोकलेला माराथी हणायो थको ते पेहली नरके गयो; तेना वैराग्यथी विमल धर्मने वधारे आराधीने स्वर्ग गयो, तथा महाविदेहमा मोक्ष जशे, एवी रीते पेहेलो भांगो जाणवो ॥ ४८ ॥ वळी केटलाक श्रावको चारित्र मोहनीय कर्मनी प्रबलताथी पोते जोके धर्म क्रियामा प्रमादी होय छे, तो पण अन्योपासे ते करावे छे, अने ते धर्म माटे उपदेश, सहाय करावो तथा ते संबंधि विघ्नोने निवारवा आदिक करीने, तेमज दीन तथा अनाथ आदिकोने धन आदिकनी मददथी उपकार करे छे, माटे तेओ बहारथी मांगला रत्न सरखा छे, ॥ ४९ ॥

प्रविव्रजिपुस्वापत्याऽनिषेधिस्वसुताऽप्रव्रजितपूर्विंशेषाशेषतपस्यार्थितपस्योत्सवकरणतत्कुटुंबनिर्वाहादिसाहाय्यकृत्तद्धेतुकतीर्थंकरनामकर्मार्जकश्रीकृष्णनृपादिवत् ॥ ५० ॥ श्रीकृष्णादीनां केषांचिदतःसम्यक्त्वादिज्ञावेऽपि विरत्यादिविशेषगुणाऽनावेनाऽनुदराकन्येत्यादिवदतरसारत्वं ज्ञेयमिति द्वितीयो जंग. ॥ ५१ ॥ अन्ये तु भ्रातृकलत्रपुत्रादिस्वजनपरिजनादिप्रतिबोधाऽशक्ता परेषां धर्मसाहाय्याद्यक्षमाश्च, सम्यग् धर्मानुष्ठाने स्व जवात्तारणेनोपकुर्वंतीत्यत सारत्नतुल्या, पूर्वजंगोक्तसहदेवाऽग्रजविमलवदिति तृतीयो जंग ॥ ५२ ॥

दीक्षा लेवानी इच्छावाळा पोताना पुत्रोने निषेध नहीं करनारा, तथा पोताना पुत्रोए दीक्षा लीधा पेहेला वाकीना सघळा तपस्याना अर्थीओनी तपस्यानो उत्सव करनारा, तथा तेओना कुटुंबिओने आजीविका आदिकनी साहाय करनारा, तथा तेथी तीर्थंकरनाम कर्म उपार्जन करनारा श्रीकृष्ण राजा आदिकनी पेठे तेवा श्रावको जाणवा ॥ ५० ॥ श्रीकृष्ण आदिक केटलाकोने अदरथी समकीत आदिकनो जाव होते छते पण विरति आदिक विशेष गुणना अजावे करीने 'उदर विनानी कन्या' इत्यादिकनी पेठे अदरथी असारपणु जाणवु, एवी रीते बीजो जांगो जाणवो ॥ ५१ ॥ वळी केटलाक श्रावको जाइ, स्त्री, पुत्र आदिक स्वजन तथा परिवार आदिकने प्रतिबोधवाने अशक्त होय छे, तेमज बीजाओने पण धर्मनो सहाय आपवामा असमर्थ होय छे, परंतु सम्यक् प्रकारनी धर्मक्रियाओथी फक्त पोताने संसारथी तारवारूप उपकार करी शके छे, माटे तेओ अदरथी सारवाळा रत्न सरखा छे; (कोनी पेठे ? तोके) पूर्वना जांगामां कहेला सहदेवना मोटा जाइ विमलनी पेठे एवी रीते त्रीजो जांगो जाणवो ॥ ५२ ॥

केचित्पुनः स्वपरोपकारसमर्था इत्युक्तयथा साररत्नोपमा, श्रीकुमारपालनृपादिवत् ॥ ५३ ॥ तथाहि—श्रीकुमारपालस्य श्रीसम्यक्त्वमूलद्वादशव्रतपालन, त्रिकाल जिनपूजा, अष्टमीचतुर्दश्यो पौषधोपवास, पारणके दृष्टिपथगताना पर शतानामपि यथार्हवृत्तिदानेन संतोषकरण ॥ ५४ ॥ सार्धं गृहीतपौषधाना स्वावासे पारणककारण, भग्नसाधर्मिकोद्धरणे सहस्रदीनारार्पण, एकस्मिन्वर्षे साधर्मिकेभ्य कोटिदीनारदान ॥ ५५ ॥ एव चतुर्दशवर्षेषु चतुर्दशकोटिदीनारदान साधर्मिकेभ्य, अष्टनवतिलक्षद्रव्यस्यौचित्ये प्रदानं, द्वासप्ततिलक्षरूढ़ितिद्रव्यपत्रपाटन, एकविंशति-श्रीज्ञानकोशलेखन ॥ ५६ ॥

वळी केटलाक आत्मा पोताने अने परने एम बन्नेने उपकार करवाने समर्थ छे, एवी रीत तेओ बन्ने प्रकारथी श्रीकुमारपाल राजा आदिकनी पेठे सारवाला रत्न सरखा छे ॥ ५३ ॥ ते कहे छे—श्रीकुमारपाल राजा समकीत मुल बारे व्रतोने धरनारा हता, त्रिकाळ जिनपूजा करता, आठम चौदसे पौषध सहित उपवास करता, पारणाने दिवसे दृष्टिए पडेला सेकडो गमे मनुष्योने यथायोग्य आजीविका आपी सतुष्ट करता ॥ ५४ ॥ साथे पौषध करनाराओने पोताने घेर पारणा करावता, धनहीन थयेला साधर्मीने हजार सोनामोहोरो आपता, एकज वर्षमा साधर्मीओने क्रोड सोनामोहोरोनु दान देता ॥ ५५ ॥ एवी रीते चौद वर्षोमा चौद क्रोड सोना मोहोरोनुं तेमणे साधर्मीओने दान आप्यु, अठाणु लाख द्रव्यनु उचित दान आप्यु, बोहोतेर लाख द्रव्य आव। करजदारोना खत फडाव्या एकवीस ज्ञान भंडार लखाव्या ॥ ५६ ॥

प्रत्यहं श्रीत्रिभुवनपालविहारे स्नात्रोत्सव., श्रीहेमचन्द्रसूरिगुरुपादपद्मेषु द्वादशाव-र्त्तवंदनकदान, ततोऽनुक्रमेण सर्वसाधुवंदनं ॥ ५७ ॥ पूर्वप्रतिपन्नपौषधादिव्रतार्ह-श्रावकवंदनमानदानादि, अष्टादशदेशेष्वमारिपटहदापनं, न्यायघटावादनं, चतुर्दश-देशेषु पुनर्धनबलेन मैत्रीबलेन च जीवरक्षाकारण ॥ ५८ ॥ चतुश्चत्वारिंशदधि-कचतु·शतनव्यप्रासादकारण, १६०० जीर्णोद्धारा·, सप्त श्रीतीर्थयात्राः, प्रथमव्रते-मारिरित्यक्षरकथने उपवासकरणं ॥ ५९ ॥ द्वितीयव्रते विस्मृत्याद्यसत्यज्ञापणे आ-चाम्लादितप.करण, तृतीयव्रते मृतधनमोचनं, चतुर्थव्रते धर्मप्राप्त्यनंतरं पाणिग्रह-णाऽकरणं, चतुर्मास्यां त्रिधा मनोवचनकायै. शीलपालनं ॥ ६० ॥

हमेशां श्रीत्रिभुवनपाल विहारमा स्नात्रोत्सव कराव्यो, श्रीहेमचंद्राचार्यना चरण कमलोमां द्वादशावर्त्त वंदन कर्युं, पछी अनुक्रमे सर्व साधुओने वंदन कर्युं ॥ ५७ ॥ पेहेलेथी पौषध आदिव्रत लेनार योग्य श्रावकने वंदन तथा मान आदिक आप्युं, अढार देशोमां अमारी पडो वजडाव्यो, न्याय घंटा वगडाव्यो, वळी चौद देशोमां धनने वळे तथा मित्राइने वळे जीवरक्षा करावी, ॥ ५८ ॥ चारसो चुमालीस नवां जिनमंदिरो कराव्यां, सोळसो जीर्णोद्धार कराव्या, सात तीर्थयात्रा करी; पेहेला व्रतमा 'मारि' एवो जो अक्षर मुखथी बोलाय तो पण उपवास करता ॥ ५९ ॥ बीजा व्रतमा भूल आदिकथी असत्य बोलतां आंबिल आदि तप करता, त्रीजा व्रतमां मृत्यु पामेलानुं द्रव्य नहीं लेता, चोथा व्रतमां धर्म पाम्या पछी परणवानुं नियम कर्युं; चोमासामां मन, वचन अने काया, एम त्रण प्रकारे शील पालता ॥ ६० ॥

मनसा जगे कृपण, वाचा जगे आचाम्लं, कायजगे चैकाशनं, परनारीसहोदर-
विरुदधरण च, राज्ञी * जोपलदेव्याजार्याया मरणेऽपि प्रधानादिभिर्विज्ञप्यमानेऽपि
पाणिग्रहणनियमस्याऽजग ॥ ६१ ॥ आरात्रिकार्थं सुवर्णमयजोपलदेवीमूर्त्तिकार-
ण, श्रीगुरुभिर्वासक्षेपपूर्वं राजर्षिविरुददान, पंचमव्रतविस्तरस्तु यथा— ॥ × ॥
॥ ६२ ॥ षट्कोट्य कनकस्य, अष्टौकोट्यस्तारस्य, दशतुलाजातानि महार्घमणि-
रत्नादीना, ३२ सहस्रमणघृत, ३२ सहस्रमणतैल, ॥ ६३ ॥

मनथी शील जागते छते कृपणक करता, वचनथी जागते छते आंबेल करता, कायाथी जागते छते एकाशन करता, परस्त्री भले सहोदरनु विरद धारण करता, जोपलदेवी राणीना मृत्युबाद प्रधान आदिकोए घणु कह्या छता पण परणवाना नियमनो तेमणे भग कर्यो नही ॥ ६१ ॥ आरात्रिक माटे जोपालदेवी राणीनी सुवर्णना मूर्त्ति करावी. श्री गुरुमहाराजे वासक्षेपपूर्वक तेमने राजर्षिनु विरद आप्यु. पाचमा व्रतनो विस्तार नीचे मुजब छे— ॥ ६२ ॥ छ क्रोड सोनामोहोर, आठ क्रोड रूपामहोर, दशसो तोला मोटी किंमतना मणिरत्नो विगरे, बत्रीस हजार मण घी, बत्रीस हजार मण तेल ॥ ६३ ॥

* राज्ञीजोपलदेव्यादिजार्या ७ मरणेऽपि ॥ इति द्वितीयपुस्तकपाठः ॥
+ यथा ग्रंथांतराद्वाच्य' ॥ इति द्वितीयपुस्तकपाठः ॥

३ लक्षा. शालिचनकयुगंधरीमुद्गप्रभृतिधान्यमूटकानां प्रत्येक पंचलक्षी, अश्वानां सहस्र गजा उष्ट्राश्च प्रत्येक पंचशतानि ॥ ६४ ॥ गृहहट्टसज्जायानपात्रशकटवाहिनीनामित्यादि. एकादशशतगजाना, ५० सहस्ररथानां, ११ लक्षा हयाना, १८ लक्षाः सुभटवराणामित्येव सर्वसैन्यमेलापकः इत्यादि ॥ ६५ ॥ षष्टे व्रते वर्षाकाले श्रीपत्तनपरिसरादधिकगतिनिषेध., सप्तमे भोगोपभोगव्रते मद्यमांसमधुम्रक्षणबहुबीजपचोदुंबरफलाऽज्ञातयाऽनंतकायघृतपूरादिनियम ॥ ६६ ॥ देवाऽदत्तवस्त्रफलाहारादिवर्जनं, सचित्तमेक पत्ररूप दिने तद्वीटकाष्टक, रात्रौ चतुर्विधाहारनिषेध, वर्षास्वेका घृतविकृति., शाकुलशाकनिषेध. ॥ ६७ ॥

त्रण लाख चोखाना तथा चणा, जुवार अने मग आदिक धान्योना दरेकना पांच पांच लाख मुडा, एक हजार घोडा, हाथी तथा उंट दरेक पांचसो पांचसो ॥ ६४ ॥ घर, हाट सजा वहाण, गाडी पालखी इत्यादि, अग्यारसो हाथीओ, पचास हजार रथो, अग्यार लाख घोडा, अढार लाख सुभटो, एवी रीते सर्व सैन्यनो मेळापक हतो इत्यादि ॥ ६५ ॥ छठा व्रतमां वर्षाकाळमां श्री पाटणना सीमाडाथी अधिक गमन करवानो निषेध हतो, सातमा भोगोपभोग व्रतमां मद्य, मांस, मध, माखण, बहुबीजा, पांच जातिना उंबर फळ, अजाण्या, अनंतकाय तथा घेबर आदिकनो तेने नियम हतो, ॥ ६६ ॥ देवे नहीं दीधेला वस्त्र, फळ तथा आहार आदिकनो त्याग हतो, एक पान रूपी सचित्त, अने तेना पण एक दिवसमां आठ बीडा तेने खपता, रात्रिए चारे प्रकारना आहारनो निषेध हतो. वर्षाकाळमां एक घीनो विगय जट हतो, शाकुंभ शाकनो त्याग हतो, ॥ ६७ ॥

एकाशनं सदा, पर्वस्वब्रह्मविकृतिसचित्तवर्जन, अष्टमव्रते सप्तव्यसनाना देशात्कर्षणं समुद्रतटे क्षेपणं ॥ ६८ ॥ नवमे व्रते उभयकालसामायिककरणं, तस्मिन् कृते श्रीहेमसूरीन् विनाऽन्यैर्जल्पननिषेधः, प्रत्यह १२ प्रकाश २० वीतरागस्तवगुणनं ॥ ६९ ॥ दशमव्रते चतुर्मासीकटकाऽकरण, गाजणीसुरत्राणागमेऽपि नियमादऽक्रोशादि वाच्य, एकादशे व्रते पौषधोपवासे रात्रौ कायोत्सर्गकरणे मर्कोटक पादे लग्नो जनैरुत्सार्यमाणोऽपि कोपान्न मुचति ॥ ७० ॥ तन्मृतिशंकया स्वपादत्वचा सह तस्य दूरीकरण, पारणके सर्वपौषधग्राहिभोजनं, अतिथिसंविभागव्रते दुःखिसाधर्मिकश्रावकलोकाना ७२ लक्षद्रव्यकरमोचनं ॥ ७१ ॥

हमेशां एकासणु करता, पर्वने दिवसे मैथुन, विगय तथा सचित्तनो तेने त्याग हतो; आठमां व्रतमां तेणे साते व्यसनोने देशमांथी कहाडी समुद्रमा फेंक्यां ॥ ६८ ॥ नवमा व्रतमा बने वखत सामायिक करवु, तथा ते करते छते श्री हेमचन्द्राचार्य विना बीजाओ साथे बोलवानो तेने त्याग हतो, हमेशां बार प्रकाश (योग शास्त्रना) तथा वीस वीतरागस्तवनो पाठ करता ॥ ६९ ॥ दशमां व्रतमां चोमासामां रणसंग्राम न करवो, गीजनीनो सुलतान आवते छते पण नियमथी चलायमान नहोता थया; अग्यारमा व्रतमा पौषध उपवास करते छते रात्रिए काउसग ध्याने रह्या हता, ते वखते पगे मकोडो चोंट्यो, माणसो तेने उखेडवा लाग्या, परतु क्रोधथी ते चोंटीज रह्यो ॥ ७० ॥ ते वखते ते मकोडो मरी जवानी शकाथी पोताना पगनी चामडी सहित तेने दूर कर्यो, पारणाने दिवसे सघळा पोसातीओने भोजन करावता, अतिथि संविभाग व्रतमां दुःखी एवा साधर्मी श्रावकोनो बहोतेर लाख द्रव्यनो कर मूकी दीधो ॥ ७१ ॥

श्रीहेमसूरिधर्मशालामुखवस्त्रिकाप्रतिलेखकधार्मिकस्य ... ॥ ७१ ॥ ए-तित्प्रदान, सर्वमुखवस्त्रिकाप्रतिलेखकानां ५०० ग्रामदानादि च ॥ ७२ ॥ कियंतोऽत्र लेखितु शक्यं-प्मनेकविधास्तस्य विवेकिशिरोमणेरन्येऽपि पुण्यमार्गाः ते; इत्येव तस्य स्वयं सम्यग्धर्मानुष्ठानेन स्वात्मन उपकारो नवद्रव्यावशेषसं-साररकरणादिरूपः ॥ ७३ ॥ साधर्मिकादीनां यथार्हदानमानधर्मसान्निध्यकरणकर-मोचनसीदत्समुद्धरणादिभिरष्टादशदेशेष्वमारिप्रवर्त्तनादिभिश्च परोपकारोऽपि स्फु-ट एव ॥ ७४ ॥ इत्यंतर्बहिश्च सारत्वमिति साधुश्रीपृथ्वीधरसाहजगसिंहसाहमुहण-सिंहादयोऽपि दृष्टाता योजनीया यथार्हमत्र, इत्युक्ता श्राद्धानाश्रित्य चतुर्भंगी ॥७५॥

श्री हेमचन्द्रसूरिना धर्मशाळानी मुहपत्ति पडिलेहनार धार्मिकने पांचसो घोडा, तथा चार गामनुं अधिप-तिपणुं आप्युं; तथा सघळी मुहपत्ति पडिलेहनारोने पांचसो गामोनुं दान आप्युं; ॥ ७२ ॥ एवी रीते विवेकी-ओमां शिरोमणि सरखा एवा ते कुमारपाळ राजाना बीजा पण अनेक प्रकारना पुण्यमार्गो हता, तेमांथी अहीं केटलाक लखी शकाय? एवी रीते उत्तम धर्म क्रियाथी तेणे फक्त पोताना बाकी ने जनो रहेला आदिक रूप पोतानो उपकार कर्यो ॥ ७३ ॥ तेमज साधर्मीओने योग्य दान, मान, धर्मनी सहायता, करोनुं छोडवुं, तथा दुःखीओनो उद्धार आदिकथी, तथा अढार देशोमां अमारीना प्रवर्त्तन आदिकथी तेनो परोपकार पण प्रगटज देखाय छे ॥ ७४ ॥ एवी रीते तेनु अंदरथी तथा बहारथी पण सारपणुं जाणवुं; एवी रीते साधु श्री पृथ्वीधर जगसिंहशाह, तथा मुहणसिंहशाह आदिकनां दृष्टांतो पण अहीं यथायोग्य रीते जोडी लेवा, एवी रीते श्रावको-ने आश्रीने चोभंगी कही ॥ ७५ ॥

अथ अष्टादशस्तरंगः

पुन प्रकारांतरेण श्रीगुर्वादिस्वरूप प्ररूपयति—॥ मूल. ॥—वयणकिरिआ हि सारा—ऽसारा जहा हुंति चउविहकवाला ॥ तह गुरु सीसा सावय । वाया-विणयाइकम्मेहि ॥ १ ॥

वळी प्रकारांतरथी श्री गुरु आदिकोनु स्वरूप कहे छे—॥ मूळनो अर्थः ॥—जेम वचन अने क्रियावडे करीने सारवाळी तथा सारविनानी एम चार प्रकारनी खोपरीओ होय छे, तेम गुरु, शिष्य अने श्रावको वचन तथा विनय आदिक क्रियाओथी चार प्रकारना होय छे ॥ १ ॥

यथा वचनक्रियाभ्या साराण्यसाराणि चेति चतुर्विधानि कपालानि, तथा गुरवः शिष्या· श्रावकाश्च वाचा विनयादिक्रियाभिश्च सारा असाराश्चेति चतुर्विधा. स्युरिति सटंक ॥ २ ॥ तत्र कपालानीति करोटिका उच्यन्ते, ताश्च काश्चन साधिष्टायकाः स्युर्महापुरुषसंबंधिन्यः, तासु च काश्चन केनचिद्विधिवत्पूजिता वदन्ति पंचशतीं रत्नानि गृह्णाणेति ॥३ ॥ सद्यस्तान्यर्पयन्ति चेति वाचा क्रियया च द्विधापि सारा इति प्रथम. ॥ ४॥ काश्चिच्च तथैव वदति, न त्वर्प्पयंति किंचिदपीति वाचा साराः, क्रियया त्वसारा इति द्वितीय ॥ ५ ॥ अपरा. पुनर्न ब्रूयु. किमपि, परं प्राग्वत्पूजिता. पूरयंत्यर्थितानीति वागसाराः क्रियासाराश्चेति तृतीयः ॥ ६ ॥

जेम वचन अने क्रियाथी सारवाळी तथा सारविनानी एम चार प्रकारनी खोपरीयो होय छे, तेम गुरुओ, शिष्यो अने श्रावको वचनथी तथा विनय आदिक क्रियाओथी सारवाळा तथा सारविनाना एम चार प्रकारना होय छे, एवो संबंध छे ॥ २ ॥ त्या कपाल एटले खोपरीओ कहेवाय छे; तेमानी केटलीको महापुरुष संबंधि अधिष्ठायकवाळी होय छे; तेमानी केटलीक, विधिपूर्वक पूज्याथी कहे छे के, पांचसो रत्न ल्यो ? ॥ ३ ॥ तेमज तुरत तेओ आपे [illegible] छे, माटे तेओ वचनथी अने क्रियाथी पण एम बन्ने रीते सारवाळी छे, एवी रीते पेहेलो भांगो जाणवो ॥ ४ ॥ वळी केटलीक खोपरीओ तो तेम बोले छे, परतु कंइ पण आपती नथी, माटे तेओ वचनथी सारवाळी छे, परतु क्रियाथी सारविनानी छे, ए बीजो भांगो जाणवो ॥ ५ ॥ वळी केटलीक कंइ बोलती नथी, परतु पूर्वनी पेठे पूजवाथी इच्छित पूरे छे, माटे तेओ वचनथी सारविनानी परंतु क्रियाथी सारवाळी छे, ए त्रीजो भांगो जाणवो ॥ ६ ॥

या पुन सामान्यपुरुषसंबधिन्यो निरतिशयास्ता न वदति न च वितरति किंचिद्‌-पीति द्धिधाप्यसारा इति चतुर्थश्च विकल्प. ॥ ७ ॥ तथा गुर्वादीनप्याश्रित्य चतुर्भं-गी, तत्र गुरुणा वाक्सारत्व सडुपदेशकौशलवत्तराया, विनय पचमहाव्रतादिसम्यग-नुष्ठानरूप:, तदादिमत्तया क्रियासारत्व च ज्ञाव्य ॥ ७ ॥ ततश्च केचिद्‌गुरवो द्धिधा-पि सारा, श्रीवज्रस्वामीप्रभृतिवत् ॥ ए ॥ अपरे तु वाचा सारा, क्रियया त्वसारा-स्तादृगुपदेशकौशलभृत्पार्श्वस्थाद्याचार्यवत् ॥ १० ॥ अन्ये वाचा असारा क्रियया पुन. सारा मूककेवल्यादिवत् प्रत्येकबुद्धादिवच्च देशनाऽनासेवक. प्रत्येकबुद्धा दिरित्यागमवचनात् ॥ ११ ॥

वळी जे खोपरीओ सामान्य पुरुषोनी तथा अतिशयो विनानी होय छे, तेओ बोलती पण नथी, तेम वइ आपती पण नथी, माटे बन्ने रीते सारविनानी छे; एम चोथो विकल्प जाणवो ॥ ७ ॥ वळी एवी रीते गुरु आदिकोने आश्रीने पण नीचे मुजब चोजगी थाय छे, तेमा गुरुजीनु वचन सबधि सारपणु उत्तम उपदेशनी कुश-ळतायी होय छे, तथा विनय पच महाव्रतोने सम्यक् प्रकारे पाळन करवारूप होय छे, अने इत्यादिकपणायें करीने क्रिया सबधि सारपणुं पण जाणो लेवु ॥ ७ ॥ माटे केटलाक गुरुओ बन्ने रीते सारवाळा छे, (कोनी पेठे? तोके) श्रीवज्रस्वामी आदिकनी पेठे ॥ ए ॥ वळी केटलाको वचनथी तो सारवाळा होय छे, परतु क्रियाथी सारविनाना होय छे (कोनी पेठे? तोके) तेवा उपदेशनी कुशळतावाळा पासत्था आचार्य आदिकनी पेठे ॥१० ॥ वळी केटलाको वचनथी सारविनाना होय छे, परतु क्रियाथी सारवाळा होय छे (कोनी पेठे? तोके) मूक केवली आदिकनी पेठे, तथा प्रत्येक बुद्ध आदिकनी पेठे; केमके आगममा कह्यु छे के प्रत्येक बुद्ध आदिक देशना नहीं सेवनारा छे ॥ ११ ॥

उत्तमयाप्यसाराश्च केचित्, उपदेशाऽकुशलपार्श्वस्थाद्याचार्यवदिति ॥ १२ ॥ अथ शिष्यानधिकृत्य नाव्यते, तत्र विनयो गुरुगोचरबहुमान., यथार्हप्रतिपत्त्यादिर्विनयाध्ययनोक्त ॥ १३ ॥ तथाहि—पडिणीअं च बुद्धाणं वाया अदुवकम्मुणा ॥ आवी वा जइ वा रहसे । नेवकुज्जाकयाइवि ॥ १४ ॥ न पक्खओ न पुरओ । नेवकिच्चाण पिट्ठओ ॥ न जुंजे ऊरुणाऊरुं । सयणे नो पडिस्सुणे ॥ १५ ॥ नेव पल्हत्थिअंकुज्जा । पक्खपिंडिवसजए ॥ पाएपसारिए वावि । न चिट्ठे गुरुणंतिए ॥ १६ ॥ इत्यादि, अपि च, अह अट्ठहिं ठाणेहिं । सिक्खसीलत्ती वुच्चइ ॥ अहस्सिरे सया दंते । न य मम्ममुदाहरे ॥ १७ ॥

वळी केटलाको तो उपदेश देवामां अकुशल एवा पासत्था आदिक आचार्योनी पेठे बन्ने प्रकारे सारविनाना छे ॥ १२ ॥ हवे शिष्योने आश्रीने कहे छे; त्यां विनय एटले गुरु प्रत्ये बहुमान, यथायोग्य रीते तेमनी वैयावच्च आदिक. के जे संबंधि वर्णन (उत्तराध्ययनमां) विनय अध्ययन आदिकमां कह्युं छे ॥ १३ ॥ ते कहे छे—हे साधु! तुं ज्ञानीओ प्रत्ये प्रतिकूलपणुं नहीं आचरजे तेमज (तमो पण थोडुज जाणो छो) इत्यादिक वचने करीने, तेमज गुरुना संथारा आदिकने कचरवारूप कर्मे करीने प्रगट रीते अथवा गुप्त रीते तुं कदापि पण गुरुनो अविनय नहीं करजे ॥ १४ ॥ वळी आचार्य आदिकोनी पडखे, अगाडी, तेम पछाडी बेसवुं नहीं, तेमज गुरुना साथळ साथे पोतानो साथळ अडाडीने बेसवुं नहीं, तथा बीछानापर सुतां थकां अथवा बेठा थकांज 'अमो आम करीये छीये' इत्यादिक न कहेवुं । १५ ॥ वळी गुरु समक्ष पलांठी नहीं वाळवी, तेम बन्ने पडखाने पिंडरूप नहीं करवा, तेम पग पण पसारवा नहीं तथा गुरुना निकटपर-पण बेसवुं नहीं ॥ १६ ॥ वळी पण नीचे मुजब आठ स्थानको वडे करीने शिक्षाशील साधु कहीयें; हास्य न करे, हमेशां इंद्रियाने दमे, परना मर्मो प्रगट न करे ॥ १७ ॥

नासीले न विसीले । न सिआ अइलोलुए ॥ अकोहणे सच्चरइ । सिरकासीलत्ति वुच्चइ ॥ १८ ॥ तथा, अह पनरसहिंठाणेहिं । सुविणी इत्तिवुच्चइ ॥ नीआवत्ती अचवले । अमाई अकुतूहले ॥ १९ ॥ अप्प वा हिरिकवई । पवध च न कुव्वइ ॥ मित्तिज्जमाणो जयइ । सुअ लद्धु न मज्जइ ॥ २० ॥ न य पावपरिरकेवी । नय मित्तेसु कुप्पई ॥ अप्पियस्सावि मित्तस्स । रहे कल्लाण भासइ ॥ २१ ॥ कलहडमर-वज्जए ॥ बुद्धे अभिजायए ॥ हरिम पडिसलीणो । सुविणी इत्ति वुच्चइ ॥ २२ ॥ इत्यादि, एवविध विनय वाचा प्रतिपद्यते, पालयंति चेति द्विधापि सारा· केचित् शिष्या श्रीचन्द्ररुद्राचार्यशिष्यवत् श्रीसिंहगिरिसूरिशिष्यवच्च, तदुक्त—'सीहगिरिसु-सीसाण भद्द०' ॥ २३ ॥

शील रहित नहोय, अतिचारवाळा चारित्रवाळो नहोय, अति रसलपट न होय, क्रोध रहित होय, तथा सत्यमां रक्त होय, एवी रीतनो साधु शिक्षाशील कहेवाय ॥ १८ ॥ वळी, हवे नीचे मुजब पन्नर स्थानको वडे करीने सुविनीत साधु कहीयें, उद्धताइ विनानी वृत्तिवाळो, मारनेनां कार्यमां अस्थिरपणा विनानो, कपट विनानो, कुतूहल विनानो ॥ १९ ॥ कोइनो पण अधिक्षेप (तिरस्कार) न करे, कोइने क्रोधित न करे, मित्राइ करनारपर प्रत्युपकार करे, तथा ज्ञान पामीने मद न करे ॥ २० ॥ पोतानो अपराध बीजापर नाखे नहीं, मित्र प्रत्ये क्रोध करे नहीं, अप्रिय एवा पण मित्रनु श्रेयज कहे ॥ २१ ॥ कलेश तथा विग्रहने वर्जे, बुद्धिवान तथा कुलीनपणु धारण करे, लज्जानुपणु धारण करे, कार्य विना आमी अवळी चेष्टा न करे, एवी रीतना गुणवाळो शिष्य सुविनीत कहेवाय ॥ २२ ॥ एवी रीतना विनयने वचनथी जेओ स्वीकारे छे, तथा पाळे पण छे, तेओ केटलाक बन्ने रीते सारवाळा शिष्यो छे, (कोनी पेठे ? तोके) श्रीचन्द्ररुद्र आचार्यना तथा श्री सिंहगिरिसूरिना शिष्यनी पेठे, कह्यु छे के—'सिंहगिरिना शिष्य प्रत्ये भद्र' ॥ २३ ॥

अपरे विनयं वाचा प्रतिपद्यते न च समाचरति, ततो वाचा सारा॰, क्रियया त्वसारा इति युगप्रधानश्रीकालकसूरिशिष्यवत् युगप्रधानोपघातिकुशिष्यवच्च । तथाहि— ॥ २४ ॥ कश्चिद्गुरुर्युगप्रधान उद्यतविहार्यपि क्षीणजंघाबल एकत्र स्थाने तस्थौ। तत्र श्राद्धैर्याधारोऽयमित्यर्हस्निग्धमधुराहारादि तस्मै सदाददे ॥ २५ ॥ तच्छि-ष्यास्तु गुरुकर्मत्वात्कदापि दध्युः कियच्चिरमयमजगम॰ पाल्य इति ततस्तेनाऽनशन जिग्राहयिषवो भक्तश्राद्धदत्तार्हाहारं तस्मै न ददु॰ ॥ २६ ॥ अंतप्रान्ताद्या-नीय विषण्ण इव तत्पुरे ऊचु.,॰ किं कुर्मो यदीदृशानामपि वोऽर्हान्नाद्यविवेका. श्रा द्धा. सदपि दातुमशक्ता ॥ २७ ॥

वळी केटलाक शिष्यो वचनथी तो विनयने स्वीकारे छे, परतु ते मुजब आचरण करता नथी, माटे तेओ वचनथी तो सारवाळा छे, परतु क्रियाथी सारविनाना छे; कोनी पेठे? तोके, युग प्रधान श्रीकालकसूरिना शिष्यनी पेठे, तथा युगप्रधानने उपघात करनारा कुशिष्योनी पेठे। ते कहे छे—॥ २४ ॥ कोइक युगप्रधान गुरु उग्रविहारी हता, छता पण पगोनु कौवत क्षीण थवाथी एक स्थाने रहेवा लाग्या; त्यां 'आ तीर्थना आधार भूत छे' एम विचारि श्रावको तेमना माटे योग्य घृतादिक सहित मिष्टान्न आदिक हमेशां देवा लाग्या ॥ २५ ॥ एक दिवसे तेमना शिष्यो भारे कर्मी होवाथी एवो विचार करवा लाग्या के, आ स्थिर वास करी रहेला अपग गुरुने ते आपणे केटलोक वखत पाळवा? एम विचारि गुरुने अनशन करावत्रानी इच्छावाळा एवा ते शिष्योए भक्तिवत श्रावकोए दीधेलो योग्य आहार तेमने आप्यो नहीं ॥ २६ ॥ जेवो तेवो स्वाद विनानो आहार लावीने तेओ गुरुने कहेवा लाग्या के, अमो शु करीये? अविवेकी श्रावको आप सरीखाने पण योग्य आहार आदिक होवा छतां आपी शकता नथी ॥ २७ ॥

आद्याश्चोचुर्देह मुमुक्षव. स्निग्धाहारमार्या नेच्छति, सल्लेखनामेव चिकीर्षव ॥२८॥ तत् श्रुत्वा सकोपा श्राद्धा गुरुमेत्य सगद्गदं जगु, जगवन् विश्वार्केष्वर्हत्सु चिरातीतेष्वपि प्रत्ययत्सु जवत्सु शासन जाति, तत्किमकाले संल्लेखनारब्धा ॥ २९ ॥ न वयमेषा निर्वेदायेति चिन्त्यम्, यत शिरःस्था अपि यूय न जाराय न शिष्याणा च कदापि ॥ ३० ॥ ततस्तैरिगितैर्ज्ञात, यथाऽस्मत्शिष्यकृतमेतत् तत् किमनोऽप्रीतिदायुषा, न धर्मिणा कस्याऽप्यप्रीतिकृत्याद्येति ध्यात्वा मुकुलितमेतत्पुर उचु ॥ ३१ ॥ कियच्चिरमजगमैरस्मान्निर्वैयावृत्त्य कार्या साधवो यूय च, तदुत्तमार्थमेव स्वीकुर्म इति तानसौ सस्थाप्य जक्त प्रत्याख्यादिति ॥ ३२ ॥

पछी तेओ श्रावकोने एम कहेवा लाग्या के. शरीरने छोडवानी इच्छावाळा गुरु महाराज हवे स्निग्ध आहारने इच्छता नथी, तेओनी इच्छा सल्लेखना करवानी हवे छे ॥ २८ ॥ ते सांजळी गुस्से थयेला श्रावको गुरु पासे आवी गद्गद् कंठे कहेवा लाग्या के, हे जगवन्! जगतना सूर्य समान एवा श्रीअरिहंत प्रजुओ घणो काळ थया जोके अतीत थया छे, तो पण आप साहेब बिराजते छते शासन शोजे छे, माटे अनवसरे आप साहेबे सल्लेखना शामाटे करवा धारी छे? ॥ २९ ॥ वळी आप साहेबे एम पण नहीं विचारवु, के अमाराथी श्रावकोने हवे कंटाळो उपजे छे, केमके अमारा मस्तकपर रहेला एवा पण आप साहेब अमोने के शिष्योने कइ कदापि पण जाररूप थइ पडता नथी ॥ ३० ॥ ते सांजळी आचार्यजी महाराजे ते इंगितोथी जाण्यु के, आ कार्य आपणा शिष्योनु छे, माटे हवे अप्रीति उपजावे एवा मारा जीवितनु मारे शु प्रयोजन छे? धर्मी मनुष्ये कोइने पण अप्रीति न उपजाववी जोइये, एम विचारि गुरु महाराजे ते श्रावकोने बधेच वचनज नीचे मुजब कह्यु ॥ ३१ ॥ हवे अपग एवा अमो तमारी पासे तथा साधुओ पासे केटलोक वखत वैयावच्च करावीये? माटे हव उत्तमार्थज अमो साधीशु, एम कही तेओने स्थीर करी तेमणे आहारनां पच्चखाण कर्यां ॥ ३२ ॥

केचिच्च वाचा विनय न प्रतिपद्यते, पर यथार्हं समाचरति ततो न वाचा सारा., क्रियया पुन सारा., दृष्टातः स्वयमभ्यूह्य ॥ ३३ ॥ अन्ये पुनरुभयथाप्यसाराः, कूलवालकादिश्रमणवत्, श्रीउत्तराध्ययनप्रसिद्धश्रीगर्गाचार्यकुशिष्यवच्च ॥ ३४ ॥ यद्वा विनय वाचा परेभ्य उपदिशन्ति इति वाचा सारा, स्वयमपि समाचरंतीति क्रियासाराश्चेति ॥ ३५ ॥ एवं शेषजगत्रयेऽपि वाच्य। अथ श्राद्धानाश्रित्य जाव्यते, तत्र श्राद्धाना विनय. सम्यक्त्वमूलपचाणुव्रतत्रिगुणव्रतचतु·शिक्षाव्रतादिरूप, श्रीदेवगुरुसाधर्मिकादियथोचितप्रतिपत्तिरूपश्च ॥ ३६ ॥

वळी केटलाक शिष्यो वचनथी विनयने स्वीकारता नथी, परतु यथायोग्य रीते विनय आचरे छे, माटे तेओ वचनथी सारवाळा नथी, परतु क्रियाथी सारवाळा छे, तेनु दृष्टांत पोतानी मेळेज जाणी लेवु ॥ ३३ ॥ वळी बीजा केटलाक शिष्यो तो बन्ने रीते सारविनाना छे, कूलवालक आदि साधुनी पेठे तथा श्री उत्तराध्ययनमां प्रसिद्ध एवा श्रीगर्गाचार्यना कुशिष्यनी पेठे ॥ ३४ ॥ अथवा वचन वडे करीने परप्रते विनय उपदेशे छे, माटे वचनथी सारवाळा छे, तेम पोते पण आचरे छे, माटे क्रियावडे करीने पण सारवाळा छे ॥ ३५ ॥ एवी रीते बाकीना त्रणे जागाओमा पण कहेवु, हवे श्रावकोने आश्रीने कहे छे; त्यां श्रावकोनो विनय एटले समकीत मूळ पांच अणुव्रत, त्रण गुणव्रत, तथा चार शिक्षाव्रत आदिक रूप, तेमज श्रीदेवगुरु तथा साधर्मिक आदिकोनी यथोचित सेवारूप जाणवो ॥ ३६ ॥

ततश्च केचित् श्राद्धा यथोक्त विनयं परेभ्य उपदिशति, आदिशब्दाद्यथार्हं यथा-
वसर तद्विषयस्मारणादि च परेभ्यः कुर्वंति श्रीगुरुमुखश्रुतानुसारेणेति वाचा
सारा ॥ ३७ ॥ स्वय च सम्यक् समाचरंतीति क्रियासाराश्च, श्रीवीरजिनसेवक-
पुष्कलीश्राद्धादिवत्, आधुनिकपत्तनीय"म"हेमादिवच्च, ॥ ३८ ॥ वाचोपदिशंति न
तु स्वय समाचरति केचित्, गणिकागृहस्थनदिषेणवत्, नोपदिशंति तथाविधो-
पदेशशक्त्यभावात् स्वयतु समाचरंत्यपरे, दृष्टांता सुज्ञेया ॥ ३९ ॥ उभय-
थाप्यसाराश्चान्ये श्रावकनामधारिणो विषयादिव्यासगव्यामूढा दुर्गतिपतयालवो ब्र-
ह्मदत्तचक्रितापसश्रेष्ठ्यादिवदिति भावितास्तिस्रोऽपि चतुर्भंग्य· ॥ ४० ॥

हवे तेथी केटलाक श्रावको उपर वर्णवेलो विनय परमते उपदेशे छे, आदि शब्दथी यथा योग्य, योग्य अवसरे ते सबधि याददास्ती आपवा आदिक रुप परमते श्रीगुरु मुखथी जेम साभळ्यु होय ते मुजब करे छे, माटे तेओने वचनथी सारवाळा जाणवा ॥ ३७ ॥ तेमज पोते पण सम्यक् प्रकारे ते आचरे छे, माटे तेओने क्रियाथी पण सारवाळा जाणवा, (कोनी पेठे? तोके) श्रीवीरप्रभुना सेवक पुष्कली श्रावक आदिकनी पेठे, तथा हमणा (ग्रथकारना समयमा) पाटण निवासी मेहेता हेमा आदिकनी पेठे ॥ ३८ ॥ वळी केटलाक श्रावको वचनथी तो उपदेशे छे, परतु पोते समाचरता नथी, गणिकाने घेर रहेला नदिषेणनी पेठे, केटलाक तेवा प्रकारनो उपदेश देवाने अशक्त होवाथी उपदेशता नथी, परतु पोते आचरे छे, ते सबधि दृष्टातो सुज्ञ छे ॥ ३९ ॥ हवे केटलाक फक्त नाम धारी श्रावको बन्ने रीते सारविनाना होय छे, केमके तेओ विषय आदिकना सगमा मूढ थयेला होय छे, अने तेथी दु-र्गतिमां पडवानी इच्छावाळा देखाय छे, अने तेवा ब्रह्मदत्त चक्री तापस श्रेष्ठी आदिकनी पेठे जाणवा; एवी रीते त्रणे चोभंगीओ कही ॥ ४० ॥

तत्रोत्तयथा सारा केवलक्रियासाराश्चेति द्वयेऽपि योग्या., शेषास्त्वयोग्या ॥४१॥
इति योग्याऽयोग्यत्व। विज्ञाव्य विबुधा· करोटिदृष्टांतात् ॥ यत्न योग्यगुणासो।
विमोहविजयश्रिये विधत्त ॥ ४२ ॥

॥ इति तपागच्छे श्रीमुनिसुंदरसूरिविरचिते श्रीउपदेशरत्नाकरे कपालदृष्टांतेन गुर्वा-
दिस्वरूपनिरूपी अष्टादशवस्तरंग समास. ॥ श्रीरस्तु ॥

हवे तेमां बन्ने रीते सारवाळा, तेमज क्रियावडे करीने केवळ सारवाळा ए बन्ने योग्य छे, अने बाकी-
नाओ अयोग्य छे ॥ ४१ ॥ एवी रीते खोपरीना दृष्टांतथी योग्य अयोग्यनो विचार करीने हे पण्डितो! मोहने
जीतवानी लक्ष्मी माटे योग्य गणनी प्राप्तिमां तमो यत्न करो ? ॥ ४२ ॥

॥ एवी रीते तपागच्छमां श्रीमुनिसुंदरसूरिए रचेला श्रीउपदेशरत्नाकर ग्रंथमां कपालना दृष्टांते करीने गुरु
आदिकना स्वरूपने निरूपण करनारो अढारमो तरंग समाप्त थयो ॥ श्रीरस्तु ॥

इति अष्टादशस्तरंगः समाप्तः

अथ नवदशस्तरंगः

पुनर्दृष्टांतांतरैर्गुर्वादिगत योग्याऽयोग्यस्वरूपमाह—॥ मूलम्—सप्पा मोसग ठग व-णि—वंझगवी नरुय धेणु सहिबंधू ॥ पिय माय कप्पतरुणो । गुरु सायत्र विसय-दिट्ठता ॥ १ ॥

वली पण बीजां दृष्टांतोवडे करीने गुरु आदिक संबंधि योग्य अयोग्यनुं स्वरूप कहे छे—मूळनो अर्थः—सर्प, चोर, ठग, वणिक्, वंध्या गाय, नट, गाय, मित्र, बंधु, पिता, माता तथा कल्पवृक्ष, एटलां दृष्टांतो गुरु तथा श्रावकना संबंधमां जाणवां ॥ १ ॥

पदघटना सुगमैव, जावना चेयं, तथाहि सप्पत्ति, यथा सर्पाः खनावादपि क्रूरकर्माण. क्रोधनैकप्रकृतयो नीषणाकृतयश्च स्यु, स्फारैः फूत्कारैर्नाशयति च बालादीन्, स्वल्पेऽप्यपराधे लब्धावकाशास्तज्जीवितान्यप्यपहरति च, तदुक्तं—॥ २ ॥ सर्पाणां च खलाना च । चौराणा च विशेषतः ॥ अनिप्राया न सिध्यति । तेनेदं वर्त्तते जगत्, ॥ ३ ॥ इति, तथा केचन लौकिका लोकोत्तराश्च कुगुरवो रागद्वेषादिविषविषमा केवलमैहिकार्थसमर्थनपरा ॥ ४ ॥ सर्वथापि जीवदयादिमूलधर्ममर्मपराङ्मुखा बहुविधमन्त्रतन्त्रयोगप्रयोगमोहनोच्चाटनवशीकरणहोमशातनपातनादिकर्मनिर्माणशीलतया क्रूरकर्माण ॥ ५ ॥

आ गाथानी पद रचना सुगम ज छे, ते कहे छे, सप्प एटले जेम सर्पो स्वनावथीज क्रूर कार्यो करनारा, क्रोध युक्त स्वनाववाळा तथा जयकर आकृतिवाळा होय छे, तेमज तेओ मोटा फुंफाडाओथी बालक आदिकोने बीवरावे छे, वळी स्वल्प अपराध होते छते पण तेओना जीवितने पण हरे छे, कह्यु छे के—॥ २ ॥ सर्पोना, लुच्चाओना तथा चोरोना अनिप्रायो विशेषे करीने सिद्ध थता नथी, अने तेथीज आ जगत् नजी शके छे ॥ ३ ॥ इति, एवी रीते केटलाक लौकिक तथा लोकोत्तर कुगुरुओ राग द्वेष आदिक जेरथी विषम थयेला, तथा केवळ आ लोक संबंधि स्वार्थ साधवामाज तत्पर थयेला ॥ ४ ॥ तथा सर्वथा प्रकारे जीव दया आदिक मूळवाळा धर्मना मर्मथी पराङ् मुख थया थका, घणा प्रकारना मंत्र तंत्रना योग तथा प्रयोग, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण होम, शातन तथा पातन आदिक कार्यो करवामां तत्पर थयेला होवाथी तेओ क्रूर कर्मवाळा होय छे ॥ ५ ॥

सुविहितगुर्वादिगोचराऽतुच्छमत्सरप्रसरवशप्रोन्मिषज्जोपजरजीपणाः शुद्धधर्ममार्गप्रवृत्तान् स्वावर्जनप्रमत्तान् वा ज्ञापयति ॥ ६ ॥ वाल्लिशजनास्तादृक्क्रुद्धसत्वजयाऽनेकविधायिवाग्भिर्निःसारूवरैः स्वल्पेऽप्यपराधपदे च स्वमनोऽननुकूलाचरणादिरूपे शापादिभिः कार्मणादिभिर्वा सद्योऽप्यपहरंति तज्जीवितान्यपि निस्त्रिंशहृदया. ॥ ७ ॥ एवंविधा लौकिका बहवोऽपि महर्षयः प्रसिद्धा., परिव्राजकश्चात्र निदर्श्यते, तथाहि —॥ ८ ॥ क्वचित्सन्निवेशे रोहीतकनामा परिव्राजकस्तप्यते स्म तपः, सोऽन्यदा क्वचिदुपलब्धतेजोलेश्यालब्ध्युपायः सम्यगनुष्ठिततद्विधिर्लब्धवांस्तेजोलेश्यां ॥ ए ॥

तेमज वळी उत्तम आचारवाळा गुरु आदिकपर घणोज मत्सर धारवाथी उछळता एवा रोषना समूहथी जयकर थयेला होय छे, तथा शुद्ध धर्म मार्गमा प्रवर्त्तनाराओने अथवा पोताने शिखामण आपनाराओने तथा जोला लोकोने तेओ मरावे छे ॥ ६ ॥ तेमज क्रूर हृदयवाळा थया थका तेवी रीतना क्षुद्र माणीओने जयनो उछाळो करनारा वचनोरूपी भिमिमना आमवगेरके करीने पोताना मनने अनुकूल न पमे तेवा आचरण आदिकरूप स्वल्प अपराध होते छते पण शाप आदिकोथी अथवा कामण आदिकोरुके करीने तुरत तेओना जीवित आदिकोने पण हरी ले छे ॥ ७ ॥ एवी रीतना घणा लौकिक महर्षिओ प्रसिद्ध छे, अहीं तेवा एक परिव्राजकनुं दृष्टांत देखामे छे, ते नीचे मुजब छे ॥ ८ ॥ कोइक सन्निवेशमा रोहीतक नामे परिव्राजक तप तपतो हतो, तेने एक वखते क्यांक तेजोलेश्यानी लब्धिनो उपाय मळी जवाथी तेनी विधि सारी रीते आराधिने तेणे तेजोलेश्या मेळवी ॥ ए ॥

अन्यदा तरुतलस्थस्य तस्य शिरसि तरुशिरःस्थबलाकया पुरीषव्युत्सर्जनं कृतं, ततो रुष्टेन तेन तेजोलेश्यया सा भस्मसाच्चक्रे ॥ १० ॥ अन्यदा स भिक्षायै पुरमविशत्, प्राप्तो जिनदासश्रेष्ठिगृहं, तत्र श्रीमदार्हतधर्मभावितहृदया नाम्नाऽर्थतोऽपि च शीलवती गृहस्वामिनी पतिशुश्रूषाव्यग्रा ॥ ११ ॥ कियद्विलम्बेन भिक्षां दातुमुद्यता यावत्तावन्महाक्रोधनप्रकृतिर्विलम्बदानरुष्टः स परिव्राट् बलाकागतिगोचरीकर्तुं तेजोलेश्या मुमुक्षुर्धूममुज्जगार मुखात् ॥ १२ ॥ तत्स्वरूपं च दृष्ट्वा सम्यक्श्रीजिनधर्मनिर्मलशीलगुणाऽवाप्तऽवधिज्ञानज्ञातबलाकादाहव्यतिकरा सर्वांगदृढशीलकवचा स्माह सा त प्रति, भद्र नाहं सा बलाकास्मीति ॥ १३ ॥

एक वखते ते एक वृक्ष नीचे बेठो हतो, एटलामां ते वृक्षनी टोचपर बेठेली एक बगलीए तेना मस्तकपर वीठ करी, तेथी क्रोधायमान थइ तेणे तेणीने तेजोलेश्याथी बाळी नाखी ॥१०॥ पछी एक समये ते भिक्षा माटे नगरमां गयो, तथा त्यां जिनदास शेठने घेर पहोंच्यो, त्यां श्रीमज्जैन धर्मथी भावित छे हृदय जेणीनुं, तथा नामथी अने अर्थथी पण शीलवती शेठाणी पोताना स्वामिनी सेवामां गुथायेली हती, ॥ ११ ॥ अने तेथी जरा विलंबथी जेटलामां ते भिक्षा देवाने तैयार थइ, तेटलामां महा क्रोधिष्ट प्रकृतिवाळो ते परिव्राजक विलंबदानथी रोषयुक्त थइने तेणीने बगलीनी हालते पहोंचाडवाने तेजोलेश्या मूकवानी इच्छाथी मुखमांथी धुमाडा काढवा लाग्यो, ॥ १२ ॥ ते स्वरूप जोइने सम्यक् एवा श्रीजिनधर्म तथा निर्मल एवा शीलगुणथी प्राप्त थयेला अवधिज्ञानथी जाणेल छे बगलीना दाहनो वृत्तांत जेणीए, तथा सर्व अंगे दृढ शीलरूपी कवचवाळी एवी ते शीलवती तेने कहेवा लागी के, हे भद्र ! हुं कइ ते बगली नथी ॥ १३ ॥

तद्वचनचकितश्च स मनागुपशात इवाऽप्राक्षीत्तां, कथं वेत्सि बलाकाव्यतिकर? साऽज्ञाणीत, एतत्तो वाणारसीवासी कुलालः कथयिष्यति ॥ १४ ॥ ततो विस्मितः स वाणारस्यां गत, मिलितमात्रस्तेन कुलालेन प्रथममेव ज्ञापितश्च नद शीलवत्या प्रेषितोऽसि संशयप्रश्नार्थं ॥ १५ ॥ तत् श्रुत्वा भृशं चमत्कृतः सः तत. पुनरुक्त कुलालेन, शीलगुणेन शीलवत्या अवधिज्ञानमुत्पन्न, ममापित्र, तेन यथास्थित बलाकादिस्वरूपं जानीम. ॥ १६ ॥ तत प्रतिबुद्ध. स सम्यक्त्वशीलसुन्नग धर्मं प्रत्यपद्यतेति, एवं लोकोत्तरानाश्रित्यापि निदर्शनानि स्वय ज्ञेयानि ॥ १७ ॥

ते वचनथी आश्चर्य पामीने ते परिव्राजक जरा जाणे उपशात थयो होय नहीं, तेम तेणीने पूछवा लाग्यो के, ते ते बगलीनु वृत्तात शी रीते जाण्यु? त्यारे तेणीए कह्यु के, ते हकीकत तने वाणारसी नगरीनो वासी कुंभार कहेशे ॥ १४ ॥ ते सांभळी आश्चर्य पामीने ते वाणारसीमा गयो, त्या मळताज ते कुंभारे पेहेलेथीज तेने कह्यु के, हे भद्र! तने शीलवतीए संशय पूछवा माटे मोकल्यो छे नी? ॥ १५ ॥ ते सांभळी ते अत्यत आश्चर्य पाम्यो, त्यारे कुंभारे फरीने तेने कह्यु के, शीलगुणे करीने शीलवतीने अवधिज्ञान उत्पन्न थयु छे, तेम मने पण उत्पन्न थयु छे, अने तेथी ते बगलीनु यथास्थित वृत्तात अमो बन्ने जाणीये छीये ॥ १६ ॥ ते सांभळी ते परिव्राजके प्रतिबोध पामी सम्यक्त्व तथा शीलथी मनोहर धर्म स्वीकार्यो; एवी रीते लोकोत्तर गुरुओने आश्रीने पण दृष्टांतो पोतानी मेळेज जाणी लेवां ॥ १७ ॥

यद्वाऽपहरति शुद्धधर्मजीवितानि जनाना स्वार्थसिद्ध्यनुसारिस्वेच्छाप्ररूपितधर्मानासोपदेशदर्शनक्रियादिभि, इति सर्पसदृशा केचन गुरव ॥ १८ ॥ उक्तच—सप्पो इक्क मरण । कुगुरु अणनाणि कुणइ मरणाइ ॥ तोवरि सप्प गहिउ । मा कुगुरुसेवण नद्द ॥ १९ ॥ इत्युक्ता सर्पदृष्टान्तभावना। अथ आमोसगत्ति, आमोपकाश्चौरविशेषास्ते हि शस्त्रादिभिर्त्रासयित्वा लोकाना धनानि मुष्णन्ति ॥ २० ॥ एव केचित् कुगुरुत्वाद्यभिमानभृत केवलैहिकार्थप्रतिबद्धा शापकार्मणपक्तिवहिःकरणशिरोजठरस्फोटादिभियो विविधा प्रदर्श्य शुद्धधर्मधनान्यामुष्णन्ति मुग्धजनाना, वसुराजस्येव पर्वतक, तथाहि—॥ २१ ॥

अथवा स्वार्थनी सिद्धिने अनुसारे पोतानी इच्छा मुजब प्ररूपेला एवा धर्मोनारूप उपदेशना देखाडवापणा तथा क्रिया आदिकवडे करीने लोकोना शुद्ध धर्मरूप जीवितने तेओ हरी ले छे, माटे एवा केटलाक गुरुओ सर्प सरखा होय छे ॥ १८ ॥ कयु छे के—सर्प तो एक वखत मरण करे छे, परतु कुगुरु अनंता मरणो करे छे, माटे सर्पने ग्रहण करवो सारो, परतु कुगुरुने सेववा सारा नहीं ॥ १९ ॥ एवी रीते सर्पना दृष्टान्तनी भावना कही हवे आमोसग एटले चोर विशेषो, तेओ शस्त्र आदिकोथी डरावीने लोकोना धन हरी ले छे, ॥ २० ॥ एवी रीते केटलाक कुगुरुपणा आदिकना अभिमानथी भरेलाओ तथा केवल आ लोक सबधिना स्वार्थमा मचेला थइने शाप, कामण, ज्ञातिबहार करवापणु, तथा मस्तक पेट फोडवा आदिकना विविध प्रकारना भयो देखाडीने भोळा लोकोना शुद्ध धर्मरूपी धनोने तेओ हरी ले छे, (कोनी पेठे ? तोके) वसु राजा प्रत्ये जेम पर्वत, ते कहे छे—॥ २१ ॥

शुक्तिमतीपुर्यां क्षीरकदंबोपाध्यायपुत्र पर्वतक. पितर्युपरते तत्पदवीमारूढश्छात्रान् व्या-
ख्यति ॥ २२ ॥ तस्य सहाध्यायिनौ वसुर्नाम राजा नारदश्च, तत्र वसुनृपः स-
त्यवादी गगनतलावलंबिस्फाटिकपीठस्थ सिंहासनमध्यास्ते ॥ २३ ॥ सत्यवादि-
महिम्ना नृपस्य सिंहासनं गगनस्थायीति जने प्रसिद्धि. ॥ २४ ॥ अन्यदोपा-
ध्यायपुत्रश्छात्रानध्यापयन्नजैर्यष्टव्यमित्यत्राजैश्छागैरिति व्याख्यानयस्तदा तत्रागतेन
नारदेन मैवं वादीरुपाध्यायेनाऽजशब्देन त्रिवार्षिका व्रीहय. प्रोक्ता, इति प्रति-
षिद्ध ॥ २५ ॥

शुक्तिमती नामनी नगरीमा क्षीरकदंबक नामना उपाध्यायनो पुत्र पर्वत, (पोतानो) पिता मृत्यु पामते छते तेनी पदवीपर बेसीने शिष्योने भणाववा लाग्यो ॥ २२ ॥ वसु नामे राजा तथा नारद तेना सहाध्यायिओ एटले साथे भणनाराओ हता, तेमाथी वसुराजा सत्यवादी होवाथी आकाशतलमा अधर रहेली स्फटिकनी पाटपर रहेला सिंहासनपर बेसतो हतो ॥ २३ ॥ सत्यवादीना माहात्म्यथी राजानु सिंहासन आकाशमा स्थिर रहेनारु छे, एम लोकोमा ख्याति थइ हती ॥ २४ ॥ एक दहाडो उपाध्यायनो पुत्र (पर्वत) शिष्योने भणावतो थको 'अजोवडे करीने होम करवो' ए पाठनो 'अज' एटले 'बकराओ' एवो अर्थ करवा लाग्यो; ते वखते त्या आवेला नारदे तेने प्रतिषेध कर्यो के, तु तेनो एवो अर्थ नही कर? उपाध्यायजीए तो 'अज' शब्दनो अर्थ त्रण वर्षोनी (जूनी) शाळ (चावल) कह्यो छे ॥ २५ ॥

मिथो विवदमानौ च तौ शिर पण चक्रतुर्वसुनृप च साक्षिण, तत पर्वतो वसुनृप स्वपक्ष प्रतिपादयितु पूर्वं गत्वा विविधोपरोधभीतिदर्शनादिभिर्गिरा पर्यवासयत् ॥ २६ ॥ ताभिरप्यप्रतिपद्यमान त मत्वा स्वमातुरग्रे तत्स्वरूप न्यरूपयत् तदनु सा तज्जननी वसुनृप समाह, देहि मे गुरुपत्न्या पुत्रजीवित, यद्वा प्रतीच्छाधुनैवेमा गुरुपत्नीहत्या ॥ २७ ॥ इत्युक्त्वा यावत्सा मरणोद्यताऽभूत् तावद् भीतस्तद्वच प्रत्यपद्यत नृप ॥ २८ ॥ ततो विवदमानौ प्राप्तौ तत्र नारदपर्वतौ, तत्र पर्वतकपक्ष कुर्वन्नृप सद्यो देवतया चपेटाहतो भूमौ नरके चापतदिति ॥ २९ ॥ एवमपरेऽपि दृष्टान्ता ज्ञेया, इत्यामोपकल्पावना ॥ ३० ॥

एवी रीते परस्पर विवाद करता एवा तेओ बन्नेए मस्तक आपवानी शरत करी, तथा ते माटे वसुराजाने साक्षी रयो, तेथी पर्वत वसुराजाने पोतानो पक्ष अंगीकार कराववा माटे प्रथमथीज तेनी पासे जइ, विविध प्रकारना आग्रह तथा भय देखाडवा आदिकथी समजाववा लाग्यो ॥ २६ ॥ परंतु तेथी पण तेने नहीं स्वीकार करतो जाणीने, तेणे पोतानी माता पासे ते वृत्तांत कह्यु, त्यारे तेनी माता वसुराजा पासे जइ कहेवा लागी के, मने गुरुपत्नीने पुत्रनु जीवित दे? अथवा तो अत्यारेज गुरुपत्नीनी हत्या स्वीकार? ॥ २७ ॥ एम कहीने जेटलामा ते मरण पामवाने (आपघात करवाने) तैयार थइ, तेटलामा राजाए डरीने तेणीनु वचन स्वीकार्यु ॥ २८ ॥ एटलामा नारद अने पर्वत बन्ने विवाद करता थका त्या आव्या, त्या पर्वतनो पक्ष करता एवा राजाने तुरत देवताए थपाट मारी पृथ्वीपर तथा नरकमा पाड्यो ॥ २९ ॥ एवी रीते बीजा पण दृष्टांतो जाणी लेवा, एवी रीते आमोपक सत्यनि भावना जाणवी ॥ ३० ॥

ठगन्ति, ठका नाम धूर्ता, मधुपिधानविषकुम्भसमानाः, केदारमार्जारादिसदृशा, यथा ते कपटकोटिपटुतया मुग्धजनाना धनान्यपहरंति जीवितान्यपि च ॥ ३१ ॥ तथा केचिद्गुर्वाभासा हृदि नास्तिकाः, बहिः क्रियाडंबरमधुरवचनादिभिर्जनान् विप्रलभ्य स्वेष्टसिद्ध्यनुसारेण धर्माभासदेशनादिभिः सुविहितसाधुसंगनिवारणादिभिश्च तेषां शुद्धधर्मधनानि शुद्धधर्मजीवितानि चाऽपहरंति ॥ ३२ ॥ तदुक्तं—पीयूषधारामिव दाम्भिका प्राक् । प्रह्लादनीयां गिरमुद्गिरंति ॥ पुनर्विपाकेऽखिलदोषधात्री । सैवातिशेते यत कालकूटं ॥ ३३ ॥ अपि च,—जटामौंड्यशिखाभस्मवल्कनाग्न्यादिधारणैः ॥ मुग्धं जनं गर्धयते । पाखण्डा हृदि नास्तिका ॥ ३४ ॥

ठगो एटले धूर्तो, तेओ मधथी ढाकेला झेरना घडा सरखा, केदारनी माळावाळा बीलाडा आदिकनी पेठे होय छे, तेओ जेम कपटनी रीतिनी चतुराइथी भोळा लोकोना धनो तथा जीवितोने पण हरे छे ॥ ३१ ॥ तेम केटलाक गुर्वाभासो हृदयमा तो नास्तिक होय छे, परंतु बहारथी क्रियाना डंभ तथा मधुर वचन आदिकथी लोकोने ठगीने पोतानी इच्छित सिद्धिने अनुसारे धर्मना आभास सरखी देशना आदिकोथी तथा उत्तम साधुना संगनु निवारण करवा आदिकथी तेओना शुद्ध धर्मरूप धनोने तथा शुद्ध धर्मरूप जीवितोने हरी ले छे ॥ ३२ ॥ कह्यु छे के—कपटीओ प्रथम तो अमृत धारा सरखी ठगावाळी वाणी बोले छे, परंतु विपाक वखते (अंते) समस्त दोषोने उत्पन्न करती थकी ते कालकूट झेर करता पण अधिक थाय छे. ए खेदनी वात छे ॥ ३३ ॥ वळी पण, हृदयमा नास्तिक एवा पाखंडीओ जटा, मुंडपणु, शिखा, भस्म, तथा नग्नपणु आदिकने धारवावडे करीने मुग्ध लोकने ठगे छे ॥ ३४ ॥

मिथो विवदमानौ च तौ शिर पण चक्रतुर्वसुनृप च साक्षिण, तत पर्वतो वसुनृप स्वपक्ष प्रतिपादयितु पूर्वं गत्वा विविधोपरोधभीतिदर्शनादिभिरपि पर्यवासयत् ॥ २६ ॥ ताभिरप्यप्रतिपद्यमान त मत्वा स्वमातुरग्रे तत्स्वरूप न्यरूपयत् तदनु सा तज्जननी वसुनृप स्माह, देहि मे गुरुपत्न्या पुत्रजीवित, यद्वा प्रतीच्छाधुनैवेमा गुरुपत्नीहत्या ॥ २७ ॥ इत्युक्त्वा यावदसा मरणोद्यताऽभूत् तावद् भीतस्तद्वच प्रत्यपद्यत नृप ॥ २८ ॥ ततो विवदमानौ प्राप्तौ तत्र नारदपर्वतौ, तत्र पर्वतकपक्ष कुर्वन्नृप सद्यो देवतया चपेटाहतो भूमौ नरके चापतदिति ॥ २९ ॥ एवमपरेऽपि दृष्टान्ता ज्ञेया, इत्यामोषकभावना ॥ ३० ॥

एवी रीते परस्पर विवाद करता एवा तेओ बन्नेए मस्तक आपवानी शरत करी, तथा ते माटे वसुराजाने साक्षी कर्यो, तेथी पर्वत वसुराजाने पोतानो पक्ष अगीकार करावा माटे प्रथमथीज तेनी पासे जइ, विविध प्रकारना आग्रह तथा भय देखाडवा आदिकथी समजाववा लाग्यो ॥ २६ ॥ परतु तेथी पण तेने नहीं स्वीकार करतो जाणीने, तेणे पोतानी माता पासे ते वृत्तात कह्यु, त्यारे तेनी माता वसुराजा पासे जइ कहेवा लागी के, मने गुरुपत्नीने पुत्रनु जीवित दे? अथवा तो अत्यारेज गुरुपत्नीनी हत्या स्वीकार? ॥ २७ ॥ एम कहीने जेटलामा ते मरण पामवाने (आपघात करवाने) तयार थइ, तेटलामा राजाए डरीने तेणीनु वचन स्वीकार्यु ॥ २८ ॥ एटलामा नारद अने पर्वत विवाद करता थका त्या आव्या, त्या पर्वतनो पक्ष करता एवा राजाने तुरत देवताए थपाट मारी पृथ्वीपर तथा नरकमा ॥ २९ ॥ एवी रीते बीजा पण दृष्टातो जाणी लेवा, एवी रीते आमोषक सबधि भावना जाणवी ॥ ३० ॥

ठगन्ति, ठका नाम धूर्त्ता, मधुपिधानविषकुम्भसमाना, केदारमार्जारादिसदृशा., यथा
ते कपटकोटिपटुतया मुग्धजनाना धनान्यपहरति जीवितान्यपि च ॥ ३१ ॥
तया केचिद्गुर्वाभासा हृदि नास्तिका , बहि क्रियाडम्बरमधुरवचनादिभिर्जनान् विप्र-
लभ्य स्वेष्टसिद्ध्यनुसारेण धर्माभासदेशनादिभि सुविहितसाधुसगनिवारणादिभि-
श्च तेषा शुद्धधर्मधनानि शुद्धधर्मजीवितानि चाऽपहरंति ॥ ३२ ॥ तदुक्त—पी-
यूषधारामिव हादिका प्राक् । प्रजल्पनीया गिरमुद्गिरति ॥ पुनर्विपाकेऽखिलदो-
षखानी । सैवातिशेते बत कालकूट ॥ ३३ ॥ अपि च,—जटामौण्ड्यशिखाभस्म-
वल्कनाग्न्यादिधारणे ॥ मुग्ध जन गर्धयते । पापमा हृदि नास्तिकाः ॥ ३४ ॥

ठगो एटले धूर्तो, तेओ मधथी ढांकेला झेरना घडा सरखा, केदारनी माळावाळा बीलाडा आदिकनी पेठे होय छे, तेओ जेम कपटनी रीतिनी चतुराइथी भोळा लोकोना धनो तथा जीवितोने पण हरे छे ॥ ३१ ॥ तेम केटलाक गुर्वाभासो हृदयमा तो नास्तिक होय छे, परतु बहारथी क्रियाना ढग तथा मधुर वचन आदिकथी लोकोने ठगीने पोतानी इच्छित सिद्धिने अनुसारे धर्मना आभास सरखी देशना आदिकोथी तथा उत्तम साधुना सगनु निवारण करवा आदिकथी तेओना शुद्ध धर्मरूप धनोने तथा शुद्ध धर्मरूप जीवितोने हरी ले छे ॥ ३२ ॥ कहु छे के—कपटीओ प्रथम तो अमृत धारा सरखी ठगाडवाळी वाणी बोले छे, परतु विपाक वखते (अते) समस्त दोषोने उत्पन्न करती थकी ते कालकूट झेर करता पण अधिक थाय छे. ए खेदनी वात छे॥ ३३ ॥ वळी पण, हृदयमा नास्तिक एवा पापमीओ जटा, मुडपणु, शिखा, भस्म, तथा नग्नपणु आदिकने धारवाथी करीने मुग्ध लोकने ठगे छे ॥ ३४ ॥

केदारमार्जारसंवध पुनरय, तद्यथा—क्वचिद्वृक्षाधस्तित्तिरिर्वसति, अन्यदा तस्मि-
न् प्राणयात्रार्थे पक्वशालिक्षेत्रेषु प्राप्ते शशकस्तदावासमरुधत् ॥ ३५ ॥ किय-
द्भिर्दिने स्वाश्रय प्राप्त शशक प्रत्याह, शीघ्र निर्गच्छ, ममायमाश्रम., शशोऽ-
वक् ममैवायमिति ॥ ३६ ॥ तित्तिरि —पृच्छ्यता प्रातिवेश्मिका, उक्तच—
वापीकूपतडागाना । गृहस्योपवनस्य च ॥ सामतप्रत्यया सिद्धि—रित्येव मनुरब्र-
वीत् ॥ ३७ ॥ शश —मूर्ख किं न श्रुत स्मृतिवच.? प्रत्यक्ष यस्य यद्भुक्त ।
क्षेत्राद्य दशवत्सरान् ॥ प्रमाण नाक्षराण्यत्र । साक्षी वा तस्य तद्भवेत्
॥ ३८ ॥

केदारनी माळावाळा बिलाडानु दृष्टांत तो नीचे मुजब छे—कोइक वृक्षनी नीचे एक तेतरपक्षी रहेतु हतु, एक वखते ते चरवा माटे पाकेला चाखना खेतोमा गयु, ते वखते एक ससले आवीने तेनु स्थान दबाव्यु ॥ ३५ ॥ केटलेक दिवसे ते तितिर पोताने स्थानके आवीने ससलाने कहेवा लाग्यु के, तु अहींथी जलदी चाल्यो जा? आ मारु स्थान छे, त्यारे ससले कह्यु के, आ स्थान तो मारुज छे ॥ ३६ ॥ तितिरे कह्यु के, ते माटे तु पाडोशीओने पूछी जो? कह्यु छे के—वाव, कुवा, तलाव, घर, तथा बगीचानी मालिकीनी खातरी पाडोशीद्वारा थाय छे, एम मनुऋषि कहे छे ॥ ३७ ॥ त्यारे ससले कह्यु के—अरे! मूर्ख! त शु स्मृतिनु वचन सांभळ्यु नथी? क्षेत्र आदिक प्रत्यक्ष रीते जेणे दश वर्षो सुधि भोगव्यु छे, ते तेनुज कहेवाय छे, तेमा दस्तावेज के साक्षीनी कइ जरूर रहेती नथी ॥ ३८ ॥

तथा च नारदमतं—मानुषाणां प्रमाणं स्याद्भुक्तिर्वै दशवार्षिकी ॥ विहगानां तिरश्चां च । यावदेव समाश्रय. ॥ ३९ ॥ ततो यद्यपि तवाश्रयस्तथापि शून्यो मयाश्रित इति ममैवाय, तित्तिरि—स्मृतिं चेत्प्रमाणयसि तत्स्मार्त्तान् पृच्छामस्ते यस्मै ददति तस्यायमिति ॥ ४० ॥ ततो गंगापुलिने केदारककणाचरणास्तपोनियमव्रतस्थो दृष्टो दधिकर्णो नाम मार्जार., धर्मात्माय विवादं छिनत्त्वित्युक्ते, शश —अक्षमनेन क्षुद्रेण,—न हि विश्वसनीयं स्यात्तपश्छद्मस्थितेऽधमे ॥ दृश्यते चैव तीर्थेषु । गलवर्त्तास्तपस्विन ॥४१॥ तत् श्रुत्वा दशनिधिस्तद्विश्वासनायादित्याभिमुखो द्विपादावस्थित ऊर्ध्वबाहुर्निमीलितनयनो धर्मदेशनामकरोत्स. ॥ ४२ ॥

वळी नारदनो मत पण नीचे मुजब छे— मनुष्योना सरधमा दश वर्षोनो भोगवो प्रमाणभूत छे, अने पक्षी तथा तिर्यंचोनी मालिकी ज्यांमुधि तेओ रहेता होय त्यांमुधिनी छे ॥ ३९ ॥ माटे जोके आ तारु स्थान छे, परंतु ते शून्य पडेलु होवाथी, तेमा हु रह्यो, माटे ते हवे मारुं छे; ते सांभळी तितिरे कह्यु के, आ वातमां जो तु स्मृतिने प्रमाणभूत गणे छे, तो चाल्यो आपणे ते स्मृति जाणनाराओने पूछीए, तेओ जेने आपशे, तेनु आ स्थान ॥ ४० ॥ पछी तेओए गंगाना किनारापर केदारना कणना आचरणवाळो, तपनियम तथा व्रतमा स्थिर थयेलो दधिकर्ण नामनो बिलाडो जोयो, आ धर्मात्मा विवाद कापशे, एम कहेते छते ससलो कहेवा लाग्यो के अरे! आ नीचथी तो सर्यु, केमके कपटी तथा अधमनो तप विश्वास करवा लायक नथी, केमके एवा गळु कापनारा घणा तपस्वीओ तीर्थोमा देखाय छे ॥ ४१ ॥ ते सांभळी कपटना भंडार सरखो ते बिलाडो तेओने विश्वास उपजाववा माटे सूर्य सन्मुख बे पगे उभीने, तथा बन्ने हाथो उंचा करीने अने आंखो मीचीने नीचे मुजब धर्मोपदेश करवा लाग्यो ॥ ४२ ॥

अहो—असारोऽय ससार., स्वप्नसदृशा प्रियसगमा, तद्धर्मादन्या गतिर्नास्ति ॥४३॥ उक्तच—यस्य धर्मविहीनस्य । दिनान्यायाति याति च ॥ स लोहकारभस्त्रेव । श्वसन्नपि न जीवति ॥ ४४ ॥ इत्यादिदेशना श्रुत्वा विश्वस्तौ तावाहतु, नपस्विन् धर्मदेशक आवयोर्विवाद धर्मशास्त्रेण ज्ञात्वा निर्णय देहि ॥ ४५ ॥ यो मिथ्यावादी स ते भक्ष्य इति, मार्जार —आ शात पाप शात पाप, निर्विण्णोऽह नरककारणाद्धिसाया ॥ ४६ ॥ अहिसापूर्वको धर्मो यस्मात् सर्वहिते रत ॥ यूकामत्कुणदशादी—स्तस्मात्तानपि रक्षयेत् ॥ ४७ ॥ हिसकान्यपि भूतानि । यो हिनस्ति सुनिर्घृण ॥ स याति नरक घोर । किं पुनर्यः शुभानि च ॥ ४८ ॥

अहो! आ ससार तो असार छे, प्रेमिओना सगमो स्वप्न सरखा छे, माटे धर्म शिवाय बीजो (ससारथी तरवानो) उपाय नथी ॥ ४३ ॥ कह्यु छे के—धर्म रहित एवा जे माणसना दिवसो आवे छे, अने जाय छे, ते लुहारनी धमणनी पेठे श्वास लेतो थको पण जीवतो नथी (अर्थात् मृत्यु पामेला सरखो छे) ॥ ४४ ॥ इत्यादि देशना सांभळीने विश्वास पामेला एवा तेओ बन्ने (तितिर अने ससलो) तेने कहेवा लाग्या के, हे तपस्वी धर्मोपदेशक! अमारो विवाद धर्मशास्त्र पूर्वक जाणीने तु तेनो निर्णय करी आप ॥ ४५ ॥ जे मिथ्यावादी थाय, तेने तारे भक्षण करवो, ते सांभळी बिलाडो बोल्यो के, अरे! पाप शांत थयु! शांत थयु! (राम! राम! राम!) नरकना कारणरूप हिंसाथी हु तो कंटाळी गयो छु!! ॥ ४६ ॥ अहिंसारूप धर्म सर्वोत्कृष्ट छे, केमके ते धर्म सर्वने हितकारी छे, अने तेटला माटे जू, माकड, तथा डांस आदिकोनु रक्षण करवु ॥ ४७ ॥ हिंसक प्राणीओने पण जे कोइ निर्दय थइने मारे छे, ते घोर नरकमा जाय छे, त्यारे उत्तम प्राणीओने मारनाराओनी तो वातज शु करवी? ॥ ४८ ॥

तत्रेदं वाच्यं, पर वृद्धोऽहं दूरान्न युवयोर्जल्पोत्तरं शृणोमि, तत्कथं न्याय कुर्वे, तत्समीपे भूत्वा निवेद्यतां ॥ ४९ ॥ यथा विज्ञातपरमार्थं वदतो मे परलोक-बाधा न स्यात्, उक्त च—मानाद्वा यदि वा क्रोधा—ल्लोभाद्वा यदि वा भयात् ॥ यो न्यायमन्यथा ब्रूते स याति नरकं नरः ॥ ५० इत्याद्युक्त्वा तथा विश्वासितौ यथातिकमागतौ, तावदेक पादेन द्वितीयो दंष्ट्रयाक्रम्य हताविति, इति वकदृष्टांतभावना ॥ ५१ ॥ वणिक्ति, वणिजो यथा मूल्येनैव जनानां क्रया-णकाद्यर्पयति, नान्यथा, आवर्जयति च ग्राहकान्मायामधुरवचनादिभिर्यथा ते ना-ऽन्यत्रापणादौ व्रजंति, सुखेन च वंचयितुं शक्याः स्युः ॥ ५२ ॥

माटे ते हिंसानी तो वातज करवी नहीं, परंतु हुं वृद्ध छुं, माटे दूरथी तमारा बोलवुं हुं सांजळी शकतो नथी, माटे न्याय केवी रीते करी शकुं? माटे मारी पासे आवीने तमारे जे कंइ कहेवुं होय, ते कहो? ॥ ४९ ॥ के जेथी परमार्थ जाणीने तमोने उत्तर देवाथी मने परलोक संबंधि बाधा न थाय, कयुं छे के—मानथी अथवा क्रोधथी अथवा लोजथी अथवा जयथी जे अन्याय कहे छे, ते मनुष्य नरके जाय छे. ॥५०॥ इत्यादिक कहीने तेओने तेणे एवो तो विश्वास उपजाव्यो, के जेथी तेओ बन्ने नजीक आव्या, के तुरत एकने पगथी तथा बीजाने दाढथी दाबीने तेणे मारी नाख्या, एवी रीते बगला दृष्टांतनी जावना जाणवी ॥ ५१ ॥ हवे वणिको जेम मूल्य लेइनेज लोकोने करियाणा आदिक आपे छे, परंतु मूल्य लीधा विना आपता नथी, तेमज कपट युक्त मीठा वचनो वडे करीने ग्राहकोने तेओ एवा तो खुशी करे छे के, जेथी तेओ बीजानी दुकान आदिकमा जता नथी, अने तेम करी सुखेथी तेओने ठगी शके छे. ॥ ५२ ॥

तदुक्त—नृपे. कूटप्रयोगेण । वणिग्भि कूटचेष्टितै· ॥ विप्रै. कूटक्रियाकारै—मुग्धोऽय वच्यते जन ॥ ५३ ॥ एव केचित् कुगुरवो मूल्येनैव सम्यक्त्वालोचनादि ददते, प्रतिष्टादि वा कुर्वते ॥ ५४ ॥ चिकित्सादि कृत्वा विद्याप्रागल्भ्य तच्चमत्कारादिविधिमत्रयंत्राद्यर्पणकार्मणवशीकरणादिलाभालाभादिनिमित्तशकुनमुहूर्त्तादि च प्रकाश्य दानादि गृह्णाति ॥ ५५ ॥ विविधावर्जनादिभिर्वशीकुर्वति च धर्मार्थिनोऽपि जनास्तथा, यथा नान्यान् सुविहितगुरूनप्याश्रयति, प्रत्युत हसति तास्तदनुसारिणश्च ॥ ५६ ॥

कहु छे के राजाओ जोटा लोकोने खोटा आठ आदिक प्रयोगोथी वणिको खोटी चेष्टाओथी तथा ब्राह्मणो केवा क्रियाकामोथी ठगे छे ॥ ५३ ॥ एवी रीते केटलाक कुगुरुओ किमत लेइनेज समकीत, आलोयण आदिक दीये छे, अथवा प्रतिष्ठा आदिक करे छे ॥ ५४ ॥ तेमज वेद्यक (ओषध) आदिक करीने तथा विद्यानी वडाइ, ते संबधि चमत्कार आदिक विधि, मत्रयत्र आदिकनु आपवु, कामण, वशीकरण आदिक लाभ अलाभ आदिक निमित्त, शकुन, तथा मुहूर्त आदिक प्रकाशीने तेओ दान आदिक ग्रहण करे छे ॥ ५५ ॥ वळी नाना प्रकारथी खुशी करवा आदिक कर्म करीने धर्मार्थि लोकोने पण एवा तो तेओ वश करे छे के, जेथी तेओ बीजा उत्तम गुरुओने पण सेवता नथी, परतु उलटी तेवा उत्तम गुरुओनी तथा तेओना सेवकोनी हासी करे छे ॥ ५६ ॥

तथा चाहु—कष्टं नष्टदिशां नृणां यद्दृशां जात्यधवैदेशिकः । कांतारे प्रविशत्यजीप्सितपुराध्वानं किलोत्कंधरः ॥ एतत् कष्टतरं तु सोऽपि सुदृशः सन्मार्गगास्तद्विदः—स्तच्छास्यानुवर्त्तिनो हसति यत्सावज्ञमज्ञानिव ॥ ५७ ॥ दुष्यमायामेवंविधा बहवोऽपीति न दृष्टांतोपन्यासः, एते च निजाजीविकामात्रार्थं धर्मस्य श्रुतस्य च विक्रयकारिणः परलोकपराङ्मुखाः स्वयं संसारे मज्जंति ॥ ५८ ॥ स्वाश्रितान् सन्मार्गभ्रंशकुमार्गप्रवर्त्तनादिभिर्मज्जयति च, उक्तं च लौकिकैरपि,—मंत्रभेदी पृथक्पाकी । आदेशी वेदविक्रयी ॥ तरुणायां योषितस्त्यागी । पंचैते ब्रह्महाः स्मृताः ॥ ५९ ॥

वळी कह्यु छे के—दिशा भूली गयेला एवा अंध मनुष्योने अनाथ परदेशी ऊंची डोक करीने, तेओना इच्छित नगरनो मार्ग जे वनमा देखाडे छे, ते खेददायक वात छे, परंतु आ तो तेथी पण वधारे खेदकारक छे के, उत्तम दृष्टिवाळा तथा उत्तम मार्गे जनारा, तथा ते मार्गने जाणनारा, अने ते जाणनारना वाक्यने नहीं अनुसरनारा एवा लोकोनी ते जे अवज्ञा सहित अज्ञानीओनी पेठे जाणीने हासी करे छे ॥ ५७ ॥ आ दुःखमकालने विषे एवा घणाओ देखाय छे, माटे अहीं तेओनुं दृष्टांत कह्यु नथी, एवा कुगुरुओ मात्र पोतानी आजीवीकानेज अर्थे धर्म तथा ज्ञानने वेचे छे, तेमज परलोकथी पराङ्मुख थया थका पोते संसार सागरमा बूडे छे ॥ ५८ ॥ तेमज पोताना आश्रितोने पण उत्तम मार्गथी पाडीने तथा कुमार्गमा प्रवर्त्ताववा आदिके करीने बूडाडे छे, अन्य दर्शनीओए पण कह्यु छे के—मंत्रभेद करनार, जूदी रसोइ करनार, वेदने वेचनार, तथा युवान स्त्रीनो त्याग करनार ए पाचेने ब्रह्महत्या करनारा कह्या छे ॥ ५९ ॥

इति वणिग्दृष्टांतभावना वंध्यगवीव्ति, यथा वंध्या गौश्चारि मार्गयति निरंतर, न तु प्रसूते दुह्यते वा, एवं केचन कुलगुर्वाद्यभिमानमात्रप्रतिबद्धा नित्यं विशिष्टाहार-वस्त्रपूजादिकमर्थयंते ॥ ६० ॥ तदकरणे रुष्यति, बलादपि गृह्णति च, न पुनर्विशिष्टागमानुसारिपुण्यक्रियाद्याचारमुज्ज्वलतर दृपोपम प्रसुवते ॥ ६१ ॥ नापि तथाविधपुण्योपदेशादिना श्राद्धजनानुपकुर्वंतेऽपि, तथा चोक्त—येर्जातो न च वर्धितो न च न च क्रीतोऽधमर्णो न च । प्राग् दृष्टो न च बांधवो न च न च प्रेयान्न च प्रीणित ॥ तैरेवाल्यधमाधमे कुलमुनिव्याजैर्बलाद्वाह्यते । नस्योतपशुवज्जनोऽयमनिशं नीराजक हा जगत् ॥ ६२ ॥

एवी रीते वणिकना दृष्टांतनी भावना जाणवी हवे जेम वंध्या गाय चारो तो हमेशां मागे छे, परतु ते व्याती नथी अथवा दूझती पण नथी, एवी रीते केटलाक कुलगुरु आदिकनु मात्र अभिमान धारण करीने हमेशां उत्तम आहार, वस्त्र तथा पूजा आदिक मागे छे, ॥ ६० ॥ अने जो तेम करवामां न आवे तो तेओ रोष पामे छे, अने बळात्कारे पण ते ग्रहण करे छे, परतु विशेष रीते आगमने अनुसरनारी पवित्र क्रिया आदिकना दृपन सरखा उज्ज्वल एवा आचारने उत्पन्न करी शकता नथी ॥ ६१ ॥ तेमज तेवी रीतना पवित्र उपदेश आदिकें करीने श्रावक लोकोने उपकार पण करता नथी, वळी छे के—जेओए उत्पन्न कर्या नथी, पोषेलो नथी, वेचाती लीधो नथी, करजे राखेलो नथी, पूर्वे दीठेलो नथी, सबधि नथी, व्हालो नथी, खुशी करेलो नथी, एवा पण महा नीचमा नीच तथा कुलना छे मुनिपणानो मेळ जेओए एवा कुगुरुओएके करीने नाथना पशुनी पेठे बळात्कारे आ लोक वहन कराय छे. माटे हाय! हाय! आ जगत् नायक विनानु छे ॥ ६२ ॥

त्रौतिकशिष्याश्चात्रोदाहरण—गौडग्रामे सरको नाम त्रौतिकाचार्यः, तस्य भूयांस शिष्या, पर न ते किमपि पठति, गणयति, क्रियां वा कुर्वते ॥ ६३ ॥ किं तु निद्रावार्त्ताविकथादिपरास्तिष्ठति, तथापि तत्रत्यो भृश मूर्खो लोकस्तद्गुणरजितोऽहमहमिकापूर्वं तेषां भोजनवस्त्रादिबह्वादरेण ददाति ॥ ६४ ॥ तेनानिश यथेच्छाहारविहाराद्भिना पुष्टवपुषो महिषप्रायास्तेऽभूवन्, ततोऽन्यदा तद्ग्रामवासिना ग्राम्यकविना द्विजेन ग्राममध्ये बहुयाचनेऽपि ॥ ६५ ॥ किमप्यलभमानेन तान् दृष्ट्वा विस्मयापन्नेन साश्चर्यमुपश्लोकितास्ते, भरटकतवचट्टा अवपुट्टा समुट्टा । न पठति न गुणति नेव कव्व कुणाते ॥ वयमपि च पठामो किं पि कव्व कुणामो । तदपि भुख मरामो कर्मणा कोऽत्र दोष ॥ ६६ ॥

अहीं भौतिक शिष्योनु दृष्टांत कहे छे—गौड गाममा सरक नामे एक भौतिक आचार्य हतो, तेने घणा शिष्यो हता, परंतु तेओ नहीं कइ भणता, गणता के क्रिया करता, ॥ ६३ ॥ परंतु निद्रा, वार्त्ता तथा विकथाओमा तत्पर थइने रहेता, तो पण त्याना अत्यंत मूर्ख लोक तेना गुणोथी खुशी थइने हु प्रथम आपु, हु प्रथम आपुं, एम मानीने तेओने भोजन तथा वस्त्र आदिक बहु मानथी आपता हता ॥६४॥ अने तेथी इच्छा मुजब आहार विहार आदिकथी पाडा जेवा मोटा शरीरवाळा तेओ थइ गया, पछी एक दहाडो ते गाममा वसनारा तथा गामडीया कवि, एवा एक ब्राह्मणे गाममां घणी याचना करी, परंतु ॥ ६५ ॥ कइ पण नहीं मळवाथी ते भौतिक शिष्योने जोइने आश्चर्य पामी तेओपर एक कविता करीके, भरडा, ठगारा तथा चटुडा एवा आ लोको नथी भणता, नथी गणता, के नथी कविता करी जाणता, छता पण हृष्टपुष्ट थइने फरे छे, अने अमो भणीये छीये, तेम कइक काव्य पण करी जाणये छीये, छता पण भूखे मरीये छीये, माटे तेमा कर्मोनो शो दोष छे? ॥ ६६ ॥

इति लोकाना पुरः कथयति, लोकेष्वाश्चर्यमिति ॥ ६७ ॥ एवं लोकोत्तरगुरुविषयोऽपि दृष्टांतः स्वयमभ्यूह्यः, एतेषु वस्त्राहारादिदानमपि सर्वं तस्मनि हुतायते वंध्याया गत्रि सरसचर्यादिदानवत् ॥ ६८ ॥ एते च कुगुरवः स्वयं महाप्रमादपंकनिमग्नाः कथं स्वाश्रितान् तत्रात्रिस्तारयंतु? किं तु तैर्जारिता अधिकतरं स्वं परांश्च तत्रैव निमज्जयतीति, इति वंध्यागवीदृष्टांतभावना ॥ ६९ ॥ नरुक्ति, यथा हि नटा वाचिकांगिकसात्त्विकादिनानाविधाभिनयविधिकुशलास्तैर्विज्ञानादिभिः स्वस्मिन्नसंतमपि बहिः साक्षात् स्फुरंतमिव सर्वांगमालिंगतमिव चर्वणागोचरमिव च शृंगारादिरसं सद्योऽवतारयति, रंजयति च पर्षज्जनान्, हृतहृदयाश्च तेऽनर्गलद्रव्यदानादिभिः प्रीणयंति तानिति ॥ ७० ॥

एवी रीते लोकोनी पासे कहे छे, अने तेथी लोकोने आश्चर्य थाय छे ॥ ६७ ॥ एवी रीते लोकोत्तर गुरु संबंधि दृष्टांत पण पोतानी मेळेज जाणी लेवुं, एवाओने वस्त्र तथा आहार आदिकनुं जे दान देवुं, ते पण राखमां घी रेडवा बरोबर छे, तेमज वंध्या गायने रसयुक्त चारो आपवा बरोबर छे ॥ ६८ ॥ वळी ते कुगुरुओ पोते महा प्रमादरूपी कादवमां डुबेला छे, तो पछी पोताना आश्रितोने केवी रीते तेओ संसारथी तारी शके? परंतु तेथी उलटा वधारे भारवाळा थइने पोताने अने परने तेमांज डुबावे छे, एवी रीते वंध्या गायना दृष्टांतनी भावना जाणवी ॥ ६९ ॥ हवे नटो जेम वचन संबंधि, अंग संबंधि तथा सत्त्व संबंधि आदिक विविध प्रकारनी कसरतनी विधिमां कुशल होय छे, अने ते विज्ञान आदिकोथी पोतामां नहीं एवा पण शृंगार आदिक रसने बहारथी जाणे साक्षात् स्फुरायमान थतो होय नहीं, सर्व अंगोने जाणे आलिंगन करतो होय नहीं, तथा चावी चावीने जाणे तेनो कुचो करी नाख्यो होय नहीं, तेम तुरत ते रसने बनावे छे, अने सभा जनोने खुशी करे छे, अने तेथी खुश मन

एव गुरुवोऽपि केचिद्धर्माद्वहि प्लवमानमनसोऽपि सागारिकादिसमक्ष तत्ताहकुक्रियाकलापादिप्रकटनपरा विविधाक्षेपिण्यादिप्रकारधर्मकथाभि. ॥ ७१ ॥ स्वस्मिन्नसतमपि दर्शयति पुर स्फुरतमिव सवेगवैराग्यादिरसं, रंजयति च सभ्यजनान्, रजिताश्च ते नानाविधाहारवस्त्रपुस्तकादिभिरुपचरति तानिति ॥ ७२ ॥ तदुक्तं—पढइ नमो वेरग्ग । निव्विजिज्जा वहुओ जणो जेण ॥ पढिऊण तं तह सढो । जलेण जलण समोअरइ ॥ ७३ ॥ अगारमर्दकाचार्यश्चात्र निदर्शन, तथा ये च नहयन्निजाजीविकार्थे श्राद्धादीन् दातन् स्तुत्वा तद्दानानि गृह्णंति ॥ ७४ ॥

एवी रीते केटलाक गुरुओ पण धर्मथी जेके बाह्य मनवाला होय छे, तो पण गृहस्थी आदिकोनी समक्ष तेवी रीतना क्रिया कलाप आदिकोने प्रगट करीने विविध प्रकारनी रमुजी धर्मकथा आदिकोथी ॥ ७१ ॥ पोताथा नही एवा पण सवेग तथा वैराग्य आदिक रसने जाणे अगाडी प्रगटी निकळतो होय नहीं तेम देखाडे छे, तथा सभ्यजनोने खुशी खुशी करी दे छे, तथा एवी रीते खुश थयेला ते सभ्यजनो विविध प्रकारना आहार वस्त्र तथा पुस्तक आदिकोवडे करीने तेओनी भक्ति करे छे ॥ ७२ ॥ कह्यु छे के—नट वैराग्य जणे छे, के जेथी घणा लोको सवेग पामे छे, तेवी रीते श्रावक पण (कुगुरुओ पासेथी) वैराग्य साभळीने सवेग पामे छे, अने ते जळथी अग्नि ओलवा सरखुं थाय छे ॥७३॥ अहीं अगार मर्दक आचार्यने दृष्टातरूपे जाणवा, वळी जेओ नाटनी पेठे पोतानी आजीविका माटे, देनारा एवा श्रावक आदिकोनी स्तुति करीने तेमनी पासेथी दान ग्रहण करे छे ॥ ७४ ॥

उक्तंच—गुरुणो भट्टा जाया । सड्ढे थुणिऊण लिंति दाणाइ ॥ दुन्निवि अमुणिअतत्ता । दूसमसमयंमि वुड्डंति ॥ ७५ ॥ तेष्वेतेष्वेवांतर्भवतीति, एवमेते षड्भंगीसंगिनोऽपि गुर्वाभासाश्चरणकरणगुणबाह्या, केवलं जवाजिनदितया प्रमादोत्सूत्रप्ररूपकत्वादिभिः स्वयं नष्टा शुद्धधर्मापहारेण परानपि नाशयतीति सर्वथा दूरतरं परिहरणीया ॥ ७६ ॥ तदुक्तं—किमितोऽपि महापाप—मज्ञानात्पातुकं स्वयं ॥ पातयत्यंधकूपे यत् । मूढ सहचरानपि ॥ ७७ ॥ इति नटदृष्टांतभावना ॥ अथ धेनुरिति, धेनुर्नवसूतिका गौ., सा हि यत्तृणादि उपजीवति दुग्धं घृतं च करोति परोपकारार्थमेव, प्रतिवर्षं प्रसूते च ॥ ७८ ॥

कहुं छे के—गुरुओ भाट सरखा थया, के जेओ श्रावकोनी स्तुति करीने दान आदिक लीये छे, अने एवी रीते तेओ सर्व तत्व जाण्या विना आ दुःषम कालमां बुडे छे ॥ ७५ ॥ एवा कुगुरुओनो पण आ भागनी अंदर समावेश थाय छे, एवी रीते आ छए भागवाळा गुरुओ चरण करणना गुणोथी रहित थया थका गुर्वाभास सरखा छे, तथा फक्त जवाजिनलिप्पणाथ करीने प्रमाद अने उत्सूत्र प्ररूपणा आदिक करीने पोते नष्ट थया छे, तथा शुद्ध धर्मना अपहार करीने अन्योने पण नष्ट करे छे, माटे तेओने तो सर्वथा प्रकारे दूरज छोडवा ॥ ७६ ॥ कहुं छे के—शुं आथी पण कोइ वधारे मोटुं पाप छे? के अज्ञानथी ते मूढ पोते तो पडे छे, परन्तुज नहीं, पण पोताना सोबतीओने पण अंध कूवामां पाडे छे ॥ ७७ ॥ एवी रीते नटना दृष्टांतनी भावना जाणवी ॥ हवे धेनु एटले नवी वीयायेली गाय, ते जे ते तृणादिक चरे छे, तथा दूध अने घी करे छे, तेमज दरवर्षे फक्त परोपकार माटेज वीयाय छे ॥ ७८ ॥

एव केचन प्रासुकनीरसन्नक्तपानादिमात्रोपजीविन सुविशुद्धप्रकृतय शुद्धधर्ममार्गोपदेशैर्दुग्धघृताद्युपमै सततमुपकुर्वते परान् ॥ ७९ ॥ सम्यक्चरणकरणानुष्ठानादिवत्सकाद्युपम प्रसुवते च श्रीप्रदेशिनृपप्रतिवोधकश्रीकेशिगणधरवत् योग्याश्चैते, यदुक्त—महाव्रतधरा धीरा । नैक्ष्यमात्रोपजीविन ॥ सामायिकस्था धर्मोप—देशका गुरवो मता ॥ ८० ॥ यथा च धेनोर्दत्त तृणाद्यपि दुग्धादितया परिणमति, एवमेतेपु दत्त स्वल्पमप्यनंतफलाय च कल्पते ॥ ८१ ॥ श्रीऋषभदेवप्रथमभवधनसार्थवाहसार्थविहृतश्रीधर्मघोषसूरिप्रभृतिवत्, इति धेनुदृष्टातभावना ॥ ८२॥

एवी रीते केटलाक गुरुओ ताजा तथा रसविनाना एवा मात्र भात पाणी आदिकथी आजीविका चलावीने शुद्ध प्रकृतिवाळा थया थका, दूध अने घी आदिक जेवा शुद्ध धर्ममार्गना उपदेशोवमे करीने परने उपकार करे छे, ॥ ७९ ॥ तथा यात्रष्मा आदिक सरखी उत्तम चरणकरणनी क्रिया आदिक उत्पन्न करे छे. (कोनी पेठे? तोके) श्रीप्रदेशी राजाना प्रतिबोधक श्रीकेशिगणधरनी पेठे, अने तेवा गुरुओ योग्य छे, कह्युं छे के— महाव्रतोने धारण करनारा, धैर्यवाळा, तथा फक्त भिक्षाथीज आजीविका चलावनारा, सामायिकमा रहेनारा एवा धर्मोपदेशक गुरुओ कह्या छे ॥ ८० ॥ वळी गायने दीधेलु तृण आदिक जेम दूध आदिकरूपे परिणमे छे, तेम एवा उत्तम गुरुओने दीधेलु अल्प दान पण अनत फल करनार थाय छे ॥ ८१ ॥ (कोनी पेठे? तोके) श्रीऋषभदेव प्रभुना प्रथम भववाळा धनसार्थवाहना सायमा विहार करनारा श्रीधर्मघोषसूरि आदिकनी पेठे, एवी रीते गायना दृष्टातनी भावना जाणवी ॥ ८२ ॥

अथ सद्दित्ति, सखा मित्र, स च यथा स्वहार्दसौहार्दवशंवदतयैव, न पुनर्धनादिलिप्सयाजीविकादिहेतोर्वा प्रवर्त्तयति साम्ना मित्र हिते, निवर्त्तयति कुप्रवृत्तेः, निस्तारयत्यापद्गत ॥ ७३ ॥ अवगूहति तदपराधान, प्रकटयति तद्गुणादि च, तदुक्त—पापान्निवारयति योजयते हिताय । गुह्य निगूहति गुणान् प्रकटीकरोति ॥ आपद्गत च न जहाति ददाति काले । सन्मित्रलक्षणमिद प्रवदन्ति सत ॥ ७४ ॥ परं यथाऽवसर वहुमानदानाद्युपचारमपेक्षते, प्राय अवहुमानितस्तु स्वल्पस्नेहो नि स्नेहोऽपि वा नवेत्, तथा चाहु —॥ ७५ ॥

हवे सन्नि एज्वे मित्र, ते जेम पोताना मित्रने पोताना हृदयनी मित्राइने वश थइनेज, नाहि के धन आदिकनी इच्छायी के आजीविका आदिक हेतुथी पण समपणायी हितमा प्रवर्त्तावे छे, तथा कुमार्गथी अटकावे छे, दु खथी वचावे छे ॥ ७३ ॥ तेना अपराधोने ढाके छे, तथा तेना गुण आदिकोने प्रगट करे छे, कह्यु छे के—पापथी निवारे छे, हितमा जोमे छे, तेनी गुप्त वातने ढाके छे, गुणोने प्रगट करे छे, दुःख समये छोमतो नथी, तथा अवसरे द्रव्यादिक आपे छे, एवी रीतनु उत्तम मित्रनु लक्षण विद्वानो कहे छे ॥ ७४ ॥ परतु ते मित्र उचित अवसरे वहु मान तथा दान आदिक उपचारनी अपेक्षा राखे छे, अने ते वखते तेने जो वहु मान देवामा न आवे तो प्राये करीने ते ओछा स्नेहवालो अथवा स्नेहविनानो पण थइ जाय छे, कह्यु छे के—॥ ७५ ॥

अद्दसणेण अइदं—सणेण दिठ्ठ अणालवंतेण ॥ माणेण पवासेण य पचविह जिजए पिम्म ॥ ७६ ॥ ततश्च तादृक्कार्यावसराद्यावुदास्तेऽपीति, एव केचिद्गुरवः सर्वसत्त्वेषु परममैत्रीपवित्रचित्ततयैव, न तु धनादिलिप्सयाजीविकादिहेतोर्वा जलधर इव साधारणोपकारप्रवृत्तय ॥ ७७ ॥ तादृगवसराद्युचितमनोज्ञरुचितमधुरदेशनाभिरनुशासंति हितं, प्रकाशयति विवेकं, निर्नाशयंति मोहतिमिरपटलं प्रबोधयति प्रमादनिद्रामुद्रितविवेकलोचन ॥ ७८ ॥ भव्यजन, प्रकटयंति सम्यक्त्वादिगुणान्, रुंधंति दुर्गतिमार्गान्, निस्तारयंति चाऽपारससारपारावारप्रस्फुरद्विविधापत्परंपराभ्यः ॥ ७९ ॥

नहीं मळवाथी, अतिशय मळवाथी, मळवा छता नहीं बोलावनाथी, अभिमानथी तथा परदेश प्रवास-
थी, एम पाच प्रकारे स्नेह घटे छे ॥ ७६ ॥ माटे तेवा कार्य अवसर आदिकमा रीसाइ पण जाय छे, एवी
रीते केटलाक गुरुओ धनादिकनी लालचथी नहीं, अथवा आजीविका माटे पण नहीं, परतु सर्व प्राणीओपर
परम मित्राइथी पवित्र थयेला चित्तपणाथी करीने वरसादनी पेठे साधारण उपकारनी प्रवृत्तिवाळा होय छे, ॥ ७७ ॥
तथा तेवा अवसर आदिकमा उचित तथा मनने रुचे एवा मधुर उपदेशोथी हित शिक्षा तेओ आपे छे, विवे-
कने प्रकाशे छे, मोहरूपी अधकारनो समूह मटाडे छे, तथा प्रमादरूपी निद्राथी बीडायेला विवेकरूपी लोचन
॥ ७८ ॥ भव्यजन प्रत्ये समकीत आदिक गुणोने प्रगट करे छे, दुर्गतिना मार्गोने रोके छे, तथा अपार एवा ससा-
ररूपी समुद्रमा उछळती एवी नाना प्रकारनी आपदाओनी श्रेणिओथी तारे पण छे ॥ ७९ ॥

पर तेऽपि यथोचितबहुमानादि यथावसरमपेक्षते, अबहुमानिता पुनरुदासतेऽपीति, यथा बप्पभट्टिसूरय, तथाहि—॥ ९० ॥ गुर्जरदेशे पाटलाख्ये नगरे श्रीसिद्धसेनसूरि, सोऽन्यदा श्रीवीर नतु मोढेर प्राप्तो निशि स्वप्न ददर्श ॥ ९१ ॥ यथा उत्फाल केसरिकिशोरश्चैत्यशृगमारूढ इति, प्रातस्त स्वप्न शिष्यान् श्रावयामास, तैर्विनयपूर्व तत्फल पृष्ट स्माह ॥ ९२ ॥ कोऽप्यन्यवादिदन्तिमददलनो महामति शिष्योऽद्य समेष्यतीति, ततश्चैत्ये देवान् वन्दमानाना तेपा पुर षड्वार्षिको वाल एक प्रापत् ॥ ९३ ॥ पृष्ट. स्व स्वरूपमुवाच, अह पचालदेशडुवाउधीग्रामवास्तव्यवप्पारयजनकभट्टीनामजननीसुत सुरपालाख्य शत्रून् हतु सन्नह्यन्, विक्रमहेतुर्वयो नेति पित्रा निवारित ॥ ९४ ॥

परतु तेवा गुरुओ पण यथा अवसरे यथोचित बहु मान आदिकनी अपेक्षा राखे छे, अने ते समये जो तेओने बहु मान देवामा न आवे, तो तेओ रीसाइ पण जाय छे, जेम बप्पभट्टिसूरी, तेमनु उदाहरण कहे छे ॥ ९० ॥ गुजरात देशमा पाटला नामना नगरमा श्रीसिद्धसेनसूरि हता, ते एक वखते श्रीवीरप्रभुने वादवा माटे मोढेरा गाममा गया, त्या रात्रिए तेमने स्वप्न आव्यु के ॥ ९१ ॥ केसरिनु बच्चु ठेक मारीने चैत्यना शिखर पर चढ्यु, पछी प्रभाते ते स्वप्न तेमणे शिष्योने सभळाव्यु, तेओए विनय पूर्वक पुछवाथी तेनु फल तेमणे कह्यु के ॥ ९२ ॥ कोइक अन्य वादीओरूपी हाथीना मदने दळनारो महा बुद्धिमान शिष्य आजे आवशे, पछी मदिरमा देववदन करता थका तेओनी पासे एक छ वर्षनो बालक आव्यो ॥ ९३ ॥ पूछवाथी ते पोतानु वृत्तात कहेवा लाग्यो के, पचाल देशमा आवेला डुवाउधी गामनो रहेवासी बप्प नामे मारो पिता तथा भट्टी नामे मारी माता छे, तेमनो हु सुरपाल नामे पुत्र छु, शत्रुओने हणवा माटे ज्यारे हु तैयार थतो हतो, त्यारे मारा पिताये मने निवार्यो के, हमणा पराक्रम करवानी तारी उमर नथी ॥ ९४ ॥

पिता स्वयं शत्रुन्न हंति, मामपि च तान् घ्नत निवारयतीत्यनुशयादंबामप्यनापृ-
च्छ्यात्रागम ॥ ए५ ॥ अस्याऽमानुष्यक तेज इति ध्यात्वा गुरुणोचे, अस्म-
त्पार्श्वे तिष्ट, मद्भाग्यैः फलितमित्युक्त्वा स तत्र स्थित ॥ ए६ ॥ एकश श्रु-
तमात्रेणाऽनुष्टुभा सहस्र धारयतीति प्रज्ञा विज्ञाय तुष्टो गुरु पितरौ प्रार्थ्य त-
मदीक्षयत् ॥ ए७ ॥ पित्रोरभ्यर्थनया वप्पभट्टीति नाम चाऽकरोत्, श्रीविक्रमाद्
वर्षाणा शताष्टके ससाधिके वैशाखशुक्लतृतीयाया गुरौ तस्य तपस्या बभूव ॥ ए८ ॥
अन्यदा श्रीगुरुस्तस्य सारस्वतमदात्, तस्य त मत्र स्मरतो गगास्रोतसि अनाव-
रणा निशीथे स्नाती सरस्वती तन्मत्रजापमाहात्म्यात् तद्रूपैवोपतस्थे* दमायया ॥ एए॥

हवे मारो पिता पोते तो शत्रुओने हणी शकतो नथी, अने तेओने हणता मने पण ते अटकावे छे, माटे ते खेदथी मारी माने पण कह्या विना हु अहीं आवी पहोंच्यो छु ॥ ए५ ॥ आ बाळकनु तेज मनुष्य सबधि नथी, अर्थात् दैविक छे, एम विचारिने गुरुए तेने कह्यु के, तु अमारी पासे रहे? अहो! मारा भाग्य फळ्या! एम कहीने ते त्या रह्यो ॥ ए६ ॥ एकवार फक्त साभळवाथीज एक हजार अनुष्टुप्श्लोकोने धारी राख वानी तेनी बुद्धि जोइने खुशी थयेला गुरु महाराजे तेना मावापनी रजा लेइ तेने दीक्षा आपी ॥ ए७ ॥ तथा तेना मावापनी प्रार्थनाथी तेनु वप्पभट्टि नाम पाड्यु, श्रीविक्रम पछी आठसोने सात वर्षे वैशाख शुदि त्रीज अने गुरुवारे तेमनी तपस्या एटले वडी दीक्षा थइ ॥ ए८ ॥ पछी एक वखते श्रीगुरु महाराजे तेमने सारस्वतमत्र आप्यो, ते मत्रनु स्मरण करवाथी तेना माहात्म्यथी मध्य रात्रिए गगा नदीमा वस्त्र रहित स्नान करती सरस्वती देवी, तेज हालतमा त्या तेमनी पासे आवी ॥ एए ॥

---

* तस्य समीपमुपतस्थे ।

ईषद् दृष्ट्वा च ता वस्त्र । परावर्त्तयति स्म स स्वरूपं विस्मरतीव प्राह, वत्स कथ मुख ॥ १०० ॥ व्यावर्त्तयो जवन्मत्र-जापात् तुष्टाहमागता ॥ वरं वृणिष्वेति तत्प्रोक्तो। बप्पभट्टिरुवाच च ॥ १०१ ॥ मातर्विसदृश रूप । कथ वीक्षेय तद्दृश ॥ स्व तत्त्र पश्य निर्वस्त्र—मित्युक्ते स्व ददर्श सा ॥ १०२ ॥ अहो निर्विरूमेतस्य ब्रह्मव्रतमिति विचिन्त्य मत्रमाहात्म्याद्विगलितवेद्याताराऽत्रागताहामित्याह च, वरदानेऽपि नि स्पृहत्वात्त्वयि तुष्टा, तवेच्छयागन्तिष्यामीति वर दत्वा तिरोऽधात् ॥ १०३ ॥ अन्यदा वर्षति मेघे देवकुलस्थस्य बप्पभट्टे कोऽपि देवोपम पुमान् समगस्त, प्रशस्तिपट्टिकायां च काव्यान्यवाचयत् ॥ १०४ ॥

तेणीने जरा जोईने बप्पभट्टिजीए पोतानु मुख फेरवी नाख्यु, ते वखते जाणे ते पोताना स्वरूपने भूली जती होय नहीं, तेम तेने कहेवा लागी के, हे वत्स! ॥ १०० ॥ त मुख शामाटे फेरव्यु? तारा मत्रना जापथी हु तुष्टमान थईने आवी छु, माटे तु वर माग? एवी रीते तेणीए कहेवाथी बप्पभट्टिजी बोल्या के ॥ १०१ ॥ हे माताजी! हु आपनु आवु विसदृश रूप केम जोउ छु? आप पोतानु नग्न रूप जुओ. एम तेणे कहेवाथी ते सरस्वती देवी पोताने वस्त्र रहित जोवा लागी ॥ १०२ ॥ अहो! आनु ब्रह्मचर्य व्रत दृढ छे, एम विचारि तेणीए कह्यु के, तमारा मत्रना माहात्म्यथी वीजु सघळु जान भूली जईने हु अहीं आवी छु, तथा वरदानमा पण तमोने निस्पृही जाणीने हु तमारापर तुष्टमान थई छु; हवे तमो ज्यारे इच्छा करशो त्यारे हु हाजर थईश, एम वरदान आपीने ते अलोप थई गई ॥ १०३ ॥ एक वखते वरसाद वरसते छते बप्पभट्टिसूरि देवमदिरमां हता, ते वखते कोईक देव सरखो पुरुष त्यां आव्यो, तथा त्यां रहेला जिनालेखमांथी प्रशस्तिना काव्यो वांचवा लाग्यो ॥ १०४ ॥

वप्पभट्टिना व्याख्यापयच्च, शाते वर्षे वप्पभट्टिना सहोपाश्रयं प्राप., गुरुभिः कस्य पुत्रोऽसीति पृष्टः प्रोचे ॥ १०५ ॥ सूर्यवंशीयश्रीचन्द्रगुप्तनृपवंशालंकारस्य कन्यकुब्जदेशाधिपयशोवर्मनृपतेः सुतोऽहं, पित्रा शिक्षावशात् किंचिदुक्तः कोपादिहागम ॥ १०६ ॥ अलेखीच्च खटिकया स्वं नाम आमेति, ततो गुरुणोक्त, वत्स निश्चितो वप्पभट्टिसुहृदा सम शास्त्राणि गृहाण ॥ १०७ ॥ ततस्तत्र तिष्टतस्तस्य वप्पभट्टिना सम दृढा मैत्र्यभवत् ॥ १०८ ॥ अन्यदा वप्पभट्टिं प्रोचे स., राज्य चेल्लप्स्ये तदा तुभ्य दास्ये, कियता कालेन च तज्जनकेन पट्टाभिषेककृते प्रधानाः प्रहिताः ॥ १०९ ॥ वप्पभट्टिमापृच्छ्य तै. सह कन्यकुब्ज प्राप्त., पित्रा राज्येऽभ्यषिच्यत॥११०॥

वप्पभट्टिजीए तेने रोकाव्यो; वरसाद रथ पछी ते वप्पभट्टिजीनी साथे ते उपाश्रये आव्यो, तथा तु कोनो पुत्र छे? एम गुरु महाराजे पूछवाथी ते कहेवा लाग्यो के ॥ १०५ ॥ सूर्यवंशी श्रीचंद्रगुप्त राजाना वंशमां आभूषण समान एवा कन्यकुब्ज देशना अधिपति यशोवर्म राजानो हुं पुत्र छुं, पिताए शिखामण द्वारा कइक कहेवाथी क्रोधथी हुं अहीं आवेलो छु ॥ १०६ ॥ पछी तेणे पोतानु 'आम' एवु नाम खडीथी लख्यु, पछी गुरुए तेने कह्युं के, हे वत्स! तु निश्चित थइने वप्पभट्टिमित्रनी साथे शास्त्रो ग्रहण कर ॥ १०७ ॥ पछी त्यां रहेतां वप्पभट्टि साथे तेने [illegible] मित्राइ थइ ॥ १०८ ॥ एक दिवसे तेणे वप्पभट्टिजीने कह्युं के, जो मने राज्य मळशे, तो हुं तमोने ते आपीश. पछी केटलेक काळे तेना पिताए पट्टाभिषेक माटे प्रधानोने मोकल्या ॥ १०९ ॥ त्यारे वप्पभट्टिजीने पूछीने ते प्रधानो साथे ते कन्यकुब्ज गयो, तथा पिताए तेनो राज्याभिषेक कर्यो ॥ ११० ॥

लक्षद्वितयमश्वाना। चतुर्दशशतानि च॥ रथाना हस्तिनां पत्ति—कोटी राज्येऽस्य जज्ञिरे ॥ १११ ॥ अन्यदा आमराजा स्वसुहृद्बप्पभट्टिमाकारयितु -र्स्वप्रधानान् प्रैषीत, तेषामत्यादराद्गुरुस्त प्रेषितवान् ॥ ११२ ॥ स च धर्मोन्नत्यै आमपुर गत, तदागमन हृष्ट स सर्वाडम्बरेण समुद्गमागत्य प्रवेशे गजारोहणप्रार्थना चक्रे ॥ ११३ ॥ बप्पभट्टि प्राह, शमिना गजारोहण विरुध्यते, राजाह पूर्व मया वो राज्यदान प्रतिपन्न, राज्यस्याद्य चिन्ह गज ॥ ११४ ॥ बप्पभट्टिराह, सत्य, एव तव प्रतिज्ञा न पूर्यते, पर सर्वसगमुचा न प्रतिज्ञा हीयते ॥ ११५ ॥

तेना राज्यमा बे लाख घोडा, चाउसो रथ तथा हाथी, तथा एक क्रोड पाळा हता ॥ १११ ॥ एक दहाडो आम राजाए पोताना मित्र बप्पभट्टिने बोलाववा माटे पोताना प्रधानोने मोकल्या, तथा तेओना अत्यत आदरथी गुरुए पण बप्पभट्टिजीने मोकल्या ॥ ११२ ॥ बप्पभट्टिजी पण धर्मनी उन्नत्ति माटे आम राजाना नगर प्रत्ये गया, तेमना आववाथी खुशी थयेलो आम राजा सर्व आडबरथी सामो आवीने प्रवेश माटे हाथीपर चडवानी गुरुने प्रार्थना करवा लाग्यो ॥ ११३ ॥ त्यारे बप्पभट्टिजीए कर्तुं के, मुनि माटे हाथीपर चडवु विरोधवाळु छे, त्यारे राजाए कह्यु के, पूर्वे में आपने राज्य आपवानु कबूल्यु छे, अने राज्यनु पेहेलु चिन्ह हाथी छे, ॥ ११४ ॥ त्यारे बप्पभट्टिजीए कह्यु के, ते सत्य छे, परतु तमारी प्रतिज्ञा एवी रीते कइ सपूर्ण थाय नही, पण उलटु सर्व सगनो त्याग करनारा एवा जे अमो, तेओनी प्रतिज्ञानो भग थाय ॥ ११५ ॥

चमत्कृतो राजा, प्रवेशानंतर सौधात क्रमाद्युजा सिंहासन मंकित, तदवसरे वप्पन्न-हिराह, अस्माक सूरिपदे जाते सिंहासनमासन कल्प्यं ॥ ११६ ॥ ततो राजा खिन्न आसनांतरमसमरयत्, दिनानि कियति तत्र तमत्रस्याप्याचार्यपदार्थी राजा प्रधाने सह गुरुपार्श्वे प्रैषीत् ॥ ११७ ॥ प्रधाना गुरु विज्ञपयति, चंद्र विना चकोर इव वप्पन्न-हिं विनाऽस्मत्स्वामी रतिं न लभते ॥ ११८ ॥ अतोऽस्याचार्यपद दत्वा पश्चादिम प्रेषयंतु, यथास्योपदेशाद्राजा धर्मोन्नति कुरुते ॥ ११९ ॥ गुरुः प्राह नोऽन्नो एतस्य शिष्यस्यासत्तिविनाऽस्माकमपि न रति, ते प्राहु.—तरवस्तरणेस्ताप । स चाभ्रो-ह्यघनक्लम ॥ पाथोधिर्नौश्रम सोढा । वोढा कूर्म क्षितेर्भर ॥ १२० ॥

पछी प्रवेश कराव्या बाद मेहेलनी अंदर राजाए सिंहासन मंकाव्यु, त्यारे वप्पन्नहिजीए कह्यु के, ज्यारे अमोने सूरिपद मळे, त्यारे अमोने सिंहासननु आसन कल्पे ॥ ११६ ॥ पछी राजाए खेद पामीने बीजु आसन मंकाव्युं, पछी केटलाक दिवसो सुधि तेमने त्यां राखीने, तेमना आचार्यपदना अर्थी एवा राजाए प्रधानो सहित तमने गुरु पासे मोकल्या ॥ ११७ ॥ प्रधानोए त्यां जइ तेमना गुरुने विनति करी के, चंद्रविना जेम चकोर, तेम वप्पन्नहिजी विना अमारा स्वामीने चेन पडतु नथी ॥ ११८ ॥ माटे तेमने आचार्यपद आपीने पाछा मोकलावो के जेथी तेमना उपदेशथी राजा धर्मोन्नति करे ॥ ११९ ॥ त्यारे गुरुए कह्यु के, हे प्रधानो ! आ शिष्यनी हाजरी विना अमोने पण चेन पडतु नथी, त्यारे प्रधानोए कह्यु के, वृक्षो जे सूर्यनो ताप सहन करे छे, अने ते सूर्य पण जे आकाशने उल्लंघवानो क्लेश सहन करे छे, समुद्र जे वहाणोनो थाक खमे छे, तथा काचबो जे पृथ्वीनो भार वहे छे, ॥ १२० ॥

वारिदो वर्षणक्लेशं । क्षितिर्विश्वासुमतक्लम ॥ उपकाराद्दतेऽमीषां । न फलं किंचिदीक्ष्यते ॥ १२१ ॥ इति तद्गिरा श्रीसंघकृतोत्सवैस्त गुरुराचार्यपदेऽस्थापयत्, एकादशाधिके तत्र । जाते वर्षशताष्टके ॥ विक्रमात्सोऽभवत्सूरि । कृष्णचैत्राष्टमीदिने ॥ १२२ ॥ अथानुशिष्टो गुरुणा । विधिवद् ब्रह्मरक्षणे ॥ तारुण्य राजपूजा च । वत्सानर्थद्वयं ह्यद ॥ १२३ ॥ तच्छ्रुत्वा श्रीवप्पभट्टिसूरिर्यदकरोत् तान् श्लोकेनाह, भक्त भक्तस्य लोकस्य । विकृतीश्चाखिला अपि ॥ आजन्म नैव भोक्ष्येऽह—मसु नियममग्रहीत ॥ १२४ ॥

वरसाद जे वरसवानो क्लेश सहन करे छे, तथा पृथ्वी जे सघळा प्राणीओना (भारनो) क्लेश सहे छे, तेओ सघळामां उपकारविना बीजुं कंइ पण फल देखातुं नथी ॥ १२१ ॥ तेओना एवी रीतना वचनथी श्री संघे करेला उत्सव पूर्वक गुरु महाराजे श्रीवप्पभट्टीजीने आचार्यपदपर स्थाप्या, विक्रमथी आठसो अग्यार वर्षो जाते छते चैत्रवदी आठमने दिवसे ते आचार्य थया ॥ १२२ ॥ पछी गुरु महाराजे तेमने शिखामण आपी के, विधिपूर्वक ब्रह्मचर्य व्रतनी रक्षा करवी, वळी हे वत्स ! तरुणता तथा राजमान्यपणुं ए बन्ने अनर्थोनां मूळ छे ॥ १२३ ॥ ते सांभळी श्रीवप्पभट्टिजीए जे कंइ कर्युं, ते श्लोकथी कहे छे, भक्त लोकोना आहार पाणी, तथा सघळी विगयो छेक ए मरणपर्यंत हुं खाइश नहीं, एवुं तेमणे नियम ग्रहण कर्युं ॥ १२४ ॥

ततो नृपाग्रहाद्गोपगिरौ प्रासास्तदुपदेशाद्राज्ञा एकशतहस्तोन्नत प्रासाद. कारितः, तत्र जात्यसुवर्णाष्टादशभारमिता श्रीवीरप्रतिमा स्थापिता ॥ १२५ अन्यदा राज्ञा पूज्यद्विजानुवर्त्तनयाऽन्यदासनं श्रीगुरूणाममरूयत्, प्राक् तु सिंहासनं ॥१२६॥ तत प्रतिबोधाय सूरिर्जगौ, मर्दय मानमतंगजदर्प्पं । विनयशरीरविनाशनसर्प्पं ॥ तत्क्षीणो दर्पाद्दशवदनोऽपि । यस्य न तुल्यो भुवने कोऽपि ॥ १२७ ॥ इति श्रुत्वा राज्ञाऽवलेपं परिहृत्य पुनः सिंहासनमेवाऽमंडयत सदापि ॥ १२८ ॥ अन्यदांत पुरे स्नानमुखीं वल्लभां दृष्ट्वा राजाह समस्या सूरये, 'अज्जवि सा परितप्पइ । कमलमुही अत्तणो पमाएण' ॥ १२९ ॥

पछी राजाना आग्रहथी ते गोपगिरि मध्ये पहोंच्या, त्यां तेमना उपदेशथी राजाए एकसो हाथ उंचुं जिनमंदिर बधाव्युं, तथा तेमां उत्तम सुवर्णनो अढार भारना प्रमाणवाळी श्रीवीरप्रभुनी प्रतिमा स्थापन करी ॥ १२५ ॥ हवे एक दिवसे राजाए राजगोर ब्राह्मणनुं बहु मानीने श्रीगुरु महाराज माटे बीजुं आसन मंडाव्युं, पेहेलां तो सिंहासन मंडावता हता ॥ १२६ ॥ त्यारे राजाने प्रतिबोधवा माटे आचार्यजीए कह्युं के, विनयरूपी शरीरनो नाश करवामां सर्प सरखा एवा मानरूपी मदोन्मत्त हाथी जेवा दर्पनुं मर्दन करो? केमके जेना सरखो जगत्मां कोइ पण नहोतो, एवो रावण पण अहंकारथी नष्ट थयो ॥ १२७ ॥ ते सांभळी राजा अहंकार छोडी फरीने हमेशां सिंहासन मंडाववा लाग्यो ॥ १२८ ॥ एक वखते अंतःपुरमां पोतानी राणीने स्नानमुखी जोइने राजाए आचार्यजीने समस्या कही के, 'हजु पण ते कमळमुखी पोताना प्रमादथी परिताप पाम्या करे छे' ॥ १२९ ॥

सिद्धसारस्वतसूरि —'पुव्वविबुद्धेण तए । जीसे पच्चाइअ अंगं' ॥१३०॥ पुनरन्यदा पट्टराज्ञीं सचरतीं पदे पदे व्यथमानामिव दृष्टपूर्वी स्माह नृपः, 'बाला चंकम्मती । पए पए कीस कुणइ मुहभंगं' ॥ १३१ ॥ सूरि—'नूणं रमण-पएसे । मेहलिआ छिवइनहपंति' ॥ १३२ ॥ तच्छुत्वा नृपतिर्विकृतमुखोऽभूत्, निरादरश्च, त ताद्दश दृष्ट्वा श्रीगुरुरुपाश्रये गत्वा किंचिन्मिष कृत्वा द्वारकपाटयो काव्य लिखित्वा व्यहार्षीत् ॥ १३३ ॥ तच्चेद—याम स्वस्ति तवास्तु रोहणगिरे मत्त स्थिति प्रच्युता । वर्त्तिष्यत इमे ऽधुना कथमिति स्वप्नेऽपि मैव कृथा ॥ श्रीमतो मणयो वय यदि भवल्लब्धप्रतिष्ठास्तदा । के शृंगारपरायणा क्षितिभुजो मौलौ करिष्यति न. ॥ १३४ ॥

त्यारे सिद्ध करेल छे सारस्वत मत्र जेमणे एवा आचार्यजीए कह्यु के 'पूर्वे जागी उठवाथी शरीर हाल्यु, तेज्वां माटे' ॥ १३० ॥ वळी एक दहाडो राजाए चालती एवी पोतानी पट्टराणीने पगले पगले जाणे व्यथा पामती होय नहीं, तेम पेहेला देखवाथी समस्या कही के, 'चालती थकी बाळा पगले पगले शामाटे मुखभंग करे छे?' ॥ १३१ ॥ त्यारे आचार्यजीए कह्यु के, 'खरेखर तेणीना गुह्यस्थले मेखला पासे नखोनी श्रेणि लागेली छे' ॥ १३२ ॥ ते सांभळीने राजानु मुख उतरी गयु, तथा आचार्यजी प्रत्ये आदर रहित थयो, पछी तेने तेवी रीतनो जोइने गुरु महाराजे उपाश्रये जइ, कइक मिष करीने, तथा बारणाना बन्ने कमाडोपर काव्य लखीने त्याथी विहार कर्या ॥ १३३ ॥ ते काव्य नीचे मुजब हतु हे रोहणाचल! तु स्वप्नमा पण एवो विचार नहीं करजे के मारी पासेथी खसी जवाथी तेओना हवे शु हाल थशे?' केमके जो अमो मणियो किमती छइये, तथा तमाराथी जो अमोने प्रतिष्ठा मळेली छे, तो केटलाक शृंगारना इच्छक राजाओ अमोने मस्तके पण चमावशे, माटे हवे तार कल्याण थाओ?' अमो जइये छीये ॥ १३४ ॥

श्रीगुरुगौडदेशं प्राप, तत्र धर्मनृप, तदाग्रहाद्यावत् श्रीआमनृप - स्वयमाकारणाय नायाति तावन्न विहार्यमिति प्रतिज्ञाय स्थिताः ॥ १३५ ॥ अन्यदा श्रीआम-नृपो राजपट्टिकायै गतः, क्वचित् कृष्णसर्पं दृष्ट्वा मुखे सुदृढं तं गृहीत्वा मुष्टिमध्ये कृत्वा, बाहुवस्त्रेणाच्छाद्य च 'शस्त्रं शास्त्रं कृषिर्विद्या। अन्यो यो येन जीवति' इति समस्यामप्राक्षीत् ॥ १३६ ॥ न कोऽपि नृपाभिप्रायेण पूरयति, तदा श्रीगुरुभिः समस्यामपूरीत्, ततः पटहो, य एतां ममाभिप्रायेण पूरयेत्तस्य स्वर्णटंकलक्षमर्पये, इत्याघोषणार्थं वाद्यत ॥ १३७ ॥ द्यूतकारेण गौडदेशे गत्वा श्रीगुरून् पृष्ट्वाऽपूरि 'सुगृहीतं च कर्त्तव्यं । कृष्णसर्पमुखं यथा' ॥ १३८ ॥

पछी श्रीबप्पभट्टिजी गौडदेशमा गया, त्या धर्म नामे राजा हतो, तेना आग्रहथी त्या ते रह्या, तथा एवी प्रतिज्ञा करी के, ज्यांसुधि आम राजा पोते मने बोलाववाने न आवे, त्यांसुधि मारे अहींथी विहार करवो नहीं ॥ १३५ ॥ एक दहाडो श्रीआम राजा रयवाडीए गया त्या कोईक एक काळा सर्पने जोइने, तथा तेनु मुख दृढ रीते पकडीने अने मुठीमां झालीने तथा हाथ वस्त्रथी ढांकीने 'शस्त्र, शास्त्र, खेती, तथा विद्या के जे जेनाथी जीवे छे' एवी रीतनी समस्या पुछवा लाग्यो ॥ १३६ ॥ परंतु कोइये पण राजाना अभिप्राय मुजब ते संपूर्ण करी नही, ते वखते राजाए श्रीबप्पभट्टिजीने घणा संभार्या, तथा पछी तेणे पडहो वजडाव्यो के, जे कोई आ समस्या अभिप्राय पूर्वक पूरशे, तेने एक लाख सुवर्णटंका हु आपीश ॥ १३७ ॥ पछी एक जुगारीए गौडदेशमां जइने श्रीगुरु महाराजने पुछीने ते समस्या पूरी के, 'जेम कृष्ण सर्पनुं मुख, तेम ते सुगृहीत करवु ॥ १३८ ॥

केनाऽपूरीति निर्बंधपूर्वं राज्ञा प्रष्टो गुरुस्वरूप व्याख्यायीत्यादि बहुविस्तरार्थिना एतत्प्रबंधादि विलोक्य ॥ १३९ ॥ ततोऽनुतापपरः प्रैषीत् प्रधानान् काव्यानि च श्रीबप्पभट्टिगुरून् प्रति, तथाहि—॥ १४० ॥ छायाकारणि सिरि धरिअ । पचवि भूमिपडंति ॥ पत्तह एहु पत्तत्तण । वरतरु काइ करति ॥ १४१ ॥ न गंगा गांगेय सुयुवतिकपोलस्थलगत । न वा शुक्ति मुक्तामणिहरसिजास्वादरसिक ॥ न कोटीरारूढ स्मरति च सविर्भा मणिचय—स्ततो मन्ये लोक स्वसुखनिरत स्नेहविरत ॥ १४२ ॥

कोणे ते पूरी? एम आग्रहपूर्वक राजाए पञ्चाथी तेणे गुरुनु वृत्तांत कह्युं, इत्यादि जेने घणो विस्तार वांचवानी इच्छा होय, तेणे तेमना प्रबंध आदिक जोवा ॥ १३९ ॥ पछी पश्चात्तापमां पडेला राजाए श्रीबप्पभट्टि गुरु प्रत्ये प्रधानोने काव्यो आपी मोकल्या, ते कहे छे—॥ १४० ॥ हे उत्तम वृक्ष! प्रथम तो तु छायाने कारणे पांदडाओने मस्तकपर धारण करे छे, अने पाछां तेओने पृथ्वीपर पाडे छे. माटे एवु हलकु कार्य तु शामाटे करे छे? ॥ १४१ ॥ स्त्रीना कपोलस्थलने प्राप्त थयेलु (गांगेय) सुवर्ण गंगाने याद करतु नथी, तेमज स्त्रीना स्तनना स्वादनो रसीयो मुक्तामणि छीपने याद करतो नथी, तथा मुकुटमां चढेलो मणि समूह पोतानी जन्मभूमिने याद करतो नथी, माटे हु एम मानु छु के, लोको फक्त पोताना सुखमांज रक्त छे, तथा स्नेह विनाना छे ॥ १४२ ॥

इत्यादीनि प्रधानेभ्यो गुरुराकर्ण्येह, आमनृपस्येमा गाथाः श्राव्याः, तथाहि—॥ १४३॥ विझेण विणावि गया। नरिंदभवणेसुहुंति गारविश्रा ॥ विझो न होइअगओ। गए-हि बहुएहि विगए ॥ १४४ ॥ माणसविणा सुहाइं। जहय न लभ्भंति रायहंसेहि॥ तहतस्सवि तेहिविणा । तीरुच्छंगा न सोहंति ॥ १४५ ॥ परिसेसिअहसवज्जपि। माणस माणस न संदेहो ॥ अन्नत्थ विजत्थ गया। हसावि वग्गा न जणंति ॥ १४६ ॥ मलयोसचंदणुच्चि अ। नइ मुहहीरंतचंदणदुमोहो ॥ पज्जहंपि हु मल-याओ। चंदण जायइ महग्घ ॥ १४७ ॥

इत्यादिक काव्यो प्रधानो पासेथी सांभळीने गुरु कहेवा लाग्या के, तमारे आम राजाने नीचे मुजब गाथाओ संभळाववी ते कहे छे —॥ १४३॥ हाथीओ विंध्याचळ विना पण राज भुवनोमां जड गौरववाळा थया छे, तेमज घणा हाथीओ चाल्या जवाथी पण विंध्याचळ पण कंइ हाथी विनानो नथी थइ गयो ॥ १४४ ॥ जेम मानससरोवर विना राजहंसोने सुख मळतुं नथी, तेमज राजहंसोविना मानससरोवरना किनाराओ पण शोभता नथी ॥ १४५ ॥ वळी हंसोविना पण मानससरोवर ते मानसज कहेवाय छे, तेमां कंइ संदेह नथी, तेम हंसो पण ज्यां जाशे, त्यां हंसोज कहेवाशे, परंतु बगलां नही कहेवाशे ॥ १४६ ॥ मलयाचल चंदनयुक्त कहेवाय छे, अने तेमां रहेलां चंदनना वृक्षो नदीवाटे जोके हराइ जाय छे, तेथी एवी रीते मलयाचलथी जोके तेओ भ्रष्ट थाय छे, परंतु ते चंदननी किमत ओछी थती नथी ॥ १४७ ॥

इक्केण कोत्थुहेण । विणावि रयणायरुच्चिअसमुद्दो ॥ कोत्थुहरयणपि तंर । जस्स त्थिअ सोवि हु महग्घो ॥ १४८ ॥ पक्कमुकाहवि नरत्तह फिट्टइ पत्तत्तणं न पत्ताणं ॥ तुह पुण गया जइहोइ । तारिसी तेहिं पत्तेहिं ॥ १४९ ॥ जे केवि पक्कमझिमंग-झंमि । ते उच्छुवम्ससारित्था ॥ सरसा जमाणमज्झे । विरसा पत्तेसु दीसंति ॥ १५० ॥ तत., अस्माज्रियंदि कार्यं व–स्तदा धर्मस्य नूपते. ॥ सत्वाया अत्रमागत्य । स्त्वय-मापृच्छ्यतां द्रुत ॥ १५१ ॥ जाते प्रतिज्ञानिर्वाहे । ययायामस्तवांतिकं ॥ प्रधाना. प्रहिता· पूज्यै–रिति शिक्षापुरस्सर ॥ १५२ ॥

एक कौस्तुभ मणि विना पण समुद्र रत्नाकर कहेवाय छे, तेमज जेना मध्यस्थलमां कौस्तुभ मणि रहेल छे, ते पण महा मुल्यवान् कहेवाय छे ॥ १४८ ॥ हे उत्तम वृक्ष ते पत्रोने तजी दीधां, तोपण पत्रोनु पत्रपणु जातु नथी, परन्तु तने पण ज्यारे तेवां पत्रो होशे, त्यारेज गया थशे ॥ १४९ ॥ आ पृथ्वी मण्डलपर जेटला मोहोटा कहेवाय छे, तेओ सेलडीना सांठा सरिखा छे, केमके तेओ जमोनी अंदर (पक्षे–कातळीओनी अंदर) रसवाला छे, तथा पात्रोनी अंदर (पक्षे–पत्रोनी अंदर) रसविनाना देखाय छे ॥ १५० ॥ माटे, तमारे जो अमारी साथे प्रयोजन होय तो धर्म राजानी सभामां गुप्त आवीने तमारे पोताने अहीं तुरत पूछी जवु ॥ १५१ ॥ अने एवी रीते अमारी प्रतिज्ञा सम्पूर्ण थयेथी अमो तमारी पासे आवीशु; एवी रीतें शिक्षापूर्वक आचार्यजीए प्रधानोने मोकल्या ॥ १५२ ॥

ते कन्यकुब्जभूप आसा गुरुसंदेशादि प्राहु,, राजा तत्कंठया क्रमणात्करजैर्नि:शंको गच्छन् गोदावरीतीरे ग्राममेकं प्राप ॥ १५३ ॥ तत्परिसरे खंडदेवकुले रात्रिमुवास, तद्रूपमूढा तद्देवी तमर्थनापूर्वं बुभुजे, प्रातस्तामनापृच्छ्यैव करभारूढः श्रीगुरुपादांतिकं प्राप ॥ १५४ ॥ विरहव्यंजकैः काव्यैः स्तौति स्म च, ततो गाथार्धं प्राह, 'अज्जवि सा सुमरिज्जइ । को नेहो एगराईए' ॥ १५५ ॥ गुरुराह—'गोल्लानईइतीरे । सुन्नउले जंसित्रीसमिओ' हृष्टो राजा शास्त्रगोष्ठ्यादिभिर्दिनशेषामतिचक्राम ॥ १५६॥

तेथ्रोए पण कन्यकुब्जना राजा पासे जइ गुरुना संदेशा आदिक कह्यु, त्यारे राजा उत्कंठित थइ क्रमणशर्मा ऊंटपर बेसी निःशंकपणे जतो थको गोदावरीने किनारे एक गाममां पहोंच्यो ॥ १५३ ॥ तेना पादरमां रहेलां एक खंडित देवमंदिरमां ते रात्रि रह्यो, त्यां तेना रूपथी मोह पामेली ते मंदिरनी देवीए प्रार्थनापूर्वक तेनी साथे भोग भोगव्यो; पछी प्रभाते तेणीने पुछया विनाज ते ऊंटपर चडीने श्रीगुरु महाराजना चरणोमध्ये पहोंच्यो ॥ १५४ ॥ तथा विरह देखाडनारां काव्योथी तेमनी स्तुति करवा लाग्यो; पछी तेणे एक नीचे मुजब अरधी गाथा कही, 'हजुसुधि ते याद आवे छे के, अहो! एक रात्रिमांज केवो स्नेह ॥१५५॥ त्यारे गुरुजीए कह्युं के, 'गोदावरी नदीने कांठे सूना देवकुलमां विश्राम कर्यो तेटला माटे'; पछी राजाए खुशी थइने बाकीनो दिवस शास्त्र वार्त्ता आदिकथी संपूर्ण कर्यो ॥ १५६ ॥

प्रात. स्थगीधरवेषत्वात् आमनृपश्च सूरिश्च धर्मनृपास्थानं प्राप्तौ ॥ १५७ ॥ आमविज्ञप्ति धर्मराजस्य गुरुरदर्शयत्, विरहव्यजिकां तां वाचयित्वा दूत. पृष्ट', तव नृप कीदृश.? स प्राह, अस्य स्थगीधर्तुस्तुल्योऽसावेव बुध्यतां ॥ १५८ ॥ मातुलिंगं करे बिभ्रत् । सेंप पृष्टश्च सूरिणा ॥ करे ते किं स चावादीत् । बीजओरा इति स्फुट ॥ १५९ ॥ दूतेन चाडकीपत्रे दर्शिते गुरुराह स ॥ स्थगीधर पुरस्कृत्य । तूअरि-पत्तमित्यय ॥ १६० ॥

भजाते आमराजा *स्थगिधरनो वेष लेइने, तथा आचार्य महाराज पण धर्म राजानी सभामां आव्या ॥ १५७ ॥ पछी गुरुए धर्मराजाने आमराजानी विज्ञप्ति देखाडी, त्यारे विरहने प्रगट करनारी ते विज्ञप्ति वाचीने राजाए दूतने पुछ्युं के, तारो राजा केवो छे? त्यारे दूते कह्युं के, आ स्थगीधर सरखो जाणे तेज जाणवो ॥ १५८ ॥ पछी बीजोरं जेणे हाथमां धारण करेलुं छे, एवा तेने आचार्यजीए पुछ्युं के, तारा हाथमां शुं छे? त्यारे तेणे प्रगट रीते कह्युं के, 'बजओरा' ॥ १५९ ॥ पछी दूते आडकीपत्र देखाडते छते गुरुए स्थगीधरने आगळ करीने कह्युं के, आ तो 'तुअरिपत्त' छे ॥ १६० ॥

---

* स्थगी पानदानीशुं तथा स्थगीधर एटले पान बीडांदानीयाने राखनार यावत् पानबीडां राखनार तथा आपनार एवो अर्थ थाय छे.

ततो नृपाग्रहाद्गोपगिरौ प्राप्तास्तदुपदेशाद्राज्ञा एकशतहस्तोन्नत प्रासाद कारित., तत्र जात्यसुवर्णाष्टादशभारमिता श्रीवीरप्रतिमा स्थापिता ॥ १२५ ॥ अन्यदा राज्ञा पूज्यद्विजानुवर्त्तनयाऽन्यदासन श्रीगुरूणाममंडयत्, प्राक् तु सिंहासनं ॥१२६॥ तत प्रतिबोधाय सूरिर्जगौ. मर्दय मानमत्तगजदर्प्पं । विनयशरीरविनाशनसर्प्पं ॥ क्षीणो दर्पाद्दशवक्त्रोऽपि । यस्य न तुल्यो भुवने कोऽपि ॥ १२७ ॥ इति श्रुत्वा राज्ञाऽवलेपं परिहृत्य पुन· सिंहासनमेवाऽमंडयत सदापि ॥ १२८ ॥ अन्यदांत.पुरे म्लानमुखीं वल्लभां दृष्ट्वा राजाह समस्यां सूरये, 'अज्जवि सा परितप्पइ । कमलमुही अत्तणो पमाएण' ॥ १२९ ॥

पछी राजाना आग्रहथी ते गोपगिरि प्रत्ये पहोंच्या, त्यां तेमना उपदेशथी राजाए एकसो हाथ उंचु जिनमंदिर बंधाव्यु; तथा तेमा उत्तम सुवर्णनो अढार भारना प्रमाणवाळी श्रीवीरप्रभुनी प्रतिमा स्थापन करी ॥ १२५ ॥ हवे एक दिवसे राजाए राजगोर ब्राह्मणनु कह्यु मानीने श्रीगुरु महाराज माटे बीजु आसन मंडाव्युं, पेहेलां तो सिंहासन मंडावता हता ॥ १२६ ॥ त्यारे राजाने प्रतिबोधवा माटे आचार्यजीए कह्यु के, विनयरूपी शरीरनो नाश करवामां सर्प सरखा एवा मानरूपी मदोन्मत्त हाथी जेवो दर्पनु मर्दन करो? केमके जेना सरखो जगत्मां कोइ पण नहोतो, एवो रावण पण अहंकारथी नष्ट थयो ॥ १२७ ॥ ते सांभळी राजा अहंकार छोडी फरीने हमेशां सिंहासन मंडाववा लाग्यो ॥ १२८ ॥ एक वखते अंत.पुरमां पोतानी राणीने उतरेला मुखवाळी जोइने राजाए आचार्यजीने समस्या कही के, 'हजु पण ते कमळमुखी पोताना प्रमादथी परिताप पाम्या करे छे' ॥ १२९ ॥

सिद्धमारस्वतसूरि —'पुव्वविबुद्धेण तए । जीसे पच्चाइश्च अग' ॥१३०॥ पुनरन्यदा पट्टराज्ञीं संचरंतीं पदे पदे व्यथमानामिव दृष्टपूर्वी स्माह नृप, 'वाला चक्कमती । पए पए कीस कुणइ मुहभंग ॥ १३१ ॥ सूरि —'नूण रमणपएसे । मेहलिआ छिवइनहपति ॥ १३२ ॥ तच्छ्रुत्वा नृपतिर्विकृतमुखोऽभूत्, निरादरश्च, त ताहश दृष्ट्वा श्रीगुरुरुपाश्रये गत्वा किंचिन्मिषं कृत्वा द्वारकपाटयो काव्य लिखित्वा व्यहार्षीत् ॥ १३३ ॥ तच्चेद—याम स्वस्ति तवास्तु रोहणगिरे मत्त. स्थिति प्रच्युता । वर्त्तिष्यत इमे ऽधुना कथमिति स्वप्नेऽपि मैव कृथा ॥ श्रीमंतो मणयो वय यदि जगल्लब्धप्रतिष्ठास्तदा । के शृंगारपरायणा क्षितिभुजो मौलौ करिष्यति न· ॥ १३४ ॥

त्यारे सिद्ध करेल छे सारस्वत मत्र जेमणे एवा आचार्यजीए कह्यु के 'पूर्वे जागी उठवाथी शरीर दाझ्यु, तेटला माटे' ॥ १३० ॥ वळी एक दहाडो राजाए चालती एवी पोतानी पटराणीने पगले पगले जाणे व्यथा पामती होय नहीं, तेम पेहेलां देखवाथी समस्या कही के, 'चालती थकी बाला पगले पगले शामाटे मुखभग करे छे?' ॥ १३१ ॥ त्यारे आचार्यजीए कह्यु के, 'खरेखर तेणीना गुह्यस्थले मेखला पासे नखोनी श्रेणि लागेली छे' ॥ १३२ ॥ ते सांभळीने राजानु मुख उतरी गयु, तथा आचार्यजी प्रत्ये आदर रहित थयो, पछी तेने तेवी रीतनो जोइने गुरु महाराजे उपाश्रये जइ, कइक मिष करीने, तथा बारणाना बन्ने कमाडोपर काव्य लखीने त्यांथी विहार कर्यो ॥ १३३ ॥ ते काव्य नीचे मुजब हतु हे रोहणाचल' तु स्वप्नमा पण एवो विचार नहीं करजे के मारी पासेथी खसी जवाथी तेओना हवे शु हाल थशे? केमके जो अमो मणियो किमती छइये, तथा तमाराथी जो अमोने प्रतिष्ठा मळेली छे, तो केटलाक शृंगारना इच्छक राजाओ अमोने मस्तके पण चडावशे, माटे हवे तारु कल्याण थाओ? अमो जइये छीय ॥ १३४ ॥

श्रीगुरुर्गौडदेशं प्राप, तत्र धर्मनृप. तदाप्रद्यावत् श्रीआमनृप स्वयमाकारणाय नायाति तावन्न विहार्यमिति प्रतिज्ञाय स्थिता ॥ १३५ ॥ अन्यदा श्रीआमनृपो राजपाटिकायै गतः, क्वचित् कृष्णसर्पं दृष्ट्वा मुखे मुद्रकं त गृहीत्वा मुष्टिमध्ये कृत्वा, वादुमन्त्रेणाच्छाद्य च शस्त्र शास्त्र कृपिर्विया। अन्यो यो येन जीवति ' इतिमसम्यामप्राक्षीत ॥ १३६ ॥ न कोऽपि नृपाभिप्रायेण प्रयति, तदा श्रीगुरुं भृगमस्मार्षीत्, नत पटहो, य एना ममाभिप्रायेण पूरयेत्तस्य स्वर्णटङ्कलक्षमर्प्पये, इत्यनायन ॥ १३७ ॥ धूतकारेण गौडदेशे गत्वा श्रीगुरुन् प्रप्राऽपूरि ' सुगृहीतं च कर्त्तव्यं । कृष्णसर्पमुखं यथा ॥ १३८ ॥

पछी श्रीबप्पभट्टिजी गौडदेशमां गया. त्यां धर्म नामे राजा हतो, तेना आग्रहथी त्यां ते रह्या, तथा एवी प्रतिज्ञा करी के, ज्यांसुधि आम राजा पोते मने बोलाववाने न आवे, त्यांसुधि मारे अहींथी विहार करवो नहीं ॥ १३५ ॥ एक वखते श्रीआम राजा रयवाडीए गया त्यां रस्तामां एक काळा सर्पने जोइने, तथा तेनुं मुख दृढ रीते पकडीने अने मुठीमां दाबीने तथा हाथ ढांकी राखीने 'शस्त्र, शास्त्र, खेती, तथा विद्या के जे वडे प्राणी जीवे छे' एवी रीतनी समस्या पूछवा लाग्यो ॥ १३६ ॥ परन्तु कोइये पण राजाना अभिप्राय मुजब ते संपूर्ण करी नहीं; ते वखते राजाए श्रीबप्पभट्टिजीने घणा संभार्या, तथा पछी तेणे पडह वजडाव्यो के, जे कोइ आ समस्या अभिप्राय मुजब पूरशे, तेने एक लाख सुवर्णटंका हुं आपीश ॥ १३७ ॥ पछी एक जुगारीए गौडदेशमां जइने श्रीगुरु महाराजने पूछीने ते समस्या पूरी के, 'जेम कृष्ण सर्पनुं मुख, तेम ते सुगृहीत करवुं ॥ १३८ ॥

केनाऽपूरीति निर्बंधपूर्वं राज्ञा प्रष्टो गुरुस्वरूप व्याख्यायीत्यादि बहुविस्तरार्थिना एतत्प्रबंधादि विलोक्य ॥ १३ए ॥ ततोऽनुतापपर. प्रैषीत् प्रधानान् काव्यानि च श्रीबप्पभट्टिगुरून् प्रति, तथाहि—॥ १४० ॥ छायाकारणि सिरि धरिअ । पच्चवि भूमिपडंति ॥ पत्तह एहु पत्तत्तण । वरतरु कांइ करंति ॥ १४१ ॥ न गंगा गांगेय सुयुवतिकपोलस्थलगत । न वा शुक्ति मुक्तामणिरुरसिजास्वादरसिक ॥ न कोटीरारूढ स्मरति च सवित्रीं मणिचय—स्ततो मन्ये लोक स्वसुखनिरत स्नेहविरत ॥ १४२ ॥

कोणे ते पूरी? एम आग्रहपूर्वक राजाए पुछवाथी तेणे गुरुनु वृत्तांत कह्यु, इत्यादि जेने घणो विस्तार वांचवानी इच्छा होय, तेणे तेमना प्रबंध आदिक जोवां ॥ १३ए ॥ पछी पश्चात्तापमां पडेला राजाए श्रीबप्पभट्टि गुरु प्रत्ये प्रधानोने काव्यो आपी मोकल्या, ते कहे छे—॥ १४० ॥ हे उत्तम वृक्ष! प्रथम तो तु छायाने कारणे पांदडाओने मस्तकपर धारण करे छे, अने पाछां तेओने पृथ्वीपर पाडे छे. माटे एवु हलकु कार्य तु शामाटे करे छे? ॥ १४१ ॥ स्त्रीना कपोलस्थलने प्राप्त थयेलु (गांगेय) सुवर्ण गंगाने याद करतु नथी, तेमज स्त्रीना स्तनना स्वादनो रसीयो मुक्तामणि छीपने याद करतो नथी, तथा मुकुटमा चडेलो मणि समूह पोतानी जन्मभूमिने याद करतो नथी, माटे हु एम मानु छु के, लोको फक्त पोताना सुखमांज रक्त छे, तथा स्नेह विनाना छे ॥ १४२ ॥

इत्यादीनि अथानेज्यो गुरुराकर्ण्येद्द, आमनृपस्येमा गाथा. आव्या॰, तथाहि—॥ १४३॥ विंझेण विणावि गया । नरिंदभवणेसुहुंति गारविआ ॥ विंझो न होइअगओ। गए-हिं बहुएहिं विगए ॥ १४४ ॥ माणसविणा सुहाइं। जहय न अप्नंति रायहंसेहि ॥ तहतस्सवि तेहिविणा । तीरुच्छगा न सोहंति ॥ १४५ ॥ परिसेसिअहंसउलंपि। माणसं माणस न संदेहो ॥ अन्नत्य विजत्थ गया। हंसावि बग्गा न जाणंति ॥ १४६ ॥ मलओसचंदणुच्चि अ। नइ मुहहीरंतचंदणदुमोहो ॥ पज्झट्ठंपि हु मल-याओ। चंदणं जायइ महग्घ ॥ १४७ ॥

इत्यादिक काव्यो भट्टनो पासेथी सांभळीने गुरु कहेवा लाग्या के, तमारे आम राजाने नीचे मुजब गाथाओ संभळाववी ते कहे छे.—॥ १४३॥ हाथीओ विंध्याचळ विना पण राजभुवनोमां जइ गौरववाळा थया छे, तेमज घणा हाथीओ चाल्या जवाथी पण विंध्याचळ पण कइ हाथी विनानो नथी थइ गयो ॥ १४४ ॥ जेम मानससरोवर विना राजहंसोने सुख मळतु नथी, तेमज राजहंसोविना मानससरोवरना किनाराओ पण शोभता नथी ॥ १४५ ॥ वळी हंसोविना पण मानससरोवर ते मानसज कहेवाय छे, तेमां कइ संदेह नथी; तेम हंसो पण ज्यां जाशे, त्यां हंसोज कहेवाशे, परंतु बगलां नही कहेवाशे ॥ १४६ ॥ मलयाचल चंदनयुक्त कहेवाय छे, अने तेमां रहेला चंदनना वृक्षो नदीवाटे जोके हराइ जाय छे, तथा एवी रीते मलयाचलथी जोके तेओ भ्रष्ट थाय छे, परंतु ते चंदननी किंमत ओछी थती नथी ॥ १४७ ॥

क्केण कोत्थुहेण । विणावि रयणायरुच्चिअसमुद्दो ॥ कोत्थुहरयणपिउरे । जस्स
ठिअ सोवि हु महग्घो ॥ १४८ ॥ पइमुक्काहवि वरतरु फिट्टइ पत्तत्तणं न पत्ताणं ॥
तुह पुण गया जइहोइ । तारिसी तेहिं पत्तेहिं ॥ १४९ ॥ जे केवि पहूमहिमंरु-
ढमि । ते उच्छुकुसारित्था ॥ सरसा जडाणमज्झे। विरसा पत्तेसु दीसंति ॥ १५० ॥
नत, अस्मान्निर्यदि कार्यं व-स्तदा धर्मस्य भूपते ॥ सभाया गुप्तमागत्य । स्वय-
मापृच्छयता द्रुत ॥ १५१ ॥ जाते प्रतिज्ञानिर्वाहे । यथायामस्तवांतिक ॥ प्रधाना
प्रहिता पूज्यै-रिति शिक्षापुरस्सर ॥ १५२ ॥

एक कौस्तुभ मणि विना पण समुद्र रत्नाकर कहेवाय छे, तेमज जेना वक्षस्थलमां कौस्तुभ मणि रहेल छे, ते पण महा मूल्यवान् कहेवाय छे ॥ १४८ ॥ हे उत्तम वृक्ष ते पत्रोने तजी दीधां, तोपण पत्रोनु पत्रपणु जातु नथी, परतु तने पण ज्यारे तेवां पत्रो होशे, त्यारेज शोभा थशे ॥ १४९ ॥ आ पृथ्वी मंडलपर जेटला मोहोटा कहेवाय छे, तेओ शेलडीना सांठा सरिखा छे, केमके तेओ जडोनी अंदर (पक्षे-कातळीओनी अंदर) रसवाळा छे, तथा पात्रोनी अंदर (पक्षे-पत्रोनी अंदर) रसविनाना देखाय छे ॥ १५० ॥ माटे, तमारे जो अमारी साथे प्रयोजन होय तो धर्म राजानी सभामां गुप्त आवीने तमारे पोताने अहीं तुरत पूछी जवु ॥ १५१ ॥ अने एवी रीते अमारी प्रतिज्ञा संपूर्ण थयेथी अमो तमारी पासे आवीशु, एवी रीते शिक्षापूर्वक आचार्यजीए प्रधानोने मोकल्या ॥ १५२ ॥

ते कन्यकुब्जनृप आप्ता गुरुसंदेशादि प्राहु, राजा उत्कण्ठया क्षणात्करजैर्निशको गच्छन् गोदावरीतीरे ग्राममेकं प्राप ॥ १५३ ॥ तत्परिसरे खण्डदेवकुले रात्रिमुवास, तद्रूपमूढा तद्देवी तमर्थनापूर्वं बुभुजे. प्रातस्तामनापृच्छ्यैव करजारूढ. श्रीगुरुपादातिकं प्राप ॥ १५४ ॥ विरहव्यंजकैः काव्यै. स्तौति स्म च, ततो गाथार्धं प्राह, 'अज्जवि सा सुमरिज्जइ । को नेहो एगराईए' ॥ १५५ ॥ गुरुराह—'गोलानईइतीरे । सुन्नउले जंमिवीसमिओ' हृष्टो राजा शास्त्रगोष्ठ्यादिभिर्दिनशेषाद्यतिचक्राम ॥ १५६॥

तेओए पण कन्यकुब्जना राजा पासे जइ गुरुना सदेशा आदिक कह्यु; त्यारे राजा उत्कंठित थइ क्षणवारमा उंटपर वेसी निःशंकपणे जतो थको गोदावरीने किनारे एक गाममा पहोंच्यो ॥ १५३ ॥ तेना पादरमा रहेला एक खण्डित देवमंदिरमा ते रात्रि रह्यो; त्या तेना रूपथी मोह पामेली ते मन्दिरनी देवीए प्रार्थनापूर्वक तेनी साथे भोग भोगव्यो, पछी प्रभाते तेणीने पूछ्या विनाज ते उंटपर चडीने श्रीगुरु महाराजना चरणांम्बुजे पहोंच्यो ॥ १५४ ॥ तथा विरह देखाडनारा काव्योथी तेमनी स्तुति करवा लाग्यो; पछी तेणे एक नीचे मुजब अरधी गाथा कही 'हजुसुधि ते याद आवे छे के, अहो! एक रात्रिमाज केवो स्नेह ॥ १५५॥ त्यारे गुरुजीए कह्यु के, 'गोदावरी नदीने काठे सूना देवकुलमा विश्राम कर्या तेटला माटे', पछी राजाए खुशी थइने बाकीनो दिवस शास्त्र वार्ता आदिकथी संपूर्ण कर्यो ॥ १५६ ॥

प्रात स्थगीधरवेषत्वाग् आमनृपश्च सूरिश्च धर्मनृपास्थानं प्राप्तौ ॥ १५७ ॥ आमविज्ञप्ति धर्मराजस्य गुरुरदर्शयत्, विरहव्यंजिकां ता वाचयित्वा दूत. पृष्टः, तव नृप कीदृश ? स प्राह, अस्य स्थगीधर्त्तुस्तुल्योऽसावेव बुध्यता ॥ १५८ ॥ मातुलिंग करे बिभ्रत् । सेप पृष्टश्च सूरिणा ॥ करे ते किं स चावादीत् । बीजओरा इति स्फुट ॥ १५९ ॥ दूतेन चाडकीपत्रे दर्शिते गुरुराह स. ॥ स्थगीधर पुरस्कृत्य । तूअरिपत्तमित्यय ॥ १६० ॥

प्रभाते आमराजा *स्थगिधरनो वेष लइने, तथा आचार्य महाराज पण धर्म राजानी सभामा आव्या ॥ १५७ ॥ पछी गुरुए धर्मराजाने आमराजानी विज्ञप्ति देखाडी, त्यारे विरहने प्रगट करनारी ते विज्ञप्ति वांचीने राजाए दूतने पूछ्यु के तारो राजा केवो छे ? त्यारे दूते कह्यु के, आ स्थगीधर सरखो जाणे तेज जाणवो ॥ १५८ ॥ पछी बीजोरु जेणे हाथमा धारण करेलु छे, एवा तेने आचार्यजीए पूछ्यु के, तारा हाथमां शुं छे ? त्यारे तेणे प्रगट रीते कह्यु के, 'बीजओरा' ॥ १५९ ॥ पछी दूते आडकीपत्र देखाडते छते गुरुए स्थगीधरने आगळ करीने कह्यु के, आ तो 'तूअरिपत्त' छे ॥ १६० ॥

---

* स्थगी पानदानीयु तेथी स्थगीधर एटले पान बीडादानीयाने राखनार यावत् पानबीडां राखनार तथा आपनार एवो अर्थ थाय छे.

इत्येव श्लिष्टेऽर्थे उक्तेऽपि ऋजुणा धर्मनृपेन न ज्ञात, तत उत्थाय श्रीआमो वारवेश्यागृहेऽवसत् ॥ अमूल्य कंकणं दत्वाऽस्या प्रातर्निरगाद् गृहात् ॥ १६१ ॥ द्वितीयं राजसौधद्वारेऽर्कीलके मुक्त्वा ततो निर्गतो वहीरहोवनेऽस्थात्, तत प्रातर्गुरुर्नृपसत्रा गत्वा कन्यकुब्जप्रस्थानाय नृपमापृच्छे ॥ १६२ ॥ तेनोक्तं प्रतिज्ञा किं विस्मृता? गुरुणोक्त सा पूर्णा कथमिति राज्ञोक्ते, आमागमादिस्वरूप यथास्थ जातमवदत् ॥ १६३ ॥ तावद्वारवध्वा आमनामाकितं कंकणं राज्ञोऽग्रे मुक्तं, द्वितीय च द्वारपालेन, ततो जातप्रत्यय राजानमापृच्छ्य कन्यकुब्जं प्रति गुरु प्रतस्थे ॥ १६४ ॥

एवी रीते श्लेषयुक्त अर्थ कहेते छते पण सरल एवा धर्मराजाए तेनो भावार्थ जाण्यो नही; पछी त्यांथी उठीने श्रीआमराजा वारागनाने घेर रह्यो, तथा तेणीने अमूल्य कंकण आपीने प्रभाते तेणीने घेरथी ते निकळी गयो ॥ १६१ ॥ पछी बीजु कंकण राजमेहेलना दरवाजाना गोखलापर मूकीने त्यांथी बहार निकळी ते गुप्त रीते वनमां रह्यो; पछी प्रभाते गुरु महाराज धर्मराजानी सभामा जइने कन्यकुब्ज प्रत्ये जवा माटे रजा मागवा लाग्या ॥ १६२ ॥ त्यारे धर्मराजाए कह्यु के, शुं तमोए प्रतिज्ञा विसारी मूकी? त्यारे गुरुए कह्यु के, ते तो संपूर्ण थइ, केवी रीते? एम राजाए पूछ्याथी तेणे आमराजाना आगमनतु स्वरूप यथार्थ रीते कह्यु ॥ १६३ ॥ एटलामां वारांगनाए आवीने आमराजाना नामवाळु कंकण राजानी पासे मूक्यु, तथा बीजुं कंकण द्वारपाळे पण लावी मूक्यु, एवी रीते जेने खातरी थयेली छे, एवा ते राजानी रजा लेइने गुरु-महाराज कन्यकुब्ज प्रत्ये चाल्या; ॥ १६४ ॥

प्रात स्थगीधरवेषवान् आमनृपश्च सूरिश्च धर्मनृपास्थानं प्राप्तौ ॥ १५७ ॥ आमविज्ञप्तिं धर्मराजस्य गुरुरदर्शयत्, विरहव्यंजिका तां वाचयित्वा दूत· पृष्टः, तत्र नृप कीदृश ? स प्राह, अस्य स्थगीधर्तुस्तुल्योऽसावेव बुध्यता ॥ १५८ ॥ मातुलिंग करे बिभ्रत् । सैष पृष्टश्च सूरिणा ॥ करे ते किं स चावादीत् । बीजओरा इति स्फुट ॥ १५९ ॥ दूतेन चाडकीपत्रे दर्शिते गुरुराह स. ॥ स्थगीधरं पुरस्कृत्य । तूअरिपत्तमित्यय ॥ १६० ॥

पछी आमराजा *स्थगिधरनो वेष लेइने, तथा आचार्य महाराज पण धर्म राजानी सभामां आव्या ॥ १५७ ॥ पछी गुरुए धर्मराजाने आमराजानी विज्ञप्ति देखाडी, त्यारे विरहने प्रगट करनारी ते विज्ञप्ति वांचीने राजाए दूतने पूछयु के तारो राजा केवो छे ? त्यारे दूते कह्यु के, आ स्थगीधर सरखो जाणे तेज जाणवो ॥ १५८ ॥ पछी बीजोरु जेणे हाथमां धारण करेलुं छे, एवा तेने आचार्यजीए पूछयु के, तारा हाथमां शुं छे ? त्यारे तेणे प्रगट रीते कह्यु के, 'बीजओरा' ॥ १५९ ॥ पछी दूते आडकीपत्र देखाडते छते गुरुए स्थगीधरने आगाडी करीने कह्यु के, आ तो 'तूअरिपत्त' छे ॥ १६० ॥

---

* स्थगी पानदानीयु तेथी स्थगीधर एटले पान बीडादानीयाने राखनार यावत् पानबीडां राखनार तथा आपनार एवो अर्थ थाय छे

इत्येव श्लिष्टेऽर्थे उक्तेऽपि ऋजुणा धर्मनृपेन न ज्ञात, तत उत्थाय श्रीआमो वारवेश्यागृहेऽवसत् ॥ अमूल्य कंकण दत्वाऽस्या प्रातर्निरगाद् गृहात् ॥ १६१ ॥ द्वितीय राजसौधद्वारेऽकीलके मुक्त्वा ततो निर्गतो बहीरहोवनेऽस्थात्, तत. प्रातर्गुरुर्नृपसत्रा गत्वा कन्यकुब्जप्रस्थानाय नृपमापपृच्छे ॥ १६२ ॥ तेनोक्त प्रतिज्ञा किं विस्मृता? गुरुणोक्त सा पूर्णा कथमिति राज्ञोक्ते, आमागमादिस्वरूप यथास्थ जातमवदत् ॥ १६३ ॥ तावद्वारवध्वा आमनामांकितं कंकण राज्ञोऽग्रे मुक्तं, द्वितीय च द्वारपालेन, ततो जातप्रत्यय राजानमापृच्छ्य कन्यकुब्ज प्रति गुरु प्रतस्थे ॥ १६४ ॥

एवी रीते श्लेषयुक्त अर्थ कहेते छते पण सरल एवा धर्मराजाए तेनो भावार्थ जाण्यो नहीं, पछी त्यांथी उठीने श्रीआमराजा वारांगनाने घेर रह्यो, तथा तेणीने अमूल्य कंकण आपीने प्रभाते तेणीने घेरथी ते निकळी गयो ॥ १६१ ॥ पछी बीजु कंकण राजमेहेलना दरवाजाना गोखनापर मूकीने त्यांथी बहार निकळी ते गुप्त रीते वनमां रह्यो, पछी प्रभाते गुरु महाराज धर्मराजानी सभामा जइने कन्यकुब्ज प्रत्ये जवा माटे रजा मागवा लाग्या ॥ १६२ ॥ त्यारे धर्मराजाए कह्यु के. शुं तमोए प्रतिज्ञा विसारी मूकी? त्यारे गुरुए कह्यु के, ते तो संपूर्ण थइ; केवी रीते? एम राजाए पूछ्याथी तेणे आमराजाना आगमननु स्वरूप यथार्थ रीते कह्युं ॥ १६३ ॥ एटलामां वारांगनाए आवीने आमराजाना नामवाळु कंकण राजानी पासे मूक्यु, तथा बीजु कंकण द्वारपाळे पण लावी मूक्युं, एवी रीते जेने खातरी थयेली छे, एवा ते राजानी रजा लेइने गुरु-महाराज कन्यकुब्ज प्रत्ये चाल्या, ॥ १६४ ॥

श्रीआमनृपेण सह गोपालगिरिमापत्, तत्र कदाचित् शास्त्रगोष्ट्या कदाचिद्धर्मगोष्ठ्या समयो याति ॥ १६५ ॥ श्रीवप्पभट्टि साम्ना श्रीआमनृपप्रतिबोधाय बहूनुपायानकरोत् पर स नाऽबुध्यत धर्मं ॥ १६६ ॥ अन्यदा तत्र गायनवृंद सुस्वरमाययौ, तत्रैका मातंगी राजानं रूपेण स्वरेण च रंजयामास १६७ ॥ राजा तद्रूपमोहितो वहिरावासमचीकरत्. उवाच च—वक्त्रं पूर्णशशी सुधाधरलता दंता मणिश्रेणय । कांतिः श्रीर्गमनं गज परिमलस्ते पारिजातद्रुमा ॥ वाणी कामदुधा कटाक्षलहरी सा कालकूटच्छटा । तत् किं चंद्रमुखि त्वदर्थममरैरामथि दुग्धोदधि ॥ १६८ ॥

त्यारबाद ते श्रीआमराजानी साथे गोपालगिरि प्रत्ये आव्या, तथा त्यां कोइ वखते शास्त्रवार्त्ताथी तथा कोइ वखते धर्मवार्त्ताथी तेओनो समय जवा लाग्यो ॥ १६५ ॥ पछी श्रीवप्पभट्टिजीए सामभेदे करीने श्रीआमराजाने प्रतिबोधवा माटे घणा उपायो कर्या, परंतु तेने धर्मनो प्रतिबोध लाग्यो नहीं ॥ १६६ ॥ एक वखते त्यां उत्तम गायनो करनारं गानाराओनुं टोलुं आव्युं, तेमानी एक कुवरीए राजाने रूप तथा स्वरथी खुश करी ॥ १६७ ॥ तेणीना रूपथी मोहित थयेला राजाए बहार एक महेल बधाव्यो, तथा कहेवा लाग्यो के—हे चंद्रमुखी! तारुं मुख पूर्णिमाना चंद्र सरखुं छे, ओष्ठलता अमृत सरखी छे, दांतो मणिओनी श्रेणिओ सरखा छे, कांति लक्ष्मी सरखी छे, गमन हाथी सरखुं छे, सुगंधि कल्पवृक्ष सरखी छे, वाणी कामधेनु सरखी छे, कटाक्षोनी श्रेणि कालकूटनी (विषनी) छटा सरखी छे, माटे शुं तारे माटेज देवोए क्षीरसमुद्रने मथेलो छे ? ॥ १६८ ॥

जन्मस्थाम न खलु विमलं वर्णनीयो न वर्णो। दूरे शोजा वपुषि निहिता पकशंका तनोति ॥ विश्वप्रार्थ्यः सकलसुरजिद्रव्यदर्पापहारी । नो जानीम. परिमलगुण. कस्तु कस्तूरिकाया ॥ १६ए ॥ सूरिणा चिंतितं, अहो महतामपि कीदृग्मतिविपर्यासः, जस्त्रा काचन जूरिरध्रविगलत्तज्जन्ममलक्लेदिनी । सा सस्कारशतैः क्षणार्धमधुरा बाह्यामुपैति द्युति ॥ अंतस्तत्त्वरसोर्मिधौतमतयोऽप्येतां तु कांताधिया । श्लिष्यंति स्तुवते नमति च पुर. कस्यात्र पूत्कुर्महे ॥ १७० ॥ उत्थिता सजा, त्रिजिर्दिनैर्नृपेन पूर्वहि. सौध कारित, मातंगीसहितोऽत्र वरस्यामीतिधिया, तद्वगत वप्पजट्टिगुरुणा ॥ १७१ ॥

कस्तूरीनु जन्मस्थान निर्मल नथी तेम तेनो रंग पण प्रशसवा लायक नथी, शोजा तो तेनी दूर रही, परतु शरीरपर लेपन करवाथी पण कादवनी शंका विस्तारे छे, एटलु उतां पण अमोने नथी मालुम पडतु के, तेमा केवोक सुगंधिनो गुण रहेलो छे? के जेथी आखु जगत् तेनी प्रशसा करे छे, तथा ते सघळा सुगंधि द्रव्योना अहंकारने हरे छे ॥ १६ए ॥ त्यारबाद आचार्यजीए विचार्यु के, अहो! महान् पुरुषोनी पण केवी बुद्धि फरी जाय छे? घणा छिद्रोथी गळता एवा ते ते मेलथी मलीन थयेली, तथा सेंकडो गमे संस्कारोथी अरधा क्षण सुधि जे बहारनी मनोहर कांतिने धारण करे छे, एवी कोइक धमण सरखी स्त्रीने पण, हृदयमां तत्वरसना मोजाओथी जेनी मति निर्मळ थयेली छे, एवा मनुष्यो पण कांतानी बुद्धिथी तेणीने आलिंगन करे छे, स्तवे छे, तथा नमे पण छे, माटे हवे अमो कोनी पासे पोकार करीये ॥ १७० ॥ पछी सजा उठ्या बाद राजाए त्रण दिवसोमा नगरनी बहार मेहेल तैयार कराव्यो, एवी बुद्धिथी के, ते डुंबडी सहित हु त्यां रहीश, पछी ते बाबत वप्पजट्टिजी गुरुने मालुम पडी ॥ १७१ ॥

ततो मासौ कुकर्मणा नरक यासीदिति कृपया गुरुणा निष्पद्यमानसौधद्वारपट्टे नि-शि खटिकया प्रतिबोधकाव्यानि लिखितानि ॥ १७२ ॥ यथा,—शैत्य नाम गुणस्त-वैव भवत· स्वाभाविकी स्वच्छता । किं ब्रूम· शुचिता भवति शुचयस्त्वत्सगतोऽन्ये यत ॥ कि चात परमस्ति ते स्तुतिपदं त्व जीवित देहिना । त्व चेन्नीचपथेन गच्छ-सि पय कस्त्वा निरोद्धु क्षम. ॥ १७३ ॥ सद्वृत्तसद्गुणमहार्थमहार्हकात—कांता-घनस्तनतटोचितचारुमूर्ते ॥ आ पामरीकठिनकंठविलग्नभग्न । हा हार हारितमहो भवता गुणित्व ॥ १७४ ॥ जीअ जलबिंदुसम । सपत्तिओ तरगलोलाओ ॥ सुविण-यसम च पिम्म । ज जाणसि त करिज्जासु ॥ १७५ ॥

त्यारे तेमणे विचार्यु के, कुकर्मथी आ राजा नरकमा न पडे तो सारु, एवी दया लावी तेमणे तैयार थता मेहेलना बारणाना पाटिए खडीथी तेना प्रतिबोध माटे नीचे मुजब काव्यो लख्या ॥ १७२ ॥ ते कहे छे—हे ! जल ! शीतल नामनो गुण पण तारामांज छे, तेम स्वाभाविक स्वच्छता पण तारामांज छे, वळी वधारे शु कहीये ? तारा सगथी बीजाओ पण पवित्र थाय छे, वळी तेथी पण तारी अमो वधारे स्तुति शु करीये ? केमके तु प्राणी-ओना जीवितरूप छे, माटे एवु पण तु जो नीच मार्गे जशे, तो पछी तने रोकवाने कोण समर्थ छे ? ॥ १७३ ॥ हे हार ! तु केवो छो ? तोके उत्तम वृत्तयुक्त (पक्षे—गोळ आकारयुक्त मोतीवाळो) सद्गुणवाळो (पक्षे—उत्तम दोरीथी गुथेलो) महान् अर्थवाळो लायक तथा मनोहर छो, तेमज स्त्रीना निबिड स्तन तटोपर उचित तथा मनोहर तेज-वाळो छो, एवो पण तु, एक नीच कुवडीना कठिन कठमां अथडाइने ज्यारे भांगी जइश, त्यारे अरेरे ! ते तारु गुणिपणु खोयुज समजवु ॥ १७४ ॥ आ जीवित जलबिंदु सरखु छे, तथा सपदाओ मोजाओ सरखी चपल छे, अने प्रेम स्वप्न सरखो छे माटे जेम उचित जणाय, तेम आचरण करवु ॥ १७५ ॥

लज्जिज्जइ जेण जणे । मइलिज्जइ निअकुलक्कमो जेण ॥ कण्ठट्ठिएवि जीए । त न कु-
लीणेहिं कायव्व ॥ १७६ ॥ इति, प्रात श्रीआमोऽपि तत्सदन प्रेक्षितु ययौ, अप-
श्यच्च तानि काव्यानि यथा यथा, तथा तथा भ्रमो नष्टो दुग्धाब्धेस्तूरमोहवत् ॥१७७॥
तत आमः श्यामास्यो भृशमन्वतप्यत व्यमृशच्च, मम मित्र विना कोऽन्य एव बोधयेत्,-
इदानीं कथ स्वमास्यं दर्शये । १७८ ॥ मम वह्निरेव शुद्धि विधास्यति, धिग्मे जन्म
सकलक, इति ध्यात्वा स तत्रैवादिशच्चितायै पार्श्वस्थान् ॥ १७९ ॥ तेऽनिच्छतोऽपि
त नृपादेश व्यधु , इद राजलोको ज्ञात्वा गुरोरग्रे पूच्चक्रे , ततो गुरुस्तत्र गत्वाह
॥ १८० ॥

जेथी करीने दुनीयामा लज्जा पामीये, तथा जेथी पोतानो कुलक्रम मलिन थाय, तेवु कार्य कुलीन माणसोए कण्ठे प्राण आवे तोपण न करवु ॥ १७६ ॥ इति, हवे प्रभाते आमराजा पण ते मेहेल जोवा गयो, तथा जेम जेम ते काव्योने जोवा लाग्यो, तेम तेम दूधथी जेम धन्तुरानु विष, तेम तेनो भ्रम नष्ट थवा लाग्यो ॥ १७७ ॥ पछी आमराजा झखवाणा मुखवाळो थइने घणो पश्चाताप करवा लाग्यो. तथा विचारवा लाग्यो के, मारा मित्रविना बीजो कोण मने आवी रीते प्रतिबोधे, हवे हु मारु मुख शु बतावु ? ॥ १७८ ॥ हवे तो मने अग्नि ज शुद्ध करशे, मारा आ कलंकित जन्मने धिकार छे ; एम विचारि तेणे त्याज नोकरोने चिता माटे हुकम कर्यो, ॥ १७९ ॥ तेओए इच्छाविना पण राजानो ते हुकम बजाव्यो, पछी ते वातनी राजदरबारीओने खबर पडवाथी, तेओए गुरु पासे जइ पोकार कर्यो, त्यारे श्रीबप्पभट्टिजी महाराज त्यां जइ कहेवा लाग्या के ॥ १८० ॥

राजन् किमिदं योषिदहं प्रारब्ध? राजाह, ममास्य दुष्कृतस्य देहत्याग एव प्रायश्चित्त, यथा दुर्नयलोकस्य । वय दण्डमकुर्महि ॥ तथा स्वस्यापि किं नैव । कुर्मः कर्मच्छिद कृते ॥ १७१ ॥ गुरुराह, निबद्ध कर्म चित्तेन । चित्तेनैव विमुच्यते ॥ स्मार्त्तादीन् पृच्छ, यत स्मृत्यादिषु सर्वेषां पापाना मोक्षोपाय ऊचे ॥ १७२ ॥ राज्ञा ते आहूता, स्वमन पापमुक्त, स्मार्त्ता आहु,—आयसीपुत्रिका वह्नि—ध्माता तद्वर्णरूपिणीं ॥ आश्लिष्यन् मुच्यते पापा—द्वांमालीसगसत्नवात् ॥ १७३ ॥ इति श्रुत्वा नृपस्ता कारयामास, तदालिंगनाय सज्जोऽभूत, तदा पुरोधोवप्पभट्टिभ्यां नृपो भुजयोर्धृत ॥ १७४ ॥

हे राजन्! श्रीने लायक एवु आ शु कार्य करवा मांड्यु छे? त्यारे राजाए कह्यु के, मारा आ दुष्कार्यनु प्रायश्चित्त शरीर त्याग करवु, एज छे; जेम अन्यायी लोकने अमो दंड करीये छीये, तेम कर्मोना छेद माटे अमो अमारो पोतानो दंड शामाटे न करीये? ॥ १७१ ॥ गुरुए कह्यु के, मनथी बांधेलु कर्म मनथीज मूकाय छे, वळी ते माटे तु स्मृति जाणनाराओने पूछीजो केमके स्मृति आदिकोमां सर्व पापोथी मुक्त थवानो उपाय कहेलो छे ॥ १७२ ॥ पछी राजाए ते स्मार्तोने बोलाव्या, तथा तेमनी पासे पोताना मननु पाप जाहेर कर्यु, त्यारे तेओए कह्यु के, तेणीना सरखा रंग अने रूपवाळी लोखंडनी पुतळी बनावीने, तथा तेने अग्निमां तपावीने, तेणीनु आलिंगन करवाथी, चांडालणीनो, संग करवाथी उत्पन्न थयेलां पापथी प्राणी मुक्त थाय छे ॥ १७३ ॥ ते सांभळी राजाए तेवी पुतळी करावी, तथा ज्यारे तेणीने आलिंगन करवा माटे ते तैयार थयो, त्यारे पुरोहित तथा बप्पभट्टिजीए राजाना बन्ने हाथो पकडी राख्या ॥ १७४ ॥

उक्तं च तान्या, राजन् कोटिज्वरमात्मानं मा मुधा नाशय? दुष्करकरणान्निभा-यादेव तत् पापं नष्ट. तत श्रीगुरुवाग्भि. प्रबुद्धः स. ॥ १८५ ॥ अमात्याद्यै. कृत. प्रौढो नगरप्रवेशमहः, अन्यदा धर्मव्याख्यावसरे श्रीबप्पभट्टिर्जैनादिधर्मतत्त्वानि प्राह ॥ १८६ ॥ ततो जैन धर्मं परीक्षापूर्वं राजन् श्रयेत्याह च, राजा भाहार्हतो धर्मो । निर्वहत्येव मादृशां ॥ परीक्षाया पर शैव—धर्मे चेतोऽलगद् दृढ ॥ १८७ ॥ तेन त धर्मं न मुंचे, इत्यादि, अन्यच्च भगवन् किंचिद्वच्मि, भवंतोऽपि बालगोपालादिक प्रबोधयति नतु कोविद ॥ १८८ ॥

तथा तेओए कह्यु के, हे राजन' क्रोडोनु जरणपोपण करनारा एवा तमारा आत्मानो तमो फोकट विनाश नही करो? मे आदुष्कर्म कर्यु छे, एवा पश्चातापथीज तमारु ते पाप नष्ट थयु छे; पछी एवी रीतना श्रीगुरु महाराजना वचनोथी ते राजा प्रतिबोध पाम्यो ॥ १८५ ॥ तथा प्रधान आदिकोए मोटा आडंबरथी तेनो नगरमां प्रवेश महोत्सव कर्यो, एक वखते धर्मव्याख्यान अवसरे श्रीबप्पभट्टिजीए जैनआदिक धर्मना तत्वो कह्या ॥ १८६ ॥ तथा पछी कह्यु के, हे राजन् परीक्षा पूर्वक तमो हवे जैनधर्म स्वीकारो? त्यारे राजाए कह्यु के, मारा जेवाने जैनधर्म परीक्षामा तो बराबर उतरे छे, परतु मारु मन शिवधर्ममा दृढ चोंटेलु छे ॥ १८७ ॥ माटे ते धर्मनो हु त्याग करु नही, इत्यादि, वळी पण हे भगवान्' हु आपने कइक कहु छु के, आप पण बालगोपाल आदिकने तो प्रबोधो छो, परतु कोइ विद्वानने प्रबोधी शकता नथी ॥ १८८ ॥

शक्तिश्चेत्तदा मथुरायामागत, हृदि विष्णु ध्यायत, यज्ञोपवीतालङ्कृत, नासाग्रन्यस्तदृश, तुलसीमालया पत्रजीवमालया च श्लिष्टवक्ष स्थल, कृष्णगुणगायक, वैष्णववृन्दवृत, वराहस्वामिदेवस्य प्रासादान्तस्थ, वैराग्याद्गृहीताऽनशन, पर्यंकासनस्थ प्रबोध्य जैनमते स्थापयत वाक्पतिराजसामन्त ॥ १८९ ॥ श्रीगुरवस्तत्प्रतिबोध प्रतिज्ञाय चतुरशीतिसामन्तनिकुरसहस्रपरिवृता मथुराया वराहस्वामिमन्दिर प्रापु ॥ १९० ॥ त तथास्थ दृष्ट्वा तत्पृष्ठस्था सूरय पेठु,—सध्यायत्प्रणिपत्य लोकपुरतो बद्धाञ्जलिर्याचसे । धत्से यच्च परा विलज्जशिरसा तत्रापि सोढ मया ॥ श्रीर्जातामृतमथने यदि हरे कस्माद्विष जक्षित । मा स्त्रीलपट मा स्पृशेत्यभिहितो गौर्या हर. पातु व ॥ १९१ ॥

माटे जो आपनी शक्ति होय तो मथुरामा आवीने तथा हृदयमा विष्णुनु ध्यान धरता, जनोइथी शोभिता, नासिकाना अग्र भागपर लोचनने धारण करता, तुलसीमाळा तथा पत्रजीवनी माळाथी श्लिष्ट थयेला वक्ष स्थलवाळा, कृष्णना गुण गानारा, वैष्णवाना समूहथी वीटायेला, वराहस्वामिदेवना मंदिरनी अदर रहेला, वैराग्यथी जेणे अनशन ग्रहण करेलु छे एवा, पर्यंक आसनवाळीने रहेला एवा वाक्पति राजाना सामतने प्रबोधीने आप जैन मतमा स्थापन करो ॥ १८९ ॥ पछी श्रीगुरुमहाराज पण तेने प्रतिबोधवा प्रतिज्ञा करीने चोर्यासी सामत तथा एक हजार पंडिताथी परवार्या थका मथुरामा वराह स्वामिना मंदिर प्रते पहोंच्या ॥ १९० ॥ त्यां तेने तेवी रीते रहेला जाइने, तेनी पाछळ बेसीने आचार्य महाराज कहेवा लाग्या के, हे शकर ! तु सध्याने नमीने हाथ जोडीने लोकोनी पासे याचे छे, तथा हे निर्लज्ज तु मस्तकपर बीजी स्त्रीने धारण करे छे, ते [illegible] में सहन कर्यु, वळी अमृतने (समुद्रने) मथवाथी उत्पन्न थयेली लक्ष्मी ज्यारे विष्णुनी थइ, तो ते विष शामाटे भक्षण कर्यु ? माटे हे स्त्री लपट ! मने तु स्पर्श नहीं कर ? एवी रीते पार्वतीथी कहेवायेला महादेव तमारु रक्षण करो ॥ १९१ ॥

एकं ध्याननिमीलनान्मुकुलितं चक्षुर्द्वितीय पुन. । पार्वत्या विपुले नितंवफलके शृ-गारभारालये ॥ अन्यद् दूरविकृष्टचापमदनक्रोधानलोद्दीपित । शंभोर्भिन्नरस समाधिसमये नेत्रत्रय पातु वः ॥ १७२ ॥ रामो नाम वभूव हु तदवला सीतेति हु तौ-पितु—र्वाचा पंचवटीवने विहरतस्तां चाहरद्रावण. ॥ निद्रार्थं जननीकथामिति हरे-हुंकारिण. शृण्वत. । पूर्वस्मर्तुरवंतु कोपकुटिलभ्रूभंगुरा दृष्टय· ॥ १७३ ॥ दर्पणार्पितमालोक्य । मायास्त्रीरूपमात्मनः ॥ आत्मन्येवानुरक्तो य. । श्रियं दिशतु केशवः ॥ १७४ ॥

ध्याननी अदर जोरुवाथी एक चक्षुतो जेमनु वींचायेलु छे, तथा वीजुं शृगारना समूहना स्थान रूप एवा पार्वतीना विस्तीर्ण नितवतटपर स्थिर थयेलु छे, अने त्रीजुतो धनुष्य चडावीने रहेला एवा कामदेवपर क्रोध रूपी अग्निथी जाज्वल्यमान थयेलुं छे, एवी रीते समाधि वखते भिन्न भिन्न रसोवाळां एवा शकरना त्रणे नेत्रो तमारु रक्षण करो ॥ १७२ ॥ एक राम नामे राजा हतो, तेने सीता नामे स्त्री हती, तेओ वन्ने पिताना वचनथी पचवटीना वनमा विचरता हता, त्या तेणीने रावणे हरी लीधी, एवी रीते निद्रामाटे मातानी कथाने हुंकारो देइने सांभळता अने तेथी पूर्वावस्थानु स्मरण करनारा एवा हरिना क्रोधथी कुटिल तथा भृकुटीथी भगुर थयेली दृष्टिओ रक्षण करो ॥ १७३ ॥ दर्पणमा रहेला एवा पोताना मायावी स्त्रीरूपने जोइने जे पोतामाज अनुरक्त थया छे, ते केशव लक्ष्मी आपो ॥ १७४ ॥

इत्यादि, तच्छ्रुत्वा वाक्पति संमुखीभूयोचे, सूरिमिश्रा. किमस्मत्पुरत शृंगाररौद्रागं पद्यपाठं कुरुध्वे ॥ १९५ ॥ सूरय —युष्मद्देवाशिषः पठंतः स्मः, यथा स च हि श्रोतु पुर पठनीय, वाक्पति —यद्यप्येवं तथापि मुमुक्षवो वयमासन्न निधन ज्ञात्वा इह परमब्रह्म ध्यातुमायाता स्म ॥ १९६ ॥ सूरय —किं तर्हि रुद्रादयो मुक्तिदातारो भवतीति मनुध्वे? वाक्पति—एव संभाव्यते ॥ १९७ ॥ सूरयो बभापिरे, तद्धि यो मुक्तिदानक्रमस्तं शृणु पठाम ॥ १९८ ॥ ज दिट्ठीकरुणातरंगियपुन्ना एयस्स सोम मुह । आयारोपसमागरो परियरो सतोपसन्ना तणू ॥ त मन्ने जरजम्ममच्चुहरणो देवाहिदेवो जिणो । देवाणं अवराण दीसइ जओ नेय सरूवं जए॥१९९॥

इत्यादि हवे ते सांभळीने वाक्पति सन्मुख थइ बोलवा लाग्यो के, हे सूरिमिश्रो अमारी आगळ शृंगार तथा रौद्ररसवाळो पद्यपाठ शा माटे करो छो ॥ १९५ ॥ त्यारे आचार्यजी महाराजे कह्यु के, तमारा देवोनी अमो आशिष कहीये छीये के जे श्रोतानी पासे कहेवामां आवे छे, त्यारे वाक्पतिए कह्यु के जोके एम छे, तोपण अमोतो मुमुक्षु छीये, अमारु मृत्यु नजदीक जाणीने अमो अहीं परम ब्रह्मनु ध्यान धरवा माटे आव्या छीये ॥ १९६ ॥ ते सांभळी आचार्यजी महाराजे कह्यु के, शु त्यारे रुद्र आदिक देवो मुक्ति आपनारा छे, एम तमो मानो छो? त्यारे वाक्पतिये कह्यु के, अमोने तो एवो संभव थाय छे ॥ १९७ ॥ त्यारे आचार्यजी महाराजे कह्यु के, मुक्ति देवामा जे देव समर्थ छे, ते अमो तमोने कहीये छीये ते सांभळो ॥ १९८ ॥ जेनी दृष्टि दयाना तरंगोथी मफुल्लित थयेली छे, तथा जेमनु मुख शांत मुद्रावाळु छे, तथा जेमनो आकार पण शांततानी खाण रूप छे तथा जेमनो परिवार पण सज्जनतावाळो, अने जेमनु शरीर पण प्रसन्नतावाळु छे एवा देवाधिदेव श्रीजिनेश्वरप्रभुने जन्म, जरा तथा मृत्युना हरनारा हु मानुछु, केमके बीजा देवोमां एवु स्वरूप देखातु नथी ॥ १९९ ॥

वाक्पति —स जिन क्वास्ते? सूरय.—स्वरूपतो मुक्तौ, मूर्त्तितस्तु जिनायतने ॥ २०० ॥ ततः श्रीआमनृपकारिते प्रासादे श्रीजिनमूर्त्तिं दर्शयित्वा न प्रतिबोध्य जैनधर्मं प्रतिपाद्य कियद्भिर्दिनैः कन्यकुब्ज प्राप्ता. ॥ २०१ ॥ चरैः प्रागपि ज्ञातवृत्तातो राजा तत्समुखं गत्वा समहं तान् प्रावेशयत् ॥२०२॥ राजाह भगवन्नद्भुतं किमपि, प्रभूणा वच सामर्थ्यं । सोऽपि यत् प्रतिबोधितः ॥ प्रभु. प्राहाथ का शक्ति—र्मम यत्त्व न बुध्यसे ॥ २०३ ॥ राजाह सम्यग् बुद्धोऽस्मि । त्वद्धर्मोऽस्तीति निश्चितं ॥ माहेश्वरं पुमर्धर्मं । मुंचतो मे महाव्यथा ॥ २०४ ॥

ते सांभळी वाक्पतिए कह्यु के, एवा जिन क्या छे? त्यारे आचार्यजीए कह्यु क, स्वरूपथी तो तेओ मुक्तिमा छे, अने मूर्त्तिथी जिनालयमा विराजे छे ॥ २०० ॥ पछी श्रीआम राजाए करावेला मदिरमा रहेली जिनमूर्त्ति तेने देखाडीने, तथा प्रतिबोध पूर्वक तेने जिन धर्म अगीकार करावीने केटलेक दिवसे आचार्यजी महाराज कन्यकुब्जमा पधार्या ॥ २०१ ॥ दूतो मारफते प्रथमथीज ते वृत्तात राजाए जाणेलो होवाथी, तेमनी सन्मुख जइ महोत्सव पूर्वक तेमनो तेणे प्रवेश कराव्यो ॥ २०२ ॥ पछी राजाए कह्यु के, हे भगवन्! आपना वचनोनु सामर्थ्य तो कइक अद्भुतज छे, केमके आपे ते वाक्पति जेवाने पण प्रतिबोध्यो; त्यारे आचार्यजी महाराजे कह्यु के, ज्यासुधि तमो प्रतिबोध पामता नथी, त्यासुधि मारी शक्ति शा कामनी छे ॥ २०३ ॥ त्यारे राजाए कह्युं के, आपनो धर्म उत्तम छे, एम हवे हुं सारी रीते जाणुंछु, परंतु शिवधर्मने छोडतां मने महादुःख थाय छे ॥ २०४ ॥

तेन हे ज्ञगवन् पृच्छामि को मे पूर्वज्ञव· ? प्रधाना अपि तदा प्राहु· ज्ञगवन् प्रसद्य नृपपूर्वज्ञव. कथ्यता ॥ २०५ ॥ तत प्रज्ञु प्रश्नचूमामणिशास्त्रबलेन त प्राह, शृणु ज्ञूपते, कालिजराख्यस्य गिरे. शालद्रुमोर्ध्वस्यशाखाबद्धज्ञुजद्वयोऽधोमुखो ॥२०६॥ जटाकोटिसस्पृष्टज्ञूतलो, षष्ठे षष्ठे मिताहारी, रागादिरहित., साग्र वर्षशतं घोर तपस्तप्त्वायु प्रांते त्व राजाऽज्ञू ॥ २०७ ॥ यदि न प्रत्ययस्तदा सुज्ञटान् प्रेषय, अद्यापि तत्तरोरध स्था जटा आनायय, इति श्रुत्वा नृपो जटा आनाययत् ॥ २०८ ॥ मुनींद्रोऽय महाज्ञानी कोऽप्याहृत इति प्रशसा चक्रे च ॥ २०९ ॥

माटे हे ज्ञगवन् ! हु आपने पूछु छु के, मारो पूर्व ज्ञव शु हतो ? ते वखते प्रधानो पण आचार्यजीने कहेवा लाग्या के, हे ज्ञगवन् ! आप साहेब कृपा करीने राजानो पूर्व ज्ञव कहो ॥ २०५ ॥ त्यारे आचार्यजी महाराजे प्रश्नचूमामणि नामना शास्त्रना बळथी तेने कह्यु के हे राजन् ! सांज्ञळो कालिजर नामना पर्वतमां शाल वृक्षनी ऊची माळीमां जेणे बे हाथ बांधी नीचे मुख करेलु छे, एवो ॥ २०६ ॥ जेनी जटाना छेमा नीचे ज्ञूमीपर स्पर्श करी रहेला छे एवो, बन्ने दिवसे मित ज्ञोजन करनारो, राग आदिकथी रहित, एवो तु सवासो वर्ष सुधी घोर तप तपीने छेवटे आयु· क्षय थवाथी राजा थयो ॥ २०७ ॥ जो तने प्रतीति न आवती होय, तो त्यां तु सुज्ञटोने मोकल. तथा हजु पण ते वृक्ष नीचे रहेली तारी जटा मगाव. ते सांज्ञळी राजाए ते जटा मगावी ॥ २०८ ॥ तथा आचार्यजीनी प्रशसा करवा लाग्यो के, आ तो कोइक महाज्ञानी 'मुनींद्र' अहीं पधार्या छे ॥ २०९ ॥

अन्यदा प्रपञ्चनरैरपि डुर्ग्राह्य राजगिरिनगरं राजा रुरोध, तत्र समुद्रसेनो राजा, सप्राकार· कथमपि ग्रहीतु न शंस्यते ॥२१०॥ ततो राजा सूरिं पप्रच्छ, जगवन् कथ ग्राह्योऽयं प्राकार· ? सूरिः प्रश्नचिंतामणिशास्त्राद्विचार्यान्नवीत् ॥ २११ ॥ पौत्रस्ते जोजइमं ग्रहीष्यति, ततो हवाडाजा तत्रैव द्वादशवर्षाण्यस्थात् ॥ २१२ ॥ ततो डुंडुकनाम्न सुतस्य सुतोऽजनि, स च पर्यंकिकान्यस्तः प्रधानैर्जातमात्र एव डुर्गासन्नमानीत., तन्मुख संमुख कृत्वा स डुर्गो गृहीत. ॥ २१३ ॥ परं डुर्गाधिष्ठाता यक्षः प्रतोलीस्थो जनान् हति, ततस्तत्र गत्वा राज्ञोक्तं यक्षराजलोक मुक्त्वा मामेव घातय ॥ २१४ ॥

हवे एक वहाणे लाखो उपायोथी पण ग्रहण न करी शकाय एवा राजगिरि नामना नगरने राजाए घेरो घाल्यो, परतु त्यां किल्ले बंधी करीने रहेला समुद्रसेन राजाने कोइ पण रीते ते जीती शक्यो नहीं ॥ २१० ॥ त्यारे राजाए आचार्यजी महाराजने पूछ्युं के हे जगवान ! आ किल्लो हवे केवी रीते लइ शकाय ? त्यारे आचार्यजी महाराजे पण प्रश्नचिंतामणिशास्त्रथी विचारीने कह्यु के ॥ २११ ॥ तारो पौत्र जोज आ किल्लो लेशे, पछी हवथी राजा तो बार वर्ष सुधी त्याज पडाव नाखीने रह्यो ॥ २१२ ॥ पछी एटलामां तेना डुंडुक नामना पुत्रनो पुत्र जन्म्यो, तेज वखते प्रधानो ते पुत्रने पालखीमां बेसाडी ते किल्लानी नजदीक लाव्या, तथा तेनुं मुख किल्ला सन्मुख करीने ते किल्लो लीधो ॥ २१३ ॥ परंतु किल्लानो अधिष्ठायक यक्ष दरवाजामां रह्यो थको लोकोने हणवा लाग्यो. त्यारे राजाए त्यां जइ कह्युं के हे यक्षराज ! लोकोने छोडीने मनेज तु मारी नाख ॥ २१४ ॥

ततो नृपस्य सत्वेन सतुष्टो जनोपद्रवान्निवृत्तो मैत्रीं प्रपेदे, आमो मित्रयक्षपार्श्वं स्वायुर्मान पप्रच्छ ॥ २१५ ॥ षएमास्यामेव शेषायां कथयिष्यामीत्युक्त्वा यक्षस्तिरोऽभूत्, अवसरे च स तदब्रवीत् ॥ २१६ ॥ गगातर्मागधेन तीर्थेनावतरतस्ते मृत्युरस्ति, जलाद्धूम निर्यंत दृष्ट्वा तदभिज्ञान ज्ञेय ॥ २१७ ॥ प्रेत्यार्थमाचरेति च, ततो राजा श्रीगुरूपदेशान्महता विस्तरेण श्रीशत्रुंजययात्रा कृत्वा दिगंबरगृहीत श्रीगिरनारतीर्थमवालयत् ॥ २१८ ॥ ततः स्वपुर प्राप्य डुडुक राज्ये निवेश्य प्रजा क्षमयित्वा गंगातीरस्थमागधतीर्थं प्रति चलन्नावमारोहत् सूरिणा सह ॥ २१९ ॥

पछी राजाना पराक्रमथी मतुष्ट थइ ते लोकोने उपद्रव करवाथी अटक्यो, तथा मित्र थयो पछी आम राजाए ते यक्षरूपी मित्रनी पासे पोताना आयुनु प्रमाण पूछ्यु ॥ २१५ ॥ त्यारे यक्षे कह्यु के, छ मास ज्यारे बाकी रहेशे, त्यारे कहीश, एम कही ते अनोप थयो ; तथा अवसर आव्ये तेणे कह्यु के ॥ २१६ ॥ गंगानी अदर मागध नामना तीर्थथी उतरता तारु मृत्यु छे, जळमाथी धुमाडो निकळतो जोइने तेनु एधाण जाणवु ॥ २१७ ॥ माटे हवे परलोक माटे तु सावधान था? पछी राजाए श्री गुरुमहाराजना उपदेशथी मोटा विस्तारपूर्वक श्रीशत्रुंजय तीर्थनी यात्रा करीने दिगंबरोए ग्रहण करेला श्रीगिरनार तीर्थने पाछु वाळ्यु ॥ २१८ ॥ पछी पोताना नगरमा आवीने तथा डुडुकने गादीए बेसाडीने, अने प्रजाने खमावीने गगाने काठे रहेला मागध तीर्थ प्रत्ये चालतो थको आचार्य महाराजनी साथे ते राजा नावमां चड्यो ॥ २१९ ॥

तन्मध्ये धूमनिर्गमं दृष्ट्वा व्यंतराख्याते स्मृते सूरिरामंनृपमाह, प्रातेऽपि जैन धर्मं प्रपद्यस्व ॥ २२० ॥ ततो राजा जैनं धर्म प्रपद्योत्तमार्थमसाधयन्नमस्काराराधनपरः ॥ २२१ ॥ तत. श्रीबप्पभट्टिगुरु कन्यकुब्ज प्राप्तः, स्वगच्छमपालयदिति ॥२२२॥ एते श्रीबप्पभट्टिगुरव श्रीआमनृप दुष्प्रतिबोधमपि मनोगतसमस्याकवित्वादिगोष्ठ्या यथा तन्मनोऽनुवृत्तित. तस्यैहिकापन्निस्तारणतदुपायप्रकटनादिसमाचरणेन च प्रीणयतो मैत्रीवृत्त्या प्रत्यबोधयत् धर्मं मनाक् ॥ २२३ ॥ नृपस्याऽनानुकूल्यं ज्ञात्वा च दूना देशांतरेऽपि व्यहार्षुस्तेन मित्रतुल्याः, एवमन्येपीति कृता मित्रदृष्टांतभावना ॥ २२४ ॥

पछी तेमांथी धूमाडो नीकळतो जोइने व्यंतरनु वचन याद लावी आचार्यजी महाराज आम राजाने कहेवा लाग्या के, हवे छेवटे पण तु जैनधर्म अंगीकार कर ॥ २२० ॥ पछी राजाए जैन धर्म अंगीकार करीने नवकारना आराधनमा तत्पर थइ उत्तमार्थ साध्यो ॥ २२१ ॥ पछी बप्पभट्टिजी महाराज कन्यकुब्जमां पधारी पोताना गच्छने सभाळवा लाग्या ॥ २२२ ॥ आ श्री बप्पभट्टिजी गुरु महाराजे श्री आमराजा के जेने प्रतिबोधवो मुश्केल हतो, तेने पण तेना मननी समस्या पूरीने, तथा काव्य आदिकनी गोष्ठियो, तथा तेना मन मुजब वर्त्तीने, तेमज तेने आ लोक संबंधि दुःखथी निवारीने, तथा दुःखथी छुटवानो उपाय देखाडवा आदिकवडे करीने खुशी करीने मित्रवृत्तिथी धर्ममा प्रतिबोध्यो ॥ २२३ ॥ तेमज राजाने जराक अनादर जोइने पण रीसाइने देशांतरमां तेमणे विहार कर्यो, माटे तेओने मित्रसमान गुरु जाणवा, एवी रीते बीजाओने पण जाणवा, एवी रीते मित्रना दृष्टांतनी भावना कही ॥ २२४ ॥

वंधुत्ति, यथा वंधु सदापि सस्नेहहृदय एव, निजवंधुं शिक्षयति हितादि यथावसरं, पर तथा विनयोपचारादिकर्मस्वनादर. ॥ २२५ ॥ नापि तदपेक्षी परस्मादपि, विशिष्य परान्नवे सकटादौ च नवत्येव तस्य सहाय ॥ २२६ ॥ तथा केचिद्गुरव: श्रद्धालुषु जनेष्वकृत्रिमाऽतुल्लवात्सल्यभृत सदाप्युपदिशति परमार्थहित धर्म, न पुनस्तद्विषयगुणस्तवावर्जनादिविशेषोपचारक्रियासु तयादरन्नाज ॥ २२७ ॥ नापि तेन्यस्तादृग् बाहीकोपचाराद्याकांक्षिणो, विशिष्य परपरान्नवे रोगातकादौ सकटेष्वैहिकेऽपि धर्मस्थिरीकरणाद्यर्थं ॥ २२८ ॥

हवे जैन बधु हमेशां स्नेहयुक्त हृदयवाळोज होय छे, तथा पोताना बधुने योग्य अवसरे हितशिखामण आदिक पण आपे छे, परतु तेवी रीतना विनय उपचार आदिकना कार्योमां आदरवाळो न होय ॥ २२५ ॥ तेमज सामो तेनी पासेथी तेनी अपेक्षा राखतो नथी, परतु तेथी आगळ वधीने, बधुने परान्नव तथा सकट आदिक आदिकमां ते मदद करे छे ॥ २२६ ॥ एवी रीते केटलाक गुरुओ श्रद्धालु लोको प्रत्ये खरा दिलथी अत्यत वत्सलतावाळा थया थका हमेशां परमार्थवाळो हितकारी धर्म उपदेशे छे, परतु तेओना गुणोनी प्रशसा करवामा, के तेओने खुशी करवा माटे बीजा उपाय आदिकोमां एवा आदरवाळा होता नथी ॥ २२७ ॥ तेम तेओ तरफथी बाह्य उपचार आदिकनी आशा राखता नथी, पण तेथी आगळ वधीने उलटा परान्नव समये, तेमज रोग, आदिक आ लोक सबधि सकट वखते पण तेओने धर्ममां स्थिर करवा आदिक माटे ॥२२८॥

पारात्रिकेऽपि च धर्मादिगोचरे जवंत्येव तेषां साहाय्यः कृतः सर्वशक्त्यापि यथा श्रीहेमचंद्रगुरव श्रीकुमारपालनृपं प्रति, तथाहि—॥ २२९ ॥ अन्यदा श्रीजयसिहदेवे गुर्जरधात्र्या राज्यं शासति, तद्भयान्नष्टवृत्त्या भ्राम्यन् श्रीकुमारपाल. स्तम्भतीर्थे प्राप्त॰ ॥ २३० ॥ तत्र जिघासुतया प्राप्तराजनरेभ्य॰ परित्रातः श्रीहेमसूरिभिः शालास्थभूगृहनिक्षेपादिना ॥ २३१ ॥ कथमपि तत. क्रमाद्राज्यप्राप्तौ प्रत्तने श्रीहेमचन्द्रगुरवो विद्युद्विघ्नान्निस्तारयांचक्रुस्त, तद्यथा—॥ २३२ ॥ अन्यदा श्री॰गुरवोऽपृच्छन्नुदयनमंत्रिणं, राजास्माकं स्मरति न वा ॥ २३३ ॥

तेम परलोक संबंधि धर्म आदिक कार्यमा तेओने ज्यांसुधी बने त्यांसुधी सहाय करनारा थायज छे, जेम श्रीकुमारपाळ राजा प्रत्ये श्रीहेमचंद्राचार्य, तेमनु वृत्तांत नीचे मुजब छे ॥ २२९ ॥ एक वखते सिध्धराज जयसिंह गुर्जरभूमिपर ज्यारे राज्य करता हता, ते वखते तेना भयथी नासता फरता कुमारपाळ खंभातमां आव्या ॥ २३० ॥ त्यां तेने मारवानी इच्छाथी ज्यारे राजाना माणसो आवी पहोंच्या, त्यारे श्रीहेमचंद्रजीए तेमने पौषधशाळामा रहेला भोंयरामा संताडवा आदिकथी तेमनु रक्षण कर्यु हतु ॥ २३१ ॥ त्यारबाद अनुक्रमे कोइक रीते तेने राज्य मळया बाद पाटणमां श्रीहेमचद्रजीए तेमनु विजळीना विघ्नथी रक्षण कर्यु, ते नीचे मुजब छे ॥ २३२ ॥ एक दहाडो श्रीहेमचद्रजी गुरुमहाराजे उदयनमत्रीने पुछ्यु के, राजा अमोने कइ याद करे छे ? के नहीं ॥ २३३ ॥

मन्त्रिणोक्तं नेति, ततोऽन्यदोचे श्रीगुरुभि मन्त्रिन्नद्य नृपं रहो ब्रूया अद्य त्वया नव्यराज्ञीगृहे न गतव्य न सुतव्य, रात्रौ, सोपसर्गत्वात् ॥ २३४ ॥ केनोक्तमिति पृच्छेचेत्तदाऽत्याग्रहे मन्नाम वाच्यमिति ॥ २३५ ॥ ततो मन्त्रिणा तथोक्ते राज्ञा तथाकृते निशि विद्युत्पातात्तस्मिन् गृहे दग्धे, राज्ञ्या च मृतायां चमत्कृतो राजा जगाद सादर ॥ २३६ ॥ मन्त्रिन् कस्येदमनागत ज्ञान ? महत्परोपकारित्व चेत्यतिनिर्बंधे मंत्रिणोचे श्रीगुरुस्वरूप ॥ २३७ ॥ प्रमुदितो नृपस्तानाकारयामास सदसि, श्रीगुरून् दृष्ट्वाऽऽसनादुत्थाय वंदित्वा प्राञ्जलिरुवाच ॥ २३८ ॥ भगवन् तदा स्तम्भतीर्थे रक्षितोऽह श्रीपूज्यै, सम्प्रति चास्मादुपसर्गात् ॥ २३९ ॥

त्यारे मन्त्रीए कह्यु के, नथी याद करता, पछी एक दहाडो श्री आचार्यजी महाराजे उदयनमन्त्रीने कह्यु के, हे मन्त्री ! आजे तमारे राजाने एकातमां कहेवु के, आजे तमारे नवी राणीने महोले जवु के सूवु नहीं, केमके रात्रिए त्यां उपसर्ग थवानो छे ॥ २३४ ॥ वळी तमोने ते पूछे के, आम कोणे कह्यु ? त्यारे अत्यंत आग्रह जो करे, तो तमारे मारु नाम लेवु ॥ २३५ ॥ पछी मन्त्रीए तेम कर्याथी, तथा राजाए पण तेम कर्याथी, अने रात्रिये विजळीना पडवाथी ते घर बळते छते, अने राणी मृत्यु पामते छते आश्चर्य पामेलो कुमारपाळ राजा आदरसहित कहेवा लाग्यो के ॥ २३६ ॥ हे मन्त्रि ! आवु भविष्यज्ञान तथा महान् परोपकारीपणु कोनु छे ? एवी रीते घणा आग्रहपूर्वक पूछवाथी मन्त्रिए गुरुमहाराजनु स्वरूप कह्यु ॥ २३७ ॥ त्यारे राजाए खुशी थइने तेमने सभामां बोलाव्या, तथा गुरु महाराजने जोइने आसन थकी उठीने वंदना करीने हाथ जोडी ते कहेवा लाग्यो के ॥ २३८ ॥ हे भगवन् ! ते वखते स्तम्भतीर्थमां आपसाहेबे मारु रक्षण कर्यु छे, तेमज हमणां आ उपसर्गथी आपे मारु रक्षण कर्यु छे ॥२३९॥

ततो निष्कारणप्रथमोपकारिणा पूज्याना कथचनाप्यह नाऽनृणो नवामि, ततो रा-
ज्यमिद गृहीत्वा मामनुगृह्णाणेति ॥ २४० ॥ ततः सूरिरुवाच, राजन्नि.संगानामस्मा-
कं कि राज्येन, कृतज्ञत्वेन राजेन्द्र । चेत् प्रत्युपचिकीर्षसि ॥ आत्मनीने तदा जैन-
धर्मे धेहि निज मन. ॥ २४१ ॥ ततो राजाह, नवदुक्तं करिष्येऽहं । सर्वमेव शनै.
शनै. ॥ कामयेऽहं परं संग । निधेरिव तव प्रनोः ॥ २४२ ॥ इत्यादि, ततः श्रीगुरु-
र्नृपस्य यथावसर धर्मं दिशति, नृपश्च कदाचिद् गुरूपाश्रये आयाति, कदाचिदाकारय-
त्यास्थाने श्रीगुरुं ॥ २४३ ॥ अन्यदा श्रीकुमारनृप. सोमेश्वरयात्रायै चलन् श्रीगुरून्
सहाकारयामास ॥ २४४ ॥

माटे निष्कारण प्रथम उपकारी एवा आप साहेबनो हु कोइ पण रीते अनृणी थइ शकु तेम नथी, माटे हवे तो आ राज्य तमो ग्रहण करीने मारापर अनुग्रह करो ॥ २४० ॥ त्यारे आचार्यजी महाराजे कह्यु के, हे राजन् ! नि'सग एवा अमोने राज्यनी शी जरुर छे ? वळी हे राजन् ! जो तमो कृतज्ञपणाथी प्रत्युपकार करवाने इच्छता हो, तो तमारा आत्माने हितकारी एवा जैन धर्ममां तमारु मन जोडो ॥ २४१ ॥ त्यारे राजाए कह्यु के, तमोए कहेलुं सघलु हु धीरे धीरे करीश, परतु हु निधानना पेठे हे प्रभु ! आपनो सग इच्छु छु ॥ २४२ ॥ इत्यादि, त्यारबाद श्रीगुरुमहाराज योग्य अवसरे राजाने धर्मनो उपदेश करे छे, तथा राजा पण कोइ कोइ समये गुरुने उपाश्रये आवे छे, तथा कोइक वखते गुरु महाराजने पण सभामा बोलावे छे ॥ २४३ ॥ एक वखते श्रीकुमारपाळ राजाए सोमनाथनी यात्रा माटे चालता थका श्रीगुरुमहाराजने साथे लीधा ॥ २४४ ॥

क्रमात्तीर्थं प्राप्तः कृतसकलकृत्यश्च रात्रौ सोमेश्वरप्रासादगर्भगृहे श्रीसूरीनाकार्य स्माह ॥ २४५ ॥ हे भगवन् देवः सोमेशः, महर्षिर्भवान्, तत्त्वार्थी च मादृश इत्यस्मिंस्तीर्थे त्रिकयोगस्त्रिवेणीसंगम इवाद्य जज्ञे ॥ २४६ ॥ मिथो विरुद्धसिद्धान्तवादिदर्शनैर्देवगुरुतत्त्वानि भिन्नभिन्नतया प्रोच्यते स्म, तदद्य रागद्वेषौ विमुच्य प्रसद्य सम्यग् देवादितत्त्वं प्रसादय ॥ २४७ ॥ ततः किंचिद्विचार्योचुः श्रीगुरव, राजन् शास्त्रसंवादेनालं, शिवं प्रत्यक्षयामि तव पुरः, धर्मं वा दैवतं वापि । यदयं वक्ति शंकर. ॥ तदुपास्तिस्त्वया धेया । मृषा न खलु देवगी ॥ २४८ ॥

अनुक्रमे तीर्थमां पहोंच्या, तथा त्यां सघळु कार्य करीने रात्रिये सोमेश्वरना मंदिरना गभारामां आचार्यजी महाराजने बोलावीने तेमणे कह्यु के ॥ २४५ ॥ हे भगवन्! सोमदेव, तमो महान् ऋषि, अने मारा सरखो तत्वनो अर्थी, एवी रीते आ तीर्थमां त्रिवेणीना संगमनी पेठे आजे त्रिकयोग थयो छे ॥ २४६ ॥ परस्पर विरुद्ध सिद्धांतोने केहेनारा दर्शनो देवगुरु संबंधि तत्वो भिन्न भिन्न रूपे कहे छे, माटे आजे रागद्वेषने छोडीने तथा मारापर कृपा करीने सम्यक् प्रकारे देव आदिक तत्व समजाववानी कृपा करो ॥ २४७ ॥ त्यारे श्रीगुरुमहाराजे जरा विचार करीने कह्यु के, हे राजन्! शास्त्र संबंधि संवादथी तो हवे सर्यु, हवे तमारी आगळ हुं आ शिवनेज प्रत्यक्ष करु छु, अने ते शंकर जे धर्म अथवा देवता कहे, तेनी तमोए सेवा करवी, केमके देवनाणी मिथ्या होय नहीं ॥ २४८ ॥

ततोऽस्मरन्मंत्र श्री–सूरयः अर्धरात्रे लिंगमध्याज्ज्योतिस्तन्मध्ये महेशो गंगाजटाशशिकलादृक्त्रयाद्युपलक्षितः प्रत्यक्षीबभूव ॥ २४९ ॥ श्रीगुरवो ध्यान मुक्त्वा राजानं स्माहु:, नृप पश्य पुर. शिवं, एनं प्रसाद्य पृष्ट्वा च सम्यक्तत्वविदा कुरु ॥२५०॥ राजापि हृष्ट प्रणम्य तं पप्रछ, इश उवाच, हेकुमार! चेत्त्वं भुक्तिमुक्तिप्रदं धर्ममिछसि ॥ २५१ ॥ तदा सर्वदेवावतारोऽजिह्मब्रह्मभृदेषगुरुर्वृहेव क्ष्मातलेऽधुना जयतीत्येतदादिष्ट तन्वन् स्वेष्टमाप्स्यसीत्युक्त्वा तिरोऽधात ॥ २५२ ॥ ततो विस्मेरो नृपः सूरिमूचे, त्वमेव मेऽसीश्वरो यस्येश्वरोऽपि वश्य, अतःप्रभृति मे देवो । गुरुस्तात, सवित्र्यपि ॥ सहोदरो वयस्यश्च । त्वमेवैकोऽसि नाऽपरः ॥ २५३ ॥

पछी आचार्यजी महाराजे मंत्रनु स्मरण कर्युं, जेथी अर्ध रात्रिये लिंगमाहेथी ज्योति प्रगट थइ, अने तेनी अंदर जटामा गंगावाळा, चन्द्रकळावाळा, तथा त्रण नेत्र आदिकोथी उपलक्षित थयेला महेश्वर प्रगट थया ॥ २४९ ॥ त्यारे गुरुमहाराजे ध्यान मूकीने राजाने कर्युं के, हे राजन! आ तमारी पासे शिवने जुओ? तथा तेमनी सेवा करीने अने पूछीने सम्यक् तत्वनुं निराकरण करो ॥ २५० ॥ त्यारे राजाए पण खुशी थइने, तथा तेने नमीने पूछयु, त्यारे महादेवे कर्युं के, हे कुमारपाळ! जो तमो भोग अने मोक्ष देनारा धर्मने इच्छता हो तो ॥ २५१ ॥ सर्व देवोना अवताररुप तथा अखण्ड ब्रह्मने धारण करनारा आ गुरु पृथ्वीतलपर हमणा ब्रह्मानी पेठेज उपवता वर्त्ते छे, माटे तेमना कहेवा मुजब वर्त्तवाथी तमो इच्छित प्राप्ति मेळवी शकशो, एम कहीने ते अदृश्य थया ॥ २५२ ॥ पछी आश्चर्य पामेलो राजा आचार्यजी महाराजने कहेवा लाग्यो के, आपज मारा इश्वर छो, के जेने इश्वर पण वश थयेला छे ; माटे आजथी तो एक आपज मारा देव, गुरु, पिता, माता, सहोदर तथा मित्र छो, बीजो कोइ नथी॥२५३॥

इह लोक, पुराऽदायि । मह्य जीवितदानतः ॥ शुद्धधर्मोपदेशेन । परलोकोऽद्य दीयता ॥ २५४ ॥ तत॰ क्रमात्सूरिवचसा सम्यक्त्वाभिमुखोऽभूत् श्रीशांतिप्रतिमां देवतावसरेऽतिष्टिपत् ॥ २५५ ॥ अथ नृपं श्रीजिनधर्मानुरक्त ज्ञात्वा विप्रैराकारित प्रत्यक्षसरस्वतीको महेन्द्रजालादिविद्याचूडामण्यादिशास्त्रैरतीतानगतादिवेत्ता पूरकरेचककुंभकपवनसाधनापटुश्चतुरशीत्यासनकरणप्रवण आमतंतुबद्धकमलनालकदलीपत्रासनाद्यधिरोही यथार्हरूपक्रियापटुर्देवबोधिः पत्तने प्रापत् ॥ २५६ ॥ राज्ञा समहं प्रवेशित॰, कमलनालदम्भामततुबद्ध कदलीपत्रमयासन अष्टवार्षिकशिशुसुधन्यस्तमारुह्य नृपसदस्यागात् ॥ २५७ ॥

वळी आप साहेबे प्रथमज मने जीवितदानथी आ लोक तो आपेलो छे, अने हवे आज शुद्ध धर्मना उपदेशथी परलोक पण आपो ? ? ॥ २५४ ॥ पछी अनुक्रमे ते राजा आचार्यजी महाराजना वचनथी समकित सन्मुख थयो, तथा पूजा समये श्रीशांतिनाथजी महाराजनी मूर्ति ते स्थापन करवा लाग्यो ॥ २५५ ॥ हवे राजाने श्री जैनधर्ममां रक्त थयेलो जाणीने ब्राह्मणोए तेडावेलो देवबोधि पाटणमां आव्यो, ते देवबोधि केवो छे ? तोके, प्रत्यक्ष छे सरस्वति जेने एवो महा इन्द्रजालादि विद्या तथा चूडामणि आदिक शास्त्रोथी भूत भविष्य आदिक जाणनारो, पूरक, रेचक तथा कुंभक वायुनी साधनामां चतुर, चोर्यासी आसनो वाळवामा तत्पर, काचा सुतरथी बांधेली कमळनी दांडी तथा केळना पानना आसन आदिकपर चडनारो, अने यथायोग्य रूपक्रियामा पण ते समर्थ हतो ॥ २५६ ॥ पछी राजाए तेने महोत्सवपूर्वक प्रवेश कराव्यो, त्यारे ते पण कमळना दांडावाळां काचा सुतरथी बांधेलां, केळनां पांदडानां बनावेलां, तथा आठ वर्षना बाळकनी खांधे मुकेलां आसनपर बेसीने राजसभामां आव्यो ॥२५७॥

सर्वेषां विस्मय, आसने निवेशित आशी.पुरस्सर तत्तदद्भुतकलाविज्ञानाऽपूर्वप्रबधादिभिर्नृप परिकरं चाऽरञ्जयत् ॥ २५८ ॥ ततो विसृष्टसत्र आपो देवतावसरणाय प्राप्त, देवबोधिरपि वयमायद्य राज्ञो देवपूजाविधि विलोकयिष्याम इत्यादिवादी राज्ञाऽकारितस्तत्रागात् ॥ २५९ ॥ राजापि काचनपट्टे शंकरादिदेवान् श्रीशातिप्रतिमा च निवेश्य पूजयामास ॥ २६० ॥ तदा जिनप्रतिमां दृष्ट्वाऽवादी देवबोधि., राजन्नयुक्त तवैतत्पूजनादि, यतः—'अवेदस्मृतिमूलत्वा—जिनधर्मो न सत्तमः' ॥ अपि च 'नोल्लंघनीयाः कुलदेशधर्मा.' ॥ २६१ ॥

तेने जोइ सर्व लोकोने घणुं आश्चर्य लाग्यु. पछी आसनपर बेसाड्या बाद आशिर्वादपूर्वक तेणे ते ते अद्भूत कळाओनी चतुराइथी तथा अपूर्व प्रबध आदिकोथी राजाने तथा परिवारने खुशी कर्या ॥२५८॥ पछी राजा सभा विसर्जन करीने देवपूजा करवा माटे चाल्यो, त्यारे देवबोधियें कह्यु के आजे अमो पण राजानी देवपूजानी विधि जोइशु, तेथी राजाए बोलाववाथी ते पण त्या आव्यो ॥ २५९ ॥ ते वखते राजा पण सुवर्णना पाटलापर शकर आदिक देवोने तथा श्री शांतिनाथ प्रभुनी प्रतिमाने स्थापीने पूजा करवा लाग्यो ॥ २६० ॥ त्यारे त्यां जिन प्रतिमाने जोइने देवबोधि बोल्यो के राजन्! आ तमारु पूजन आदिक अयुक्त छे, केमके वेद अने स्मृति रहित होवाथी जैनधर्म सत्य नथी, तेमज वळी कुळधर्म तथा देशधर्मनु उल्लंघन न करवु जोइए ॥ २६१ ॥

किंच,—। निंदतु नीतिनिपुणा यदिवा स्तुवतु'० इत्यादि ॥ २६२ ॥ ततो नृपोऽवोचत्, हे देवबोधे श्रौतो धर्मो हिंसाकलुषत्वेनाऽसर्वज्ञप्रणीतत्वेन च मम मनसि न प्रतिभाति, जैनस्तु सर्वजीवदयासंवादसुंदरत्वेन भृशं स्वदते ॥ २६३ ॥ पुनर्देवबोधि प्रोचे, राजन् यदि न प्रत्येषि तदा महेश्वरादिदेवान् स्वपूर्वजांश्च मूर्तिमतोऽत्रागतान् स्वमुखेन पृच्छेति निगद्य विद्याशक्त्या तानदीदृशत् ॥ २६४ ॥ अत्र महेश्वरादिदेवत्रयपूर्वजसंवादो देवबोधिवचनानुसारेण ज्ञेयं, यावदस्मत्प्रतिकृतिरेष देवबोधिर्महायतिर्गुरुतया स्वीकार्य इत्याद्युक्त्वा ते सर्वे तिरोदधुः ॥ २६५ ॥ ततो नृपो विस्मितः सोमेशोक्तं तदुक्तं च स्मरन् जड इवाऽजनि ॥ २६६ ॥

वळी ' नीतिनिपुणो निंदे अथवा स्तुति करे ' इत्यादि ॥ २६२ ॥ त्यारे राजाये कह्यु के, हे देवबोधि ! वैदिक धर्म हिंसाथी कलुषित थयेलो छे, तेमज सर्वज्ञ प्रभुनो रचेलो नथी, माटे मारा मनने ते रुचतो नथी, अने जैनधर्म तो सर्व जीवो प्रत्ये दयावाळो सुंदर होवाथी मने बहु रुचे छे ॥ २६३ ॥ त्यारे वळी देवबोधिये कह्यु के, हे राजन् ! जो तमोने खातरी न थती होय, तो अहीं साक्षात् मूर्तिरूपे आवेला महेश्वर आदिक देवोने तथा तमारा पूर्वजोने तमारा मुखथीज पूछो ? एम कही पोतानी विद्याशक्तिथी तेणे तेओने देखाड्या ॥ २६४ ॥ अहीं महेश्वर आदिक त्रणे देवो तथा पूर्वजो सरभि संवाद देवबोधिना वचन प्रमाणेज जाणी लेवो, ते एटले सुधिके, आ देवबोधि महायति अमारीज मूर्ति छे, तथा तेने तारे गुरु रूपे स्वीकारवो, एम कही तेओ सघळा अक्षोप थया ॥ २६५ ॥ ते जोड विस्मय पामेलो राजा सोमेशे कहेलु अने तेओए कहेलु याद करतो थको जड जेवो थइ गयो ॥ २६६ ॥

अथ मंत्रिवचसा ज्ञाततत्स्वरूपा. श्रीहेमसूरय. क्ष्मापते साशयिकमिथ्यात्वापदो निस्तारयितु प्रातर्नृपतितो दूरे सप्तगब्दिकमासनमध्यास्य स्थिता ॥ २६७ ॥ ततो देवबोधे सम कलावान् गुरुर्न दृश्यते कोऽपि, परं निजगुरौ श्रीहेमाचार्ये किंचित्कला-कौशलं सम्भाव्यते नवेत्यादिवदन्नृपः स्वामिन् प्रातर्देवबोध्यादिसमक्ष पृच्छयते गुरव इ-त्यादि मन्त्रिवचसा देवबोध्यादिपरिवृत. प्रातर्गुरून्ननाम ॥२६८॥ ततोऽध्यात्मशक्त्या पवा-पि मारुतान्निरुध्यासनात् किंचिदुच्चस्यव्याख्यातुमारेभिरे गुरव ॥२६९॥ तावता पूर्व-सकेतित शिष्योऽधरासनमाकृषत्, ततो निराधारा एवाऽस्खलितवचनैः सार्धप्रहर व्याख्यातिस्म ॥ २७० ॥

हवे मन्त्रिना वचनथी राजानु ते स्वरूप जणाया बाद श्रीहेमचंद्रजी राजाने सशयवाला मिथ्यात्वरूप दु'खथी निर्वर्तन करवाने प्रभाते नीतथी छेटे सात गादीवालु आसन बीछावी तेपर बेठा ॥२६७॥ पछी राजा मन्त्रिने कहेवा लाग्यो के, हे मन्त्रि ! देवबोधि सरखो कळावान् बीजो कोइ गुरु देखातो नथी, तोपण आपणा गुरु हेमचंद्राचार्यमा पण कइ कळाकौशल्य छे के नहीं ? त्यारे मन्त्रिये कह्यु के, हे स्वामी ! प्रभाते आपणे ते माटे देवबोधिनी समक्ष गुरुमहाराजने पूछीशु, इत्यादि मन्त्रिना वचनथी राजाए देवबोधि आदिक परिवार सहित प्रभाते श्रीहेमचंद्रजी महाराजने नमस्कार कर्यो ॥ २६८ ॥ त्यारे पोतानी अध्यात्मशक्तिथी पाचे वायुने रोकीने, तथा आसनथी कइक उचा रहीने, गुरुमहाराज व्या-ख्यान वाचवा लाग्या ॥ २६९ ॥ एटलामा पूर्वथी सकेत करेला शिष्ये नीचेनु आसन खेंची लीधु, अने तेथी आधाररहितज गुरुमहाराजे अधर रहीने दोढ पहोर सुधी अस्खलित वचनोथी उपदेश आप्यो ॥ २७० ॥

अथ देवबोधेरपि रत्नासनमासीत्, मौनेन च कायवायव. सुजया स्यु, परं व्याख्यान-यतोऽस्य स्थितिरतिकौतुककरीति चिंतयन्नृप. श्रीगुरुनासने निवेश्योवाच ॥ २७१ ॥ तिरोहिता सर्वकला कलावता। कलाविलासैस्तव सूरिशेखर ॥ तेजस्विना किं प्रसरति दीप्तय । समततो भास्वति भास्वति स्फुट ॥२७२॥ सूरयोऽपि मम देवतावसर पश्येयुरीर्यं श्रीचौलुक्यमपवरकेऽनैपु, तत्र च पुरापि हेमासनेषु निविष्टाश्चतुर्मुखानऽष्टमहाप्रातिहार्यादिविराजितान्, चतुःषष्टिसुरेन्द्रसेव्यान् साक्षाच्चतुर्विंशतिजिनेन्द्रान् श्रीचुलुक्यादीनेकविंशति स्वपूर्वजांश्च रत्नाभरणादिविश्वातिशायिसपदाख्यान् श्रीजिनाग्रे योजितपाणीन् दृष्ट्वाऽनमत् ॥ २७३ ॥

हवे ते वखते राजाए विचार्यु के, देवबोधिनुं पण केवळ आसन हतुं, तेमज मौनपणाथी तो शरीरनां वायु सुखे जीती शकाय, परंतु व्याख्यान करतां थकां आवी रीते अधर रहेवुं, ए वधारे आश्चर्यवाळु छे, एम विचारी राजाये गुरुमहाराजने आसनपर बेसाडी कह्युं के ॥ २७१ ॥ हे सूरिशेखर ! आप साहेबनी कळा कुशळताए तो कळावानोनी सघळी कळाओने ढांकी दीधी छे, केमके चारे बाजुथी प्रगट रीते सूर्य प्रकाशते छते (तारा आदिक) तेजस्वीओनी कांतिओ शुं प्रकाशी शके छे ॥ २७२ ॥ पछी आचार्यजी महाराजे राजाने कह्युं के, अमारी पण देवपूजनविधि तमे जुओ एम कहीने तेओ राजाने एक ओरडामां लइ गया, त्यां प्रथमथीज सुवर्णना सिंहासनपर बेठेला, चार मुखोवाळा, आठ महाप्रातिहार्यादिकोथी विराजित थयेला, चोसठ इंद्रोथी सेवायेला, एवा साक्षात् चोवीसे जिनेश्वरोने तथा चुलुक्य आदिक पोताना एकवीस पूर्वजो के, जेओ रत्नोनां आभूषणो आदिकथी जगतमां अतिशयोवाळी संपदावाळा हता, तेओने श्रीजिनेश्वरप्रभुओ पासे हाथ जोडी रहेला जोइने ते राजा नम्यो ॥ २७३ ॥

तेऽप्यवदन् राजन्नेकस्त्वमेव विवेकी जगति, यो हिंसादुष्टं श्रौतं धर्मं त्यक्त्वा दया-
धर्मं प्रपन्नः, अयं गुरुः सर्वदेवावतार एव, तदुक्तं तत्वमाराधयेति ॥ २७४ ॥ पू-
र्वजा अपि वत्स त्वया जिनधर्मादरणाद्वयं सुगतिभाजोऽभूमः ईदृशी च महर्द्धि
र्नुजमहे इत्याद्युक्त्वा तिरोदधुः ॥ २७५ ॥ ततो दोलायितमना नृपः सम्यक् त-
त्व श्रीगुरूनप्राक्षीत्, श्रीसूरय प्रोचुः, राजन्निन्द्रजालकलाकलितमेवैतन्न कश्चित्पर-
मार्थः ॥ २७६ ॥ देवबोधेरेकैवैषा, मम तु सप्त सति, तद्भक्त्या दर्शितमिदं, यदि
न प्रत्येषि तदा वद, विश्वमपि समग्रं दर्शयामि, परं न किंचिदेतत, तत्वं तद्द-
त्वा सोमेशदेवोऽवददित्यादि ॥ २७७ ॥

तेओ पण कहेवा लाग्या के, हे राजन् ! तुज एक जगत्मा विवेकी छो, के जेणे हिंसाना दूषण-
वाळो वेदधर्म छोडीने दयाधर्म स्वीकार्यो छे, आ श्रीहेमचंद्रजीगुरु सर्व देवोना अवताररूपज छे, माटे तेमणे
कहेला तत्वोनुं तुं आराधन कर ॥ २७४ ॥ पूर्वजो पण कहेवा लाग्या के, हे वत्स ! तें जे जैन-
धर्म स्वीकार्यो छे, तेथी अमो सुगतिने जनार थया छीये, अने आवी महान् ऋद्धि अमो जोगवीये छीये,
एम कहीने तेओ अलोप थया ॥ २७५ ॥ पछी मोळायेला मनवाळा राजाए गुरुमहाराजने सत्य तत्व
पूछयु, त्यारे आचार्यजी महाराजे कह्यु के, हे राजन् ! आ सघळु इंद्रजाळनी कळानु कार्य छे, परंतु तेमा
कइ पण परमार्थ नथी ॥ २७६ ॥ ज्यारे ते देवबोधि पासे आ एकज इंद्रजाळ कळा छे, त्यारे मारी पासे
तेवी सात कळाओ छे, अने तेनी शक्तिथी में आ तने देखाड्यु छे; जो तने तेनी खातरी न होय, तो
कहे तो समस्त जगत् तने देखाडु, परंतु ते सघळु कइ नथी, माटे सत्य तत्व तो तेज छे, के जे तने
सोमेश्वरदेवे ते वखते कहेलु छे. इत्यादि ॥ २७७ ॥

तत श्रीगुरुसाहाय्यान्निस्तीर्णस्ता मिथ्यात्वापद, दृढसम्यक्त्वो बभूव क्रमादिति ॥ २७८ ॥ अथान्यदा नवरात्रेषु देवतार्चका नृपं व्यजिज्ञपन् हेनरेन्द्र कंटेश्वर्यादिकुलदेवीना बलिहेतो ७-८-९ दिनेषु क्रमात् ७-८-९ शतान्यजमहिषा दीयते, नोचेद्देवता विघ्नकारिण्यो भवतीत्यादि ॥ २७९ ॥ ततो राजा श्रीगुरुवचसा दिनत्रय भोगादि अकुर्वन् जिनेश्वरध्यानेकतानो, नवमीरात्रौ यावदास्ते, तावत्कंटेश्वरी त्रिशूलहस्ता साक्षाद्भूयाऽवक् ॥२८०॥ राजन् एतद्भो अस्मद्देय, कस्मात्त्वया नाऽदायि त्वत्पूर्वजे प्रागुदत्तमित्यादि ॥ २८१ ॥

त्यारबाद एवी रीतना श्रीगुरुमहाराजनी सहायथी ते मिथ्यात्वरुपी आपदाने तरी गयो, तथा अनुक्रमे दृढ समकीती थयो ॥ २७८ ॥ हवे एक दहाडो नवरात्रिमा देवीपूजको राजाने विनति करवा लाग्या के, हे राजन् ! कंटकेश्वरी आदिक कुळदेवीओना बळिदान माटे सातम, आठम अने नोमने दिवस अनुक्रमे सातसो, आठसो अने नवसो बकरां तथा पाडाओ आपवामा आवे छे, अने जो तेम नहीं करो तो ते देवीओ विघ्न करशे इत्यादि ॥ २७९ ॥ ते सांभळी राजा तो श्रीगुरुमहाराजना वचनथी त्रण दिवसो सुधी भोग आदिक नहीं करीने एक श्रीजिनेश्वरप्रभुनाज ध्यानमा लाग्यो. पछी ज्यारे नोमनी रात्री थइ, त्यारे हाथमा त्रिशुळवाळी कंटकेश्वरीदेवी प्रत्यक्ष थइ कहेवा लागी के ॥ २८० ॥ हे राजन् ! अमारु बळिदान तें केम न आप्यु, तारा पूर्वजोए पण प्रथम अमोने आपेलु छे. इत्यादि ॥ २८१ ॥

राजा स्माह, हेकुलदेवते विश्ववत्सले सम्प्रति जीवदयाधर्ममर्मज्ञो नाहं जीवान् हन्मीत्याद्यत्र जीवदया स्थापना देवींप्रति तदुपदेशश्च ॥ २०२ ॥ ततो रुष्टा देवी त्रिशूलेन नृप मूर्ध्नि हत्वा तिरोऽभूत, तेन दिव्यघातेन सद्यो नृपः सर्वांगीणाष्टकुष्टादिरोगग्रस्तोऽजनि ॥ २०३ ॥ ततो मंत्रिणमाकार्य देवीव्यतिकरमाचख्यौ, देहस्वरूपं चाऽदर्शयत, ततो वज्रहत इव जज्ञे मंत्री ॥ २०४ ॥ राजाऽवक् मंत्रिन्नमे कुष्टादि बाधते, किंतु मद्धेतुक जैनधर्मे लांछनं भावीति यावत् कोऽपि न वेत्ति, तावद्रात्रावेव वह्नौ प्रवेक्ष्यामीत्यादि वदत नृपं निषेध्य श्रीगुरूणां तत्स्वरूप ज्ञापितवान् ॥ २०५ ॥

त्यारे राजाए कह्यु के, हे कुळदेवता ! हे जगतनुं वत्सल करनारी ! हमणां तो में जीवदयारूप धर्मनो मर्म जाणेलो छे, माटे हवे हु जीवहिंसा करीश नहीं, इत्यादि अहीं जीवदयानी स्थापना, तथा देवी प्रत्ये राजाए करेला उपदेशनु वर्णन जाणी लेवु ॥ २०२ ॥ ते सांभळी क्रोधायमान थयेली देवी राजाने मस्तकमां त्रिशुळ मारी अलोप थइ गइ, तथा ते दिव्यघातथी राजाना सर्व शरीरमां कुष्ट आदिक रोगोनी उत्पत्ति थइ ॥२०३॥ पछी तेणे मंत्रिने बोलावी देवीनु वृत्तांत कह्यु, तथा पोतानु शरीर पण देखाड्यु, ते जाइ मंत्रि जाणे वज्रथी हणायो होय नहीं, तेवो थयो ॥ २०४ ॥ पछी राजाये कह्यु के, हे मंत्रि ! मने आ कुष्ट आदिकनी तो पीडा नथी परंतु मारे लीधे जैनधर्मने कलंक लागशे माटे ज्यांसुधी आ बाबत कोइ जाणतु नथी, त्यांसुधीमां हु अग्निमां बळी मरु, एम कहेता राजाने निषेधीने ते स्वरुप मंत्रिये श्रीगुरुमहाराजने जणाव्युं ॥ २०५ ॥

ततो गुरुदत्ताभिमन्त्रितवारिणा सिद्धरसेनेव जात्यहेमद्युतिर्नृपदेहोऽभूत्, महान् हर्षो जिनधर्मप्रभावना ॥ २७६ ॥ प्रातर्गुरुवन्दनायागच्छन् शालाप्रवेशे स्त्रीकरुणस्वरं शुश्राव भूप, ततस्तां कण्टेश्वरीं निशि दृष्टां प्रत्यभिज्ञासीत् ॥ २७७ ॥ श्रीगुरून् प्रसाद्य मन्त्रबधादमोचयच्च, तदन्वष्टादशदेशेषु जीवरक्षातलारक्षता कुर्वती सा राजभवनद्वारेऽस्थात् ॥ २७८ ॥ अथ श्रीकुमारभूपोऽन्यदा वर्षासु श्रीपत्तनप्रतोलीभ्यो बहिर्निर्गमननियमं जग्राह, तं नियमं चरेभ्यो ज्ञात्वा गुर्जरदेशभञ्जनाय गर्जनेशो महानीकप्रयाणमकरोत् ॥ २७९ ॥

पछी श्रीगुरमहाराजे आपेला मंत्रेला पाणीवडे करीने ते जाणे सिद्धरसवडे करीने होय नहीं, तेम राजानु शरीर उत्तम सुवर्ण जेवी कांतिवाळु थइ गयु, अने तेथी मोटो हर्ष तथा जैनधर्मनी प्रभावना थइ ॥२७६॥ प्रभाते गुरमहाराजने वांदवा माटे ज्यारे राजा आव्यो, त्यारे पौषधशाळामां प्रवेश करती वखते तेणे कोइक स्त्रीनो करुणास्वर सांभळयो, तथा रात्रिये जोएली कंटकेश्वरीदेवीने रडती थकी तेणे ओळखी कहाडी ॥ २७७ ॥ पछी तेणे गुरमहाराजने प्रसादित करीने तेणीने मंत्र बंधनथी छोडावी, अने ते वार पछी अढारे देशोमां जीवरक्षा माटे चोकी करती थकी ते राजभुवनना द्वारमां रहेवा लागी ॥२७८॥ हवे एक वखते श्रीकुमारपाळराजाए वर्षाकाळमां पाटणना दरवाजाथी बहार नीकळवानु नियम लीधु, तेना ते नियमने गुप्त मनुष्योथी जाणीने गीजनीना सुलताने गुजरातदेश भांगवा माटे मोटी सेनासहित प्रयाण कर्यु ॥ २७९ ॥

तत्स्वरूपं चेरज्यो ज्ञात्वा, एकतो देशभंगे लोकपीडा, अन्यतो व्रतभंग इत्यतो व्याघ्रदुस्तटीसंकटे पतित साऽमात्य. श्रीकुमारपालनृप. श्रीगुरूणां ज्ञापितवांस्तत्स्वरूपं ॥ १९० ॥ तत. श्रीगुरवो राजन् त्वदाराधितधर्म एव सहायस्तव, चिंतां मा कृथाः सर्वथेत्याश्वास्य नृप, ध्यानमारूढाः ॥ १९१ ॥ गते मुहूर्ते गगनाध्वनाऽयांतं पल्यंकमद्राक्षीन्नृपः, स च सुप्तैकपुरुषः क्षणादागत्य गुरो. पुरस्तस्थौ पल्यकः ॥ १९२ ॥ कोऽयमित्यादिप्रश्नपरे नृपे सगर्जनाधीशोऽय पल्यकः, सुप्तो यस्तवोपर्यागच्छन्नभूदित्यवोचन् सूरयः ॥ १९३ ॥

ते वृत्तांत गुप्त मनुष्यो मारफते जणावाथी कुमारपाळ राजा, एक बाजुथी देशनो भंग थवाथी लोकोने पीडा थाय, तथा बीजी बाजुथी व्रतनो भंग थाय, व्याघ्रतटी न्याय जेवा संकटमां पड्यो, अने तेथी तेणे ते वृत्तांत मंत्रिसहित श्रीआचार्यजी महाराजने जणाव्यो ॥ १९० ॥ त्यारे गुरुमहाराजे कह्यु के हे राजन् ! तमारो आराधेलो धर्मज तमोने सहाय करशे, माटे कोइ पण जातनी तमो चिंता न करो, एवी रीते राजाने दिलासो दइने गुरुमहाराज ध्यान धरवा लाग्या ॥ १९१ ॥ बे घडी जाते छते राजाए आकाशमार्गे आवता एक पलंगने जोयो ते पलंगपर एक पुरुष सुतेलो हतो, तथा ते पलंग तुरत आवीने गुरुनी पासे स्थिर थयो ॥१९२॥ आ कोण छे ? एम राजाए पूछवाथी गुरुमहाराजे कह्यु के, आ गीजनीना सुलतान पलंगसहित छे, तथा जे तारापर चडीने अहीं आवतो हतो, ते गिजनीनो सुलतान आनी अंदर सुतेला छे ॥ १९३ ॥

ततो जजागार शकाधीशस्तन्महिमानं तदैश्वर्यं देवतासाहाय्यं श्रीगुरुबलं च विमृश्य श्रीकुमारपालेन सह त्यक्तवैर., स्वदेशे प्रतिपन्नषाण्मासिकसर्वजीवाऽमारिः सत्कृत्य राज्ञा विसृष्ट ॥ २९४ ॥ अथान्यदा निशि सुखसुप्तस्य श्यामांगा क्रूररूपा काचिद्देवी प्रत्यक्षीबभूव, नृपपृष्टाऽवदद्भूताधिष्टायिकाहं, पूर्वशापात्त्वदंगे प्रवेक्ष्यामीत्युक्त्वा गता ॥ २९५ ॥ प्रातस्तत्स्वरूपं नृप श्रीसूरिभ्यो ज्ञापयामास, तैर्धर्मोपदेश. प्रतन्यते स्म, राजन् धर्मं कुर्वित्यादि ॥ २९६ ॥ रात्रौ भूपस्य महाव्यथाऽजनि, राजिकाकणमानं पृष्ठे पिटकोऽभूत्, प्रतीकारैरप्यनुपशमे श्रीगुरव प्राप्ता, राजानं दुःखार्तं दृष्ट्वाऽवसरोचितमुपदिश्य मन्त्रिणं स्माहु. ॥ २९७ ॥

एटलामां ते सुलतान जागी उठ्यो, तथा त्यां तेणे तेनो महिमा, तेनी प्रभुता, देवतानो सहाय, तथा गुरुमहाराजनु बळ जोइने कुमारपाळ साथेनु वैर छोडी आप्यु, तथा पोताना देशमां छ मास पर्यंत सर्व जीवोनी हिंसा नहीं करवानु तेनी पासे स्वीकारी, राजाए सत्कारपूर्वक तेने विसर्जन कर्यो ॥ २९४ ॥ हवे एक दहाडो राजा रात्रिये सुखे सुतो हतो, एटलामां श्याम शरीरवाळी तथा भयंकर स्वरूपवाळी कोइक देवी प्रत्यक्ष थइ, राजाए पुछवाथी ते कहेवा लागी के, हु भूतानी अधिष्टायिकादेवी छु, पूर्वना शापना वशथी हु तारा शरीरमां प्रवेश करु छु, एम कही ते चाली गइ ॥ २९५ ॥ प्रभाते ते वृत्तांत राजाए श्रीगुरुमहाराजने जणाव्यु, त्यारे गुरुमहाराजे पण राजाने उपदेश आप्यो के, हे राजन् ! तमो धर्म करो. इत्यादि ॥ २९६ ॥ पछी रात्रिये राजाने घणी वेदना थइ, वांसामां राइना कण जेवडो एक फोल्लो थयो, घणा उपायो कर्या, परंतु दुःख शांत न थयु. एटलामां श्रीगुरुमहाराज त्यां पधार्या, तथा राजाने दुःखी जोइने-अवसरोचित उपदेश देइने मंत्रिने कहेवा लाग्या के ॥ २९७ ॥

मन्त्रिन् अपायाना उपायाः स्युः, बहुरत्ना वसुधरा, मन्त्र्यादादिशत, श्रीगुरुरन्यधा-
त् नात्र मंत्रादीनां प्रभावप्रसर. ॥ २९८ ॥ परं यद्यन्यस्य राज्यं दीयते, तदा राज्ञ·
कुशलं, पर नायं धर्मः श्रीआर्हतानां, ततोऽस्माकमेव राज्यमस्तु ॥ २९९ ॥ राजोए
भगवन् को नाम कीलिकाहेतोः प्रासादोछेदमिच्छतीत्यादि, गुरवोऽप्यधु., राजन् युक्त यदि
मे शक्तिर्न स्यात्, पर—शक्तो हनुमान् मदवंधयत्स्व । विष्णुर्दधौ यच्च शिवास्वरूपं ॥
सैरध्रिकाकारधरश्च भीम—स्तथाहमप्यत्र कृतौ समर्थ· ॥ ३०० ॥ तत· क्रमाच्छून्य·
चित्ते भूपे सर्वसांमत्येन श्रीसूरीराज्ये उपविष्ट·, तत्क्षणमेव राज्ञो व्यथा सूरिवपुषि स·
क्राता ॥ ३०१ ॥

हे मन्त्रि ! दुःखोना उपायो घणा छे, केमके पृथ्वी बहु रत्नोवाळी छे. त्यारे मन्त्रिये कह्युं के, आप साहेब उपाय बतावो. त्यारे गुरुमहाराजे कह्यु के, आ बाबतमा मंत्र आदिकोनो प्रभाव तो चाली शके तेम नथी ॥ २९८ ॥ परंतु जो बीजा कोइने राज देवामा आवे, तो राजाने कुशळ थाय, परंतु तेम कहेवानो जैनीओनो धर्म नथी, माटे अमोनेज राज्य मळे तो सारु ॥ २९९ ॥ त्यारे राजाये कह्यु के, हे भगवन् ! एक खीलीने माटे आखो मेहेल पाडवाने कोण इच्छे ? इत्यादि, त्यारे गुरुमहाराजे कह्यु के, हे राजन् ! जो मारामा शक्ति न होय, तो तो तेम करवु युक्त छे, परतु जेम शक्तिवान् हनुमाने पोतानेज बधाव्यो, तथा विष्णुये जेम शिवनुं स्वरूप धारण कर्युं हतुं, तथा भीमे पण जेम सैरंध्रीनु स्वरूप धारण कर्युं हतुं, तेम हु पण आ कार्यमा समर्थ छु ॥ ३०० ॥ पछी अनुक्रमे राजा ज्यारे शून्य चित्तवाळो थयो, त्यारे सर्वनी सम्मतिपूर्वक आचार्यजी महाराज राज्यगादीए बेठा, के तुरत राजानी व्यथा आचार्यजी महाराजना शरीरमां दाखल थइ ॥ ३०१ ॥

गुरुव्यथां ज्ञात्वा राजा वज्राहत इव, गतसर्वस्व इव स्वेदमेडुरो बभूव ॥ ३०२ ॥ तत, पत्र कुमाम्ममानाय्याप्रविश्यात स्वय गुरु ॥ तत्र न्यवीविशत्कूता ॥ तदैवाभूत्तदन्यथा ॥ ३०३ ॥ उत्पाट्याधप्रधो क्षिप्त । कश्चिन्नोल्लघते यथा ॥ एव स्वस्थमभूत्सर्व । राज्ञो जन्मोत्सव पुन ॥ ३०४ ॥ इति । इह यथैहिकसकटेपु धर्मगोचरेदवनोध्यादिकृतसंकटेपु च साहाय्यकारित्वात्परमार्थहितोपदेशकत्वादकृत्रिमस्नेहादिमत्त्वाच्च भ्रातृसमा श्रीहेमसूरयोऽभूवन् श्रीकुमारपालभूपालप्रति, तथान्येऽपीति भ्रातृदृष्टातभावना ॥ ३०५ ॥

ते वखते गुरुने व्यथा थती जाणीने राजा जाणे वज्रथी हणायो होय नहीं, तथा जाणे तेनु सर्वस्व गयु होय नहीं तेम पसीनावाळो थइ गयो ॥ ३०२ ॥ पछी गुरुमहाराजे एक पाकु कोळु मगावीने तेनी अदर पोते दाखल थया, अने तेमां लुताने मुकी दीधी, तेज वखते गुरुमहाराज पण पीडारहित थया ॥ ३०३ ॥ पछी ते कोळु उपाडीने अधारा कुवामा नाख्यु, के जेने कोइ ओळगी शके नहीं, एवी रीते सघळु शांत थयु तथा राजानो फरीने जन्मोत्सव थयो ॥ ३०४ ॥ इति ॥ अहीं जेम श्रीहेमचद्राचार्य, देवबोधि आदिकोये करेला धर्म सबधि आ लोकना सकटमां कुमारपाळ राजाने सहायकारी थया, तथा परमार्थ हितना उपदेश देवाथी अने अपूर्व स्नेह देखाडवाथी भ्रातसमान थया, तेम बीजाओने पण जाणवा एवी रीते भाइ सबधि दृष्टांतनी भावना जाणवी ॥ ३०५ ॥

पिक्षत्ति, पिता यथा एकांतवत्सलहृदय. पुत्र साम्ना ताडनादिनापि च शिक्ष-
यति, परा प्रतिष्ठां चारोपयति,'' एव केचन गुरवोऽपि श्राद्धजनप्रति पितृसमाः,
युवराजर्षिवत् तथाहि——॥ ३०६ ॥ अचलपुरे जितशत्रुनृपपुत्रो युवराजः, श्रीरो-
हाचार्यपार्श्वे प्रव्रजितः, क्रमात्सकलागमपारदृश्वा त्रिविधलब्धिमांश्चजज्ञे ॥ ३०७ ॥
विहरन्नेकदाऽचलपुरे समागत पृच्छति, अत्र केऽपि साधवः ? सागारिका ज्रणति, न
शक्नुवति साधूपद्रवकृतो राजपुरोध·पुत्रयोरग्रे ॥ ३०८ ॥ ततस्तत्प्रतिबोधं मनसिकृ-
त्य, तयोर्गृहे लोकैर्गृहमानुषैश्च भृश वारितोऽपि भिक्षार्थं प्राप ॥ ३०९ ॥

हवे पिता जेम एकात वत्सलतावाळा हृदययुक्त थया थका पुत्रने मीठे वचने अने ताडना आदिकथी पण शिखामण आपे छे, तथा मोटी प्रतिष्ठाये चडावे छे, तेम केटलाक गुरुओ पण युवराजऋषिनी पेठे श्रावक लोको प्रत्ये पिता समान होय छे, ते युवराजऋषिनुं दृष्टात नीचे मुजब छे ॥ ३०६ ॥ अचळपुरमा जितशत्रु राजानो युवराज पुत्र हतो, तेणे श्रीरोहाचार्य पासे दीक्षा लीधी हती, अनुक्रमे ते सघळा आगमोमा पारगामी तथा नाना प्रकारनी लब्धिओवाळो थयो ॥ ३०७ ॥ एक दहाडो विहार करता थका ते अचळपुरमा आव्या, अने पूछवा लाग्या के अहीं कोइ साधु छे के नहीं ? त्यारे श्रावकोए कह्युं के, अहीं राजानो तथा पुरोहितनो पुत्र साधुओने बहु पजावे छे, तेथी तेनी आगळ कोइ साधु अहीं रही शकता नथी ॥ ३०८ ॥ पछी तेने प्रतिबोधवानु मनमा धारीने, लोकोये तथा घरनां माणसोये घणु वार्या छता पण ते ऋषि भिक्षा माटे ते कुमारोने घेर गया ॥ ३०९ ॥

ततो मासमध्ये महर्षेरवज्ञाभूदित्यतो नीतभीताजिरंत पुरनारीभिर्महर्षे मंदं मद वद, उपरिभूमिस्थौ कुमारौ श्रोष्यत. ॥ ३१० ॥ इत्यादि निवार्यमाणोऽपि गाढगाढस्वर धर्माशिष दत्ते, श्रुत्वागतौ कुमारौ उचतुश्च, ऋषे नर्त्तितु वेत्सि॥ ३११ ॥ ऋषिरज्ञापत बाढं, पर युवा सम्यग् वादयत, ततो मुनिरनृत्यत्, तौ च वादयत, पर न सम्यग् जानीत. ॥ ३१२ ॥ ततोऽवकाश लब्ध्वा विसृज्य नृत्तं, शिक्षितौ महर्षिणागान्युत्तार्य, च क्रंदतौ मुक्त्वा स्वपद प्राप महर्षि ॥ ३१३ ॥ ज्ञात राज्ञा, प्राप्तः गुरुपार्श्वे, उपलक्षितो मुनि क्षमितश्च, ततो नृपाऽत्याग्रहाद्दीक्षां प्रतिपाद्य शिरसि लोच प्रथम कृत्वा च प्रगुणीकृतो प्रव्राजितौ च ॥ ३१४ ॥

त्यारे जनानानी स्त्रीओये विचार्यु के, आपणी नगर आगळ आ महर्षिनी अवज्ञा न थाय तो सारु एम विचारी करती एवी ते स्त्रीओये मुनिने कह्यु के, हे महर्षि ! तमो धीरे धीरे बोलो ? केमके माळ उपर रहेला बन्ने कुमारो त्यांक सांभळशे ॥ ३१० ॥ एवी रीते निवारण करतां छतां पण ऋषि तो मोहोटे मोहोटे सादेथी धर्माशिष देवा लाग्या, ते सांभळी ते बन्ने कुमारो आवीने कहेवा लाग्या के, हे ऋषि ! तमोने नाचतां आवडे छे ॥ ३११ ॥ त्यारे ऋषिए कह्यु के, खूब आवडे छे, परतु तमारे सारी रीते वगाडवु पडशे, पछी मुनि तो नाचवा लाग्या, अने ते बन्ने कुमारो वगाडवा लाग्या, पण तेओने सारी रीते (मृदंग आदिक) वगाडतां आवडयु नहीं ॥ ३१२ ॥ पछी अवकाश मेळवीने, नाचवु छोडी दइ, मुनिए तेओने एवी तो शिक्षा करी के तेओनां हाडके हाडकां उतरी गया, पछी तेओने त्यां रडता छोडीने, मुनि पोताने स्थानके गया ॥३१३॥ पछी ते बाबतनी ज्यारे राजाने खबर पडी, त्यारे ते गुरु पासे आव्यो, अने मुनिने ओळखीने तेणे खमाव्या, पछी राजाना अत्यत आग्रहथी ते बन्ने कुमारोने दीक्षा आपीने, तथा प्रथमथीज मस्तकपरथी लोच करी तेओने सावधान करीने तेणे प्रव्रज्या आपी ॥ ३१४ ॥

यतः—बलाद्दत्तानि बालानां । विद्याभोजनमौषधं ॥ गवा नालिकया चाज्यं । तथा धर्मोऽपि पुष्टये ॥ ३१५ ॥ इति, यथाऽसौ युवराजर्षिर्भ्रातृजं पुरोहितपुत्रं च ताडयित्वापि धर्मं प्रत्यपादयत्, एवं केचिद्गुरवोऽपि पितृसमाः, इति पितृदृष्टांतभावना ॥ ३१६ ॥ मायत्ति, माता हि पितुरप्यधिकतरैकांतिकात्यंतिकवात्सल्यभृद्भवेत्, तदुक्तं—सुधामधुविधुज्योत्स्ना—मृद्वीकाशर्करादिभिः ॥ वेधसा सारमादाय । जनितं जननीमनः ॥ ३१७ ॥ शिक्षयति च पुत्रं विविधलोभप्रदर्शनाद्यनुकूलाचरणाद्युपायशतैरपि साम्नैवेति, तथा केचिद्गुरवोऽपि सति भव्यानिति मातृसमाः, कमलश्रेष्ठिसुतप्रतिबोधकतृतीयाचार्यवत्, तद्यथा—॥ ३१८ ॥

केमके—बालकोने विद्या, भोजन, अने औषध जेम बलात्कारे आपवामां आवे छे, तेमज गायने पण जेम नाळथी बळात्कारे घी पावामां आवे छे, तेम बळात्कारे आपेलो धर्म पण पुष्टिकारक छे ॥ ३१५ ॥ इति, जेम आ युवराजऋषिए भत्रिजाने तथा पुरोहितना पुत्रने मार मारीने पण धर्म पमाड्यो, तेम केटलाक गुरुओ पण पिता समान होय, एवी रीते पिताना दृष्टांतनी भावना जाणवी ॥ ३१६ ॥ हवे माता छे ते, पिताथी पण अधिक रीते एकांत अत्यंत वत्सलतावाळी होय छे, कह्युं छे के—अमृत, मध, चंद्र, चांदनी, द्राक्ष तथा साकर आदिकमांथी पण सत्व खेंचीने ब्रह्माये मातानुं मन बनावेलुं छे ॥ ३१७ ॥ वळी ते माता पुत्रने विविध प्रकारनो लोभ देखाडवा आदिकथी, तेम तेना मनने पसंद पडे तेवा सेंकडोगमे उपायो तथा आचरणोथी मीठे वचनेज शिखामण आपे छे, तेम केटलाक गुरुओ पण, कमळशेठना पुत्रने प्रतिबोधनारा त्रीजा आचार्यनी पेठे भव्यो प्रत्ये माता सरीखा होय छे, ते त्रीजा आचार्यनुं दृष्टांत नीचे मुजब छे ॥ ३१८ ॥

ततो मास्मदृष्टौ महर्षेरवज्ञाभूदित्यतो नीतभीताजिरत.पुरनारीभिर्महर्षे मंदं मद वद, उपरिभूमिस्थौ कुमारौ श्रोष्यत ॥ ३१० ॥ इत्यादि निवार्यमाणोऽपि गाढगाढ-स्वरं धर्माशिष दत्ते, श्रुत्वागतौ कुमारौ उचतुश्च, ऋषे नर्त्तितु वेत्सि॥ ३११ ॥ ऋषिरज्ञापत वाढ, पर युवां सम्यग् वादयतं, ततो मुनिरनृत्यत्, तौ च वादय-त, परं न सम्यग् जानीत ॥ ३१२ ॥ ततोऽवकाशं लब्ध्वा विसृज्य नृत्त, शि-क्षितौ महर्षिणागान्युत्तार्य, च क्रदतौ मुक्त्वा स्वपद प्राप महर्षि. ॥ ३१३ ॥ ज्ञात राज्ञा, प्राप्त· गुरुपार्श्वे, उपलक्षितो मुनि· क्षमितश्च, ततो नृपाऽत्याग्रहाद्दीक्षा प्रतिपाद्य शिरसि लोच प्रथमं कृत्वा च प्रगुणीकृतौ प्रव्राजितौ च ॥ ३१४ ॥

त्यारे जनानानी स्त्रीओये विचार्यु के, आपणी नजर आगळ आ महर्षिनी अवज्ञा न थाय तो सारु एम विचारी करती एवी ते स्त्रीओये मुनिने कह्यु के, हे महर्षि ! तमो धीरे धीरे बोलो ? केमके माळ उपर रहेला बन्ने कुमारो स्याक सांभळशे ॥ ३१० ॥ एवी रीते निवारण करतां छतां पण ऋषि तो मोहोटे मोहोटे सादेथी धर्माशिष देवा लाग्या, ते सांभळी ते बन्ने कुमारो आवीने कहेवा लाग्या के, हे ऋषि ! तमोने नाचतां आवडे छे ॥ ३११ ॥ त्यारे ऋषिए कह्यु के, खूब आवडे छे, परंतु तमारे सारी रीते वगाडवु पडशे, पछी मुनि तो नाचवा लाग्या, अने ते बन्ने कुमारो वगाडवा लाग्या, पण तेओने सारी रीते (मृदंग आदिक) वगाडता आवडयु नहीं ॥ ३१२ ॥ पछी अवकाश मेळवीने, नाचवु छोडी दइ, मुनिए तेओने एवी तो शिक्षा करी के तेओनां हाडके हाडकां उतरी गयां, पछी तेओने त्यां रडता छोडीने, मुनि पोताने स्थानके गया ॥३१३॥ पछी ते बाबतनी ज्यारे राजाने खबर पडी, त्यारे ते गुरु पासे आव्यो, अने मुनिने ओळखीने तेणे खमाव्या; पछी राजाना अत्यत आग्रहथी ते बन्ने कुमारोने दीक्षा आपीने, तथा प्रथमथीज मस्तकपरथी लोच करी तेओने सावधान करीने तेणे प्रव्रज्या आपी ॥ ३१४ ॥

यत.—बलाद्दत्तानि बालाना । विद्याभोजनमौषधं ॥ गवां नालिकया, चाज्य । तथा धर्मोऽपि पुष्टये ॥ ३१५ ॥ इति, यथाऽसौ युवराजर्षिर्भ्रातृज पुरोहितपुत्रं च ताडयित्वापि धर्मं प्रत्यपादयत्, एव केचिद्गुरवोऽपि पितृसमा·, इति पितृदृष्टांतभावना ॥ ३१६ ॥ मायन्ति, माता हि पितुरप्यधिकतरैकांतिकात्यंतिकवात्सल्यभृद्भवेत्, तदुक्त—सुधामधुविधुज्योत्स्ना—मृद्वीकाशर्करादिभिः ॥ वेधसा सारमादाय । जनितं जननीमनः ॥ ३१७ ॥ शिक्षयति च पुत्रं त्रिविधलोभप्रदर्शनाद्यनुकूलाचरणाद्युपायशतैरपि साम्नैवेति, तथा केचिद्गुरवोऽपि सति भव्यानिति मातृसमा·, कमलश्रेष्ठिसुतप्रतिबोधकतृतीयाचार्यवत्, तद्यथा—॥ ३१८ ॥

केमके—बाळकोने विद्या, भोजन, अने औषध जेम बलात्कारे आपवामा आवे छे, तेमज गायने पण जेम नाळथी बळात्कारे घी पावामां आवे छे, तेम बलात्कारे आपेलो धर्म पण पुष्टिकारक छे ॥ ३१५ ॥ इति, जेम आ युवराजऋषिए भत्रिजाने तथा पुरोहितना पुत्रने मार मारीने पण धर्म पमाड्यो, तेम केटलाक गुरुओ पण पिता समान होय. एवी रीते पिताना दृष्टांतनी भावना जाणवी ॥ ३१६ ॥ हवे माता छे ते, पिताथी पण अधिक रीते एकांत अत्यंत वत्सलतावाळी होय छे; कह्यु छे के—अमृत, मध, चद्र, चादनी, द्राक्ष तथा साकर आदिकमाथी पण सत्व खेंचीने ब्रह्माये मातानु मन बनावेलु छे ॥ ३१७ ॥ वळी ते माता पुत्रने त्रिविध प्रकारनो लोभ देखाडवा आदिकथी, तेम तेना मनने पसद पडे तेवा सेंकडोगमे उपायो तथा आचरणोथी मीठे वचनेज शिखामण आपे छे, तेम केटलाक गुरुओ पण, कमळशेठना पुत्रने प्रतिबोधनारा त्रीजा आचार्यनी पेठे भव्यो प्रत्ये माता सरीखा होय छे; ते त्रीजा आचार्यनुं दृष्टांत नीचे मुजब छे ॥ ३१८ ॥

श्रीपुरनगरे श्रीपति श्रेष्ठी, परमसम्यग्दृष्टि., तस्य कमल सुत, पर धर्मपराङ्मुखो निर्लज्जो व्यसनी गुरुदर्शन दुरितमिति मन्यते ॥ ३१९ ॥ साधर्मिकान् सर्पानिव द्वेष्टि, देवाधिदेवस्तुतिपाठ शोकाक्रदमिव गणयति, धर्मविषये वहुधापि पितु शिक्षा जस्मनि हुतायतेस्म ॥ ३२० ॥ नास्तिक सर्वथोछ्लवचनो निरकुश गर्जन्नगरांतश्चचार, अन्यदा श्रीशकरसूरीणामागम, श्रेष्ठिना पुत्रस्वरूपविज्ञपन, कमलस्य गुरुपार्श्वे प्रेपण, गुरुजिरुपदेशपृच्छा च ॥ ३२१ ॥ वत्स किं विज्ञात, कमल — न किंचित्, किं कारण, मया जगवता कथादि कथयता चलती घटिकाऽष्टोत्तरशतवारं गुणिता, ततश्च पूज्यैश्चरमेरुतोमरादिशब्दा केऽपि गलवलायमाना. शीघ्र शीघ्र पठिता ॥३२२॥

श्रीपुर नामना नगरमां श्रीपति नामे शेठ हतो, ते परम सम्यग्दृष्टी हतो, तेने कमळ नामे पुत्र हतो, परतु ते धर्मथी पराङ्मुख, निर्लज्ज अने व्यसनी हतो तथा गुरुना दर्शनने तो पाप रूपेज मानतो ॥ ३१९ ॥ साधर्मिओ प्रत्ये तो सर्पोनी पेठे द्वेष राखतो हतो, देवाधिदेवनी स्तुतिना पाठने शोकना विलाप सरखो जाणतो हतो, वळी धर्मना सबधमां तेनो पिता तेने शिखामण आपतो हतो, परतु ते सघळी राखमा घी होमवा सरखी थती हती ॥३२०॥ सर्वथा प्रकारे उछ्लठ वचनवाळो थइने नास्तिक थयो थको अकुश रहित थइने गर्जना करतो थको नगरमां ते जमतो हतो, एक वखते त्यां श्रीशकरसूरि पधार्या, शेठे तेमने पुत्रनु वृत्तात कह्यु, तथा पछी कमळने गुरुपासे तेणे मोकल्यो; गुरुए पण उपदेश देइने तेने पूछ्यु के ॥ ३२१ ॥ हे वत्स! तु शु समज्यो? त्यारे कमळे कह्यु के, हु तो कइ पण समज्यो नथी; गुरुए पूछ्यु के, तेनु कारण शु? त्यारे तेणे कह्यु के, ज्यारे आप साहेब कथा आदिक कहेता हता, त्यारे आपना गळाना घरडी एकसो आठवार चालती में गणी, अने पछीतो आप चमर मेरु तोमर आदिक केटलाक शब्दो गबवरू गबवरू करीने तुरत तुरत जाणी गया ॥ ३२२ ॥

तत्रांतरे घंटिकाचलनसंख्या नाऽज्ञायीत्यादि, ततोऽयोग्योऽयमित्युपेक्षितस्ते, कमलः सुष्ठुहसितो, जरद्गव इति लोके जगर्ज. लोकाज्ज्ञाततद्वृत्तांतः श्रेष्ठी लज्जित. ॥ ३२३ ॥ पुनरन्यदा शीलसागरगुर्वागमः, प्राग्वत् सर्वं, नवरं अधःपश्यताऽस्मक्षा-स्यान सम्यक् चिंतनीयमिति गुरुशिक्षावचः, कमलेन कीटिकादरप्रवेशसंख्याक-रणान्निंदित उपेक्षित. सर्वैरपि स. ॥ ३२४ ॥ अथान्यदा केऽप्याचार्या विपश्चि-ज्जनमनोवसंतास्तत्रैयरु. तैरपि श्रुतं कमलस्वरूपं, हितार्थितया मनसि प्रतिज्ञातश्च तत्प्रतिबोध, श्रेष्ठिनो ज्ञापनं ॥ ३२५ ॥

ते वखते गदमी चालवानी सख्या मने मालुम पडी नही, इत्यादि पछी तेने अयोग्य जाणीने तेओए तेनी उपेक्षा करी; पछी लोकोमा पण ते कमळनी ' आ गळीओ बेल छे, ' एवी घणी हांसी थइ, पछी ते वृत्तात जाणवाथी शेठने घणी शरम थइ ॥ ३२३ ॥ वळी एक दहाडो त्या शीळ-सागर नामे गुरु पधार्या, सघळु वृत्तात पूर्वनी पेठेज जाणवु, परन्तु विशेष के, तेने गुरुमहाराजे एवी रीतनु शिखामणनु वचन कह्यु के, तारे नीचे जोइने अमारु व्याख्यान सारी रीते विचारवु, त्यारे कमळे तो दरमा जती कीडीओनी सख्या गणी, अने तेथी तेनी सघळाओए निंदा तथा उपेक्षा करी ॥ ३२४ ॥ हवे एक दहाडो त्या विद्वानोना मनने वसत सरखा एवा कोइक आचार्यजी महाराज पधार्या, तेओए पण ते कमळनु वृत्तान्त साभळ्यु, अने तेथी हितार्थीपणाये करीने तेने प्रतिबोधवानी तेमणे प्रतिज्ञा करी, अने पछी तेमणे ते वात शेठने जणावी ॥ ३२५ ॥

गुरूणामादरं दृष्ट्वा श्रेष्ठिना गुरुपार्श्वे प्रहितः कमलः, प्राग्वन्नटनधिया तत्र प्राप्तश्च सः, दुष्टो मूढश्चायमित्यनुकूलाचरणरञ्जनैहिकफलोपदर्शनादिना साम्ना बोध्य इति विमृश्यावोचुर्गुरव ॥ ३२६ ॥ जद्र कमल! वेत्सि किमपि वात्स्यायनशास्त्ररहस्य, कमल प्रोचे जगवन्! किमहं वेद्मि, प्रसद्यादिशतु सार किंचिद्, गुरव.—पूर्वं स्त्रीरसार्थिना स्त्रीणां गुणा अवगतव्या., गुणादिष्वपि जावानुविद्धता-प्रधान ॥ ३२७ ॥ यदाह—आकारैः कतिचिद् गिरा कुटिलया काश्चित्क्रियत्य. स्मितैः। स्वैरिण्य. प्रथयति मन्मथशरव्यापारवश्य मन ॥ कासांचित्पुनरङ्गकेषु मसृणच्छायेषु गर्जस्थितो। जाव. काचपुटेषु पुष्करमिव प्रव्यक्तमुत्प्रेक्षते ॥ ३२८ ॥

गुरुमहाराजनो आदर जोइने शेठे तेमनी पासे कमलने मूक्यो, अने ते पण पूर्वनी पेठे जगवाना विचारथी त्यां आव्यो, त्यारे गुरुए विचार्यु के, आ मनुष्य [illegible] अने मूढ छे, माटे तेने अनुकूल पडे तेवां आचरणोथी तथा आ लोकमा प्रत्यक्ष फळ देखाडवा आदिकथी मीठे वचने प्रतिबोधवो, एम विचारी तेमणे तेने कह्यु के ॥३२६॥ हे जद्र कमळ! तु कइ कामशास्त्रनु रहस्य जाणे छे? त्यारे कमळे कह्यु के, हे जगवन्! हु शु जाणु? माटे कृपा करीने आप तेनो कइक रहस्य समजावो. त्यारे गुरुजीए कह्यु के, पहेल्यां तो स्त्रीरसना अर्थीए स्त्रीओना गुणो जाणवा जोइए, गुणोमा पण तेओना जावनु जाणवु, ते उत्तम छे ॥ ३२७ ॥ कह्युं छे के—केटलीक स्त्रीओ आकारथी, कोइक वक्र वचनोथी तथा केटलीक स्वेच्छाचारी स्त्रीओ हास्यथी, मनने कामदेवना बाणना व्यापारमां वश करे छे, तेम केटलीक स्त्रीओनो कोमळ छायावाळा अगोमां रहेलो हृदयगत जाव, काचना प्यालामां रहेला जळनी पेठे प्रगट देखाइ आवे छे ॥ ३२८ ॥

इत्यादि कामकथाक्षिप्तहृदय प्राह कमल. भगवन्! क एवमन्यो वेत्ति, नीरसपूर्वसूरिवाग्विषदग्ध. पुनरुल्लास मे मनस्तरुर्भवद्वचनामृतसारण्या, नित्य वदना करिष्यामीति प्रतिशुश्रुवे ॥ ३२९ ॥ तत प्रत्यहमायाति, कदाचिदर्थकथा, कदाचित्स्त्रीकथा, कदाचिदिन्द्रजालविद्याविनोद , कदाचित् प्रश्नप्रहेलिकादयः, एवं मासोऽत्यगात् ॥ आसन्ने विहारावसरे श्राद्धा यथार्हं नियमान् प्रपद्यते, कमलोऽपि गुरून् सविनयमापपृच्छे ॥ ३३० ॥ गुरव. स्माहु. भद्र विजिहीर्षवो वयं, कमपि नियमं गृहाण. धर्मो हि सार. पुरुषार्थेषु स च संयमसाध्य इत्यादि ॥ ३३१ ॥

इत्यादिक कामकथाओथी वश थयेला मनवाळो कमळ कहेवा लाग्यो के, हे भगवन्! आवी आवी (उत्तम वातत) बीजो कोण जाणी शके ? पूर्वना वन्ने आचार्योनी रस विनानी वाणीरूपी विषथी दग्ध थयेलु मार मनरुपी वृक्ष, आजे आपना आ वचनोरुपी अमृतनी नहेरथी फरीने प्रफुल्लित थयु छ, माटे हवे तो हु आपने हमेशां वादवा आवीश, एवुं तेणे नियम ग्रहण कर्यु ॥ ३२९ ॥ पछी ते हमेशा त्या आववा लाग्यो , त्या कोइ दिवसे अर्थकथा, कोइ दिवसे स्त्रीकथा, कोइ दिवसे इंद्रजाळ सबधि विद्याविनोद, तो कोइ दिवसे प्रश्नसमस्या, एम एक मास व्यतीत थयो. पछी गुरुमहाराजने विहार करवानो वखत नजदीक आववाथी, श्रावको यथायोग्य नियमो लेवा लाग्या, कमळे पण विनयपूर्वक गुरुमहाराजनी रजा मागी ॥ ३३० ॥ त्यारे गुरुजीए तेने कह्यु के, हे भद्र ! हवे अमो विहार करवाना छीये, माटे तु कइक नियम ग्रहण कर. केमके, सर्व पुरुषार्थोमा धर्म सारभूत छे, अने ते संयमथी सधाय छे , इत्यादि ॥ ३३१ ॥

कमलोऽपि विटतापटुरवक्, जूयासोऽपि नियमा प्राक् सति मे, तद्यथा—उपविश्यै-व शयनीय, स्ववाळ्या न मर्त्तव्य, पक्वान्नेषु कवेल्लकेष्टकादि न नद्य, क्षीरेषु स्नुह्या-दिक्षीराणि न पेयानि, अक्षत नालिकेरं मुखे न निक्षेप्य, परधन गृहीत्वा नाऽर्पणीयं ॥ ३३२ ॥ प्रत्यर्पणीय चेत् महाविलवेनेत्यादि, गुरवोऽवदन् नद्र नाय हास्यावस-र, किमपि नियमरत्न गृहाण ॥ ३३३ ॥ केलीकिल. सोऽवक् प्रातिवेश्मिकस्य रजोरत कुलालस्य टट्टि दृष्ट्वा मया जोक्तव्य, नान्यथेति मे नियमोऽस्तु ॥३३४॥ गुरुन्निस्ततोऽपि तस्य धर्माऽवाप्तिं विज्ञाय सर्वसमक्ष स एव नियमो दृढीचक्रे, पाल-यति च स लोकलज्जादिना, किंचिदाचार्यसपर्कजधर्मश्रद्धयापि च ॥ ३३५ ॥

त्यारे लुच्चाइमा कुशळ एवो कमल पण कहेवा लाग्यो के, साहेब ! में तो पहेलेथीज नीचे मुजब घणा नियमो ग्रहण कर्या छे, ते सांजलो बेसीनेज सूवु. पोतानी इच्छाथी मरवु नहीं. पकवानोमा नळीया तथा इट आदिक खावु नहीं, दूधमा थोर आदिकनु दूध पीवु नहीं, परधन लइने पाछु आपवु नहीं ॥ ३३२ ॥ जो पाछु कदाच आपवु पमे तो महोटो विनय करवो, इत्यादि ते सांजळी गुरुमहाराजे कह्यु के, हे नद्र ! आ कइ हांसीनो अवसर नथी, माटे कइक पण नियमरूपी रत्न तु ग्रहण कर. ॥ ३३३ ॥ ते सांजळी महा मश्करो ते कमळ बोल्यो के, माग मूतिकारक पमोशी कुंजारनी (माथानी) टाल जोइने मारे खावु, ते शिवाय खावु नहीं, एवो मने नियम करावो ॥ ३३४ ॥ गुरुमहाराजे तेथी पण तेने धर्मनी प्राप्ति जाणीने सघळाओनी समक्ष तेज नियम तेनी पासे दृढ कराव्यो, अने ते कमळ पण लोक-लज्जा आदिकथी तथा कइक कइक आचार्य महाराजना संगथी उत्पन्न थयेली धर्मश्रद्धाथी पण पाळवा लाग्यो ॥ ३३५ ॥

अन्यदा राजकुले रुद्धो गृहमुत्सरेऽगात् जोक्तु यावडुपविशति, तावन्नियम सस्मार, कुलालस्य गृह प्राप्त, पर स न गृहे, तत खनिं प्राप्त, नीचै. खनत प्राप्त-निधे कुलालस्य दृष्टि दृष्ट्वा, दृष्टेति जल्पन् मुष्टि बध्वा पश्चाद्धावित. ॥ ३३६ ॥ शकितेन कुलालेनार्धं सर्वं वा तव, परं मा गाढ वदेत्युक्त्वा पश्चाद्वालितो निधि प्राप, कुलालाय पुनर्दयया किंचिद्ददौ, तत इहापि दृष्टधर्मफलस्तानेव गुरून् शर-णीचक्रे, तदुक्त धर्मं सम्यगाराध्य स्वर्गमवाप, क्रमान्निर्वृतिमेतीति ॥ ३३७ ॥ यथा हि एते गुरुव कमल साम्नैवाऽशिक्षयस्तन्मनोरंजनप्रकारैरेवं मे गुरवो जव्यांस्तन्मनो-रंजनादिभि साम्नैव धर्मे प्रवर्त्तयते ते मातृसमा, इति मातृदृष्टातजावना ॥ ३३८ ॥

एक दिवसे राजदरबारमा रोकाइ जवाथी ते असुरो घेर आव्यो, तथा जेटलामा जोजन करवाने बेसे छे, तेटलामा तेने ते नियम साजरी आव्यु, तेथी ते कुजारने घेर गयो, परतु कुजार घेर नहोतो, तेथी ते माटीखाणे गयो, त्या नीचेथी खोदता तें कुजारने ते वखते निधान प्राप्त थयु हतु, तेनी दाढ जोइने, ‘ जोइ जोइ ’ एम बोलतो थको ते मूठी वाळीने पाछो दोमयो ॥ ३३६ ॥ कुजारने शका पमवाथी, तेणे तेने कयु के, अरे ! अरधु अथवा सघुये निधान तुं लेजे, परतु महोटे सादे बोल नहीं, एम कही तेने पाछो वाळयो, अने तेथी तेने ते निधान मळ्यु, वळी दया लावीने तेणे कुजारने तेमाथी थोडुक आप्यु, पछी त्यारथी मानीने, अहीं पण धर्मनु फळ जोइने, तेणे तेज गुरुनु शरणुं लीधुं, तथा तेमणे कहेलो धर्म सम्यक् प्रकारे आराधीने ते स्वर्गे गयो, तथा अनुक्रमे ते मोक्षे जशे ॥ ३३७ ॥ माटे जेम ते गुरुमहाराजे कमळने तेनु मन जेम खुशी थाय तेवा प्रकारोथी मीठे वचनेज शिखामण आपी, तेम जे गुरुओ जव्योने तेमना मनने खुशी उपजा-ववा आदिकथी मीठे वचनेज धर्ममा प्रवर्तावे छे, तेओने मातासमान जाणवा, एवी रीते माताना दृष्टातनी जावना जाणवी ॥ ३३८ ॥

कल्पतरवोऽपि, कल्पतरुवत्केचन गुरवः सर्वोत्तमज्ञानलब्धिसमृद्धिभृतः सुराणामप्या-राध्यास्त्रिजगतोऽपि स्पृहणीयगुणा दुर्लभदर्शना सकलमनोवाञ्छितफलार्पणशक्तिभृ-तो भक्तिजलसेकमात्राराधिता निजाश्रितानां मनोऽभिमताशेषसुखफलसंपादका भ-वंति ॥ ३३९ ॥ त्र्युत्तरपंचदशशत (१५०३) तापसादिप्रतिबोधतत्परमान्नभोजना-दिकेवलज्ञानावधिमनोवाञ्छितफलदायिश्रीगौतमगणधरादिवत् ॥ ३४० ॥ इत्युक्ता सर्पादिनिर्दिष्टान्तैर्द्वादशधा गुरवः, तेष्वाद्याः षट् सर्वथाऽप्ययोग्याः कुगुरव एवेति त्यागमर्हंति, अपरे च षट् भवजलधितरणतारणप्रत्नविष्णवो यथोत्तरमधिकाधिकशु-भफलप्रदाश्च सुगुरवः, इत्यादरेण सेव्या इति तत्त्वं ॥ ३४१ ॥

हवे केटलाक गुरुओ कल्पवृक्षनी पेठे सर्वोत्तम ज्ञान तथा लब्धिनी ऋद्धिवाळा होय छे, तेमज देवोने पण पूजवा लायक, त्रणे जगत्मां पण जेओना गुणो गवाय छे एवा, तथा जेमनुं दर्शन थवुं पण दुर्लभ छे, तेमज सघळां मनोवाञ्छित फळो देवामां शक्तिवाळा, तथा फक्त भक्तिरूपी जळ सींचीने आराधवाथी पोताना आश्रितोने मनवाञ्छित सर्व सुखोरूपी फळोने आपनारा थाय छे ॥ ३३९ ॥ (कोनी पेठे) तो के, पन्दरसो त्रण तापसादिकोने प्रतिबोधनारा तथा छेक क्षीरना भोजनथी मांडीने केवलज्ञान सुधी मनोवांछित फळोने देनारा श्रीगौतमगणधर आदिकोनी पेठे ॥३४०॥ एवी रीते सर्प आदिकना दृष्टांतोवडे करीने बार प्रकारना गुरुओ कह्या, तेओमां पहेला ■ तो सर्वथा प्रकारे अयोग्य कुगुरुओज छे, माटे तेओ तजवा लायक छे, अने बाकीना छ आ भवरूपी समुद्रमांथी तरवा तारवाने समर्थ छे, तथा उत्तरोत्तर अधिक अधिक शुभ फळोने देनारा सुगुरुओ छे, माटे तेओने आदरपूर्वक सेववा, एवो भावार्थ छे ॥ ३४१ ॥

अथेयमेव द्वादशत्नगी श्रोतॄनप्याश्रित्याऽतिदेशेन दर्श्यते, तत्र केचित् श्रोतार. सर्पोपमाः स्युः, येषु सुधापूरोपमा अपि सुगुरूपदेशा एकांतिकाहिता अमृतमया अपि विषतयैव परिणमति ॥ ३४२ ॥ यदाह—सासाईतं जल । पत्तविसेसेण अंतरं गुरुअ ॥ अहिमुहपडिअं गरलं । सिप्पउडे मुत्तिअं होइ ॥ ३४३ ॥ दृष्टांताः कालकसूरिजागिनेयतुरमिणिनगरीशदत्तनृपादयः ॥ तथा केचिदामोषक- तुल्याः, ये गुरूणां छिद्रान्वेषिणः, पदे पदे सदसत्प्रमादस्खलिताद्युच्चारयतस्ता द- ग्निदापराजवादिहेतुदुर्वचनायुधैस्तर्जयतो धर्मोपदेशाद्युपाददते गुरुभ्यो धनमिवा- मोषका धनिभ्य. ॥ ३४४ ॥

हवे तेज घारे जागा (सांजळनारा) श्रावकोने आश्रीने पण अतिदेशे करीने देखाडे छे, हवे तेओमां केटलाक श्रावको सर्प सरखा होय छे, के जेओ प्रत्ये अमृतना समूह सरखा पण सुगुरुना उपदेशो, के जे उपदेशो एकांत हितकारी तथा अमृतमय होय छे, तोपण तेओने झेररूपेज परिणमे छे ॥ ३४२ ॥ कह्यु छे के—स्वाति नक्षत्रनु पाणी पण पात्र- विशेषमा पडवाथी तेना परिणाममा मोटो तफावत पडे छे, केमके सर्पना मुखमा पडवाथी ते झेररूपे परिणमे छे, अने छि- पना सपुटमा पडवाथी तेज जळ मोतीरूपे परिणमे छे ॥ ३४३ ॥ अहीं कालकसूरिना भाणेज तथा तुरमिणी नगरीना स्वामी दत्तराजा आदिकोना दृष्टांतो जाणवां. वळी केटलाक श्रावको लूटारा जेवा पण होय छे, के जेओ गुरुओना छिद्रो जुए छे, तथा पगले पगले (गुरुओना) साचा खोटा प्रमाद, स्खलना आदिकने प्रकाशीने निंदा पराजय आदिकना हेतुरूप एवां दुर्वचनोरूपी आयुधोवडे गुरुओनी तर्जना करीने, लूटाराओ जेम धनवानोनु धन लूटी ले छे, तेम गुरुओ पासेथी धर्मोप- देश आदिक ग्रहण करे छे ॥ ३४४ ॥

श्रीगुरवोऽपि तथा तर्ज्यमाना अपि माजूवन्नमी धर्मद्वेषिण इत्यादिविकल्पाहित-
धियस्तेभ्यस्ततथाविधेभ्योऽपि श्राद्धेभ्यो यथार्हं धर्मोपदेशादि ददते, ततस्ते आ-
मोपकतुल्या ॥ ३४५ ॥ भणिताश्चैते खरटादितुल्यतयाऽऽगमेऽपि, यथा—जह
सिढिलमसुइदव्वं । छुप्पंत पि हु नरं खरंटेइ ॥ एवमणुसासगं पिहु । दूसंतो
भन्नइ खरंटो ॥ ३४६ ॥ थद्धोछिद्दप्पेही । पमायखलिआणि निच्चमुच्चरइ ॥
सड्ढो स वकिकप्पो । साहुजणं तणसमं गणइ ॥ ३४७ निच्छइओ मिच्छत्ती ।
खरटतुल्लो सवक्कितुल्लो अ ववहारओ वहुज । जिणगेहाइसु गच्छति ॥ ३४८ ॥

तेमज गुरुओ पण तेवी रीते तर्जना पामता छता पण एम विचारे छे के, आ कुश्रावको धर्मना द्वेषी न थाय तो सारु, एम विचारी जयना मार्या तेवा श्रावको मत्ये पण योग्य धर्मोपदेश आदिक आपे छे, माटे तेवा श्रावको छूटारा सरखा छे ॥ ३४५ ॥ वळी तेवाओने आगममा पण नीचे मुजब खरट आदिकनी उपमा आपेली छे जेम नरम एवु (विष्ठ आदिक) अशुचि द्रव्य, तेने स्पर्श करनारा मनुष्यने खरडे छे, तेम पोताने उपदेश आपनार मत्ये पण जे द्वेष करे छे, ते खरट कहेवाय छे ॥ ३४६ ॥ कागळा सरखो श्रावक क्षुद्र तथा छिद्र जोनारो थयो थको हमेशा साधुओना ममाद स्खलितोने मकाशे छे, तथा तेओने तृण समान गणे छे ॥ ३४७ ॥ एवो खरट सरखो तथा कागळा तुल्य एवो ते श्रावक निश्चयथी मिथ्यात्वी होय, तथा व्यवहारथी फक्त घणु करीने ते जिनमंदिर आदिकमा जाय छे ॥ ३४८ ॥

इति, यथा च ठका मायया परेषां धनाद्यपहरति, तथा केचिच्छ्राद्धास्तादृग्विन-यसंवेगवैराग्याजासदर्शनसम्यग्श्राद्धक्रियादेवगुरुसाधर्मिकजक्तिप्रभृतिभिर्विश्वास्य परे-षां धनाद्यपहरंति ॥ ३४ए ॥ श्रूयते च,—भ्रमति दाम्भिका· केचिद्देवगुरु-धार्मिका ॥ परद्वीपाडुपेतेन । विक्रीतौ वणिजा यती ॥ ३५० ॥ तत्संबधश्च, भृगुक्षेत्रे केचिदाचार्या·, तेषां गच्छो महान्, बालशैक्षाद्याकुल, तत्रान्यदा द्वीपा-तरात्प्रवहणमागतं, तन्मध्यादेको वणिग् मायावी कर्पटाऽधीतश्रावकाचारो भ्रमन् वसतिं प्राप ॥ ३५१ ॥ ववंदे गच्छं, प्रारेजे परिचयं, जज्ञे चाभिमत इव गच्छस्य, आवर्जितौ क्षुल्लकौ, प्रस्ताविता तयोरग्रे प्रवहणवार्त्ता, जाता तयोस्तद्दिदृक्षा ॥३५२॥

वळी जेम ठगो कपटथी परना धन आदिकने हरे छे, तेम केटलाक श्रावको, तेवा प्रकारना विनय, संवेग तथा वैराग्यना आजासरूप सम्यग्दर्शन, श्रावकनी क्रिया, देव, गुरु तथा साधर्मिकोनी जक्ति आदिकवडे करीने परने विश्वास उपजावी तेओना धन आदिकने हरी ले छे ॥३४ए॥ शास्त्रमां सजळाय छे के, देव, गुरु तथा धर्म विनाना केटलाक कपटीओ आ दुनियामां फरे छे; जेम परद्वीपथी आवेला एक वणिके बे यतिओने वेच्या छे ॥ ३५० ॥ तेनु वृत्तांत नीचे मुजब छे; भृगुक्षेत्रमां कोइक आचार्य वसता हता, तेओनो गच्छ महोटो हतो, अने ते बाळकोने शिक्षा आदिक देवामां व्याकुळ हतो, एक वखते बीजा द्वीपथी एक वहाण आव्यु, तेमां एक वणिक हतो, के जे महा धूर्त तथा कपटथी श्रावकनो आ-चार जणेलो हतो, ते जमतो थको उपाश्रये आव्यो ॥ ३५१ ॥ तेणे सघळा साधुओने वांद्या, तेओनो परिचय कर्यो, अने तेथी साधुओने पण ते वहालो थइ पड्यो, पछी तेणे बे नानी वयना साधुओने वश कर्या, तथा तेओनी पासे तेणे वहाण संबंधि कथा कहेवा मांडी, अने तेथी ते बाळसाधुओने वहाण जोवानी उत्कंठा थइ ॥ ३५२ ॥

गुरूनापृच्छ्य त खलु पुरस्कृत्य गतावुपसागरं, तदा च वाहनपूरणिकावसर, प्रोत्तम्भित सितपट इत्यादि, आरूढश्च तदाऽसौ दिदर्शयिषामिषाद्व स· ॥ ३५३ ॥ तावत्प्रेरित यान, प्राप्त वर्वरकूले, विक्रीतौ तत्र तौ, गृहीत बहु तन्मूल्य धन, रज्यते तत्र दुकूलानि नृशोणितै, तद्धयेते तत्र तौ तीक्ष्णक्षुरै, आकृष्यते रक्त ॥ ३५४ ॥ एव कष्ट सहमानयोर्गतो बहु समय., अन्यदा भृगुपुरागतपरिचितश्राद्धेनोपलक्ष्य मोचितौ, पश्चात्प्रासावालोचितप्रतिक्रांतौ क्रियापरौ सेवतेस्म गच्छ ॥ ३५५ ॥ गतेषु बहुषु वर्षेषु स एव द्रोही वणिगागात, 'निसीही' इत्यादिप्रक्रियापूर्वं प्रवृत्तो वदितु यावदुपलक्षितस्तावत्क्षुल्लकाभ्यां, नतु तेन तौ ॥ ३५६ ॥

तेथी गुरू महाराजनी आज्ञा मागीने, तथा ते दुष्टने अगाडी करी तेओ समुद्र किनारे आव्या, ते वखते वहाण हकारवानो समय हतो, अने तेथी सढ चढयो, इत्यादि अने ते वखते ते दुष्ट वणिक पण ते साधुओने देखाडवाना मिषथी तेओने लइ तेमा चढी बेठो. ॥ ३५३ ॥ एटलामा वहाण तो चालवा माड्यु, अने बब्बर काठे पहोंच्यु, त्या ते दुष्ट ते बन्ने साधुओने वेचीने तेओनी किमतनु घणु धन लीधु, हवे त्या मनुष्यना रुधिरथी कपडा रगमा आवता हता, अने तेथी ते साधुओना शरीरमा त्या धारवाळी छरीओ घोंचवामा आवती हती, अने तेम करी तेओनु रुधिर खेंचवामां आवतु हतु ॥ ३५४ ॥ एवी रीते तेओने कष्ट सहन करतां थका घणो वखत निकळी गयो, एटलामा एक वखते त्या भृगुपुरथी आवेला कोइक ओळखीता श्रावके तेओने ओळखीने छोडाव्या, अने तेथी पाछा आवी आलोचना लइ तेओ क्रियामा तत्पर थइ गच्छनी सेवा करवा लाग्या. ॥ ३५५ ॥ पछी केटलाक वर्षो गया बाद तेज दुष्ट वणिक पाछो त्या आव्यो, 'निसीही' आदिक क्रियापूर्वक जेटलामां ते वादवा लाग्यो, तेटलामां ते बन्ने साधुओए तेने ओळखी कहाड्यो, परतु ते दुष्टे तेओने ओळख्या नही ॥ ३५६ ॥

आगतमात्रेण निमन्त्रितौ क्षुल्लौ यानदर्शनाय, ब्रूत. स्म च तौ,—दिट्ठं वच्चरकूलं । दिट्ठाणि अ सह्व तुम्ह चरिआइं ॥ अन्ने वद सुसावय । जे तुम्ह गुणे न याणंति ॥ ३५७ ॥ तच्छ्रुत्वा नष्ट· स., ज्ञाततत्त्वो गच्छश्चिर नंदतिस्मेति, एवंविधा अन्येऽपि बहव प्रसिद्धा इति ॥ ३५८ ॥ अथ वणिग्वत, केचन श्रावका ऐहिकमंत्रतंत्रनिमित्तचिकित्सादिनोपकुर्वंतमेव गुरुमिति कृत्वा भजते, वस्त्राहारादिनोपचरति च, नापरं मुधादायितयेति वणिक्समा., दृष्टांता. प्रसिद्धा ॥ ३५९ ॥ अन्ये च वन्ध्यगवीसदृशा, येपु सुवह्वपि गुरूपदिष्टं भस्मनि हुतायते, न पुन कस्मैचिद्गुणाय, ब्रह्मदत्तचक्र्यादिव्विवेति ॥ ३६० ॥

पछी तो तेणे आवतावेतज ते बन्ने साधुओने वहाण जोवा माटे निमत्रण कर्यु, त्यारे ते साधुओ कहेवा लाग्या के, हे श्रावक ! अमोए वच्चरकुळ जोयु, तेम तारा चरित्रो पण जोया, माटे हे सुश्रावक ! जे तारा गुणो नथी जाण्या, तेओने जइने तु वाट ॥ ३५७ ॥ ते सांभळी त्यांथी ते नाशी गयो, अने गच्छ पण सावचेत थइने त्यारथी आनंद करवा लाग्यो. एवी रीतना बीजा पण घणा श्रावको प्रसिद्ध छे ॥ ३५८ ॥ हवे केटलाक श्रावको वणिक सरखा होय छे के जेओ आ लोकमा फायदाकारक एवा मत्र, तत्र, निमित्त तथा वैदक आदिकवडे करीने उपकार करनारानेज गुरु मानीने तेने सेवे छे, तथा तेओनेज वस्त्र, आहार आदिकथी सतोपे छे, परंतु बीजाने नही, केमके बीजाने देवु ते तेओ फोगट देवु माने छे, माटे तेवाओने वणिक सरखा जाणवा, तेना दृष्टांतो प्रसिद्धज छे ॥ ३५९ ॥ वळी केटलाक श्रावको वध्या गाय सरखा होय छे, के जेओ प्रत्ये गुरुए आपेलो घणो उपदेश पण राखमा घी नाखवा तुल्य थाय छे, परतु कइ पण गुणकारी थतो नथी, कोनी पेठे ? तो के ब्रह्मदत्तचक्रि आदिकोने विषे जेम ॥ ३६० ॥

अन्ये च पुनर्नटोपमा, ये सुगुरूक्त धर्मोपदेश सरसकथासूक्तादिरूप धारयंति, स-र्वमपि लोकरञ्जनार्थं कण्ठस्थतयैव, न पुनर्मनागप्यतर्भेदयति, एते च पञ्चऽप्यभव्या दूरभव्या गुरुतरकर्माणो वा सर्वथाप्यभव्या इत्युपदेशाऽयोग्या इति ॥ ३६१ ॥ तथा केचन धेनुसदृशा, येषु दत्त स्वल्पमपि धर्मपद महाफलाय कल्पते, धनपतिम-हेभ्यवत् ॥ ३६२ ॥ तथाहि—नदनृपे राज्यमनुशासति धनपति श्रेष्ठी श्राद्धेषु ल-ब्धरेख स्वक्रियानिष्ठो यथाव्यवहारशुद्ध्या व्यवहरति, अन्यदाऽपूर्ववस्तुप्राभृतीक-रणात्तुष्टेन राज्ञा मुख्यो मत्री कृत ॥ ३६३ ॥ प्रमादपकनिमग्नो व्यस्मरत् सर्वधर्म-कर्म, दूरीकृता व्यवहारशुद्धि, न जानाति साधार्मिकान् नापि गुरुदेवानपि ॥ ३६४ ॥

वळी केटलाक श्रावको नट सरखा होय छे, के जेओ सुगुरुए कहेला सरसकथा तथा सुभाषित आदिरूप धर्मोपदेशने धारी राखे छे, तथा ते सघलु (बीजा) लोकोने खुशी करवा माटे फक्त मुखे राखे छे, परतु जरा पण तेओनु हृदय भींजातु नथी, एवी रीते उपर वर्णवेला ते छए प्रकारना श्रावको अभव्य, दुर्भव्य, अथवा भारे कर्मा होवाथी सर्वथा प्रकारे अभव्य होवाथी उपदेशने अयोग्य छे ॥ ३६१ ॥ हवे केटलाक श्रावको वळी गाय सरखा होय छे, के जेओने आपेलो अल्प धर्मोपदेश पण धनपति शेठनी पेठे महाफलदायक थाय छे ॥ ३६२ ॥ ते कहे छे—नदराजा राज्य करते छते एक धनपति नामे शेठ हतो, के श्रावकोमा शिरोमणि तथा पोतानी क्रियामा निष्ठ थयो थको व्यवहारशुद्धिथी व्यापार करतो हतो, एक वखते अपूर्व वस्तु भेट करवाथी सतुष्ट थयेला राजाये तेने मुख्य मत्री कर्यो ॥ ३६३ ॥ अने तेथी प्रमादरूपी कादवमा खुचवाथी तेणे सघलु धर्मकार्य छोडी दीधु, व्यवहारशुद्धि पण दूर करी, तेम साधर्मिको तरफ तथा देवगुरु तरफ पण तेणे ध्यान आप्यु नहीं ॥ ३६४ ॥

मदिरामत्त इव गतविवेकचैतन्योऽभूत्, ततो गुरुभिस्तत्प्रतिबोधाय गाथा प्रैषि ॥३६५॥ उज्झिना किंनु जरा । नट्ठा रोगा य किं गय मरण ॥ पिहिअं च नरयदारं । जण जणो नो कुणइ धम्मं ॥ ३६६ ॥ ता वाचयित्वा सद्य. प्राबुध्यत, सम्यग्धर्ममाराधयामासेति ॥ ३६७ ॥ अन्ये तु मित्रप्रतिमा, ये गुरुषु प्रीतिं परां वहमानांस्तदुक्तं धर्मोपदेशपदं परमार्थहितबुद्ध्या प्रतिपद्यते, आत्मानं च गुरूणां स्वजनादप्यधिकं मन्यते ॥ ३६८ ॥ परं यथावसरं विशेषकार्यादौ प्रश्नादिबहुमानमपेक्षते, अनापृष्टाश्च मनाग् रुष्यंतीति, तथा चागम.—॥ ३६९ ॥ मित्तसमाणो माणो । ईसिं रूसइ अपुच्छिओ कज्जे ॥ मन्नंतो अप्पाणं । मुणीण सयणाओ अब्भहिअं ॥ ३७० ॥

जाणे मदिराथी उन्मत्त थयो होय नहीं, तेम ते निर्विवेकी थइ गयो, त्यारे गुरुमहाराजे तेने प्रतिबोधवा माटे नीचे मुजब एक गाथा मोकली ॥ ३६५ ॥ शुं घडपण चाल्युं ? शुं रोगो नाश पाम्या ? शुं मृत्यु नष्ट थयुं ? तथा शुं नरकनुं द्वार बंध थयुं ? के जेथी माणस धर्म नथी करतो ॥ ३६६ ॥ ते गाथा वांचीने ते तुरतज प्रतिबोध पाम्यो, तथा सम्यग् धर्म आराधवा लाग्यो ॥ ३६७ ॥ वळी केटलाक श्रावको तो मित्र सरखा होय छे, के जेओ गुरु प्रत्ये परम प्रीतिने धारण करता थका तेओए कहेला धर्मोपदेशने परमार्थ हितबुद्धिथी स्वीकारे छे, तेमज गुरुना आत्माने स्वजनथी पण अधिक माने छे ॥ ३६८ ॥ परंतु अवसर पड्ये विशेष कार्य आदिकमां प्रश्न आदिकना बहु माननी अपेक्षा राखे छे, अने ते वखते जो तेमनी सलाह न लेवामां आवे, तो तेओ जरा रीसाइ पण जाय छे, आगममां पण कह्युं छे के ॥ ३६९ ॥ मित्र समान श्रावकनी जो कार्य पडते सलाह न लेवामां आवे तो ते गुरु साथे रीसाइ जाय छे, केमके ते गुरुना आत्माने स्वजनथी पण अधिक माने छे ॥३७०॥

एके पुनर्बंधुवत, श्रीगुरुवचन परमार्थहितधियांगीकुर्वते मुनिष्वेकातेन हार्दस्नेहभृत, पराभवादौ भवत्येव च सहाया, पर विनयकर्मसु तथाऽनादरभृत इति बंधुसमा ॥ ३७१ ॥ यथाह—हिअए ससिणेहोच्चिअ । मुणीण मदायरो विणयकज्जे ॥ बधुसमो साहूण। पराभवे होइ सुसहाओ ॥ ३७२ ॥ केचन पुन पितृसमा, मातृसमाश्च, ततोऽप्यधिकवात्सल्यभृत, उभयेऽपि चैकातवत्सला, प्रमादस्खलितादौ शिक्षयति यथाविधि साधूनपि ॥ ३७३ ॥ न च दृष्टतत्स्खलिता अपि मनागपि मनसि नि स्नेहा भवति युगप्रधानश्रीकालिकसूरिशिष्यशिक्षक शय्यातरश्रावकवत श्रीश्रेणिकादिवच्च ॥ ३७४ ॥

वळी केटलाक श्रावको बधु सरखा होय छे, केमके तेओ परमार्थ हितबुद्धिथी गुरुमहाराजनु वचन स्वीकारे छे, तेमज तेओ प्रत्ये एकाते अतरग स्नेहवाळा होय छे, तेमज उपद्रव आदिकमा सहायभूत पण थाय छे, परतु विनय कार्यमां तेवा आदरवाळा होता नथी, माटे तेओ बधु सरखा छे ॥ ३७१ ॥ कह्यु छे के—हृदयमां तो मुनिओ प्रत्ये स्नेहवाळो परतु विनय कार्यमा मद आदरवाळो एवो बधु समान श्रावक साधुओने पराभव समये उत्तम सहायभूत थाय छे ॥ ३७२ ॥ वळी केटलाक श्रावको पिता समान तथा माता समान पण होय छे, अने तेथी पण अधिक वत्सलतावाळा होय छे, ते बन्ने प्रकारना श्रावको एकाते वत्सल होय छे, तेम तेओ प्रमाद तथा स्खलना आदिकमा साधुओने पण योग्यतापूर्वक शिखामण आपे छे ॥ ३७३ ॥ वळी तेओनी स्खलना जोइने पण जरा पण तेओ स्नेहरहित थता नथी; कोनी पेठे ? तो के युगप्रधान श्रीकालिकसूरिना शिष्यने शिखामण आपनार शय्यातर श्रावकनी पेठे, तथा श्रेणिक आदिकनी पेठे ॥ ३७४ ॥

। न दिठ्ठखलिओवि होइ निन्नेहो ॥ एगतवच्छलो जइ ।
तदुक्त—चिंतइ जइकज्जाइं
जणस्स जणणीसमो सढ्ढो ॥ ३७५ ॥ तत्र पितृसमा ये यथावसर साधूस्तीक्ष्णमपि
शिक्षयंति वलभद्रनृपवत्, तथाहि—॥ ३७६ ॥ श्वेतांविकापुर्यां श्रीआपाढाचार्या.
स्वशिष्यानागाढयोगान् वाहयंतो निशि हृच्छूलेन मृता देवीभूताः, स्नेहात्स्वदे-
हमधिष्ठाय योगान् संपूर्णीकृतवत ॥३७७॥ ततो नव्यमाचार्यं स्थापयित्वा स्ववृत्तां-
त निवेद्य च स्वस्थान प्राप्ता ॥ ३७८ ॥ ततस्तच्छिष्यास्तत्स्वरूपं दृष्ट्वा न ज्ञा-
यते कोऽपि कीदृश इत्यव्यक्तमतवादिनो मिथो वदनमकुर्वाणा राजगृहेमौर्यवंशोत्पन्न-
वलभद्रनृपेण सुश्रावकेण साम्नाऽप्रतिवोध्यानां तेषां प्रतिवोधनोपायमपरमविन्दानवय-
ता चौरा इति कृत्वा धृताः ॥ ३७९ ॥

कह्यु छे के–जे श्रावक यतिना कार्योनी देखरेख राखे छे, तेम तेनी स्खलना जोइने पण स्नेह रहित थतो नथी, तथा एकांत वत्सल एवो श्रावक साधु प्रत्ये माता सरखो छे ॥ ३७५ ॥ तेमां पण पिता समान तेओने जाणवा, के जेओ यथा अवसरे वलभद्रराजानी पेठे साधुओने आकरी शिक्षा पण आपे छे ते कहे छे ॥३७६॥ श्वेतांविका नगरीमां श्रीआपाढाचार्य पोताना शिष्योने आगाढ योग वहन करावता थका रात्रिए हृदयशूलनी व्याधिथी मृत्यु पामीने देवरूपे थया, परंतु स्नेहथी पोताना ते शरीरमां पेसीने तेओना ते योगो तेमणे पूरा कराव्या ॥ ३७७ ॥ तथा पछी नवीन आचार्यने स्थापीने तथा पोतानु वृत्तांत निवेदन करीने तेओ पोताना स्थानके गया ॥ ३७८ ॥ पछी तेमना शिष्यो तेमनु स्वरूप जोइने ' कोइ पण केवो होय, ते जणातुं नथी ' एवी रीतना अव्यक्त मतने स्थापन करता थका परस्पर वंदना न करता थका, राजगृहीमां मौर्यवंशमां उत्पन्न थयेला वलभद्रराजा नामना उत्तम श्रावक तेओने मीठे वचने प्रतिवोध्या, परंतु तेओने प्रतिवोध न लाग-वाथी ते माटे बीजो उपाय न जणावाथी तेओने चोररूपे पकड्या ॥ ३७९ ॥

एके पुनर्बंधुवत्, श्रीगुरुवचनं परमार्थहितधियागीकुर्वते. मुनिष्वेकांतेन हार्द्यस्नेहभृत, पराभवादौ भवत्येव च सहाया, परं विनयकर्मसु तथाऽनादरभृत इति बंधुसमा ॥ ३७१ ॥ यथाह—हिअए ससिणेहोच्चिअ । मुणीण मदायरो विणयकज्जे ॥ बंधुसमो साहूण। परानवे होइ सुसहाओ ॥ ३७२ ॥ केचन पुन पितृसमा, मातृसमाश्च, ततोऽप्यधिकवात्सल्यभृत, उभयेऽपि चैकांतवत्सला, प्रमादस्खलितादौ शिक्षयति यथाविधि साधूनपि ॥ ३७३ ॥ *न च दृष्टतत्स्खलिता अपि मनागपि मनसि निःस्नेहा* भवति युगप्रधानश्रीकालिकसूरिशिष्यशिक्षक शय्यातरश्रावकवत् श्रीश्रेणिकादिवच्च ॥ ३७४ ॥

वळी केटलाक श्रावको बंधु सरखा होय छे, केमके तेओ परमार्थ हितबुद्धिथी गुरुमहाराजनुं वचन स्वीकारे छे, तेमज तेओ प्रत्ये एकांत अंतरंग स्नेहवाळा होय छे, तेमज उपद्रव आदिकमां सहायभूत पण थाय छे, परंतु विनय कार्यमां तेवा आदरवाळा होता नथी, माटे तेओ बंधु सरखा छे ॥ ३७१ ॥ कह्युं छे के—हृदयमां तो मुनिओ प्रत्ये स्नेहवाळो परंतु विनय कार्यमां मंद आदरवाळो एवो बंधु समान श्रावक साधुओने पराभव समये उत्तम सहायभूत थाय छे ॥ ३७२ ॥ वळी केटलाक श्रावको पिता समान तथा माता समान पण होय छे, अने तेथी पण अधिक वत्सलतावाळा होय छे, ते बन्ने प्रकारना श्रावको एकांत वत्सल होय छे, तेम तेओ प्रमाद तथा स्खलना आदिकमां साधुओने पण योग्यतापूर्वक शिखामण आपे छे ॥ ३७३ ॥ वळी तेओनी स्खलना जोइने पण जरा पण तेओ स्नेहरहित थता नथी, कोनी पेठे? तो के युगप्रधान श्रीकालिकसूरिना शिष्यने शिखामण आपनार शय्यातर श्रावकनी पेठे, तथा श्रेणिक आदिकनी पेठे ॥ ३७४ ॥

। न दिठ्ठखलिओवि होइ निन्नेहो ॥ एगतवच्छलो जइ ।
तदुक्त—चितइ जइकज्जाइ
जणस्स जणणीसमो सड्ढो ॥ ३७५ ॥ तत्र पितृसमा ये यथावसर साधूस्तीक्ष्णमपि
शिक्षयंति वज्रजङ्घनृपवत, तथाहि—॥ ३७६ ॥ श्वेतांविकापुर्यां श्रीआषाढाचार्या
स्वशिष्यानागाढयोगान् वाहयंतो निशि हृच्छूलेन मृता देवीभूताः, स्नेहात्स्वदे-
हमधिष्ठाय योगान् सपूर्णीकृतवत ॥३७७॥ ततो नव्यमाचार्यं स्थापयित्वा स्ववृत्तां-
त निवेद्य च स्वस्थान प्राप्ता ॥ ३७८ ॥ ततस्तच्छिष्यास्तत्स्वरूपं दृष्ट्वा न ज्ञा-
यते कोऽपि कीदृश इत्यव्यक्तमतवादिनो मिथो वदनमकुर्वाणा राजगृहेमौर्यवंशोत्पन्न-
वज्रजङ्घनृपेण सुश्रावकेण साम्नाऽप्रतिबोध्याना तेषां प्रतिबोधनोपायमपरमविज्ञाय-
ता चौरा इति कृत्वा धृताः ॥ ३७९ ॥

कह्युं छे के–जे श्रावक यतिना कार्योंनी देखरेख राखे छे, तेम तेनी स्खलना जोइने पण स्नेह रहित थतो नथी, तथा एकात वत्सल एवो श्रावक साधु प्रत्ये माता सरखो छे ॥ ३७५ ॥ तेमां पण पिता समान तेओने जाणवा, के जेओ यथा अवसरे वज्रजङ्घराजानी पेठे साधुओने आकरी शिक्षा पण आपे छे ते कहे छे ॥३७६॥ श्वेतांविका नगरीमां श्रीआ-षाढाचार्य पोताना शिष्योने आगाढ योग वहन करावता थका रात्रिए हृदयशूलनी व्याधिथी मृत्यु पामीने देवरूपे थया, परतु स्नेहथी पोताना ते शरीरमां पेसीने तेओना ते योगो तेमणे पूरा कराव्या ॥ ३७७ ॥ तथा पछी नवीन आचार्यने स्थापीने तथा पोतानु वृत्तात निवेदन करीने तेओ पोताना स्थानके गया ॥ ३७८ ॥ पछी तेमना शिष्यो तेमनु स्वरूप जोइने ' कोइ पण केवो होय, ते जणातुं नथी ' एवी रीतना अव्यक्त मतने स्थापन करता थका परस्पर वदना न करता थका, राजगृहीमां मौर्यवंशमां उत्पन्न थयेला वज्रजङ्घराजा नामना उत्तम श्रावक तेओने मीठे वचने प्रतिबोध्या, परंतु तेओने प्रतिबोध न लाग वाथी ते माटे बीजो उपाय न जणावाथी तेओने चोररूपे पकड्या ॥ ३७९ ॥

पष्ट्यधिकशतत्रय (३६०) वणिकुपुत्रसाधार्मिकस्वसमीकारकसाजगत्सिद्वत् श्रीऋ-पभदेवान्वयालकारसाधार्मिके भक्तिनिघश्रीभरतचक्रिश्रीदण्डवीर्यनृपाविवत् ॥ ३०९ ॥ श्रीअभयकुमारश्रीवस्तुपालादिमन्त्रिवच्च, तेषां सगतिरपि महाभ्युदयहेतुश्छायेव क-ल्पतरूणा, यथा श्रीअभयकुमारमत्रिण सगति· श्रीआर्द्रकुमारस्य कालसौकरिकात्म-जसुलसादीना चेति ॥ ३९० ॥ निदर्शनैरित्यवगत्य योग्याऽयोग्यान् गुरून् श्रो-तृजनाश्च सम्यक् ॥ योग्यादर भो कुरुतेह शुद्धधर्मासितो येन शिव लभध्व ॥ ३९१ ॥

(वळी कोनी पेठे ? तोके) त्रणसोसाठ साधर्मी वणिकपुत्रोने पोतानी बरोबर करनारा आ जगत्सिंह शेठनी पेठे, तेमज श्रीऋपभदेव मभुना वशमां आभूपण समान अने साधर्मिको मत्ये भक्तिवान् एवा श्री भरतचक्री तथा दण्डवीर्य राजा आदिकनी पेठे, ॥ ३०९ ॥ तेमज श्रीअभयकुमार तथा श्रीवस्तुपाल मत्री आदिकनी पेठे, वळी तेओनी सगति पण कल्पवृक्षनी छायानी पेठे महान् अभ्युदयना हेतुवाळी होय छे जेम श्रीअभयकुमारनी सगति श्रीआर्द्रकुमारने तथा कालसौकरिकना पुत्रने सुलसाने फळदायक थइ छे ॥ ३९० ॥ एवी रीते उपर वर्णवेला दृष्टांतो-वडे करीने योग्य अयोग्य गुरुओनु तथा श्रावकोनु स्वरूप सम्यक मकारे जाणीने हे भव्य लोको' शुद्ध धर्मनी माप्तिमाटे अहीं योग्योनो आदर करो, के जेथी तमो मोक्षने मेळवो ॥ ३९१ ॥